चैतन्य मत और ब्रज साहित्य

●

लेखक :

प्रभुदयाल मीतल

भूमिका-लेखक :

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

अध्यक्ष—हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय

●

प्रकाशक :

साहित्य संस्थान, मथुरा

मूल्य—१०)

प्राक्कथन

कृष्णोपासक भक्ति-संप्रदायों में चैतन्य मत का एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि इसका जन्म बंगाल में और आरंभिक प्रचार बंगाल तथा उड़ीसा में श्री चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारी नित्यानंद, अद्वैताचार्य प्रभृति भक्तजनों द्वारा हुआ था; तथापि इसका शास्त्रीय एवं लोक-सम्मत स्वरूप ब्रज-मंडल में निवास करने वाले गौड़ीय विद्वान भक्तों ने निर्धारित किया था। उस विद्वत्समाज में रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, गोपाल भट्ट, कृष्णदास कविराज, जीव गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती और बलदेव विद्याभूषण अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने प्रगाढ़ पांडित्य, अलौकिक भक्ति-भाव और विनम्रता-पूर्ण उज्ज्वल चरित्र से जहाँ पंडितों एवं विद्वत्जनों को चमत्कृत किया था, वहाँ भावुक भक्तों और धर्मप्राण जनता को सीधे-सादे प्रेमधर्म की ओर आकृष्ट भी किया था।

उन विद्वान भक्तों द्वारा ब्रजमंडल में रचा हुआ ग्रंथ समूह ही चैतन्य मत का सर्वमान्य प्रामाणिक साहित्य है। इसका महत्व समस्त भक्तों को सदा ही स्वीकृत रहा है। चैतन्य मत के इतिहास में ब्रजमंडल का यह गौरव इसलिए और भी अधिक उल्लेखनीय है कि गौड़ादि प्रदेशों के विविध स्थानों में रचा हुआ चैतन्य मत का साहित्य उन दिनों तभी प्रामाणिक माना जाता था, जब उसे ब्रजस्थ विद्वत्समाज से मान्यता प्राप्त हो जाती थी! ब्रज के इस महत्व के कारण ही उस काल में बंगाल–उड़ीसा के अनेक उत्साही भक्तजन यातायात की असुविधाओं और मार्ग के संकटों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हुए वहाँ पहुँचते थे। वे वृंदाबन के विद्वान गौड़ीय भक्तों से भक्ति-ग्रंथों की शिक्षा प्राप्त कर अपने-अपने स्थानों में जाकर चैतन्य मत के भक्ति-तत्व का प्रचार और प्रसार किया करते थे। ऐसे उत्साही भक्तजनों में बंगाल के श्रीनिवासाचार्य

और नरोत्तमदास ठाकुर तथा उड़ीसा के श्यामानंद जी का नाम चैतन्य मत के इतिहास में अत्यंत प्रसिद्ध है । उन्होंने वृंदाबन में जीव गोस्वामी से भक्ति-सिद्धांत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर बंगाल और उड़ीसा में इस मत का व्यापक प्रचार किया था। वे लोग जब वृंदाबन से अपने-अपने प्रदेशों को वापिस गये, तब ब्रज में निर्मित भक्ति-ग्रंथों की अनेक प्रतियाँ भी छकड़ों में भर कर अपने साथ ले गये थे।

यहाँ पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ब्रज में निर्मित वह प्रचुर ग्रंथ-सामग्री ब्रजभाषा में नहीं थी । वह अधिकतर संस्कृत भाषा में और कुछ प्राचीन बंगला भाषा में थी । बाद में उन्हीं ग्रंथों की लिपि-प्रतिलिपि, टीका-टिप्पणी और उनके अनुवाद-आधार के रूप में विशाल ग्रंथ-राशि निर्मित हुई, जिसने बंगाल और उड़ीसा के भक्ति-साहित्य को समृद्ध किया है । इस प्रकार चैतन्य मत का महान् साहित्य, चाहें वह ब्रज, बंगाल एवं उड़ीसा में बना, और चाहें अन्यत्र, अधिकतर संस्कृत और बंगला भाषाओं में ही मिलता है। इस ग्रंथ के परिशिष्ट सं० २ में चैतन्य मत के संस्कृत और बंगला ग्रंथों की सूचियाँ दी गई हैं। उनसे ज्ञात होगा कि प्राय: पाँचसौ विद्वान साहित्यकारों ने अपनी सहस्रों रचनाओं द्वारा इस मत के साहित्यिक भांडार को भरा है ।

मध्यकालीन हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ भाग ब्रजभाषा का भक्ति-काव्य है, जो वैष्णव धर्म के विभिन्न संप्रदायों के कवियों द्वारा रचा गया है। सर्वश्री निंबार्काचार्य, बल्लभाचार्य, हित हरिवंश, स्वामी हरिदास आदि के राधा–कृष्णोपासक संप्रदायों में तथा स्वामी रामानंद के रामोपासक संप्रदाय में भी ब्रजभाषा रचनाएँ प्रचुरता से मिलती हैं । चैतन्य मत भी राधा–कृष्णोपासक संप्रदाय है, और जैसा अभी लिखा जा चुका है, यह आरंभ से ही श्रीकृष्ण के लीला-धाम ब्रज–वृंदाबन से संबंधित है; साथ ही इसने ब्रज के सांस्कृतिक निर्माण में सर्वाधिक योग दिया है; फिर भी ब्रजभाषा और ब्रज-साहित्य से इसका संबंध अन्य संप्रदायों की अपेक्षा कम ही रहा है ।

ऐसा होते हुए भी इस मत के कतिपय भक्त कवियों ने आरंभ से ही अपनी कुछ रचनाएँ ब्रजभाषा में भी की थीं। उनकी संख्या ब्रज के अन्य भक्ति-संप्रदायों एवं मतों की ब्रजभाषा रचनाओं से अवश्य ही कम है; किंतु वह इतनी कम नहीं है, जितनी प्राय: समझी जाती है । हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में चैतन्य मत के बहुत कम कवियों के नाम और उनकी रचनाओं का उल्लेख

मिलता है। हिंदी साहित्य के अन्वेषक विद्वान, कदाचित १०--१२ कवियों के नामों एवं उनकी रचनाओं से और अधिक परिचय रखते हों; किंतु नवीन अनुसंधानों से इस मत का जितना साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसकी तो किसी ने कल्पना भी नही की थी। इससे ब्रजभाषा–हिंदी के विशाल भक्ति-साहित्य की समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है।

यह ग्रंथ दो खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में चैतन्य महाप्रभु, उनके सहकारी भक्तों, कवियों, विद्वानों एवं प्रचारकों के जीवन-वृत्त तथा उनकी रचनाओं का परिचय दिया गया है। फिर चैतन्य मत की पृष्ठभूमि, उसके विकास-क्रम, प्रचार-प्रसार और आरंभिक सफलताओं का विवेचन हुआ है। उसके अनंतर इस मत के भक्ति-तत्व, दार्शनिक सिद्धांत, साहित्यिक गौरव और सांस्कृतिक समृद्धि का सिंहावलोकन किया गया है। इससे ज्ञात होगा कि इस मत के सफलता पूर्वक प्रचारित होने का यह रहस्य है कि चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगामी भक्तजनों ने अपनी विद्वत्ता से भी अधिक अपने भक्ति-भाव, निर्मल आचरण और त्यागपूर्ण जीवन से धर्मप्राण जनता के हृदय को जीत लिया था। उनके द्वारा प्रसारित प्रेम-धर्म की अद्भुत प्रेरणा से उत्तरी भारत में ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक में तथा पंडित एवं धनी-मानी से लेकर मूर्ख और कंगाल तक मे अभूतपूर्व आनंद का संचार हो गया था। वे लोग प्रेम-भक्ति की निर्मल धारा में अवगाहन कर आनंद-विभोर होकर नाँच उठे और पतितपावन 'निताई–गौर' का कृतज्ञता पूर्वक गुण-गान करने लगे।

इस ग्रंथ के द्वितीय खंड में चैतन्य मत के ब्रजभाषा साहित्य का परिचय दिया गया है। इस प्रसंग में १२२ ज्ञात और अज्ञात साहित्यकारों का खोजपूर्ण जीवन-वृत्तांत, उनकी कई सौ रचनाओं का नामोल्लेख तथा उदाहरणों का संकलन है। इनमें से अधिकांश साहित्यकारों का उल्लेख हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में नहीं हुआ है। जिन कतिपय व्यक्तियों के नाम मिलते भी है, उनके जीवन-वृत्त या तो हैं ही नहीं, या त्रुटिपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ इस संप्रदाय के गदाधर भट्ट का नाम हिंदी भक्त-कवियों में प्रसिद्ध है; किंतु उनका जीवन-वृत्तांत, इस संप्रदाय के एक अन्य भक्त गदाधर पंडित से मिला देने के कारण, इतिहास ग्रंथों में अत्यंत भ्रमात्मक रूप में लिखा गया है। इस ग्रंथ द्वारा जहाँ हिंदी साहित्य के इतिहास की कई त्रुटियों का संशोधन हो सकेगा, वहाँ हिंदी भक्ति-साहित्य को समृद्ध करने वाले कतिपय अत्यंत प्रतिभाशाली कवियों के समावेश से उसकी श्री-वृद्धि भी हो सकेगी। सर्वश्री रामराय

चंद्रगोपाल, माधुरी, राधिकानाथ, किशोरीदास, गौरगणदास, मनोहरराय, वृंदाबनचंद्र, वैष्णवदास, ब्रह्मगोपाल प्रभृति अनेक उत्कृष्ट नवीन कवियों की नवोपलब्ध रचनाओं से ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य की निश्चय ही समृद्धि और गौरव-वृद्धि हुई है ।

इस मत के अधिकांश ब्रजभाषा-कवि वृंदाबन के सुविख्यात गौड़ीय गोस्वामियों की शिष्य-परंपरा में से हैं । उनमें भी श्री गोपाल भट्ट जी के परिकर की संख्या सबसे अधिक है । इस मत के कुछ विशिष्ट भक्त-कवि श्री नित्यानंद जी के परिकर में श्री रामराय–चंद्रगोपाल जी के वंश में हुए हैं । उनका उल्लेख अभी तक हिंदी साहित्य के किसी इतिहास में नहीं हुआ है । इस ग्रंथ में प्रथम बार उनके जीवन-वृत्त और उनकी रचनाओं के उदाहरण दिये गये हैं ।

इस ग्रंथ के अंत में कई परिशिष्ट और अनुक्रमणिकाएँ हैं । प्रथम परिशिष्ट में बंगाली पद-कर्त्ताओं के नामोल्लेख सहित कतिपय 'ब्रजबुलि' रचनाओं का संकलन है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से 'ब्रजबुलि' चाहे ब्रजभाषा से पृथक हो; किंतु उसमें ब्रजभाषा का मिश्रण है और उसकी पदावली ब्रज के भक्ति-साहित्य से प्रभावित है । ब्रजभाषा और 'ब्रजबुलि' की पदावली के तुलनात्मक अध्ययन तथा अनुसंधान की प्रगति के लिए यह परिशिष्ट उपयोगी हो सकता है । द्वितीय परिशिष्ट में चैतन्य मत के संस्कृत और बंगला ग्रंथकारों की नामावलियाँ तथा ग्रंथों की वृहत् सूचियाँ हैं । इस मत की महान् साहित्यिक देन का मूल्यांकन करने के लिए इनका भी उपयोग है । परिशिष्टों के अनंतर नामानुक्रमणिका और ग्रंथानुक्रमणिका हैं, जो संदर्भ के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होंगी । अंत में सहायक ग्रंथों के विवरण और अनेक चित्र हैं । इस प्रकार इस ग्रंथ को यथासंभव सर्वांगपूर्ण और उपादेय बनाने की चेष्टा की गई है ।

इसकी रचना में मुझे बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित पुस्तकों से तथा गो० यमुनाबल्लभ जी के घर की हस्त लिखित सामग्री से विशेष सहायता मिली है । इसके लिए मैं उक्त दोनों महानुभावों का अत्यंत अनुगृहीत हूँ । पुस्तक में दिये हुए चित्रों के ५ ब्लाक श्री गौड़ीय मठ, कलकत्ता से श्री रघुनाथ-प्रसाद सिंहानिया द्वारा प्राप्त हुए, और १ ब्लाक श्री गौरांग कार्यालय, वाराणसी से श्री ब्रजभूषणदास जी द्वारा मिला । तदर्थ मैं उन दोनों सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ ।

इस ग्रंथ की विद्वत्तापूर्ण भूमिका आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने लिखने की कृपा की है । आचार्य द्विवेदी जी हिंदी के विख्यात विद्वान और सम्मान्य साहित्यकार हैं । शांति निकेतन में पर्याप्त समय तक बंगाली विद्वानों के संपर्क में रहने से चैतन्य मत और उसके साहित्य का जैसा विशद ज्ञान उन्हें है, वैसा शायद ही हिंदी के किसी अन्य विद्वान को हो। उन्होंने अब से प्रायः ३० वर्ष पूर्व अपनी प्रथम रचना 'सूर साहित्य' में ही इस विषय का प्रासंगिक उल्लेख किया था । उसके बाद वे अपने निबंधों और व्याख्यानों में इसकी सदैव चर्चा करते रहे हैं; किंतु जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिंदी साहित्य में अभी तक चैतन्य मत और उसके साहित्य से संबधित कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ। यह मेरा सौभाग्य है कि इस प्रकार के ग्रंथ लिखने का मुझे सर्वप्रथम सुयोग मिला है और आचार्य द्विवेदी जी जैसे अधिकारी विद्वान की इसमें भूमिका लगी है। अनेक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी मेरी प्रार्थना पर द्विवेदी जी ने भूमिका लिखने की कृपा की, इसके लिए मैं उनका अत्यंत अनुगृहीत हूँ ।

इधर कई धर्मों और संप्रदायों पर हिंदी में अनुसंधान हुए है, तथा हो रहे हैं। उनसे संबंधित कई विद्वत्तापूर्ण शोध-प्रबंध भी प्रकाशित हुए है। यदि चैतन्य मत और उसके साहित्य के अनुसंधान कार्य में यह ग्रंथ कुछ सहायक हो सका, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा ।

मीतल निवास, मथुरा ।
वैशाख कृ० ११, सं० २०१६ वि०

—प्रभुदयाल मीतल

संसारसिन्धुतरणे हृदयं यदि स्यात्,
सङ्कीर्तनामृतरसे रमते मनश्चेत्।
प्रेमाम्बुधौ विहरणे यदि चित्तवृत्ति,
श्चैतन्य चन्द्र चरणे शरणं प्रयातु॥

—चैतन्य चन्द्रामृत, श्लो० ६

यदि संसार-सागर के पार जाने की इच्छा है,
यदि संकीर्तन के अमृत-रस में मन रमता है,
यदि प्रेम-सिंधु में विहार करने को चित्त चाहता है,

तो—

चैतन्य चंद्र के चरणों की शरण लीजिये !

भूमिका

बंधुवर श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने चैतन्य देव, उनके संप्रदाय और उसके हिंदी कवियों के बारे में यह महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है । मैंने इस पुस्तक को बड़े प्रेम और मनोयोग के साथ पढ़ा है । हिंदी में महाप्रभु चैतन्य देव के संबंध में बहुत अधिक साहित्य नहीं मिलता । बंगला में इस संबंध में स्वभावतः बहुत अधिक साहित्य मिलता है; पर इस संप्रदाय के ब्रजभाषा कवियों के बारे में तो बहुत ही कम सामग्री मिलती है। मीतल जी ने बल्लभ संप्रदाय के कवियों के बारे में कई पुस्तकें दी हैं । उनकी सूरदास संबंधी खोजों से हिंदी-संसार पूर्णतः परिचित है । इस बार उन्होंने महाप्रभु चैतन्य देव के भक्ति-सिद्धांतों और उनके अनुयायी भक्त कवियों की हिंदी रचनाओं के विषय में यह जानकारी भरी पुस्तक दी है।

अब तक एक स्थान पर गौड़ीय संप्रदाय के हिंदी कवियों के विषय में बहुत कम जानकारी मिलती थी । महाप्रभु चैतन्य देव के कार्यों का एक मुख्य केन्द्र ब्रज–वृंदाबन भी था । हिंदी साहित्य के इतिहासों में इस संप्रदाय के ब्रजभाषा कवियों की चर्चा बहुत थोड़ी ही मिलती है । मीतल जी ने अनेक स्थानों में बिखरी सामग्री का परिश्रम पूर्वक संकलन किया है; उसे सुव्यवस्थित रूप में सजाया है और एतद्विषयक धारावाहिक इतिहास प्रस्तुत किया है । महाप्रभु चैतन्य देव की प्रेरणा ने केवल संस्कृत और बंगला में ही नहीं, हिंदी में भी बहुत महत्वपूर्ण साहित्य उत्पन्न किया, यह देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होगी !

महाप्रभु चैतन्य देव संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों के पारंगत विद्वान थे; परंतु भक्ति प्राप्त होने पर जिस प्रकार उन्होंने सांसारिक सुखों को तृणवत् त्याज्य समझा, उसी प्रकार शास्त्रीय ज्ञान के मोह को भी छोड़ दिया ! उनकी लिखी कोई शास्त्रीय पुस्तक प्राप्त नहीं होती । उनका जीवन-वृत्त बहुत अच्छी तरह सुरक्षित है । उनके अनुयायियों ने उनके बारे में बहुत-कुछ लिख रखा है । हमें उनकी विद्वत्ता का निश्चित प्रमाण उपलब्ध होता है । यह भी ज्ञात होता है,

उस काल के अनेक ज्ञानी व्यक्ति, जो कभी-कभी उनसे अवस्था में भी बड़े थे, उनके लोकोत्तर ज्ञान से प्रभावित होकर ही उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। यद्यपि महाप्रभु ने स्वयं कोई ग्रंथ लिखकर नहीं छोड़ा; फिर भी उन महान् पंडितों के साथ की गई उनकी शास्त्र-चर्चा का कुछ न कुछ आभास हमें मिल ही जाता है। इस संप्रदाय के कई विद्वान भक्तों ने भगवत्प्रेम की शास्त्रीय व्याख्या लिखी थी। इस प्रकार यद्यपि स्वयं महाप्रभु की कोई रचना हमें प्राप्त नहीं होती, परंतु इतना स्पष्ट है कि उनके पांडित्य का प्रभाव संप्रदाय के अनेक आचार्यों पर बहुत व्यापक रूप में पड़ा था। चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों ने भक्ति शास्त्र का जैसा सुचिंतित और बौद्धिक रूप प्रस्तुत किया है, वैसा कदाचित् दूसरे संप्रदायों में नहीं मिलता। महाप्रभु के अनुयायियों में रूप, सनातन, जीव, विश्वनाथ चक्रवर्ती, बलदेव विद्याभूषण जैसे शास्त्रीय ज्ञान के धनी और साथ ही भगवत्प्रेम के पुरस्कर्ता आचार्यों के ग्रंथ संस्कृत साहित्य में नई शास्त्रीय चिंतन-पद्धति का संधान बताते हैं। एक ओर जहाँ भावुक भक्तों की सरस पदावली ने लोक-भाषा को नवीन अभिव्यंजना शक्ति दी, वहीं दूसरी ओर व्याकरण, अलंकार, स्मृति आदि विभिन्न शास्त्रीय विषयों को भी हरिमय करने का प्रयास किया गया। संस्कृत साहित्य को उन्होंने समृद्ध और शक्तिशाली बनाया। संस्कृत के इन शास्त्रीय ग्रंथों में ज्ञान भक्ति का अनुगत होकर प्रकट हुआ है। इस नये प्रकार के साहित्य को देखकर चकित होना पड़ता है! कहाँ से यह शक्तिशाली चिंता-धारा उद्भूत हुई ? निस्संदेह इस महान् साहित्य का प्रेरणादाता बहुत बड़ा ज्ञानी रहा होगा! महाप्रभु चैतन्य देव ने केवल भावुक भक्तों की मंडली ही नहीं बनाई, वरन् भक्त आचार्यों की महिमामयी चिंतन-परंपरा भी स्थापित की। कोई आश्चर्य नहीं कि प्रेम और ज्ञान की इस मिलित धारा ने बहुत ही सरस और सारवान् साहित्य-स्रष्टाओं को उद्बुद्ध किया। ब्रज के हिंदी कवियों पर इसका प्रभाव पड़ना निश्चित था। मीतल जी की इस पुस्तक से उसका संधान मिलता है।

भक्ति मार्ग भाव की साधना है। अनेक सांसारिक पचड़ों में पड़ा हुआ मनुष्य अपने असली भाव—'स्व-भाव'—को भूल जाता है। अपने वास्तविक भाव को जानना निस्संदेह बड़ा कठिन है। हम जो नहीं है, उसे प्रकट करते फिरते हैं; जो वास्तव में हैं, उसकी खुद भी जानकारी नहीं रखते! किसी प्रकार अपने वास्तविक भाव—स्वभाव—को जान सकते, तो प्रपंचात्मक जगत् के अनेक पचड़े स्वयं समाप्त हो जाते। अपने भाव को जान सकने के लिए कठिन साधना

की आवश्यकता होती है। भगवान् भी, कहते हैं कि, भाव के भूखे होते हैं। ऊपर-ऊपर से हम शासक हो सकते हैं; पर यदि अच्छी तरह से अपनी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें, तो हो सकता है, हम यह आविष्कार करें कि शासक का रूप गलत है; भीतर से हम प्रेष्य हैं, दास हैं। संसार ऊपरी आवरण को ही पहिचानता है, आदमी की पहचान उसके चपरास से होती है। गुरु की कृपा, भगवान् का अनुग्रह, अपना चिंतन-मनन हमें बता सकता है कि ऊपरी आवरणों के भीतर हमारा अपना भाव—स्वभाव—क्या है। जिस समय हमें अपने 'भाव' का ज्ञान हो जाता है, उसी समय 'अभाव' का भी ज्ञान हो जाता है। मैं अगर जान सकूं कि मेरा अपना भाव पुत्र-भाव है, तो तुरंत ही मालूम हो जायेगा कि मुझे माता या पिता की आवश्यकता है। यदि पता लग जाय कि ऊपर से मैं चाहें जो भी दीखता होऊँ और दिखाने का प्रयत्न करता होऊँ; भीतर से मैं लोभी हूँ, मेरा स्वभाव धन-लोलुप का है, तो तुरंत धन का अभाव स्पष्ट हो जायेगा। अपना भाव ज्ञात होते ही अपना अभाव भी ज्ञात हो जाता है।

कहते हैं, जहाँ खाली स्थान होता है वहाँ हवा अपने आप आ जाती है, क्योंकि हवा व्यापक होती है। और भी अधिक सूक्ष्म व्यापक तत्व भगवान् है। मनुष्य के अंतर-तर में जहाँ भी रिक्तता है, अभाव है, वहीं परम प्रेयान् भगवान् स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। मुझे माता चाहिए, भाव-लोक में भगवान् मातृरूप में उपस्थित होकर उस अभाव को भर देते हैं। मुझे धन चाहिए, भगवान् भाव-जगत् में धनरूप में उपस्थित हो जाएँगे। 'अभाव' भगवान् की प्रेममयी उपस्थिति से 'विभाव' बन जाता है। बाह्य जगत् में तो अभावों की स्थूल पूर्ति लगभग असंभव है; पर भाव-जगत् में कोई कमी नहीं है। निरंतर भगवान् हमारे 'विभाव' का रूप धारण करते रहते हैं और इस प्रकार प्रेम की लीला चलती रहती है। भाव-जगत् की इस लीला के सुख के साथ किसी अन्य सुख की तुलना नहीं की जा सकती। चैतन्य संप्रदाय के कृती आचार्यो ने विभिन्न स्वभावों और लीलाओं का बड़ा ही मार्मिक विश्लेषण किया है। भाव-जगत् की यह लीला अलौकिक होती है। अपने को ही भक्त द्विधा विभक्त करके इसका आस्वादन करता है। यहाँ उपास्य और उपासक भिन्न हैं या अभिन्न हैं, यह सोच सकना कठिन है। चैतन्य संप्रदाय के शास्त्रीय ग्रंथों से इसका रहस्य जितना खुलता है, उतना अन्य शास्त्रीय चर्चाओं से नहीं। यही कारण है कि इस संप्रदाय के आचार्यों के ग्रंथों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भक्ति-साधना और तद्विषयक साहित्य को प्रभावित किया है।

मीतल जी की इस पुस्तक में उन भक्तों का उल्लेख किया गया है, जो प्रत्यक्ष रूप से इससे प्रभावित हुए थे । अप्रत्यक्ष रूप से भी इस चिंतन-पद्धति ने कई भक्ति-संप्रदायों के साहित्य को प्रभावित किया है। मेरा विश्वास है, परवर्ती हिंदी साहित्य की रामभक्ति धारा के रसिक भक्तों पर भी अप्रत्यक्ष रूप से गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यो की चिंतन-पद्धति और भाव-साधना विषयक साहित्य का प्रभाव पड़ा है। स्वयं गौड़ीय संप्रदाय के भक्त और आचार्य भी अपने इर्दगिर्द की विचार-पद्धति से प्रभावित हुए थे । महाप्रभु चैतन्य देव की सर्वश्रेष्ठ प्रेम-पद्धति को नैतिकता के मानदंड से मापने का प्रयत्न किया गया है; किंतु यह भुला ही दिया गया कि भाव-जगत् की साधना लौकिक नहीं, अलौकिक स्तर पर प्रतिष्ठित है ।

वृंदाबन भक्ति-साधना का प्रमुख केन्द्र रहा है । न जानें कितनें तत्त्व-चिंतक मनीषी राधा-कृष्ण की इस पावन विहार-भूमि में प्रेरणा पा चुके हैं । विभिन्न संप्रदायों के भक्तों और आचार्यो ने यहाँ स्वयं साधना तो की ही है, अपने भावोल्लास-मुखर वाणियों के साहित्य से भविष्य के लिए भी अमृत-सिंचन का कार्य किया है। मुझे प्रसन्नता है कि मीतल जी विभिन्न संप्रदायों के भक्तों की वाणी के प्रचार-प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं । इनकी यह रचना अनेक अप्रसिद्ध भक्त-कवियों का संधान बताती है। भगवान् इन्हें स्वस्थ और दीर्घायु बनाएँ, जिससे हमें इनके द्वारा भक्तों की वाणी पढ़ने-सुनने का अधिकाधिक अवसर मिलता रहे ।

चण्डीगढ़,
२९-४-६२

— **हजारीप्रसाद द्विवेदी**

विषय	पृष्ठ

द्वितीय खंड

चैतन्य मत का ब्रजभाषा साहित्य

●

अज्ञात कवियों की रचनाएँ

द्वितीय खंड
चैतन्य मत का ब्रजभाषा साहित्य

अज्ञात कवियों की रचनाएँ

परिशिष्ट

१. बंगाली पद-कर्त्ताओं की 'ब्रजबुलि' रचनाएँ

२. चैतन्य मत का संस्कृत और बंगला साहित्य

अनुक्रमणिका

सहायक ग्रंथ

चित्र-सूची

प्रथम खंड

चैतन्य महाप्रभु, उनका भक्त-समुदाय और मत

प्रेमानामाद्भुतार्थः श्रवण पथ गतः कस्य नाम्नां महिम्नः ।
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः ।।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्यसीमा ।
मेकश्चैतन्यचंद्रः परम करुणाया सर्वमाविश्चकार ।।

—श्री चैतन्यचन्द्रामृतम्, श्लोक १२६

प्रेम का अद्भुत अर्थ किसने सुना था, भवगन्नाम की महिमा का ज्ञान किसे था, वृंदाबन की परम माधुरी में किसका प्रवेश था, अति चमत्कार पूर्ण माधुर्य रस की पराकाष्ठा राधा को कौन जानता था ! एक मात्र चैतन्य चंद्र ने ही अति करुणा पूर्वक इन सब का आविष्कार किया है। अभिप्राय यह है, प्रेमतत्व, नामतत्व, वृंदाबनतत्व और राधातत्व का सर्व प्रथम ज्ञान श्री चैतन्य से ही संसार को प्राप्त हुआ है।

प्रथम परिच्छेद

चैतन्य महाप्रभु

★

आरंभिक जीवन—

श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म नवद्वीप (नदिया-बंगाल) के एक ब्राह्मण कुल में सं० १५४२ की फाल्गुन पूर्णिमा को सायंकाल चंद्र ग्रहण के अवसर पर हुआ था। उनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शची देवी था। उनका प्रारंभिक नाम विश्वंभर था; किंतु उनके माता-पिता उनको निमाई कहा करते थे। वे गौर वर्ण के होने के कारण गौरांग भी कहलाते थे। संन्यासी होने पर उनका नाम कृष्ण चैतन्य हुआ। वे इसी नाम से अथवा चैतन्य महाप्रभु के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

नवद्वीप कलकत्ता से ७५ मील उत्तर दिशा में गंगा तट पर बसा हुआ है। चैतन्य के समय में वह विद्या का प्रमुख केन्द्र था, और न्यायशास्त्र के लिए समस्त वंग प्रदेश में विख्यात था। चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र, उपनाम पुरंदर, सिलहट स्थित अपने पैतृक निवास स्थान को छोड़ कर नवद्वीप में आकर बस गये थे। उनकी स्त्री शची देवी उस समय के प्रसिद्ध विद्वान नीलांवर चक्रवर्ती की पुत्री थी, अतः जगन्नाथ पुरंदर शीघ्र ही नवद्वीप के पंडितों में घुल-मिल गये। चैतन्य के जन्म से पहले शची देवी की नौ संतान हो चुकी थीं। पहली आठों संतान अपनी शैशवावस्था में ही काल-कवलित हो गईं। नौवीं संतान विश्वरूप का जन्म सं० १५३२ में और दसवें विश्वंभर का सं० १५४२ में हुआ था। जगन्नाथ और शची अपनी प्रौढ़ावस्था में उत्पन्न पुत्रों को देखकर अत्यंत प्रसन्न थे। उन्होंने विश्वरूप का १६ वर्ष की आयु में विवाह करना चाहा, किंतु वह विरक्त होकर घर से चला गया और संन्यासी होकर तीर्थाटन करने लगा। तब ६ वर्ष का बालक विश्वंभर ही अपने माता-पिता का एक मात्र आधार था।

बाल्यावस्था में विश्वंभर की प्रकृति चंचल और विनय रहित थी; किंतु आकृति से अत्यंत सुंदर और माता-पिता की वृद्धावस्था की एक मात्र संतान होने के कारण वे सभी परिजन-पुरजन के प्रिय थे। उन्हें नवद्वीप के विख्यात पंडित गंगादास की पाठशाला में विद्याध्यन के लिए भेजा गया। वहाँ पर उन्होंने व्याकरण और न्यायशास्त्र में शीघ्र ही अद्भुत योग्यता प्राप्त कर ली।

९ वर्ष की आयु होने पर सं० १५५१ में उनका उपनयन संस्कार हुआ। उनके पिता जगन्नाथ पुरंदर का देहांत सं० १५५३ में हो गया। उस समय विश्वंभर की आयु केवल ११ वर्ष की थी। वे उस समय विद्याध्ययन कर रहे थे। उस दैवी प्रकोप से उनकी माता को घोर दुःख हुआ, किंतु उसने अपने प्रिय पुत्र के कारण किसी प्रकार धैर्य धारण किया।

गौरांग विश्वंभर इतने मेधावी छात्र थे कि उन्होंने १४-१५ वर्ष की किशोरावस्था में ही प्रचुर विद्या प्राप्त कर ली थी। सं० १५५६ में जब उनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी, तब ही उन्होंने कलाप व्याकरण की टीका लिख ली थी। वह टीका आजकल उपलब्ध नहीं है। सं० १५५७ में, अपनी १५ वर्ष की आयु में, उन्होंने न्यायशास्त्र पर एक पांडित्यपूर्ण टिप्पणी की रचना की थी। उस ग्रंथ को देखकर उस समय के प्रसिद्ध न्यायशास्त्री रघुनाथ पंडित को अत्यंत ईर्ष्या हुई। उनको आशंका हुई कि उस नवीन रचना के कारण उनके ग्रंथों का महत्व कम हो जावेगा। जब गौरांग को यह बात ज्ञात हुई, तो उन्होंने रघुनाथ के संतोष के लिए अपनी रचना गंगा में बहा दी !

उन दिनों नवद्वीप न्यायशास्त्र का प्रधान केन्द्र था। वहाँ के बड़े-बड़े विद्वान पाठशालाएँ खोल कर उनमें छात्रों को न्याय की शिक्षा दिया करते थे। गौरांग भी न्यायशास्त्र के प्रकांड विद्वान के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे, अतः उन्होंने भी नवद्वीप में एक पाठशाला सं० १५५८ में स्थापित की। उसमें पढ़ने के लिए दूर-दूर से छात्रगण आने लगे। इससे उन्हें प्रचुर धन और अतुल यश की प्राप्ति होने लगी। उसी वर्ष सं० १५५८ में उनका विवाह लक्ष्मीप्रिया नामक एक सुंदरी कन्या के साथ हुआ, किंतु उसका देहावसान एक वर्ष के अंदर सं० १५५९ में ही हो गया। उनका दूसरा विवाह सं० १५६२ में विष्णुप्रिया नामक एक गुणवती कन्या के साथ हुआ। उस समय तक गौरांग की आयु २० की हो चुकी थी। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान उसके पांडित्य का लोहा मानते थे और उन्हें भी अपने विद्या-वैभव का गर्व था। वे सुखपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन कर रहे थे। उनकी वृद्धा माता को अपने प्रिय पुत्र के उत्कर्ष पर अत्यंत हर्ष और संतोष था।

भक्ति का आकर्षण—

सं० १५६२ में वे अपने स्वर्गीय पिता के श्राद्ध और पिंडदान के लिए गया धाम को गये। वहाँ पर उनको माधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वर पुरी से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ। उस विद्वान और भगवद्भक्त संन्यासी के आध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति-भाव से वे इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य हो गये। ईश्वर पुरी

के उपदेश और सत्संग से उनके चरित्र में महान् परिवर्तन हो गया। उनका उद्धत स्वभाव नम्रता में और पांडित्याभिमान विनय में परिवर्तित हो गया। वे भगवत्-प्रेम-पथ के सच्चे पथिक बन गये। उसके उपरांत उनके जीवन का वह अध्याय आरंभ हुआ, जिसने वंग प्रदेश ही नहीं, वरन् समस्त उतरी भारत के धार्मिक जगत् को अत्यंत प्रभावित किया था।

गया से नवद्वीप वापिस आने पर वे गृहस्थ से प्रायः उदासीन रह कर दिन-रात भगवद्भक्ति में लीन रहने लगे। उन्होंने नवद्वीप की शाक्त संप्रदायी जनता में श्री कृष्ण की भक्ति और उनके नाम-कीर्तन का प्रचार करना आरंभ किया। उनके भक्ति-भाव और निर्मल चरित्र से आकर्षित होकर नवद्वीप के अनेक व्यक्ति उनके अनुगामी हो गये। आरंभ में एक वर्ष तक इस भक्ति-मंडली का कीर्तन श्रीवास पंडित के निवास स्थान में घर के किंवाड़ बंद करके होता रहा। उस समय तामसी वृत्ति के कुछ लोगों ने विरोध भी किया, किंतु बाद में नवद्वीप की अधिकांश जनता ने उनके नवीन प्रेम मार्ग को अपना लिया। उन्होंने गली-गली और घर-घर में हरि-कीर्तन का आयोजन किया और समस्त नवद्वीप को नाम-ध्वनि से गुंजायमान कर दिया। उनके भक्ति-भाव की ख्याति नवद्वीप से बाहर समस्त वंग प्रदेश में फैलने लगी। दूर-दूर से अनेक श्रद्धालु जन उनके पास आकर भक्ति और प्रेम का पाठ पढ़ने लगे। उसी समय नित्यानंद, अद्वैताचार्य और हरिदास नामक भक्त जन भी गौरांग की मंडली में सम्मलित हो गये। वे सब आयु में गौरांग से बड़े थे, किंतु उनको पूज्य मानते थे। उनके सहयोग से गौरांग ने कृष्ण-भक्ति और नाम-कीर्तन की ऐसी पावन धारा प्रवाहित की, जिसमें अवगाहन कर वंगीय जनता कृतकृत्य हो गई। गौरांग और नित्यानंद की जोड़ी उनके भक्तों को कृष्ण-बलराम के समान ज्ञात होती थी। वे लोग कीर्तन करते समय 'निताई-गौर' का जय-जयकार करते थे।

नाम-कीर्तन और कृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त श्री कृष्ण की ब्रजलीला का रसास्वादन भी उस भक्त मंडली का आवश्यक नित्य कर्म था। भागवतादि पुराणों में श्री कृष्ण के जिन लीला-स्थलों का उल्लेख है, उनमें वृंदावन का महत्व सबसे अधिक है; अतः ब्रज-रसोपासक वंगीय भक्तों का इस लीला-धाम की ओर सहज आकर्षण हुआ। किंतु वृंदाबन का पावन प्रदेश उन दिनों सघन बन से आच्छादित और निर्जन था। उसके लीला-स्थल प्रायः अज्ञात थे। वृंदाबन की वह स्थिति गौरांग को असहनीय थी। उन्होंने लोकनाथ चक्रवर्ती और एक युवा गोस्वामी भूगर्भ को सं० १५६६ में इसलिए वृंदाबन भेजा कि वे वहाँ के

लीला-स्थलों की खोज करें और उनके पुनरुद्धार की चेष्टा करें। वे दोनों भक्त जन वृंदाबन के बीहड़ बन में कुछ समय तक भटकते रहे, किंतु उनको अपने कार्य में सफलता नहीं मिली। उसी समय उनको समाचार मिला कि गौरांग संन्यासी होकर नवद्वीप से चले गये हैं, अतः वे उनकी खोज में वृंदाबन से चल दिये। बाद में चैतन्य द्वारा भेजे हुए रूप-सनातन आदि गोस्वामियों ने वृंदाबन की गौरव-वृद्धि में सफलता प्राप्त की थी।

संन्यास—

गौरांग को ईश्वरपुरी से दीक्षा लिये चार वर्ष हो चुके थे। उस काल में वे नाम मात्र के गृहस्थ रहे, वरना यथार्थ में वे संसार से विरक्त और श्रीकृष्ण की ओर अनुरक्त हो चुके थे। वे अपनी वृद्धा माता और नव विवाहिता पत्नी के प्रति भी पूर्णतया कर्त्तव्यरत नहीं थे; किंतु उन अबलाओं को इसी से संतोष था कि उनका प्यारा गौरांग आखिर उनके पास तो है। उधर गौरांग के मन की विचित्र दशा थी। वे पिंजरा के पक्षी की तरह गृहस्थ के बंधन से सर्वथा मुक्त होजाने का स्वप्न देख रहे थे। वे देशव्यापी भ्रमण द्वारा कृष्ण-भक्ति का प्रचार करना चाहते थे, जिसके लिए वे गृहस्थ का परित्याग कर संन्यासी होना आवश्यक समझते थे। उन्होंने सं० १५६६ के माघ शुक्ल पक्ष में केशव भारती से संन्यास की दीक्षा प्राप्त की। उस समय उनकी आयु २४ वर्ष के लगभग थी। उनका संन्यास आश्रम का नाम कृष्ण चैतन्य रखा गया।

जब उनकी माता और पत्नी ने उनके मुड़े हुए सिर और कषाय वस्त्रों को देखा, तो वे रुदन करने लगीं। उनकी माता ने व्यथित होकर पूछा—"निमाई, तू भी विश्वरूप की तरह मुझे छोड़ जावेगा?" चैतन्य ने माता के चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—"मा, तेरी आज्ञा-पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। किंतु संन्यासी का धर्म है कि वह अपने जन्मस्थान में और परिजनों के साथ न रहे, अतः मैं नवद्वीप में नहीं रह सकता। इस स्थान के अतिरिक्त जहाँ रहने की तू आज्ञा देगी, मैं रहूँगा।" आखिर सोच-विचार के पश्चात् सब लोगों की सम्मति हुई कि चैतन्य भविष्य में नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में निवास करें, जहाँ से उनके समाचार सब को सुविधा पूर्वक प्राप्त हो सकेंगे और जहाँ नवद्वीप से पहुँचने में भी किसी को कठिनता न होगी।

निदान, चैतन्य ने नीलाचल के लिए प्रस्थान करने का आयोजन किया। इससे पूर्व अपने समस्त अनुगामी भक्तों से विदा माँगते हुए उन्होंने कहा—"आप सब लोग मेरे प्रियजन हैं। मैं आपसे यही भिक्षा चाहता हूँ कि आप सब अपने घरों

में कृष्ण का नाम-कीर्तन करें, कृष्ण का गुण-गान करें और कृष्ण की आराधना करें। यही जीवन का परम कर्त्तव्य है।" चैतन्य के साथ नित्यानंद गोस्वामी, जगतानंद पंडित, दामोदर पंडित और मुकुंददत्त नामक चार भक्तजन भी नीलाचल की ओर चले। अद्वैताचार्य रोते हुए घर पर रह गये, ताकि वे शची माता और दूसरे लोगों को धैर्य और सान्त्वना प्रदान करते रहें।

यात्रा और प्रचार—

नीलाचल में निवास करते समय उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य नामक एक प्रकांड पंडित को अपने शास्त्रीय ज्ञान से प्रभावित किया। उन्होंने नित्यानंद गोस्वामी को नीलाचल से घर वापिस भेज दिया, ताकि वे गृहस्थ जीवन स्वीकार कर वंग प्रदेश में कृष्ण-भक्ति और नाम-कीर्तन का प्रचार करें। नीलाचल में प्रायः तीन माह निवास करने के उपरांत चैतन्य ने देशाटन करने का विचार किया। वे कृष्णदास ब्राह्मण को साथ लेकर दक्षिण की ओर चल दिये। उन्होंने अपने दूसरे साथियों को नीलाचल में ही रहने का आदेश दिया।

दक्षिण की ओर यात्रा करते हुए चैतन्य गोदावरी नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ पर राय रामानंद नामक एक विद्वान भक्त-जन उनसे आकर मिले। उनके साथ चैतन्य की बड़ी मार्मिक आध्यात्मिक चर्चा हुई। वहाँ से चलकर चैतन्य श्रीरंग क्षेत्र पहुँचे। वहाँ पर बैङ्कट भट्ट के घर उन्होने चातुर्मास्य किया। उक्त भट्ट जी का पुत्र गोपाल उस समय १२ वर्ष का बालक था। उसे चैतन्य ने सं० १५६८ की कार्तिक शु० ११ को अपना अनुगत किया। बाद में वही सुप्रसिद्ध गोपाल भट्ट हुए, जिन्होंने वृंदाबन में ठाकुर राधारमण जी को प्रतिष्ठित किया था।

इस प्रकार दक्षिण के अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए चैतन्य नीलाचल में वापिस आ गये। उस यात्रा में उन्होंने कृष्णोपासना, कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-कीर्तन का व्यापक प्रचार किया और अनेक भ्रांत व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखलाया। उसी यात्रा में उन्होंने 'ब्रह्म संहिता' और विल्वमंगल लीलाशुक कृत 'कृष्ण-कर्णामृत' नामक ग्रंथ प्राप्त किये, जिनकी प्रतिलिपि करा कर वे अपने साथ ले गये। ये ग्रंथ उन दिनों उत्तर भारत में प्राप्त नहीं थे। बाद में गौड़ीय भक्तों द्वारा उनका वहाँ पर प्रचार हुआ।

सं० १५७१ में चैतन्य ने वंग प्रदेश की यात्रा की। उस यात्रा में वे रामकेलि नामक स्थान में भी गये। वहाँ पर उन्होंने रूप-सनातन को उपदेश

दिया। वे दोनों भाई बड़े विद्वान और गौड़ीय मुसलमान शासक के उच्च राजकीय कर्मचारी थे। सं० १५७३ में चैतन्य ने अपनी चिर इच्छित ब्रज-यात्रा आरंभ की। वे काशी-प्रयाग होते हुए मथुरा गये। वहाँ पर उन्होंने विश्रामघाट पर यमुना-स्नान किया और केशवदेव के दर्शन किये। इसके पश्चात् उन्होंने यमुना के २४ घाट, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या, गोकर्णादि के भी दर्शन किये। मथुरा से वे गोवर्धन, राधाकुंड, वृंदाबन आदि स्थानों में गये। वे ब्रज में प्राय: एक माह तक रहे थे। उस समय उनका निवास स्थान मथुरा वृंदाबन के मध्यवर्ती अक्रूर घाट पर था। वहाँ से वे ब्रज के विविध स्थानों की यात्रा को गये थे।

गोवर्द्धन में उन्होंने मानसी गंगा में स्नान कर हरिदेव जी के आगे कीर्तन और नृत्य किया। फिर वे गिरिराज की परिक्रमा करते हुए गांठौली ग्राम में श्रीनाथ जी के दर्शनार्थ गये। उस समय यवनों के आक्रमण की आशंका से भक्तजन श्रीनाथ जी को गोपालपुर के मंदिर से हटाकर गांठौली के वन में ले गये थे। राधाकुंड का वास्तविक तीर्थ उस समय लुप्त था। चैतन्य ने लोगों से पूछ कर वहाँ के धान के दो खेतों के जल से स्नान किया और रज को मस्तक पर चढ़ाया। उसके बाद वे कामबन, महाबन, गोकुल आदि की यात्रा करते हुए मथुरा वापिस आ गये।

वृन्दाबन में उन दिनों सघन बन था, जहाँ ग्वाला लोग अपनी गायें चराते हुए घूमा करते थे। वहाँ की लता-कुंजों में कुछ साधु-महात्मा तपस्या करते थे। वे भिक्षा के लिए मथुरा जाया करते थे। वहाँ के लीला-स्थल प्राय: अज्ञात थे। श्रीकृष्ण के लीलास्थलों का स्मरण और चिंतन मात्र से चैतन्य को प्रेमावेश हो जाया करता था। उनका सात्विक आवेश वृन्दावन यात्रा में इतना बढ़ गया था कि वे बार-बार प्रलाप करते हुए मूर्छित हो जाते थे। उनके अनुचर उनको नीलाचल वापिस ले जाने का उपाय करने लगे।

मकर संक्रांति का पुण्य पर्व निकट जान कर चैतन्य प्रयाग-स्नान के लिए तैयार हुए। वे अक्रूर घाट से महाबन होते हुए शूकरक्षेत्र (सोरों) गये। वहाँ पर गंगा-स्नान कर वे प्रयाग की ओर रवाना हुए। संक्रांति पर प्रयाग पहुँच कर उन्होंने त्रिवेणी में स्नान किया। प्रयाग में उनसे रूप मिले। वे राजकीय कार्य से मुक्त होकर विरक्त भाव से चैतन्य की सेवा में उपस्थित हुए थे। चैतन्य ने उनको नाना प्रकार का उपदेश देकर वृन्दावन जाने का

आदेश दिया। प्रयाग के निकट अड़ैल ग्राम में उन दिनों पुष्टि संप्रदाय के संस्थापक महाप्रभु बल्लभाचार्य का निवास स्थान था। चैतन्य और बल्लभ दोनों आचार्यो ने कृष्ण-तत्व पर वार्ता करते हुए दिव्य सुख का अनुभव किया।

प्रयाग से चैतन्य बनारस गये। वहाँ पर सनातन भी राजकीय बंधन से मुक्त होकर चैतन्य की सेवा में आ गये थे। चैतन्य ने उनको भी वृंदाबन जाने का आदेश दिया। काशी के विख्यात विद्वान स्वामी प्रकाशानंद चैतन्य से प्रभावित होकर उनके अनुगत हो गये। काशी में कुछ दिन रह कर चैतन्य नीलाचल वापिस चले गये।

संन्यास लेने के अनंतर चैतन्य ने प्राय: ८ वर्ष तक देश-भ्रमण किया। वे पूर्व और दक्षिण के अनेक स्थानों की यात्रा कर उत्तर में मथुरा-वृंदाबन तक गये थे। वे जहाँ भी गये, वहाँ ही उन्होंने प्रेम-भक्ति की पावन सरिता बहा दी, और हरि-कीर्तन की मधुर ध्वनि से नभ-मंडल को गुँजा दिया। वे साधारण संन्यासी और दीन भिक्षुक की भाँति विचरण करते थे। कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-कीर्तन का प्रचार ही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष था। वे कीर्तन करते हुए प्रेमावेश में इतने तन्मय हो जाते थे कि उनको वाह्य जगत् का तनिक भी ज्ञान नहीं रहता था। उनके निर्मल चरित्र और प्रेमपूर्ण व्यवहार से अगणित नर-नारी उनके भक्त बन गये थे। उनके भक्तों में साधारण जन से लेकर बड़े-बड़े विद्वान, पंडित और धनी-मानी व्यक्ति तक थे।

नीलाचल का स्थायी निवास—

८ वर्ष तक अनेक स्थानों की यात्राएँ कर वे सं० १५७४ से नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में स्थायी रूप से रहने लगे। सं० १५७४ से अपने देहावसान-काल सं० १५९० तक के १६ वर्षो में वे नीलाचल छोड़ कर कहीं नहीं गये। चैतन्य के कारण नीलाचल में भक्त-मंडली का सदैव जमाव रहता था। वहाँ पर अहर्निशि भागवत-पाठ और कृष्ण-कर्णामृत, गीत-गोविंद एवं चंडीदास-विद्यापति की रचनाओं का गायन तथा हरिनाम-संकीर्तन हुआ करता था, जिससे वहाँ का वातावरण सदैव कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण रहता था। उनके साथ नीलाचल में स्थायी रूप से रहने वाले भक्तों में हरिदास, गदाधर पंडित, राय रामानंद, स्वरूप दामोदर, अच्युतानंद और रघुनाथदास मुख्य थे। हरिदास और गदाधर पंडित नवद्वीप में भी चैतन्य के साथ थे। हरिदास यवन होते हुए भी चैतन्य के हरिनाम-कीर्तन के प्रधान प्रचारक थे। उनका देहावसान

नीलाचल में हुआ और चैतन्य ने अपने हाथों से उनको समाधिस्थ किया था। गदाधर पंडित चैतन्य को भागवत सुनाया करते थे। राय रामानंद कृष्ण-तत्व के महान् ज्ञाता और भक्त थे। स्वरूप दामोदर चैतन्य के अंतरंग पार्षद थे। अच्युतानंद चैतन्य के सहकारी अद्वैताचार्य के पुत्र थे। वे युवावस्था में ही संन्यासी होकर चैतन्य की सेवा करते हुए नीलाचल में निवास करते थे। रघुनाथदास भी युवावस्था में घर का प्रचुर वैभव छोड़ कर विरक्त भाव से चैतन्य के शरणागत हुए थे। चैतन्य ने उनको स्वरूप दामोदर के संरक्षण में रखा था।

नीलाचल में स्थायी रूप से निवास करने वाले भक्तों के अतिरिक्त प्रति वर्ष रथ-यात्रा के अवसर पर और भी अनेक भक्त जन एकत्रित हो जाते थे। वे जगन्नाथ जी के दर्शन और चैतन्य के सत्संग का लाभ उठाने के लिए दूर-दूर से आते थे। उस समय वहाँ पर भक्तों को जो आनंद प्राप्त होता था, उसका वर्णन करना असंभव है।

अंतिम अवस्था और देहावसान——

अपने जीवन के अंतिम १२ वर्षों में चैतन्य संज्ञाहीन और वाह्य ज्ञान शून्य होकर श्री कृष्ण के विरह में विह्वल रहा करते थे। उनके नेत्रों से सदैव प्रेमाश्रुओं की अविरल धारा प्रवाहित होती रहती थी। उनके अनुचर भक्त जन जयदेव, विद्यापति और चंडीदास कृत राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का गायन कर उनको सान्त्वना देते रहते थे। एक दिन दिव्योन्माद की दशा में दौड़ कर वे समुद्र में घुस गये। इस प्रकार सं० १५९० में अपनी ४८ वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया।

चैतन्य के तिरोधान से उनकी भक्त-मंडली पर वज्रपात सा हुआ। सब लोग हा-हाकार करते हुए असीम दुःख का अनुभव करने लगे। नीलाचल ही नहीं, जहाँ भी चैतन्य के भक्त थे, वहाँ ही अपार शोक-सागर उमड़ पड़ा। सब लोग अपने को असहाय और अनाथ मानने लगे। वंग निवासी भक्तों को नित्यानंद प्रभु ने किसी प्रकार सँभाला, किंतु नीलाचल वासी चैतन्य के अंतरंग जनों को सान्त्वना देने के लिए कोई समर्थ नहीं था। वे महाप्रभु की विरह-वेदना में जीवित ही मृतक समान हो गये थे। उनके प्रेम-पात्र स्वरूप दामोदर का देहांत उसी साल हुआ था। उनके अंतरंग पार्षद गदाधर पंडित तथा राय रामानंद चैतन्य के विरह में एक वर्ष के अंदर ही इस संसार को छोड़ गये। चैतन्य और स्वरूप दामोदर दोनों के देहावसान से दुखित

होकर रघुनाथदास गोस्वामी वृंदाबन चले गये। नीलाचल निवासी अन्य भक्तों का या तो देहांत हो गया, अथवा वे नवद्वीप या वृंदाबन में जा कर रहने लगे। इस प्रकार चैतन्य के तिरोधान से नीलाचल के भक्तों की दुनियाँ उजड़ गई!

चैतन्य का महत्व—

चैतन्य के समय में बंगाल की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। मुसलमानों के शासन में हिंदू जनता पर अनेक अत्याचार होते थे। हिंदुओं के अनेक धार्मिक संप्रदायों में पाखंड, हिंसा और वामाचार की प्रबलता थी। ऐसे धर्मांध व्यक्तियों को उनकी तामसी साधना से हटा कर वैष्णव धर्म की सात्विक भक्ति की ओर आकर्षित करना चैतन्य का ही काम था। इस काम में उनके सहकारी नित्यानंद ने उनको पूरा सहयोग दिया था। नाभा जी ने अपनी 'भक्तमाल' में उनके विषय में लिखा है---

गौड़ देस पाखंड मेटि, कियौ भजन–परायन।
करुनासिंधु कृतज्ञ भये अगतिन गति–दायन॥
दसधा रस अक्रांत, महत जन चरन उपासे।
नाम लेत निह पाप दुरित, तिहिं नर के नासे॥
अवतार विदित पूरब मही, उभै महत देही धरी।
नित्यानंद कृष्न चैतन्य की, भक्ति दसों दिसि विस्तरी॥

ध्रुवदास कृत 'भक्त-नामावली' में भी उनके संबंध में ऐसा ही उल्लेख हुआ है—

गौड़ देस सब उद्धरयौ, प्रगटे कृष्ण चैतन्य।
तैसेहिं नित्यानंद हू, रस मय भये अनन्य॥
पावत ही तिनकौ दरस, उपजै भजनानंद।
बिन ही स्रम छुट जाय सब, जे माया के फंद॥

चैतन्य के आकर्षक व्यक्तित्व और अलौकिक चरित्र का लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे उनके प्रति अपार श्रद्धा रखने लगे। उनके अनुगामी भक्त-जन उनको साक्षात् परब्रह्म का अवतार मानने लगे। चैतन्य संप्रदाय की मान्यता के अनुसार उनमें भगवान् श्री कृष्ण के 'रसराज' और भगवती राधिका जी के 'महाभाव' दोनों रूपों का समावेश हुआ था। इसीलिए राधा-कृष्ण के सम्मिलित स्वरूप में भी उनकी पूजा की जाती है। चैतन्य

संप्रदाय के मुख्य ग्रंथ 'चैतन्य-चरितामृत' में उनके संबंध में जो लिखा गया है, उसका सुबल श्याम कृत ब्रजभाषा अनुवाद इस प्रकार है--

स्वयं कृष्ण भगवान पर तत्त्व पूर्ण आनंद ।
पूरन ज्ञान महत्व प्रभु, कहे जु सुक नँदनंद ।।
तेई प्रभु अब अवतरे, श्री चैतन्य स्वरूप ।
तीन नाम तेई धरे, बहु प्रकास अंग रूप ।।
ब्रह्म एक, परमात्व अरु पूरन श्री भगवान ।
तिन ही के ये नाम हैं, श्री भागवत प्रमान ।।
× × × ×
लीला श्री चैतन्य की, अदभुत है जु अनंत ।
ब्रह्मा, सिव और सेस हू, जाकौ लहै न अंत ।।

साहित्यिक देन—

उत्तरी भारत के मध्य युगीन साहित्य पर चैतन्य का बड़ा प्रभाव पड़ा है। उस समय के संस्कृत, बंगला, उड़िया, असमिया और ब्रजभाषा साहित्य पर यह प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। इस पर भी आश्चर्य की बात यह है कि स्वयं चैतन्य अथवा उनके प्रमुख सहकारी भक्तों की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चैतन्य ने अपने प्रारंभिक जीवन में कलाप व्याकरण की टीका और न्यायशास्त्र पर टिप्पणी लिखी थी। उनकी व्याकरण टीका इस समय अप्राप्य है और न्याय टिप्पणी की मूल प्रति स्वयं उन्होंने ही रघुनाथ शिरोमणि के संतोष के लिए गंगा में बहाकर नष्ट कर दी थी! इस समय उनकी उपलब्ध रचनाओं के रूप में कुछ स्तोत्र कहे जाते हैं। ऐसे चार छोटे स्तोत्रों को बाबा कृष्णदास ने 'श्री महाप्रभु ग्रंथावली' नामक लघु पुस्तिका में प्रकाशित किया है। इसमें जिन स्तोत्रों का संकलन है, उनके नाम हैं— शिक्षाष्टकं, प्रेमरसायन स्तोत्रं, युगल परिहार स्तोत्रं और श्री राधा रस मंजरी।

चैतन्य ने चाहें स्वयं किसी ग्रंथ विशेष की रचना नहीं की, किंतु उनके कारण प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ है। यह साहित्य कई प्रकार का है। इसमें चैतन्य की जीवनी विषयक विविध काव्य-नाटक आदि और उनके अनुगामियों द्वारा रचे हुए सिद्धांत ग्रंथ प्रमुख हैं। चैतन्य के जीवन-काल में ही उनके चरित्रों का कथनोपकथन बड़ी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक होने लगा था। यही कारण है कि उनके जीवन-काल से लेकर देहावसान-काल पश्चात् के ४०–५०

साथ उसके दार्शनिक सिद्धांत का भी स्पष्टीकरण किया है। जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज ने चैतन्य देव के दार्शनिक सिद्धांत के रूप में 'अचिन्त्य भेदाभेद' की प्रतिष्ठा की है, किंतु उनमें से किसी ने भी इसके समर्थन में ब्रह्मसूत्रों का भाष्य नहीं लिखा। यह कार्य १८ वीं शती में बलदेव विद्याभूषण द्वारा संपन्न हुआ था। बलदेव का ब्रह्मसूत्रों पर किया हुआ 'गोविंद भाष्य' चैतन्य मत के दार्शनिक सिद्धांत 'अचिन्त्य भेदाभेद' का एक मात्र प्रामाणिक ग्रंथ है।

चैतन्य मत में आरंभ से ही अनेक विद्वान होते रहे हैं। फिर भी इस मत के समर्थन में ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना इतने विलंब से क्यों हुई, इसका विशिष्ट कारण है। चैतन्य मत में श्रीमद्भागवत सर्वोपरि प्रमाण ग्रंथ माना जाता है। चैतन्यदेव के मतानुसार यह ब्रह्मसूत्र का भी सर्वोपरि भाष्य है। ब्रह्मसूत्र और भागवत दोनों के रचयिता व्यास मुनि हैं। यदि कोई लेखक स्वयं ही अपने ग्रंथ पर भाष्य लिखता है, तो वह अपने मत को भली भाँति स्पष्ट कर सकता है। दूसरा व्यक्ति चाहे कितना ही योग्य हो, वह मूल रचयिता के भावों को उतनी अच्छी तरह व्यक्त करने में सफल नहीं हो सकता। इसलिए भागवत के रूप में स्वयं व्यास मुनि कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य की विद्यमानता से चैतन्य महाप्रभु किसी अन्य भाष्य की आवश्यकता नही समझते थे। वैसे उन्होंने मध्वाचार्य कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य को भी अपने मत में मान्यता प्रदान की थी: क्यों कि वह अधिकतर भागवत के अनुकूल है। जहाँ उसका कथन भागवत से कुछ प्रतिकूल ज्ञात होता था, वहाँ वे उसका भागवत से समन्वय करने पर बल देते थे। बलदेव विद्याभूषण के समय में जो धार्मिक विवाद उठ खड़ा हुआ था, उसके कारण ब्रह्मसूत्रों से भी चैतन्य मत का समर्थन किये जाने की अनिवार्य आवश्यकता हो गई थी। इसकी पूर्ति बलदेव विद्याभूषण ने अपने 'गोविंद भाष्य' से भली प्रकार की है। चैतन्य मत की मान्यता के अनुसार 'गोविंद भाष्य' भागवत के सर्वथा अनुकूल है, और इसमें इस मत के दार्शनिक सिद्धांत 'अचिन्त्य भेदाभेद' का ब्रह्मसूत्रों से समर्थन किया गया है।

अचिन्त्य भेदाभेद—

कृष्णदास कविराज कृत 'श्री चैतन्य चरितामृत' में अचिन्त्य भेदाभेद का मुख्य सूत्र इस प्रकार बतलाया गया है—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश ॥

दूसरा परिच्छेद

चैतन्य के सहकारी और भक्त

चैतन्य महाप्रभु का व्यक्तित्व इतना मोहक, उनका आचरण इतना अद्भुत और उनका मत इतना आकर्षक था कि जो व्यक्ति उनके संपर्क में आता, वही उनका भक्त बन जाता था। उनके भक्तों में श्रद्धालु जन साधारण के अतिरिक्त बड़े-बड़े विद्वान, धर्माचार्य और समृद्धिशाली महानुभाव भी थे, जिनमें कितने ही उनसे आयु में भी बड़े थे। वे अपनी पद-मर्यादा और आयु का विचार न कर चैतन्य के अनुचर और अनुगामी बन गये थे।

चैतन्य के अनुगामियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक श्रेणी उन कतिपय प्रतिभाशाली महा पुरुषों की थी, जिन्होंने चैतन्य के उद्देश्य की महत्ता का अनुभव कर आरंभ से ही पूरी लगन के साथ उनको सक्रिय सहयोग दिया था। उन्हें सहकारी कहा जा सकता है। चैतन्य के सहकारियों में नित्यानंद और अद्वैत प्रमुख थे। उन्होंने आरंभ से ही पूर्ण उत्साह से चैतन्य की उद्देश्य-सिद्धि के लिए कार्य किया था। नवद्वीप की भक्त-मडली का संगठन करने में उन दोनों का सहयोग बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। चैतन्य संप्रदाय में चैतन्य के साथ उनको भी अवतार माना जाता है। इस संप्रदाय में चैतन्य 'महाप्रभु' कहलाते हैं, तो नित्यानंद और अद्वैत भी 'प्रभु' की आदरणीय उपाधि से विभूषित हैं। उन दोनों के अतिरिक्त हरिदास, श्रीवास पंडित और नरहरि सरकार भी चैतन्य के प्रमुख सहकारी थे।

चैतन्य के अनुगामियों की दूसरी श्रेणी उन बहु संख्यक श्रद्धालुओं की थी, जो चैतन्य के अलौकिक व्यक्तित्व से आकर्षित होकर उनके अनुगत हुए थे। उनमें से कतिपय महानुभाव अहर्निशि उनके साथ रह कर उनकी सेवा करना ही अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। उनको संप्रदाय में 'पार्षद' कहा जाता है। चैतन्य के पार्षदों में गदाधर पंडित, राय रामानंद और स्वरूप दामोदर प्रमुख थे। वे चैतन्य के अंत समय तक उनके साथ छाया की तरह रहे थे। चैतन्य के प्रमुख भक्तों में लोकनाथ, भूगर्भ, मधु, सनातन, रूप, रघुनाथदास, गोपाल भट्ट रघुनाथ भट्ट और जीव थे। उनमें से पिछले छै महानुभावों ने चैतन्य देव के

आदेशानुसार वृंदाबन में निवास कर उनके मत का विशेष प्रचार किया था। उनको वृंदाबन के गोस्वामी कहा जाता है। चैतन्य के भक्तों में कई महान् विद्वान और प्रतिभाशाली कवि भी थे। उन्होंने अपने ज्ञान और कवित्व से चैतन्य मत की महत्वपूर्ण सेवा की थी। उनमें प्रकाशानंद सरस्वती, वृंदाबनदास, कृष्णदास कविराज और कवि कर्णपूर उल्लेखनीय है। वे सब चैतन्य के समकालीन थे।

चैतन्य के पश्चात् उनके अनुगामियों में अनेक भक्त, विद्वान, कवि और उपदेशक हुए। उन सबका उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं है। उनमें विश्वनाथ चक्रवर्ती और बलदेव विद्याभूषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चैतन्य के प्रमुख सहकारी और भक्तों का यहाँ पर संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

१. नित्यानंद प्रभु

उनका जन्म सं० १५३० की माघ शु० १३ को वीररभूमि जिला के एकचका ग्राम में हुआ था। वे चैतन्य से प्रायः १२ वर्ष बड़े थे। उनके पिता का नाम हाड़ाई पंडित और माता का पद्मावती था। कुछ विद्वानों ने नित्यानंद को चैतन्य के सगे बड़े भाई लिखा है। उनके मतानुसार चैतन्य के अग्रज विश्वरूप ही बाद में नित्यानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए। डा० भंडारकर ने इसी मत का समर्थन किया है*। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने भी डा० भंडारकर का अनुकरण करते हुए नित्यानंद को चैतन्य के सगे बड़े भाई बतलाया है°। किंतु यह मत प्रामाणिक नहीं मालूम होता है।

नित्यानंद में आरंभ से ही वैराग्य और भक्ति के अंकुर विद्यमान थे। सं० १५४२ में जब उनकी आयु केवल ११ वर्ष की थी, वे विरक्त होकर घर से निकल गये। उन्होंने अनेक स्थानों का पर्यटन और तीर्थों की यात्रा की। वे घूमते हुए माधवेन्द्र पुरी नामक माध्व संप्रदायी संन्यासी से मिले और उनसे दीक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् पर्यटन करते हुए जब वे नवद्वीप पहुँचे, तब उन्हीं दिनों चैतन्य ने कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-नाम-कीर्तन का प्रचार आरंभ किया था। वे चैतन्य से मिले और उनके प्रमुख सहकारी बन गये।

---

* वैष्णविज्म शैविज़्म ०, पृष्ठ ११८, ११९

° वैष्णव धर्म, पृष्ठ १०३

चैतन्य ने नित्यानंद के सहयोग से भगवद्भक्ति का प्रचार और भी अधिक उत्साह से करना आरंभ कर दिया। नित्यानंद और चैतन्य की जोड़ी थी। वे दोनों नवद्वीप की भक्त-मंडली में सब से आगे कीर्तन करते हुए चलते थे। नित्यानंद और गौरांग एक दूसरे से अभिन्न थे, इसी लिए गौडीय वैष्णव 'निताई गौर' की जय ध्वनि करते हुए उनको बलराम और कृष्ण का अवतार मानते थे।

जब चैतन्य संन्यासी होकर नीलाचल चले गये, तब नित्यानंद भी उनके साथ थे। कुछ समय वहाँ अपने साथ रख कर चैतन्य ने उन्हें घर वापिस भेज दिया, और उनसे अनुरोध किया कि वे गृहस्थ बन कर वंग प्रदेश में वैष्णव धर्म का प्रचार करें। उन्होंने घर वापिस जा कर सूर्यदास पंडित की दो कन्याओं के साथ विवाह किया। उनके नाम वसुधा देवी और जाह्नवी देवी थे। वसुधा देवी के गर्भ से गंगा देवी नामक कन्या और वीरचंद्र नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

नित्यानंद ने नवद्वीप को अपना निवास स्थान बना कर वंग प्रदेश में चैतन्य के मतानुसार वैष्णव भक्ति का प्रचार आरंभ किया। वे प्रति वर्ष अनेक वंगीय भक्तों के साथ जगन्नाथ जी की रथ यात्रा के अवसर पर नीलाचल जाते थे। उस समय वे चैतन्य के साथ हरि-कीर्तन करते हुए भक्तों को आनंद प्रदान करते थे। चैतन्य का तिरोधान होने पर उन्होंने वंगीय वैष्णवों का संगठन बनाये रखा। चैतन्य और नित्यानंद के कारण नवद्वीप गौड़ीय भक्तों का प्रमुख तीर्थ स्थान माना जाता है।

नित्यानंद का देहावसान सं० १५९९ में हुआ था। उनके उपरांत उनकी पत्नी जान्हवी देवी और उनके पुत्र वीरचंद्र ने वंगीय वैष्णवों का नेतृत्व किया।

२. अद्वैत प्रभु

उनका जन्म नदिया जिला के शांतिपुर ग्राम में सं० १४९० की माघ शु० ७ को हुआ था। वे आयु में चैतन्य से प्रायः ५२ वर्ष बड़े थे। उनके पिता कमलाक्ष प्रसिद्ध राज पंडित थे। अद्वैत भी विद्वान और प्रतिभाशाली भक्त थे। सं० १५१२ में उनको मैथिल-कोकिल विद्यापति से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ था। वे उनके शृंगार-भक्तिपूर्ण गीत-काव्य से बड़े प्रभावित हुए थे।

अद्वैत ने माध्व संप्रदायी विद्वान संन्यासी माधवेन्द्र पुरी से वैष्णव धर्म की दीक्षा प्राप्त की थी। वे शांतिपुर में धर्माचार्य के रूप में रहते हुए वैष्णव धर्म का प्रचार किया करते थे। उन्होंने चैतन्य की माता शची देवी को दीक्षा दी थी। जब चैतन्य ने नवद्वीप में वैष्णव भक्ति का प्रचार किया, तब अद्वैताचार्य भी शांतिपुर से नवद्वीप आकर उनके सहयोगी बन गये। वे चैतन्य में बड़ी श्रद्धा रखते थे, किंतु स्वंय चैतन्य उनको पिता के समान मानते थे।

जब चैतन्य संन्यासी होकर नवद्वीप से नीलाचल चले गये, तब अद्वैताचार्य ने शची देवी आदि को सान्त्वना देने और वंगीय जनता में वैष्णव भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया था। उनकी श्रीदेवी और सीतादेवी नामक दो पत्नियाँ थीं। उनके पुत्र अच्युतानंद का जन्म सं० १५४६ में हुआ था। वह बाल्यावस्था में ही विरक्त हो गया था और नीलाचल में चैतन्य के साथ रहता था। अद्वैताचार्य के कारण शांतिपुर भी गौड़ीय भक्तों का तीर्थस्थान बन गया है।

३. हरिदास

उनका जन्म सं० १५०६ के अगहन मास में जसोर जिला के बुरहानपुर ग्राम हुआ था। वे चैतन्य से प्राय: ३६ वर्ष बड़े थे। वे मुसलमान माता-पिता के पुत्र थे। कुछ लोगों का मत है कि वे अनाथ हिंदू बालक थे और उनका पालन-पोषण एक मुसलमान के घर में हुआ था।

वे बचपन से ही हरि-भक्ति और हरि-नाम की ओर आकर्षित हो गये थे। मुसलमानों ने उनको हिंदू धर्म के प्रति श्रद्धा रखने के कारण अनेक कष्ट दिये, किंतु वे इनसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे अद्वैत के साथ चैतन्य की भक्त-मंडली में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने हरि-नाम कीर्तन का प्रचार करने में बड़ा उत्साह दिखलाया था। चैतन्य भी उनको बहुत मानते थे। वे उन्हें अपने साथ नीलाचल ले गये थे। उनका देहांत सं० १५८१ में चैतन्य के समक्ष नीलाचल में हुआ था। चैतन्य ने स्वयं अपने हाथों से उनको समाधिस्थ कर उनका अंतिम संस्कार किया था।

४. श्रीवास पंडित

वे जलधर पंडित के पाँच पुत्रों में से एक थे। उनके बड़े भाई का नाम नलिन पंडित था। नलिन पंडित की पुत्री नारायणी 'चैतन्य भागवत' के

रचयिता सुप्रसिद्ध भगवद्भक्त वृंदावनदास की माता थी। श्रीवास वैदिक ब्राह्मण थे और उनको अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। उनके घर में नृसिंह देव की पूजा होती थी और अपने जीवन के आरंभिक २६ वर्ष तक उनका कृष्ण-भक्ति में विश्वास नहीं था। जब चैतन्य ईश्वरपुरी से कृष्ण-भक्ति का उपदेश लेकर नवद्वीप वापिस आये, तो श्रीवास उनसे बड़े प्रभावित हुए। चैतन्य के भक्ति-प्रचार में श्रीवास प्रारंभिक सहायक थे। जब चैतन्य ने नवद्वीप में हरि-कीर्तन का प्रचलन किया, तब आरंभ के एक वर्ष तक श्रीवास के घर में ही किवाड़ बंद कर कीर्तन होता था। इसके लिए उनको विरोधियों से कष्ट भी उठाना पड़ा, किंतु वे इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे सं० १५६३ में ही चैतन्य के प्रति आकर्षित हो गये थे, अतः वे चैतन्य के प्रारंभिक भक्तों में से थे। जब तक चैतन्य नवद्वीप में रहे, वे उनके अंतरंग और सहायक रहे। उनको चैतन्य संप्रदाय में नारद का अवतार माना जाता है।

५. नरहरि सरकार

उनका जन्म वर्द्धमान ज़िला के श्रीखंड नामक स्थान में सं० १५३५ में हुआ था। उनके पिता का नाम नरनारायण था। नरहरि आजन्म अविवाहित रह कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। वे, उनके भाई मुकुंद और भतीजा रघुनंदन सभी चैतन्य के भक्त हो गये थे। उनके कारण नवद्वीप की तरह श्रीखंड भी वैष्णव धर्म का केन्द्र बन गया था। नरहरि और रघुनंदन की शिष्य-परंपरा में कई प्रसिद्ध कवि हुए हैं। नरहरि के शिष्य लोचनदास ने 'चैतन्य मंगल' अपने गुरु के आदेश से ही रचा था। चैतन्य के अधिकांश भक्त उनके राधा-भाव के उपासक थे, किंतु नरहरि की आस्था चैतन्य के रसराज रूप कृष्ण-भाव के प्रति थी। इस प्रकार चैतन्य के भक्तों की उपासना-भेद से दो श्रेणियाँ हो गई थीं। नरहरि के वंशज अभी तक चैतन्य की उपासना रसराज रूप में ही करते हैं।

६. गदाधर पंडित

उनका जन्म सं० १५४४ में हुआ था। वे बड़े विद्वान और भागवत के मार्मिक व्याख्याता थे। वे सं० १५५५ में ही नवद्वीप में आ गये थे। इस प्रकार वे आरंभ से ही चैतन्य के संपर्क में रहे। जब चैतन्य नीलाचल चले गये, तब वे भी उनके साथ नीलाचल में रहे। वे चैतन्य को भागवत सुनाया करते थे। उनका देहावसान चैतन्य के तिरोधान के प्रायः एक वर्ष पश्चात् सं० १५९१ में हुआ था।

चैतन्य के गुरु ईश्वरपुरी आरंभ से ही गदाधर पंडित पर स्नेह करते थे। 'चैतन्य भागवत' से ज्ञात होता है कि पुरी महोदय ने उन्हें नवद्वीप में स्वरचित 'कृष्ण-लीलामृत' पढ़ाया था। उनके शिष्यों में अद्वैताचार्य के पुत्र अच्युतानंद, अनंताचार्य और कृष्णदास ब्रह्मचारी जैसे प्रसिद्ध गौड़ीय भक्त थे।

चैतन्य मतावलम्बी भक्तों में वे राधा के अवतार तथा चैतन्य, नित्यानंद और अद्वैताचार्य के बाद सबसे अधिक श्रद्धास्पद माने जाते हैं।

७. स्वरूप दामोदर

चैतन्य देव के निकटतम साथियों और अनन्य सेवकों में स्वरूप दामोदर का प्रमुख स्थान है। वे नवद्वीप से नीलाचल तक सदैव चैतन्य के साथ रह कर अनुचर रूप से उनकी सेवा करते रहे। उनका आरंभिक नाम पुरुषोत्तम आचार्य था। जब चैतन्य देव संन्यासी होकर नीलाचल चले गये, तब वे भी संन्यासी होकर उनके साथ नीलाचल में रहने लगे। संन्यास लेने के अनंतर वे स्वरूप दामोदर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वे संगीत विद्या में निपुण थे और मधुर कंठ से सुंदर गायन करते थे। जब नीलाचल में चैतन्य देव कृष्ण-विरह में व्याकुल हो जाते थे, तब स्वरूप दामोदर और राय रामानंद ही कृष्ण-लीला संबंधी गायन और कथा द्वारा उनको सांत्वना प्रदान करते थे। इसका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में इस प्रकार हुआ है—

रामानन्देर कृष्ण-कथा, स्वरूपेर गान।
विरह-वेदनाय प्रभुर राखये पराण॥

नीलाचल में चैतन्य देव के व्यक्तिगत सेवक, सचिव और सहायक सब-कुछ स्वरूप दामोदर ही थे। वहाँ पर उनको जो गीत-काव्य आदि सुनाये जाते थे, उनको पहिले स्वरूप देख लिया करते थे कि वे चैतन्य को सुनाने योग्य है या नहीं। जब रघुनाथदास गोस्वामी नीलाचल में आकर चैतन्य के अनुगत हुए, तब उनको स्वरूप दामोदर के संरक्षण में रखा गया, ताकि वे उनसे भक्ति-तत्त्व की शिक्षा प्राप्त कर सकें। मुरारि गुप्त की तरह स्वरूप दामोदर ने भी 'कड़चा' की रचना की थी, जिसमें चैतन्य देव की लीलाओं के प्रमुख सूत्रों

का कथन था। इसका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में इस प्रकार हुआ है—

दामोदर स्वरूप आर गुप्त मुरारि।
मुख्य मुख्य लीला-सूत्र लिखेछे विचारि।।

स्वरूप रचित 'कड़चा' को रघुनाथदास गोस्वामी ने कंठस्थ किया था। उनसे कृष्णदास कविराज ने सुनकर इसका चैतन्य-चरितामृत में उल्लेख किया है। चैतन्य देव की अंतिम लीलाओं में उनके साथ दिन-रात रहने से उनके गूढ़तम रस-सिद्धांत का जैसा मर्म स्वरूप दामोदर जानते थे, वैसा शायद ही कोई जानता था। श्री कृष्णदास कविराज ने उनके संबंध में ठीक ही लिखा है--

अत्यंत निगूढ़ एइ रसेर सिद्धांत।
स्वरूप गोसाञि मात्र जानेन एकांत।।

उनका देहावसान भी चैतन्य देव के तिरोधान संवत् १५९० में ही हुआ था।

८. राय रामानंद

वे उड़ीसा प्रदेशांतर्गत जगन्नाथ पुरी के निकटवर्ती एक ग्राम में पैदा हुए थे। उड़ीसा के स्वाधीन नरेश गजपति प्रतापरुद्र ने उनको अपने आधीन गोदावरी तटवर्ती विद्यानगर का शासक नियुक्त किया था। वे उच्च राजकीय पदाधिकारी होने के अतिरिक्त बड़े विद्वान, सुकवि, परम भक्त और कृष्ण-तत्व के महान् ज्ञाता थे। पुरी के वेदांती पंडित सार्वभौम भट्टाचार्य से उनका विशेष स्नेह और सौहार्द्र था।

जब चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के अनंतर दक्षिण-यात्रा को गये, तब सं० १५६७ में गोदावरी के तट पर रामानंद से उनकी प्रथम भेंट हुई थी। रामानंद दल-बल सहित गोदावरी-स्नान के लिए आये थे। वे चैतन्य के व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए और अभिवादन कर उनके निकट बैठ गये। सार्वभौम भट्टाचार्य ने नीलाचल में ही चैतन्य देव को रामानंद के गुणों का परिचय दे दिया था।

उस अवसर पर चैतन्य और रामानंद में कई दिनों तक सत्संग होता रहा, जिसमें प्रश्नोत्तर द्वारा साध्य-साधन तत्व पर विचार-विमर्श हुआ था। चैतन्य देव प्रश्न करते थे और रामानंद उत्तर देते थे। प्रश्नोत्तर के अंत में रामानंद ने विनय पूर्वक चैतन्य से कहा— 'आप सर्वज्ञ हैं, मैं तो नितांत अज्ञ हूं।

आपने मेरी जिह्वा से जो कहलाना चाहा, वही मैंने कहा है।" इस सत्संग में जो तत्व-मंथन हुआ, उसका विस्तार पूर्वक वर्णन 'चैतन्य चरितामृत' में हुआ है।

यात्रा के अनंतर जब चैतन्य देव स्थायी रूप से नीलाचल में निवास करने लगे, तब राय रामानंद भी अपना उच्च राजकीय पद छोड़ कर उनके पास नीलाचल में आ गये। उन्होंने संस्कृत में 'जगन्नाथ वल्लभ' नाटक की रचना की, जो 'रामानंद-संगीत-नाटक' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह रचना चैतन्य देव को अत्यंत प्रिय थी। उनके समय में इस नाटक का अभिनय जगन्नाथ पुरी में हुआ करता था। लोचनदास ने इसका वंग भाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया है। राय रामानद का देहांत चैतन्य के तिरोधान के अनंतर सं० १५६१ में हुआ था।

९. लोकनाथ चक्रवर्ती

वे यशोहर तालगौड़ के निवासी पद्मनाभ चक्रवर्ती के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १५४२ में हुआ था। उनकी माता का नाम सीतादेवी था। उन्होंने अद्वैताचार्य से दीक्षा ली थी। वे चैतन्य के समवयस्क और सहपाठी थे।

जब चैतन्य द्वारा नवद्वीप में कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-कीर्तन का प्रचार हुआ, तव वहाँ का वैष्णव-समुदाय वृंदाबन की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। उन दिनों वृंदाबन घोर जंगल से आच्छादित था। वहाँ के लीला-स्थल प्रायः अज्ञात थे। चैतन्य ने लोकनाथ को वृंदाबन भेजा और उन्हें आदेश दिया कि वे वहाँ के तीर्थों और लीला-स्थलों का अनुसंधान करें।

लोकनाथ अपने एक युवक साथी भूगर्भ के साथ सं० १५६६ में वृंदाबन पहुँचे। वे वहाँ के बीहड़ बन में कुछ समय तक भटकते रहे। उसी समय उन्होंने सुना कि चैतन्य संन्यासी होकर नवद्वीप से नीलाचल चले गये हैं। वे उनसे मिलने के लिए नीलाचल पहुँचे, किंतु चैतन्य तब दक्षिण-यात्रा को चल पड़े थे। वे भी वहाँ से तीर्थ-यात्रा को चल दिये और कई वर्षों तक घूमते रहे।

जब रूप-सनातन स्थायी रूप से वृंदाबन में रहने लगे, तब वे भी वहाँ आ गये। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने वृंदाबन में राधा-विनोद ठाकुर की सेवा प्रचलित की थी और कुछ समय तक वे गोविंददेव जी के पुजारी भी रहे थे। वे परम विरक्त और भावुक भक्त थे। नरोत्तमदास ठाकुर जब वृंदाबन

आये, तब उन्होंने लोकनाथ से दीक्षा प्राप्त करनी चाही, किंतु राजपुत्र होने के कारण वे नरोत्तमदास को दीक्षित करना नहीं चाहते थे। नरोत्तमदास ने उनकी बड़ी सेवा की। अंत में अत्यंत चेष्टा पूर्वक वे उनसे मंत्र-दीक्षा प्राप्त कर सके थे।

१०. भूगर्भ गोस्वामी

वे लोकनाथ चक्रवर्ती के साथ सं० १५६६ में नवद्वीप से प्रथम वार वृंदावन आये थे। वे परम भक्त और विरक्त वैष्णव थे। नाभाजी ने 'भक्तमाल' में उनका उल्लेख उन भक्तों के साथ किया है, जिन्होंने वृंदावन की रस-माधुरी का आस्वादन किया था[1]। इसी से उनकी वृंदावन-निष्ठा ज्ञात होती है। प्रियादास ने भी वृंदावन और गोविंद देव जी के प्रति उनके अपार अनुराग का कथन किया है।

११. मधु गोस्वामी

वे वृंदावन की रस-माधुरी का आस्वादन करने के लिए बंग प्रदेश से आकर वृंदावन में रहने लगे थे। अनेक वर्षों तक वे वृंदावन की कुंज-लताओं में रमते रहे। उन्होंने वहाँ पर ठाकुर गोपीनाथ जी की सेवा प्रचलित की थी। रूप-सनातन के सेव्य गोविंददेव जी और मदनमोहन जी के साथ ही साथ गोपीनाथ जी भी गौड़ीय भक्तों के उपास्य देव हैं। उनका मंदिर वृंदावन में गोविंददेव जी के निकट बना हुआ है।

१. ..., भूगर्भ जीव दृढ़ व्रत लियौ।
वृंदावन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियौ॥

तीसरा परिच्छेद

वृंदावन के छै गोस्वामी

★

१. सनातन गोस्वामी

सनातन गोस्वामी के पूर्वज कर्नाटक देश के निवासी ब्राह्मण थे। वे बाद में किसी कारण वश वंग देश में जा कर रहने लगे थे। सनातन के पिता का नाम कुमार देव था। उनके दो छोटे भाई रूप और अनुपम थे। रूप आरंभ से अंत तक सनातन के सहकारी बने रहे, किंतु अनुपम का देहांत छोटी आयु में हो गया था।

सनातन का जन्म सं० १५४५ में और रूप का सं० १५४६ में हुआ था*। वे दोनों भाई बचपन से ही अत्यंत प्रतिभाशाली और अध्ययन शील थे। वे शिरोमणि विद्यावाचस्पति से पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सब शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। वे गौड़ (वंग) के मुसलमान शासक हुसैनशाह के राज कर्मचारी नियत हुए और उन्नति करते हुए मंत्रियों के सर्वोच्च पदों पर प्रतिष्ठित हुए। सनातन को 'दवीर खास' और रूप को 'साकरमल्लिक' की उपाधियाँ प्रदान की गई थीं°। बंगाल के इतिहास में हुसैनशाह का राज्यकाल अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसके शासन में गौड़ अनेक विद्याओं और कलाओं का केन्द्र बन गया था।

हुसैनशाह के राज्य का संचालन सनातन-रूप के प्रबंध-कौशल और बुद्धि-बल से होता था, अतः उनको उक्त कार्य में अधिक व्यस्त रहना पड़ता था। वे स्वभाव से विद्या-प्रेमी और भगवद्भक्त थे, अतः राज्य-कार्य से अवकाश मिलते ही वे विद्वानों का सत्संग और शास्त्र-चर्चा करते थे, तथा हरि-चिंतन में मन लगाते थे। उनके घर में राधा मदनमोहन जी सेवा होती थी। यह देव-विग्रह अब भी रामकेलि में विद्यमान है।

---

* 'वैष्णव दिग्दर्शनी' बंगला ग्रंथ के अनुसार सनातन का जन्म सं० १५३९ में और रूप का सं० १५४२ में हुआ था।

° कुछ विद्वान लेखकों ने 'दवीर खास' और 'साकर मल्लिक' उपाधियों को नाम समझ कर सनातन-रूप को मुसलमान बतलाया है, जो ठीक नहीं है।

—माननीय के. एम. मुंशी द्वारा लिखित 'कुलपति का पत्र', जो 'दैनिक हिंदुस्तान' दिनांक १५ मई '५५ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

जिन दिनों सनातन हुसैनशाह के मंत्री थे, उन्हीं दिनों बंग प्रदेश में चैतन्य की भक्ति-भावना की धूम मची हुई थी। चैतन्य द्वारा प्रचारित हरिनाम-कीर्तन की ध्वनि ने बंग के वातावरण को रस-सिक्त कर दिया था। सनातन-रूप ने भी चैतन्य का नाम सुना। उनके मन में उनके दर्शन की लालसा जाग उठी। वे सोचने लगे कि किस प्रकार इस पराधीनता-पाश से मुक्त होकर वे चैतन्य के चरणों में पहुँचें।

उन्होंने चैतन्य के पास गुप्त रूप से एक पत्रिका नवद्वीप भेजी, जिसमें अत्यंत दीनतापूर्वक रामकेलि आने की प्रार्थना की गई थी। वह एक सच्चे भक्त-हृदय की पुकार थी, जिसे चैतन्य ने हृदयंगम कर लिया। चैतन्य वृंदाबन--यात्रा के विचार से शांतिपुर होते हुए गौड़ पहुँचे। वहां सनातन-रूप को दर्शन देने के लिए रामकेलि में ठहर गये। सनातन-रूप ने जब उनके आगमन का समाचार सुना, तो वे आतुरता पूर्वक दौड़ कर उनके चरणों में गिर गये। उनके हृदय का सुषुप्त वैराग्य जाग उठा और उनके नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे। चैतन्य ने उनको भक्ति मार्ग का उपदेश देते हुए उनसे उपयुक्त समय तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा। चैतन्य उस समय वृंदावन न जा सके और गौड़ प्रदेश में घूमते हुए नवद्वीप लौट गये।

कुछ समय पश्चात् सनातन-रूप ने सुना कि चैतन्य वृंदावन के लिए पुन: प्रस्थान कर चुके हैं। उनके हृदय में भी ब्रज-दर्शन की लालसा अत्यंत बलवती हो गई। सनातन इच्छा रहते हुए आवश्यक राज्य-कार्य से न जा सके, किंतु रूप अपने छोटे भाई अनुपम के साथ ब्रज-यात्रा को चल दिये। वे प्रयाग में चैतन्य से तब मिले, जब वे ब्रज-यात्रा से वापिस आ गये थे। चैतन्य ने रूप को वृंदाबन जाने का आदेश दिया।

उधर सनातन द्वारा वार-वार राजकीय सेवा से मुक्त किये जाने के आग्रह से चिढ़कर हुसैनशाह ने उनको कारागार में डलवा दिया था। वे काराध्यक्ष को वहुत सा धन देकर वहाँ से निकल भागे और चैतन्य के दर्शन करने को ब्रज की ओर चल दिये। वे चैतन्य से काशी में मिले, वहाँ पर उनको ज्ञात हुआ कि रूप वृंदाबन चले गये हैं। सनातन दो माह तक काशी में चैतन्य के साथ रहे। वे वहाँ पर चैतन्य के सत्संग का लाभ उठाते हुए उनसे धर्म-तत्व की व्याख्या सुनते रहे। इसके पश्चात् चैतन्य ने सनातन को वृंदावन जाने का आदेश दिया और आप नीलाचल की ओर चल दिये।

जब सनातन ब्रज में पहुँचे, तब उन्हें वहाँ रूप नहीं मिले । वे सनातन से मिलने के लिए स्वदेश वापिस चले गये थे । सनातन ब्रज-वास करते हुए कृष्ण-विरह में व्याकुल घूमते रहे । जब रूप गोस्वामी स्थायी रूप से ब्रज-वास करने के लिए वृंदाबन पहुँचे, तब उन्होंने चैतन्य देव का संदेशा सनातन को दिया कि वे नीलाचल जाकर उनसे मिलें ।

रूप से सूचना मिलने पर सनातन वृंदाबन से चल दिये । वे झारखंड के बन-मार्ग में होते हुए नीलाचल पहुँचे । उस समय वे कृष्ण-विरह से इतने व्यथित थे कि जगन्नाथ जी के रथ के नीचे दबकर अपना शरीरांत करना चाहते थे । चैतन्य ने इसका निषेध किया और आगामी कर्तव्य के प्रति उन्हें जागरूक करते हुए कहा—"इस प्रकार शरीर त्यागने से कोई लाभ नहीं है । तुम ब्रज में रह कर रूप के साथ वहाँ कृष्ण-भक्ति का प्रचार और लुप्त तीर्थों का उद्धार कर मेरा प्रिय कार्य करो ।"

चैतन्य से भली भाँति शिक्षा प्राप्त कर सनातन ब्रज की ओर चल दिये । वे सं० १५७६ में वहाँ पहुँचे और स्थायी रूप से ब्रज-वास करने लगे । फिर वे मृत्यु पर्यंत ब्रज छोड़कर कहीं नहीं गये ।

सनातन जी ब्रज के विभिन्न स्थानों में घूमते हुए चैतन्य देव के आज्ञा का पालन करने लगे । वे साधारणतया नंदग्राम, गोकुल और महाबन में और विशेषतया राधाकुंड और वृंदाबन मे निवास करते थे । इन सभी स्थानों में उनकी भजन-कुटियाँ बनी हुई हैं ।

उन्होंने सं० १५९० में ठाकुर मदनमोहन जी की सेवा प्रचलित की । सेवा का भार गदाधर पंडित गोस्वामी के शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी को दिया गया । कुछ समय बाद मुलतान के एक धनी व्यापारी रामदास कपूर खत्री ने वृंदाबन में लाल पत्थर का विशाल मंदिर बनवा कर उसमें मदनमोहन जी को विराजमान किया । यह मंदिर कालियदह के निकट द्वादशादित्य टीला पर बना हुआ है और मदनमोहन जी के पुराने मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है । यह वृंदाबन के प्राचीनतम मंदिरों में से एक है । औरंगजेब के शासन में इस मंदिर का ध्वंस हुआ और मदनमोहन जी की मूर्ति जयपुर ले जाई गई । करौली के राजा गोपालसिंह ने इस मूर्ति को जयपुर-नरेश से माँग कर अपने राज्य में प्रतिष्ठित किया था । मूल मूर्ति अभी तक करौली में ही विद्यमान है । वृंदाबन में मदनमोहन जी का नया मंदिर १९वीं शती में बंगाली कायस्थ नंदकुमार घोष ने बनवाया था ।

जिन दिनों सनातन हुसैनशाह के मंत्री थे, उन्हीं दिनों वंग प्रदेश में चैतन्य की भक्ति-भावना की धूम मची हुई थी। चैतन्य द्वारा प्रचारित हरिनाम-कीर्तन की ध्वनि ने वंग के वातावरण को रस-सिक्त कर दिया था। सनातन-रूप ने भी चैतन्य का नाम सुना। उनके मन में उनके दर्शन की लालसा जाग उठी। वे सोचने लगे कि किस प्रकार इस पराधीनता-पाश से मुक्त होकर वे चैतन्य के चरणों में पहुँचें।

उन्होंने चैतन्य के पास गुप्त रूप से एक पत्रिका नवद्वीप भेजी, जिसमें अत्यंत दीनतापूर्वक रामकेलि आने की प्रार्थना की गई थी। वह एक सच्चे भक्त-हृदय की पुकार थी, जिसे चैतन्य ने हृदयंगम कर लिया। चैतन्य वृंदावन--यात्रा के विचार से शांतिपुर होते हुए गौड़ पहुँचे। वहाँ सनातन-रूप को दर्शन देने के लिए रामकेलि में ठहर गये। सनातन-रूप ने जब उनके आगमन का समाचार सुना, तो वे आतुरता पूर्वक दौड़ कर उनके चरणों में गिर गये। उनके हृदय का सुषुप्त वैराग्य जाग उठा और उनके नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे। चैतन्य ने उनको भक्ति मार्ग का उपदेश देते हुए उनसे उपयुक्त समय तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा। चैतन्य उस समय वृंदावन न जा सके और गौड़ प्रदेश में घूमते हुए नवद्वीप लौट गये।

कुछ समय पश्चात् सनातन-रूप ने सुना कि चैतन्य वृंदावन के लिए पुनः प्रस्थान कर चुके हैं। उनके हृदय में भी ब्रज-दर्शन की लालसा अत्यंत बलवती हो गई। सनातन इच्छा रहते हुए आवश्यक राज्य-कार्य से न जा सके, किन्तु रूप अपने छोटे भाई अनुपम के साथ ब्रज-यात्रा को चल दिये। वे प्रयाग में चैतन्य से तब मिले, जब वे ब्रज-यात्रा से वापिस आ गये थे। चैतन्य ने रूप को वृंदावन जाने का आदेश दिया।

उधर सनातन द्वारा बार-बार राजकीय सेवा से मुक्त किये जाने के आग्रह से चिढ़कर हुसैनशाह ने उनको कारागार में डलवा दिया था। वे काराध्यक्ष को बहुत सा धन देकर वहाँ से निकल भागे और चैतन्य के दर्शन करने को ब्रज की ओर चल दिये। वे चैतन्य से काशी में मिले, वहाँ पर उनको ज्ञात हुआ कि रूप वृंदावन चले गये हैं। सनातन दो माह तक काशी में चैतन्य के साथ रहे। वे वहाँ पर चैतन्य के सत्संग का लाभ उठाते हुए उनसे धर्म-तत्व की व्याख्या सुनते रहे। इसके पश्चात् चैतन्य ने सनातन को वृंदावन जाने का आदेश दिया और आप नीलाचल की ओर चल दिये।

जब सनातन ब्रज में पहुँचे, तब उन्हें वहाँ रूप नहीं मिले । वे सनातन से मिलने के लिए स्वदेश वापिस चले गये थे । सनातन ब्रज-वास करते हुए कृष्ण-विरह में व्याकुल घूमते रहे । जब रूप गोस्वामी स्थायी रूप से ब्रज-वास करने के लिए वृंदाबन पहुँचे, तब उन्होंने चैतन्य देव का संदेशा सनातन को दिया कि वे नीलाचल जाकर उनसे मिलें ।

रूप से सूचना मिलने पर सनातन वृंदाबन से चल दिये । वे झारखंड के बन-मार्ग में होते हुए नीलाचल पहुँचे । उस समय वे कृष्ण-विरह से इतने व्यथित थे कि जगन्नाथ जी के रथ के नीचे दबकर अपना शरीरांत करना चाहते थे । चैतन्य ने इसका निषेध किया और आगामी कर्तव्य के प्रति उन्हें जागरूक करते हुए कहा—"इस प्रकार शरीर त्यागने से कोई लाभ नहीं है । तुम ब्रज में रह कर रूप के साथ वहाँ कृष्ण-भक्ति का प्रचार और लुप्त तीर्थों का उद्धार कर मेरा प्रिय कार्य करो ।"

चैतन्य से भली भाँति शिक्षा प्राप्त कर सनातन ब्रज की ओर चल दिये । वे सं० १५७६ में वहाँ पहुँचे और स्थायी रूप से ब्रज-वास करने लगे । फिर वे मृत्यु पर्यंत ब्रज छोड़कर कहीं नहीं गये ।

सनातन जी ब्रज के विभिन्न स्थानों में घूमते हुए चैतन्य देव के आज्ञा का पालन करने लगे । वे साधारणतया नंदग्राम, गोकुल और महाबन में और विशेषतया राधाकुंड और वृंदाबन में निवास करते थे । इन सभी स्थानों में उनकी भजन-कुटियाँ बनी हुई हैं ।

उन्होंने सं० १५९० में ठाकुर मदनमोहन जी की सेवा प्रचलित की । सेवा का भार गदाधर पंडित गोस्वामी के शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी को दिया गया । कुछ समय बाद मुलतान के एक धनी व्यापारी रामदास कपूर खत्री ने वृंदाबन में लाल पत्थर का विशाल मंदिर बनवा कर उसमें मदनमोहन जी को विराजमान किया । यह मंदिर कालियदह के निकट द्वादशादित्य टीला पर बना हुआ है और मदनमोहन जी के पुराने मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है । यह वृंदाबन के प्राचीनतम मंदिरों में से एक है । औरंगजेब के शासन में इस मंदिर का ध्वंस हुआ और मदनमोहन जी की मूर्ति जयपुर ले जाई गई । करौली के राजा गोपालसिंह ने इस मूर्ति को जयपुर-नरेश से माँग कर अपने राज्य में प्रतिष्ठित किया था । मूल मूर्ति अभी तक करौली में ही विद्यमान है । वृंदाबन में मदनमोहन जी का नया मंदिर १९वीं शती में बंगाली कायस्थ नंदकुमार घोष ने बनवाया था ।

और ब्रज के लुप्त तीर्थों के उद्धार का प्रयत्न किया। चैतन्य देव ने उन दोनों को जो बहुमूल्य शिक्षा दी थी, उसी को उन्होंने अपने अनेक ग्रंथों में गुम्फित किया है। श्री शुकदेव जी ने भागवत में ब्रज-वृंदाबन के जिन लीला-स्थलों का वर्णन किया है, उन्हें रूप-सनातन ने अपनी चेष्टा से प्रत्यक्ष दिखला दिया और कृष्णोपासना की रस-रीति को भावुक भक्तों के लिए सुलभ कर दिया। प्रियादास ने उनके संबंध में ठीक ही लिखा है—

वृंदाबन ब्रज-भूमि जानत न कोई प्राय,
दई दरसाय जैसी सुक मुख गाई है।
रीति हू उपासना की भागवत अनुसार,
लियौ रस-सार सो रसिक सुखदाई है ।।

रूप-सनातन दोनों भाइयों की भक्ति, विद्वत्ता और विरक्ति इतनी उच्च कोटि की थी कि अन्य वैष्णव महात्माओं ने उनकी बड़ी प्रशंसा की है[1]।

---

१. जै-जै मेरे प्रान सनातन-रूप।
अगतिन की गति दोऊ भैया, जोग-जज्ञ के जूप ।।
वृंदाबन की सहज माधुरी, प्रेम-सुधा के कूप।
करुना-सिंधु, अनाथ-बंधु, जय भक्त-सभा के भूप ।।

—हरिराम व्यास की वाणी

गौड़ देस बंगाल, हुते सब ही अधिकारी।
हय-गय-भवन-भंडार-विभौ भूभुज उनहारी ।।
यह सुख अनित्य विचारि, बास वृंदाबन कीन्हौ।
यथा लाभ संतोष, कुंज-करुवा मन दीन्हौ ।।
ब्रजभूमि रहस्य, राधाकृष्ण-भक्ति तोष उद्धार कियौ।
संसार-स्वाद-सुख बांत ज्यों, दुहुँ रूप-सनातन त्यागि दियौ ।।

—नाभाजी कृत 'भक्तमाल'

रूप-सनातन मन बढ़्यौ, राधा-कृष्ण अनुराग।
जानि विश्व नश्वर सबै, तन उपज्यौ वैराग ।।
तृन तें नीचौ आपकों जानि, बसे बन माँहि।
मोह छाँड़ि ऐसे रहे, मनौ चिह्नारिहु नाँहि ।।

—ध्रुवदास कृत 'भक्त-नामावली'

रूप गोस्वामी के इष्टदेव श्री गोविंदजी थे। ऐसी किंवदंती है कि उनकी मूर्ति का प्राकट्य सं० १५६२ में हुआ था। बाद में राजा मानसिंह ने इस देव-विग्रह के लिए लाल पत्थर का एक विशाल मंदिर बनवाया, जो उत्तरी भारत में वास्तु कला का अनुपम उदाहरण है। इसके निर्माण में लाखों रुपये लगे थे और बड़े कुशल वास्तु कला विशारदों ने इसे सं० १६४७ में बना कर पूर्ण किया था। बाद में औरंगजेब के क्रूर शासन में इसमें स्थापित गोविंददेव जी की मूर्ति जयपुर में स्थानांतरित की गई और मंदिर का ऊपरी भाग अत्याचारी यवनों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। जितना भाग इस समय शेष है, वही उसके अनुपम महत्व की साक्षी दे रहा है। आज कल यह मंदिर पुरातत्व विभाग के आधीन है। नया मंदिर बाद में बनवाया गया है।

रूप गोस्वामी भक्ति-तत्व और रस-शास्त्र के महान् पंडित थे। चैतन्य महाप्रभु की भक्ति-भावना से प्रभावित होकर उन्होंने वैष्णव भक्ति की कल्पनाओं को रस-विवेचन में प्रयुक्त किया है। उनके महत्वपूर्ण ग्रंथों के कारण ही चैतन्य मत का वास्तविक रूप बन सका है। उनके 'हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' भक्ति-रस के महान् विवेचनात्मक ग्रंथ हैं। उनकी रचनाओं ने ब्रज और बंग के भक्ति-साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है। उनका धार्मिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से विशेष महत्व है। उनके कारण चैतन्य मत का प्रभाव वंग से ब्रज तक व्यापक रूप में हो गया था। उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. **विदग्ध माधव नाटक**—इसकी रचना सं० १५६० में गोकुल में हुई थी। इसमें वेणु वादन विलास, मन्मथ लेख, राधिका संगम, वेणु हरण, राधिका प्रसाधन, शरद विहार और गौरी तीर्थ नामक ७ अंक हैं। स्वयं चैतन्य देव ने इसकी सराहना करते हुए राय रामानंद, स्वरूप गोस्वामी आदि भक्तों से इसका रसास्वादन करने को कहा था।

२. **ललित माधव नाटक**—इसकी रचना सं० १५६४ में भद्रबन में हुई थी। इसमें संध्या-कालीन विहार, शंखचूड़ वध, श्री कृष्ण का मथुरा-गमन और राधिका एवं सखियों का विरह, राधाभिसार, चंद्रावली लाभ, ललिता उपलब्धि, नव वृंदाबन संगम, नव वृंदाबन विहार, चित्र दर्शन और पूर्ण मनोरथ नामक १० अंक हैं। यह कृष्ण-विरह का मुख्य ग्रंथ है और आकार में विदग्ध माधव से कुछ बड़ा है।

३. भक्ति-रसामृत-सिंधु—इसकी रचना सं० १५९८ में गोकुल ग्राम में हुई थी। इसमें २१४१ श्लोक हैं। यह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण नामक चार विभागों में विभाजित है। पूर्व विभाग में भक्ति-रस के स्थायी भावोत्पादक सामान्य भक्ति, साधन भक्ति तथा प्रेमा भक्ति का वर्णन है। दक्षिण विभाग में भक्ति-रस के विभाव, अनुभाव, सात्विक, व्यभिचारी और स्थायी भावों का कथन है। पश्चिम विभाग में मुख्य भक्ति-रस का निरूपण करते हुए शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भक्ति-भेदों का वर्णन है। अंतिम उत्तर विभाग में गौण भक्ति रसों के रूप में हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स का वर्णन है। इस प्रकार इस ग्रंथ में भक्ति रस का सर्वांगपूर्ण विवेचन किया गया है। अधिकतर इसी ग्रंथ के कारण भक्ति की रस रूप में प्रतिष्ठा हुई है। इसकी तीन टीकाएँ प्रसिद्ध हैं—१. जीव गोस्वामी कृत 'दुर्गम संगमनी', २. मुकुंददास गोस्वामी कृत 'अर्थरत्नाल्प दीपिका', ३. विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'भक्ति सार प्रदर्शिनी'।

४. उज्ज्वल नीलमणि—इसमें १४५३ श्लोक हैं। यह एक प्रकार से 'भक्ति रसामृत सिंधु' का उत्तर भाग है। उज्ज्वल का अर्थ है दिव्य शृंगार, अतः इसमें राधा-कृष्ण के शृंगार रस का विस्तार पूर्वक शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इसमें १५ प्रकरण हैं—१. नायक भेद, २. सहाय भेद, ३. श्री हरि-प्रिया, ४. श्रीराधा, ५. नायिका भेद, ६. यूथेश्वरी भेद, ७. दूती भेद, ८. सखी भेद, ९. सखा भेद, १०. उद्दीपन विभाव, ११. अनुभाव, १२. सात्विक, १३. व्यभिचारी, १४. स्थायी भाव, १५. संयोग एवं विप्रलंभ शृंगार। इसकी दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं—जीव गोस्वामी कृत 'लोचन रोचनी' और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'आनंद चंद्रिका' या 'उज्ज्वल नीलमणि किरण'।

५. लघु भागवतामृत—इसमें कृष्णामृत और भक्तामृत नामक दो खंड हैं। पूर्व खंड में कृष्णावतार का विस्तार पूर्वक वर्णन है। उत्तर खंड में भक्तों की श्रेणी-भेद का प्रतिपादन है। सनातन गोस्वामी कृत 'बृहद्भागवतामृत' की संपुष्टि के लिए इसकी रचना ज्ञात होती है। इस पर बलदेव विद्याभूषण कृत 'सारंग रंगदा' और वृंदावन तर्कालंकार कृत 'रसिक रंगदा' टीकाएँ हैं।

६. नाटक चंद्रिका—इसकी रचना 'विदग्ध माधव' और 'ललितमाधव' नाट्य ग्रंथों के विषय-विवेचन के लिए की गई है। इसमें नाटक का लक्षण,

रूपक के अंग, अंकों और दृश्यों का विभाजन, भाषा-विधान, वृत्ति-विचार और रसानुसार उनके प्रयोग आदि विषयों पर विस्तार से विचार किया गया है। इसके उदाहरण भक्ति ग्रंथों से, विशेषतया 'ललित माधव' से, लिये गये हैं।

७. दानकेलि कौमुदी—इसकी रचना सं० १६०६ में हुई थी। यह 'भाणिका' नामक एकांकी उपरूपक है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि जब 'ललित माधव' नाटक के पाठ से रघुनाथदास गोस्वामी की विरह-दशा असाधारण हो गई, तब रसांतर द्वारा उनको स्वस्थ करने के लिए इस हास्यपूर्ण रूपक की रचना की गई थी।

८. हंसदूत—इसकी रचना 'मेघदूत' के आधार पर हुई है। इसमें ललिता सखी ने विरहणी राधा की विरह-दशा का संदेश हंस दूत द्वारा मथुरा में श्रीकृष्ण के पास भेजा हैं। यह विप्रलंभ शृंगार-भक्ति का अपूर्व ग्रंथ है। इसमें १४२ श्लोक हैं।

९. उद्धव संदेश—यह भी दूत-काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण ने उद्धव द्वारा अपना संदेश ब्रज-नारियों के पास भेजा है। इसमें १३० श्लोक हैं। इसकी काव्य-शैली अत्यंत मनोहर है।

१०. श्री राधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका—इसमें दो खंड है, जिनकी श्लोक संख्या क्रमशः २५३ और २०५ है। प्रथम खंड की रचना सं० १६०७ में हुई थी। इसमें श्रीकृष्ण के परिकर-सखाओं के नाम, रूप, रंग, प्रकृति, वस्त्राभूषण सहित उनका विस्तृत परिचय दिया गया है।

११. स्मरण-मंगल स्तोत्र—पद्मपुराणोक्त पाताल खंड वृंदाबन माहात्म्य के १४वें अध्याय के आधार पर रचे हुए इस छोटे से स्तोत्र में केवल ११ श्लोक हैं, किंतु इसके भाष्य रूप में अनेक आचार्यों और भक्त कवियों ने वृहत् रचनाएँ की हैं। इनमें कृष्णदास कविराज कृत 'श्री गोविंद-लीलामृत' विशेष प्रसिद्ध है। इसके द्वारा भक्तजन श्रीराधा-गोविंद की अष्टकालीन दैनिक लीलाओं का स्मरण करते हैं।

१२. निकुंज रहस्य स्तव—यह ३२ श्लोकों का छोटा-सा स्तव ग्रंथ है। इसकी मधुर रचना-शैली भक्तों को अति आनंद प्रदान करती है। यही स्तव 'निकुंज विलास' के नाम से बल्लभ संप्रदाय में गोसाई विट्ठलनाथ जी कृत माना जाता है।

१३. पद्यावली—इसमें जयदेव-पूर्व युग से रूप गोस्वामी के समय तक अनेक ज्ञात-अज्ञात कवियों की राधा-कृष्ण प्रेम-युक्त वैष्णव पदावली का संकलन हुआ है। ये कविताएँ बंगीय कवियों के साथ-साथ उत्कल, तिरहुत और दक्षिण के कवियों की है। रूप गोस्वामी के इस संकलन का ऐतिहासिक महत्व है। इसमे ज्ञात होता है कि १३ वीं शती में जयदेव के बाद १६ वीं शती के चंडीदास-विद्यापति ने ही राधा-कृष्ण संबंधी कविताएँ नहीं लिखीं, बल्कि १३वीं शती से बराबर इस प्रकार की अविच्छिन्न धारा बंगाल, बिहार, उड़ीसा और दक्षिण के कवियों की मिलती है। इसमें १२५ कवियों की ३८६ रचनाओं का क्रमानुसार संकलन है।

१४. मथुरा महिमा—इसमें विविध पुराणों के आधार पर मथुरा-मंडल की महिमा वर्णित है। इससे प्रेरणा प्राप्त कर बाद में ब्रज संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना हुई है।

३. गोपालभट्ट गोस्वामी

उनका जन्म सं० १५५७ में दक्षिण की काबेरी नदी के तटवर्ती श्रीरंगम् के निकट बेलमंडी ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम वेङ्कट भट्ट था। उनके चाचा सुप्रसिद्ध प्रबोधानंद कहे जाते हैं। वैङ्कट भट्ट का परिवार श्री लक्ष्मीनारायण जी का उपासक श्री वैष्णव था।

चैतन्य देव संन्यासी होने के अनंतर सं० १५६८ में दक्षिण-यात्रा के लिए गये थे। जब वे कावेरी तटवर्ती श्रीरंगम् नामक तीर्थ-स्थल में पहुँचे, तब वर्षा ऋतु आरंभ हो गई थी, अत: वे चातुर्मास्य के लिए वहाँ रुक गये। उन्होंने वैङ्कट भट्ट के घर में रह कर चातुर्मास्य किया। उन चार महीनों में चैतन्य द्वारा हरि-कीर्तन और भगवत्चर्चा किये जाने से वैङ्कट भट्ट के घर में भक्ति-भागीरथी का अविरल प्रवाह होता रहा, जिसमें अवगाहन कर घर के सब नर-नारी धन्य हो गये। गोपाल भट्ट उस समय केवल ११ वर्ष के बालक थे। उन पर चैतन्य के उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे तभी से उनके परम भक्त हो गये।

चैतन्य के चले जाने के पश्चात् गोपाल भट्ट उनके सत्संग में रहने की कामना करने लगे। वे अपने माता-पिता के एक मात्र पुत्र थे, अत: उनको छोड़ कर शीघ्र जाना उनके लिए संभव नहीं हुआ। वे घर पर रह कर भगवद्भजन करते हुए अपने विद्वान चाचा से वैष्णव शास्त्रों की शिक्षा भी प्राप्त करने लगे।

उन्होंने अपना विवाह नहीं किया। वे घर-बार छोड़कर अपने इष्ट देव भगवान् श्रीकृष्ण के लीला-धाम में निवास करने के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगे। आखिर, वह समय आ गया। वे विरक्त होकर घर से चल दिये और अनेक स्थानों की यात्रा करते हुए सं० १५८८ में वृंदाबन पहुँच गये। उस समय उनकी आयु ३१ वर्ष की थी। वृंदाबन में सनातन-रूप गोस्वामी-बंधु चैतन्य देव के आदेश से निवास करते थे। उन्होंने प्रेम पूर्वक गोपाल भट्ट को अपने साथ रखा। जब नीलाचल में चैतन्य देव को गोपाल भट्ट के वृंदाबन पहुँचने का समाचार मिला, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी कुछ निजी वस्तुएँ अपने स्नेह के चिह्न स्वरूप उनके पास वृंदावन भेजीं। साथ ही उन्होंने यह संदेश भी भेजा कि वे रूप-सनातन के साथ ब्रज-भूमि में हरि-भक्ति का प्रचार करें।

सं० १५९० में चैतन्य द्वारा प्रेषित उक्त सामग्री वृंदाबन पहुँची। अपने इष्ट देव की पवित्र वस्तुओं का दर्शन कर सभी भक्त-गण प्रेमाश्रु बहाने लगे। उनको अनुभव हुआ कि अब चैतन्य के तिरोधान का समय आ गया है, तभी तो उन्होंने ये वस्तुएँ भेजी हैं। इसके स्मरण मात्र से वे विह्वल हो गये। उसके कुछ समय पश्चात् ही वृंदाबन में चैतन्य के महा प्रस्थान का समाचार प्राप्त हुआ। सभी भक्त-जन शोक-सागर में डुबकियाँ लेने लगे। अंत में धैर्य धारण कर उन्होंने और भी अधिक उत्साह और तत्परता से चैतन्य के कार्य को पूरा करने का निश्चय किया।

गोपाल भट्ट के पास द्वादश शालिग्राम शिलाएँ थीं, जो उनको यात्रा में गंडकी नदी से प्राप्त हुई थीं। वे अत्यन्त भक्ति पूर्वक उनकी सेवा-पूजा किया करते थे। उनके मन में बड़ी लालसा थी कि यदि शालिग्राम शिला भगवान् की मूर्ति होती, तो उसकी शृंगार-सेवा करने में विशेष आनंद प्राप्त होता। कहते हैं, भक्त की भावना के अनुसार वह शालिग्राम शिला ललित त्रिभंगी मुरली मनोहर की मूर्ति में परिवर्तित हो गई! श्रीकृष्ण के इस विग्रह का नाम श्री राधारमण जी प्रसिद्ध हुआ। उनका अभिषेक महोत्सव सं० १५९९ की वैशाखी पूर्णिमा को किया गया। मूर्ति के निकट चैतन्य देव द्वारा अर्पित वस्तुएँ रखी गई। बाद में [illegible] जी का विशाल मंदिर बना, जो वृंदाबन के सुप्रसिद्ध गौड़ीय मंदिरों में से एक है।

वे वैष्णव धर्म ग्रंथों के ज्ञाता, परम विद्वान् और विरक्त भक्त थे। उनके एक शिष्य श्रीनिवासाचार्य थे, जो सुप्रसिद्ध विद्वान् और भक्त थे। उनके अन्य

शिष्य गोपीनाथ थे, जो राधारमण जी की सेवा करते थे। गोपीनाथ भी विरक्त वैष्णव थे। उनके बाद राधारमण जी की सेवा का अधिकार उनके छोटे भाई दामोदर को प्राप्त हुआ। दामोदर जी गृहस्थ थे। उनके वंशज ही अब तक राधारमण जी की सेवा के अधिकारी है। वे राधारमणी गोस्वामी कहलाते है। गोपाल भट्ट सं० १६३५ तक विद्यमान थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि उनका देहावसान संवत् १६४२ की श्रावण कृष्णा ५ को हुआ था।

गोपाल भट्ट की प्रमुख रचना 'हरि-भक्ति-विलास' है। यह वैष्णव स्मृति ग्रंथ सनातन गोस्वामी द्वारा रचित है, किंतु इसका विस्तार गोपाल भट्ट ने किया था। जीव गोस्वामी कृत 'षट् संदर्भ' की कारिका भी गोपाल भट्ट द्वारा रचित है। इसका उल्लेख जीव गोस्वामी ने उक्त ग्रंथ के आरंभ में किया है। 'कृष्ण कर्णामृत' की 'कृष्ण बल्लभा' टीका भी उनके द्वारा रचो हुई कही जाती है, किंतु उसके रचयिता कोई अन्य गोपाल भट्ट ज्ञात होते हैं। संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने संभवतः ब्रजभाषा में भी कुछ पद रचे थे। उनके नाम से ब्रजभाषा के तीन पद 'पद कल्पद्रुम' में मिलते हैं, किंतु वे किसी अन्य गोपाल भट्ट की रचना ज्ञात होते है।

४. रघुनाथदास गोस्वामी

गौड़ीय भक्तों में वे 'दास गोस्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे सप्तग्राम ताल्लुका के धनी कायस्थ जिमीदार गोवर्धनदास के एक मात्र पुत्र थे। उनका जन्म सं० १५६० के लगभग हुआ था। उनके घर वाले पूर्णतया वैष्णव नहीं थे, किंतु वे वैष्णव भक्तों में बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनके कुल-पुरोहित अद्वैत प्रभु की शाखा के यदुनंदनाचार्य थे। उन्हीं से रघुनाथदास ने दीक्षा प्राप्त की थी।

जब शांतिपुर में अद्वैत के घर पर चैतन्य देव का आगमन हुआ, तब रघुनाथदास को भी उनके दर्शनों का सुयोग प्राप्त हुआ था। तभी से वे चैतन्य के भक्त बन गये थे। उस समय उनकी बाल्यावस्था थी। उनके माता-पिता ने उनका विरक्ति-भाव देख कर एक अति सुंदरी कन्या के साथ उनका विवाह कर दिया, ताकि वे गृहस्थ में आसक्त हो जावें। इसके विपरीत वे उस संकट से बचने के लिए घर छोड़ कर जाने की तैयारी करने लगे। वे नीलाचल जाकर चैतन्य की सेवा में रहना चाहते थे। इसके लिए वे बार बार घर से भागते थे,

किंतु घर वाले उनको पकड़ कर ले आते थे। उनको बाध्य होकर घर में रहना पड़ता था, किंतु उनका मन स्नेही माता-पिता, सुंदरी स्त्री और घर के अपार वैभव के प्रति उदासीन था। वे चैतन्य के लिए पागल हो रहे थे। घर वालों ने उनका बाहर जाना रोक दिया और उनके चारों ओर पहरेदार बैठा दिये।

एक दिन अवसर मिलने पर वे घर से भाग दिये। नीलाचल के मुख्य मार्ग को छोड़ कर वे बीहड़ बनों में भटकते हुए चले। मार्ग में कई दिनों तक निराहार रह कर आखिर वे नीलाचल में पहुँच ही गये। उस समय उनकी १९ वर्ष की युवावस्था थी, किंतु मार्ग के कष्टों से उनका मुख मलीन और शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। चैतन्य देव उनकी विरक्ति से प्रभावित हुए। उन्होंने अपने सहकारी भक्त स्वरूप गोस्वामी को उनका अभिभावक नियुक्त कर उन्हें आदेश दिया कि वे रघुनाथ को यथोचित शिक्षा दें और उनकी देख-रेख करें।

जब उनके घर वालों को मालूम हुआ कि वे नीलाचल से वापिस नहीं आवेंगे, तब उनकी सुविधा के लिए सेवक और द्रव्य उनके पास भेजा गया, किंतु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वे कठोर संयम और कठिन तपस्या पूर्वक जगन्नाथ जी की उपासना किया करते थे। वे खान-पान की चिंता से मुक्त होकर जगन्नाथ जी की ड्योढ़ी पर ऐसे खड़े रहते थे, जैसे गरुड़ विष्णु भगवान् के द्वार पर सदैव उपस्थित रहते हैं। नाभाजी ने उनके विषय में कहा है—

जगन्नाथ–पद–प्रीति, निरंतर करत खवासी।
भगवत धर्म प्रधान, प्रसन्न नीलाचल वासी॥
उतकल देस उड़ीसा नगर, बैनतेय सब कोउ कहैं।
रघुनाथ गुसाईं गरुड़ ज्यों, सिंहपौर ठाड़े रहैं॥

नीलाचल में १६ वर्ष रह कर रघुनाथदास ने चैतन्य की अनन्य भाव से सेवा की थी। उनकी निष्ठा से प्रसन्न होकर चैतन्य ने अपनी गोवर्धन शिला और गुंजामाला प्रसादी रूप में उनको प्रदान की थी। जब चैतन्य और स्वरूप दामोदर दोनों का तिरोधान हो गया, तब वे हा-हाकार करते हुए नीलाचल से ब्रज में आ गये। वे रूप-सनातन के सत्संग में रह कर रात-दिन कठिन साधना और भजन-पूजा में लीन रहा करते थे। वे वैराग्य, विरह और संयम के मूर्तिमान स्वरूप थे।

वे ब्रज के गौड़ीय भक्तों को चैतन्य देव की नीलाचल-लीलाओं की वार्ता सुनाया करते थे। उनके प्रोत्साहन और सहयोग से ही कृष्णदास कविराज

ने अपनी वृद्धावस्था में भी 'चैतन्य चरितामृत' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की थी। वे अधिकतर राधाकुंड के मानसपावन घाट पर एक छोटी-सी कुटिया में रहा करते थे। उनका देहावसान भी वहाँ पर ही हुआ था। उक्त स्थल पर उनकी समाधि बनी हुई है। वे सं० १५९१ में नीलाचल से ब्रज में आये थे। उन्होंने प्रायः ४८ वर्षों तक ब्रज-वास किया। उनका देहावसान सं० १६३९ की आश्विन शुक्ला १२ को हुआ था। उनके रचे हुए ३ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. स्तवावली—इसमें उनके रचे हुए २९ छोटे-बड़े स्तवों का संग्रह है। इन स्तवों में उसकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ 'विलाप कुसुमांजलि' और 'ब्रज-विलास स्तव' भी हैं। इन स्तवों में आकुल भक्त की करुण-पुकार है, जो ग्रंथकार की मनोव्यथा को व्यक्त करती है।

२. मुक्ताचरित—इसमें श्रीकृष्ण द्वारा मुक्ताओं की कृषि करने का अद्भुत वर्णन है। इसकी रचना-शैली अत्यंत रसपूर्ण है।

३. दान केलि चिंतामणि—इसमें राधा-कृष्ण की दान-लीला का हास-परिहास पूर्ण मनोहर कथन है।

५. रघुनाथभट्ट गोस्वामी

वे चैतन्य देव के सुप्रसिद्ध भक्त तपन मिश्र के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १५६२ में काशी में हुआ था। 'प्रेम विलास' से ज्ञात होता है कि तपन मिश्र बंग प्रदेश में पद्मावती नदी के तटवर्ती रामपुर ग्राम के निवासी थे। उनको चैतन्य ने काशी में निवास करने का आदेश दिया था।

जब चैतन्य देव नीलाचल से वृंदाबन की यात्रा को गये थे, तब वे काशी में तपन मिश्र के घर पर ठहरे थे। उस समय रघुनाथ की आयु १०—११ वर्ष के लगभग थी। उसी समय उन्होंने प्रथम बार चैतन्य के दर्शन और सत्संग का सौभाग्य प्राप्त किया। वे तभी से चैतन्य के परम भक्त बन गये थे।

उन्होंने अपने घर पर ही शिक्षा प्राप्त की थी। युवावस्था में उनको पुनः जगन्नाथ पुरी में चैतन्य के सत्संग का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनका मन वहाँ पर इतना रमा कि वे स्थायी रूप से नीलाचल में रहना चाहते थे, किंतु चैतन्य ने उनको वृद्ध माता-पिता की उपस्थिति में वहाँ रखना स्वीकार नहीं

उनका देहावसान सं० १६२० के लगभग हुआ था। उनकी समाधि वृंदाबन में श्री रंगजी के मंदिर के निकट 'चौंसठ महंतों के समाधि स्थल' में बनी हुई है। उनका रचा हुआ कोई ग्रंथ प्रसिद्ध नहीं है।

६. जीव गोस्वामी

वे सनातन-रूप के छोटे भाई अनुपम उपनाम बल्लभ के एक मात्र पुत्र थे। उनके पिता की असामयिक मृत्यु सं० १५७४ के लगभग गंगा तट पर उस समय हुई, जब वे अपने बड़े भाई रूप गोस्वामी के साथ वृंदाबन से वापिस आ रहे थे। उसी साल जीव का जन्म बंग प्रदेश में हुआ था। उनका बचपन उनकी अनाथ माता की देख-रेख में बीता और उनकी आरंभिक शिक्षा भी उसी के निरीक्षण में हुई। वे प्रारंभ से ही बड़े प्रतिभाशाली थे, अतः उन्होंने शीघ्र ही अनेक शास्त्रों में निपुणता प्राप्त कर ली।

उनके दोनों पितृव्य सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी विरक्त होकर ब्रज-वास करते थे। उनके अपूर्व वैराग्य और भक्तिपूर्ण जीवन का उज्ज्वल आदर्श आरंभ से ही जीव के सन्मुख था। इससे प्रेरित होकर वे अल्पायु में ही विरक्त होकर घर से चल दिये। उनका हृदय चैतन्य देव की भक्ति से ओत-प्रोत था, किंतु उस समय चैतन्य का तिरोधान हो चुका था। इसलिए वे उनके जन्म-स्थान की यात्रा करने के लिए सर्व प्रथम नवद्वीप गये। वहाँ पर श्रीवास के घर पर उन्हें नित्यानंद जी के दर्शन करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

चैतन्य देव के तिरोधान के अनंतर बंगीय भक्तों के नेतृत्व और मार्ग-प्रदर्शन का संपूर्ण दायित्व नित्यानद जी पर ही था। उन्होंने जीव को परामर्श दिया कि वे वृंदाबन में अपने विद्वान पितृव्यों के साथ रह कर उनका अनुगमन करें। नित्यानंद जी के आदेशानुसार वे व्रज की ओर चल दिये। वे मार्ग में कुछ समय के लिए काशी में ठहर गये। वहाँ पर उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्य मधुसूदन वाचस्पति के पास वेदांतादि विविध शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। इसके उपरांत वे वृंदाबन चले गये।

वे सं० १५९८ के लगभग वृंदाबन पहुँचे। उस समय उनकी आयु २४–२५ वर्ष की थी। उन्होंने अपने पितृव्य रूप गोस्वामी से दीक्षा ली और उन्हीं के सत्संग में रह कर श्रीमद्भागवतादि वैष्णव भक्ति ग्रंथों का विशेष रूप से अध्ययन किया। सं० १५९९ में उन्होंने श्री राधादामोदर जी की सेवा

प्रकाशित की। वे जीवन पर्यंत अपने इष्ट देव के भजन-पूजन और वैष्णव सिद्धांत ग्रंथों की रचना में प्रवृत्त रहे। उन्होंने सदैव ब्रह्मचारी रह कर निष्ठापूर्ण जीवन व्यतीत किया था। वे अपने यशस्वी पितृव्यों के सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। नाभाजी ने उनके विषय में कहा है कि रूप-सनातन का समस्त भक्ति-जल जीव गोस्वामी रूपी गहरे सरोवर में एकत्र हुआ था[1]। उनके महत्व की इससे अच्छी प्रशस्ति और नहीं हो सकती है।

रूप-सनातन गोस्वामियों के देहावसान के अनंतर जीव गोस्वामी ही गौड़ीय विद्वानों में अग्रणी थे। वे दीर्घ काल तक विद्यमान रह कर ब्रज और बंग के गौड़ीय भक्तों का नेतृत्व करते रहे। गोविंददेव जी का विशाल मंदिर, जो राजा मानसिंह ने रूप गोस्वामी के आदेशानुसार उनकी विद्यमानता में बनवाना आरंभ किया था, जीव गोस्वामी के समय में सं० १६४७ में पूर्ण हुआ। वृंदाबन में पहले तालपत्र-भोजपत्र पर ही ग्रंथ लिखे जाते थे। कहते हैं, जीव गोस्वामी ने ही प्रथम बार आगरा से कागज मँगा कर उस पर अपने ग्रंथ लिखे थे।

उनका देहावसान सं० १६६० के लगभग वृंदाबन में हुआ था। उनकी समाधि वृंदाबन के राधा-दामोदर मंदिर की दक्षिण दिशा में बनी हुई है। इसी मंदिर की उत्तर दिशा में रूप गोस्वामी की समाधि और उससे कुछ दूर उनकी भजन-कुटी है। पीछे की ओर 'चैतन्य चरितामृत' के रचयिता कृष्णदास कविराज और भूगर्भ पंडित की समाधियाँ हैं। सनातन गोस्वामी की परिक्रमा-शिला भी इसी मंदिर में है। इस प्रकार यह देवस्थान गौड़ीय भक्तों का परम धन है।

जीव गोस्वामी चैतन्य मत के महान् विद्वान और व्याख्याता हुए हैं। उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं द्वारा उक्त मत का तात्विक स्वरूप सुदृढ़ आधार पर स्थापित किया है। उनके ग्रंथों में उनकी स्वतंत्र रचनाओं के अतिरिक्त रूप-सनातन के ग्रंथों की विद्वतापूर्ण टीकाएँ भी हैं। उनकी कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. षट् संदर्भ—यह विद्वतापूर्ण ग्रंथ उनके भागवत विषयक छै प्रौढ़ निबंधों का सुंदर समुच्चय है। इन निबंधों के नाम हैं—१. तत्व संदर्भ, २. भगवत्संदर्भ, ३. परमात्म संदर्भ, ४. कृष्ण संदर्भ, ५. भक्ति संदर्भ और ६. प्रीति संदर्भ।

---

१. संदेह-ग्रंथि छेदन समर्थ, रस-रास-उपासक परम धीर।
रूप-सनातन-भक्ति-जल, जीव गुसाईं सर गंभीर।। —भक्तमाल

२. सर्व संवादिनी—यह षट् संदर्भ की ग्रंथकार रचित अनुव्याख्या है।

३. क्रम संदर्भ—यह गौड़ीय सिद्धांतानुकूल समस्त भागवत की विद्वत्तापूर्ण टीका है।

४. दुर्गम संगमनी—रूप गोस्वामी कृत 'भक्ति रसामृत सिंधु' की यह महत्वपूर्ण टीका है।

५. लोचन रोचनी—यह रूप गोस्वामी कृत 'उज्ज्वल नीलमणि' की टीका है।

इनके अतिरिक्त लघु तोषिणी, धातु संग्रह, [illegible] व्याकरण, सूत्र मालिका, राधाकृष्ण चैन दीपिका, गोपाल विरुदावली, माधव महोत्सव, संकल्प कल्पद्रुम, गोपाल चम्पू, भावार्थ सूचक चम्पू, भक्ति रसामृत शेष, गायत्री व्याख्या विवृत्ति, गोपाल तापिनी टीका और योग सार स्तोत्र टीका आदि ग्रंथ भी जीव गोस्वामी की अमर रचनाएँ हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

चैतन्य-मत के विद्वान और प्रचारक

★

१. सार्वभौम भट्टाचार्य

चैतन्य देव के समकालीन दार्शनिक विद्वानों में दो विशेष प्रसिद्ध थे; एक वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य और दूसरे प्रकाशानंद सरस्वती। सार्वभौम भट्टाचार्य न्याय शास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे और प्रकाशानंद सरस्वती वेदांत के महान् पंडित थे। दोनों ने ही पहिले चैतन्य देव की उपेक्षा की, किंतु बाद में वे उनके अनन्य भक्त बन गये।

सार्वभौम भट्टाचार्य बंग देश के निवासी थे, किंतु उत्कल के स्वाधीन नरेश गजपति प्रतापरुद्र ने उनको आग्रह पूर्वक अपने राज्य में बुला कर बसाया था। भट्टाचार्य महोदय राजा की प्रार्थना पर जगन्नाथपुरी में निवास कर उड़ीसा निवासियों को दार्शनिक शिक्षा प्रदान करते थे।

जब चैतन्य देव संन्यासी होकर जगन्नाथ पुरी में गये, तब उनकी सार्वभौम भट्टाचार्य से भेंट हुई। भट्टाचार्य ने उनको साधारण संन्यासी समझा और उन्हें वेदांत का उपदेश दिया। चैतन्य देव सात दिनों तक मौन रह कर भट्टाचार्य महोदय से व्यास कृत ब्रह्मसूत्रों को शंकराचार्य कृत भाष्य सहित सुनते रहे। आठवें दिन भट्टाचार्य ने चैतन्य से एकदम मौन रहने और कोई भी प्रश्न न करने का कारण पूछा। चैतन्य ने कहा—"व्यास देव के सूत्रों का अर्थ स्पष्ट है, उसे मैं भली भाँति समझ लेता हूँ; किंतु शंकराचार्य के भाष्य ने उनके सहज निर्मल अर्थ को विकृत कर दिया है।"

चैतन्य देव ने अनेक प्रमाणों और तर्कों से सिद्ध किया कि शंकराचार्य का भाष्य वेदांत के विरुद्ध है। भट्टाचार्य महोदय उनके प्रकांड पांडित्य से अत्यंत प्रभावित हुए और उनको अवतारी पुरुष मानने लगे। कुछ दिनों तक चैतन्य के सत्संग में रहने से उनकी दार्शनिकता का दर्प दूर हो गया। वे भक्ति मार्ग के अनुगामी होकर चैतन्य के अनन्य भक्त बन गये।

सार्वभौम भट्टाचार्य का राय रामानंद से अत्यंत स्नेह था। जब चैतन्य देव दक्षिण की यात्रा को जाने लगे, तब भट्टाचार्य ने उनसे राय रामानंद से अवश्य मिलने का आग्रहपूर्ण निवेदन किया था।

२. प्रकाशानंद सरस्वती

वे शांकर वेदांत के प्रकांड विद्वान और काशी विद्वन्-समाज के शिरोमणि थे। वे संन्यासी थे और ज्ञान-मार्ग की तुलना में भक्ति-मार्ग को हेय समझते थे। उनके सैकड़ों शिष्य थे। उनको अपने ज्ञान और पांडित्य का बड़ा अभिमान था।

जब चैतन्य देव नीलाचल से वृंदाबन की यात्रा को गये, तब मार्ग में वे काशी में विशेष रूप से ठहरे थे। वृंदाबन जाते समय वे वहाँ पर कुछ दिनों तक ही रुके, किंतु वहाँ से वापिस आने पर उन्होंने दो मास तक काशी में निवास किया था। उस समय उन्होने तपन मिश्र, चंद्रशेखर, परमानंद और सनातन के साथ हरि-कीर्तन करते हुए काशी को नाम-ध्वनि से गुँजा दिया था। उनसे प्रभावित होकर काशी निवासी सैकड़ों व्यक्ति हरिनाम-संकीर्तन करने लगे। चैतन्य द्वारा प्रचारित प्रेमा भक्ति और माधुर्यमयी उपासना की चर्चा ज्ञान-वैराग्य के प्रमुख केन्द्र काशी में सर्वत्र होने लगी। वहाँ के साधारण निवासी ही नहीं, वरन् अनेक धुरंधर विद्वान भी अपने ज्ञान-गर्व को नष्ट कर चैतन्य के भक्ति-मार्ग के अनुयायी हो गये थे।

प्रकाशानंद सरस्वती ने चैतन्य देव की अतुल कीर्ति और गौरव-गाथा सुनी थी, किंतु वे सदैव उनके प्रति उपेक्षा और तिरस्कार की भावना प्रकट करते रहे। उनको इस बात से आश्चर्य होता था कि उस युवक संन्यासी ने काशी के विद्वत्समाज को क्यों कर इतना प्रभावित कर लिया है। वे कहते थे, चैतन्य संन्यासी नहीं, इंद्रजाली है; तभी तो जो उसे देखता है, उसके वशीभूत हो जाता है। पुरी के प्रसिद्ध विद्वान सार्वभौम भट्टाचार्य तक उसके चक्कर में पड़ कर पागल हो गये हैं। वे चैतन्य के उस अद्भुत चमत्कार को स्वयं अपनी आँखों से देखने के लिए उत्सुक थे।

उसी समय काशी के एक धनी महाराष्ट्रीय सज्जन ने विद्वत्परिषद् का आयोजन किया, जिसमें सभी संन्यासियों को आमंत्रित किया गया। चैतन्य देव से भी उसमें सम्मिलित होने की प्रार्थना की गई। उक्त परिषद् में अनेक विद्वान संन्यासी उपस्थित हुए। उनके मध्य में एक ऊँचे आसन पर प्रकाशानंद सरस्वती विराजमान हुए। उसी समय चैतन्य देव अपने भक्तों सहित हरिनाम-कीर्तन करते हुए वहाँ उपस्थित हुए।

समस्त संन्यासी-समाज उनके प्रभावशाली स्वरूप को देख कर चकित रह गया। चैतन्य देव सबको अभिवादन कर एक निम्न स्थान पर बैठ गये। प्रकाशानंद सरस्वती चैतन्य देव के विरोधी अवश्य थे, किंतु वे संन्यासाश्रम की मर्यादा और आतिथ्य धर्म से भली भाँति परिचित थे। वे स्वयं चैतन्य के निकट गये और उन्हें उक्त स्थान से उठाते हुए कहने लगे—"आप श्रीपाद केशव भारती के शिष्य और एक सम्मान्य संन्यासी हैं। फिर काशी में आये हुए हमारे अतिथि हैं। आपको इस अयोग्य स्थान पर बैठना उचित नहीं है।"

चैतन्य ने अत्यंत विनय पूर्वक कहा,—"भगवन्! आप सब लोग उच्च कोटि के संन्यासी है, ब्रह्म के समान हैं। मैं तो अति दीन-हीन और तुच्छ व्यक्ति हूँ। कहीं भी बैठ सकता हूँ।"

चैतन्य के इन दीनतापूर्ण वचनों को सुन कर प्रकाशानंद हतप्रभ हो गये। उन्होंने आग्रह पूर्वक चैतन्य को वहाँ से उठा कर उचित स्थान पर बैठाया। फिर वे चैतन्य से कहने लगे—"आप संन्यासी होकर नृत्य-कीर्तन क्यों करते है? आपको तो हम लोगों की तरह वेदांत-पाठ, ज्ञान-चर्चा और ध्यान-धारणा में मन लगाना चाहिए। आपका यह धर्म विरुद्ध आचरण क्या अनुचित नही है?" चैतन्य ने अत्यंत विनय पूर्वक कहा—"भगवन्! आप बिलकुल ठीक कहते हैं। गुरुजी ने मुझे मूर्ख और वेदांत के अयोग्य समझ कर हरिनाम-कीर्तन करने का ही आदेश दिया है। कलियुग में इससे बढ़कर कोई धर्म भी नहीं है—

हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा।।

चैतन्य ने उस विद्वत् समाज में उक्त श्लोक की अत्यंत विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की और श्रीकृष्ण-भक्ति तथा हरिनाम-कीर्तन को सर्वोपरि सिद्ध किया। इस अद्भुत व्याख्यान से प्रकाशानंद का ज्ञान-गर्व दूर होगया और उनको भक्ति-तत्व का बोध हुआ। वे वेदांत के शुष्क ज्ञान को भूल कर श्रीकृष्ण की सरस माधुर्य भक्ति के रंग में रँग गये। वे कृष्ण-प्रेम में विह्वल होकर विक्षिप्त के समान आचरण करने लगे। चैतन्य ने उनको अधिकारी जान कर वृंदावन-वास करने का आदेश दिया।

कहते हैं, इस प्रकार से प्रबोध प्राप्त होने पर प्रकाशानंद ही बाद में प्रबोधानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रकाशानंद का वृत्तांत वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' और कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' में दिया

हुआ है, किंतु उक्त ग्रंथों से यह ज्ञात नहीं होता है कि प्रकाशानंद ही प्रबोधानंद थे। इसका सर्व प्रथम उल्लेख ईशान नागर कृत 'अद्वैत प्रकाश' में हुआ है। ईशान नागर चैतन्य देव का सम कालीन और अद्वैताचार्य का शिष्य था। उसने अपने ग्रंथ 'अद्वैत प्रकाश' में अद्वैताचार्य की जीवनी के साथ ही साथ प्रसंगानुसार चैतन्य देव और उनके शिष्यों का भी कुछ वृत्तांत लिखा है। इस ग्रंथ का रचना-काल सं० १६२६ बतलाया जाता है, किंतु विद्वानों को इसकी प्राचीनता और इसके उक्त कथन की प्रामाणिकता में पर्याप्त सदेह है[1]।

हमको भी यह मत इसलिए मान्य नहीं है कि इसका उल्लेख कृष्णदास कविराज ने, जो प्रबोधानंद के कुछ समय बाद ही वृंदाबन में विद्यमान थे, नहीं किया है। इसके साथ ही यह भी विचारणीय है कि प्रकाशानंद के वेदांती विद्वान होने की तो प्रसिद्धि है, सुकवि होने की नही; जब कि प्रबोधानंद सर्व-मान्य सुकवि थे। एक वेदांती विद्वान विचारों में परिवर्तन होने से भक्त तो हो सकता है, किंतु भक्त होते ही उसमें अपूर्व काव्य-प्रतिभा भी एकदम जागृत हो जावे, यह तो बड़ी विचित्र बात मालूम होती है।

प्रकाशानंद का आरंभिक जीवन-वृत्तांत भी अज्ञात है। कुछ विद्वानों का मत है कि संन्यासी होने से पूर्व वे दाक्षिणात्य वैङ्कट भट्ट के अनुज और गोपाल भट्ट के चाचा थे, अतः श्रीरंगम् के निकटवर्ती बेलमंडी ग्राम में निवास करते थे। 'चैतन्य चरितामृत' से ज्ञात होता है कि चैतन्य देव के उपदेश से वैङ्कट भट्ट का समस्त परिवार चैतन्य-भक्त बन गया था। उनके पुत्र गोपाल भट्ट तो चैतन्य-मत के एक सुदृढ़ स्तंभ ही थे। फिर वैङ्कट भट्ट के अनुज चैतन्य की मंडली में सम्मिलित न होकर दशनामी संन्यासी क्यों हुए और चैतन्य की भक्ति छोड़ कर उनके निंदक क्यों बन गये? इन प्रश्नों का यथोचित उत्तर न होने से यही मानना होगा कि प्रकाशानंद के आरंभिक जीवन की संगति वैङ्कट भट्ट के अनुज और गोपाल भट्ट के चाचा के साथ मिलाना उचित नहीं है। इसी प्रकार अपने उत्तर जीवन में उनके प्रबोधानंद होने की बात भी प्रामाणिक ज्ञात नहीं होती है।

स्वामी हरिदास से भी एक प्रकाशानंद नामक सिद्ध योगी के संपर्क होने की किंवदंती प्रसिद्ध है। उक्त प्रकाशानंद स्वामी हरिदास के दिव्य प्रभाव से पराजित होकर उनका शिष्य हो गया था। वह प्रकाशानंद कोई अन्य व्यक्ति जान पड़ता है।

---

१. बाँगला साहित्येर इतिहास पृ० २७६

३. मुरारि गुप्त

उनका जन्म सिलहट में सं० १५२७ में हुआ था, किंतु उनके घर वाले उस स्थान को छोड़ कर नवद्वीप में जाकर बस गये थे। उनका निवास चैतन्य देव के पड़ौस में था, अतः वे आरंभ से ही चैतन्य के संपर्क में रहे थे। वे सद्गृहस्थ, सुकवि, विद्वान और भक्त थे। उनकी चैतन्य में अत्यंत श्रद्धा थी।

उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृत' की रचना करना है। यह कृति 'कड़चा' (सूत्र रूप में लिखित घटनावली) के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें चैतन्य देव की आरंभिक जीवन-घटनाओं का संस्कृत भाषा में कवितावद्ध कथन किया गया है। इसकी रचना सं० १५७० में हुई थी। यह चैतन्य देव के जीवन-काल में रचा हुआ सर्वप्रथम जीवनी-काव्य है, अतः इसका ऐतिहासिक महत्व है। इसी के आधार पर बाद में चैतन्य संबंधी कई ग्रंथों का निर्माण हुआ। लोचनदास ने इसके आधार पर 'चैतन्य मंगल' ग्रंथ की रचना की, जो बंगभाषा में पांचाली काव्य के रूप में रचा गया है। वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' में भी इस ग्रंथ का कुछ उपयोग हुआ है।

४. प्रबोधानंद

वे रससिद्ध कवि, अनन्य भक्त और वृंदाबन के प्रति परम निष्ठावान महात्मा थे। उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत प्राप्त नहीं है। उनकी जीवनी के जो सूत्र उपलब्ध हैं, वे किंवदंती और अनुमान पर आधारित हैं, अतः उनमें से अधिकांश असत्य और अप्रामाणिक हैं।

उनके आरंभिक जीवन-वृत्तांत की संगति वेङ्कट भट्ट के अनुज के साथ मिलाते हुए उन्हें श्रीरंगम् के निकटवर्ती बेलमंडी ग्राम निवासी दाक्षिणात्य ब्राह्मण कहा जाता है। इसी नाते उन्हें सुप्रसिद्ध गोपाल भट्ट गोस्वामी का चाचा और शिक्षा-गुरु माना जाता है। गोपाल भट्ट के चाचा और शिक्षा-गुरु भी एक प्रबोधानंद कहे जाते हैं, किंतु वे यही थे इसके समर्थन में पुष्ट प्रमाणों का अभाव है। अपने जीवन के मध्य काल में उनके प्रकाशानंद नामक संन्यासी होने की मान्यता के विरुद्ध हम अपना मत पहिले ही प्रकट कर चुके हैं। इसीलिए हमने प्रबोधानंद का वृत्तांत प्रकाशानंद से पृथक् करके लिखना उचित समझा है।

हुआ है, किंतु उक्त ग्रंथों से यह ज्ञात नहीं होता है कि प्रकाशानंद ही प्रबोधानंद थे। इसका सर्व प्रथम उल्लेख ईशान नागर कृत 'अद्वैत प्रकाश' में हुआ है। ईशान नागर चैतन्य देव का सम कालीन और अद्वैताचार्य का शिष्य था। उसने अपने ग्रंथ 'अद्वैत प्रकाश' में अद्वैताचार्य की जीवनी के साथ ही साथ प्रसंगानुसार चैतन्य देव और उनके शिष्यों का भी कुछ वृत्तांत लिखा है। इस ग्रंथ का रचना-काल सं० १६२६ बतलाया जाता है, किंतु विद्वानों को इसकी प्राचीनता और इसके उक्त कथन की प्रामाणिकता में पर्याप्त सदेह है[1]।

हमको भी यह मत इसलिए मान्य नहीं है कि इसका उल्लेख कृष्णदास कविराज ने, जो प्रबोधानंद के कुछ समय बाद ही वृंदावन में विद्यमान थे, नहीं किया है। इसके साथ ही यह भी विचारणीय है कि प्रकाशानंद के वेदांती विद्वान होने की तो प्रसिद्धि है, सुकवि होने की नहीं; जब कि प्रबोधानंद सर्व-मान्य सुकवि थे। एक वेदांती विद्वान विचारों मे परिवर्तन होने से भक्त तो हो सकता है, किंतु भक्त होते ही उसमें अपूर्व काव्य-प्रतिभा भी एकदम जागृत हो जावे, यह तो बड़ी विचित्र बात मालूम होती है।

प्रकाशानंद का आरंभिक जीवन-वृत्तांत भी अज्ञात है। कुछ विद्वानों का मत है कि संन्यासी होने से पूर्व वे दाक्षिणात्य वैङ्कट भट्ट के अनुज और गोपाल भट्ट के चाचा थे, अतः श्रीरंगम् के निकटवर्ती बेलमंडी ग्राम में निवास करते थे। 'चैतन्य चरितामृत' से ज्ञात होता है कि चैतन्य देव के उपदेश से वैङ्कट भट्ट का समस्त परिवार चैतन्य-भक्त बन गया था। उनके पुत्र गोपाल भट्ट तो चैतन्य-मत के एक सुदृढ़ स्तंभ ही थे। फिर वैङ्कट भट्ट के अनुज चैतन्य की मंडली में सम्मिलित न होकर दशनामी संन्यासी क्यों हुए और चैतन्य की भक्ति छोड़ कर उनके निंदक क्यों बन गये? इन प्रश्नों का यथोचित उत्तर न होने से यही मानना होगा कि प्रकाशानंद के आरंभिक जीवन की संगति वैङ्कट भट्ट के अनुज और गोपाल भट्ट के चाचा के साथ मिलाना उचित नहीं है। इसी प्रकार अपने उत्तर जीवन में उनके प्रबोधानंद होने की बात भी प्रामाणिक ज्ञात नहीं होती है।

स्वामी हरिदास से भी एक प्रकाशानंद नामक सिद्ध योगी के संपर्क होने की किंवदंती प्रसिद्ध है। उक्त प्रकाशानंद स्वामी हरिदास के दिव्य प्रभाव से पराजित होकर उनका शिष्य हो गया था। वह प्रकाशानंद कोई अन्य व्यक्ति जान पड़ता है।

---

१. बाँगला साहित्येर इतिहास पृ० २७६

३. मुरारि गुप्त

उनका जन्म सिलहट में सं० १५२७ में हुआ था, किंतु उनके घर वाले उस स्थान को छोड़ कर नवद्वीप में जाकर बस गये थे। उनका निवास चैतन्य देव के पड़ौस में था, अतः वे आरंभ से ही चैतन्य के संपर्क में रहे थे। वे सद्गृहस्थ, सुकवि, विद्वान और भक्त थे। उनकी चैतन्य में अत्यंत श्रद्धा थी।

उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृत' की रचना करना है। यह कृति 'कड़चा' (सूत्र रूप में लिखित घटनावली) के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें चैतन्य देव की आरंभिक जीवन-घटनाओं का संस्कृत भाषा में कवितावद्ध कथन किया गया है। इसकी रचना सं० १५७० में हुई थी। यह चैतन्य देव के जीवन-काल में रचा हुआ सर्वप्रथम जीवनी-काव्य है, अतः इसका ऐतिहासिक महत्व है। इसी के आधार पर बाद में चैतन्य संबंधी कई ग्रंथों का निर्माण हुआ। लोचनदास ने इसके आधार पर 'चैतन्य मंगल' ग्रंथ की रचना की, जो बंगभाषा में पांचाली काव्य के रूप में रचा गया है। वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' में भी इस ग्रंथ का कुछ उपयोग हुआ है।

४. प्रबोधानंद

वे रससिद्ध कवि, अनन्य भक्त और वृंदाबन के प्रति परम निष्ठावान महात्मा थे। उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत प्राप्त नहीं है। उनकी जीवनी के जो सूत्र उपलब्ध हैं, वे किंवदंती और अनुमान पर आधारित है, अतः उनमें से अधिकांश असत्य और अप्रामाणिक हैं।

उनके आरंभिक जीवन-वृत्तांत की संगति वेङ्कट भट्ट के अनुज के साथ मिलाते हुए उन्हें श्रीरंगम् के निकटवर्ती बेलमंडी ग्राम निवासी दाक्षिणात्य ब्राह्मण कहा जाता है। इसी नाते उन्हें सुप्रसिद्ध गोपाल भट्ट गोस्वामी का चाचा और शिक्षा-गुरु माना जाता है। गोपाल भट्ट के चाचा और शिक्षा-गुरु भी एक प्रबोधानंद कहे जाते हैं, किंतु वे यही थे इसके समर्थन में पुष्ट प्रमाणों का अभाव है। अपने जीवन के मध्य काल में उनके प्रकाशानंद नामक संन्यासी होने की मान्यता के विरुद्ध हम अपना मत पहिले ही प्रकट कर चुके हैं। इसी-लिए हमने प्रबोधानंद का वृत्तांत प्रकाशानंद से पृथक् करके लिखना उचित समझा है।

वे किस मत के अनुयायी थे, इसके संबंध में भी पर्याप्त विवाद है। गौड़ीय मान्यता और साहित्य के अनुसार वे चैतन्य-मतानुयायी थे। उनकी प्रसिद्ध रचना 'चैतन्य चंद्रामृत' से इस मत की पुष्टि होती है। 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास ने उनको चैतन्य देव का प्रिय पार्षद बतलाया है[१]। प्रबोधानंद के समकालीन भक्तवर हरिराम जी व्यास ने हित हरिवंश जी और उनके उपास्य श्री राधावल्लभ जी के प्रति प्रबोधानंद की श्रद्धा-भावना का कथन किया है[२]। चैतन्य-मतानुयायी भगवत मुदित ने स्वरचित 'रसिक अनन्यमाल' में प्रबोधानंद का वर्णन राधावल्लभीय भक्तों में करते हुए बतलाया है कि उन्होंने हित हरिवंश के रसिक अनन्य धर्म की परिपाटी के अनुसार नित्य विहार रस का वर्णन किया है[३]। इसके साथ ही साथ हित हरिवंश जी की वंदना स्वरूप एक लघु रचना 'हरिवंशाष्टक' भी प्रबोधानंद कृत कही जाती है।

इन परस्पर विरुद्ध से लगने वाले प्रमाणों के कारण चैतन्य और हरिवंश के अनुयायियों में प्रबोधानंद को लेकर बड़ी कटुता उत्पन्न हो गई है, जिसने सांप्रदायिक कलह का ही रूप धारण कर लिया है। इसकी निवृत्ति के लिए समन्वयवादी विद्वानों ने कहा कि प्रबोधानंद एक नहीं, दो महात्मा थे। उनको एक मान कर दोनों संप्रदायों का झगड़ना व्यर्थ है[४]। एक प्रबोधानंद चैतन्य-मतानुयायी थे, जो 'चैतन्य चंद्रामृत' और 'संगीत माधव' जैसे काव्य ग्रंथों के रचयिता थे। दूसरे प्रबोधानंद राधावल्लभीय थे, जिन्होंने 'हरिवंशाष्टक स्तोत्र' और 'वृंदाबन महिमामृत शतक' की रचना की है। किंतु इस बटवारे से भी उलझन मिटती नहीं है। कारण यह है कि 'संगीत माधव' में हित हरिवंश जी कृत 'राधासुधानिधि' के दो श्लोक और कुछ पंक्तियाँ थोड़े परिवर्तन के साथ उपलब्ध हैं। इसी प्रकार 'वृंदाबन महिमामृत' के कुछ शतकों में चैतन्य-वंदना के श्लोक मिलते हैं।

---

१. श्री प्रबोधानंद बड़े रसिक आनंदकंद,
श्री चैतन्य जू के पारषद प्यारे हैं।

२. प्रबोधानंद से कवि थोरे।
जिन राधाबल्लभ की लीला-रस में सब रस घोरे।
यह प्रिय 'व्यास' आस करि, हित हरिवंशहि प्रति कर जोरे।।

३. रसिक अनन्य धर्म परिपाटी। जानि गही हित जी की घाटी।।
नित विहार रस वर्णन कियौ। रसिक जननि कौ सींच्यौ हियौ।।

४. श्री हित हरिवंश गोस्वामी, पृ० ४४

आजकल के संकीर्ण संप्रदाय वादियों की मान्यता है कि एक मत के अनुयायी को दूसरे मत के [illegible] के प्रति श्रद्धा प्रकट नहीं करनी चाहिए। यदि वह करता है तो उसे निज मत को छोड़ कर दूसरे मत को ग्रहण करने वाला समझना चाहिए! इस प्रकार की मान्यता वाले गौड़ीय लेखकों ने '[illegible]' को भी प्रबोधानंद की रचना बतलाना आरंभ किया है और राधावल्लभीय लेखकों ने आवाज उठाई है कि वृंदाबन महिमामृत शतकों में चैतन्य वंदना के श्लोक बाद में बढाये गये हैं। वास्तव में इस प्रकार के कथन सांप्रदायिक खींचातानी के कुपरिणाम हैं, जो तथ्य पर आधारित नहीं है। वस्तु स्थिति यह है कि 'राधासुधानिधि' की प्राचीनतम प्रतियाँ उसे हित जी की रचना सिद्ध करती हैं और 'वृंदाबन महिमामृत' की प्राचीन से प्राचीन पोथियो में चैतन्य-वंदना के श्लोक मिलते हैं। इसलिए प्रबोधानंद के ग्रंथों में कुछ राधावल्लभीय प्रभाव के कारण कोई क्लिष्ट कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। दो प्रबोधानद मानने की बात तो और भी हास्यास्पद है। कारण यह है कि एक ही समय में एक नाम के दो कवियों द्वारा एक सी भाषा में एक सा काव्य-महत्व प्रदर्शित करना संभव नहीं है। इसलिए हमारा मत है, चैतन्य चंद्रामृत संगीत माधव और वृंदाबन महिमामृत शतक के रचयिता एक ही प्रबोधानंद थे। 'हरिवंशाष्टक' के संबंध में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि वह उनकी रचना है या नहीं।

उनकी सांप्रदायिक मान्यता के संबंध में हमारा मत है कि वे चैतन्य-मतानुयायी थे। वृंदाबन में निवास करने पर वे हित जी की रस-परिपाटी के प्रति आकर्षित हुए, जिसका कुछ प्रभाव उनके सगीत माधव और वृंदाबन महिमामृत ग्रंथों में दिखलाई देता है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वे चैतन्य-मत को छोड़ कर राधावल्लभीय संप्रदाय में दीक्षित हो जाते। उस समय के सभी महात्मा उदार भक्ति-मार्ग के अनुयायी थे। वे अपने-अपने मतों के प्रति अनन्य निष्ठा रखते हुए भी अन्य मतावलंबी महात्माओं के प्रति श्रद्धावान थे।

प्रबोधानंद जी वृंदाबन में कालियदह नामक स्थल पर निवास करते थे। उनका देहावसान भी उसी स्थान पर हुआ था, जहाँ उनकी समाधि बनी हुई है। उनके देहावसान का निश्चित संवत् अज्ञात है।

प्रबोधानंद के नाम से कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। उन सब में भक्ति-भागीरथी के साथ काव्य-कलिदजा का अपूर्व संगम हुआ है, इसीलिए वे भक्ति-मार्ग के अनुयायियों और काव्य-प्रेमियों को समान रूप से प्रिय रहे हैं। उनकी रचनाओं में जैसा लालित्य और माधुर्य है, वैसा कम कवियों के कथन में मिलता है।

उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. चैतन्य चंद्रामृत—यह चैतन्य देव की महिमा का प्रकाशक सुंदर काव्य ग्रंथ है। इसमें १२ विभाग और १४२ श्लोक हैं। इसकी प्रेमोन्माद-कारिणी रचना-शैली चैतन्य-भक्ति से ओत-प्रोत है।

२. संगीत माधव—यह जयदेव कृत 'गीत-गोविंद' जैसा अनूठा गीत-काव्य का ग्रंथ है। गीत-गोविंद में जहाँ १२ सर्ग हैं, वहाँ इसमें १६ सर्ग हैं। इसके गीतों की संख्या १३९ है, जो विभिन्न रागों में कथित हैं। इसमें गीत-गोविंद की-सी कोमल-कांत पदावली, उसी की-सी स्वर-लहरी और संगीतात्मकता तथा उस जैसी ही राधा-कृष्ण के उत्तान श्रृंगार की उन्माद-कारिणी केलि-क्रीड़ाओं का गायन हुआ है।

३. वृंदाबन-महिमामृत शतक—यह वृंदाबन महिमा का अपूर्व काव्य ग्रंथ है। वृंदाबन के उत्कर्ष का जैसा रस पूर्ण कथन इसमें हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इससे कवि की वृंदाबन-निष्ठा पर भली भाँति प्रकाश पड़ता है। कहते हैं, उन्होंने सौ-सौ श्लोकों के १०० शतक रचे थे, किंतु अब १७ शतक ही प्राप्त हैं, जो बंगाक्षरों में सानुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं। शेष शतक प्राप्त नहीं होते हैं। प्रथम चार शतक नागरी अक्षरों में हिंदी अनुवाद सहित वृंदाबन से प्रकाशित हुए हैं। इसके एक शतक का ब्रजभाषा काव्यानुवाद भगवत मुदित जी ने सं० १७०७ में किया था।

उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त आश्चर्य रास प्रबंध, काम गायत्री व्याख्या और गीत गोविंद की टीका भी उनकी रचनाएँ हैं। 'निकुंज विलास स्तव' और 'हरिवंशाष्टक' भी उनके रचे हुए कहे जाते हैं, किंतु ये दोनों ही संदिग्ध ग्रंथ हैं। 'निकुंज विलास स्तव' कदाचित 'निकुंज रहस्य स्तव' है, जो गौड़ीय साहित्य में रूप गोस्वामी की रचना के रूप में प्रसिद्ध है। 'हरिवंशाष्टक' के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह किसका रचा हुआ है। प्रबोधानंद के सभी प्रमुख ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

५. कर्णपूर

वे वंग प्रदेश के नदिया जिलांतर्गत कांचरापाड़ा ग्राम के निवासी थे। उनका जन्म सं० १५८१ में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवानंद सेन था। उनके भाइयों के नाम चैतन्यदास और रामदास थे। वे सब चैतन्य देव के परम भक्त थे। उनका वास्तविक नाम परमानंददास अथवा पुरीदास था, किंतु चैतन्य देव ने उनकी काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर बाल्यावस्था में ही उन्हें कर्णपूर के नाम से संबोधित किया था। वे इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

उनका देहावसान-काल सं० १६३३ माना जाता है, किंतु यह ठीक नहीं मालूम होता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि वे नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा आमंत्रित होकर अपने भाइयों सहित खेतुरी उत्सव में सम्मिलित हुए थे, अतः उनकी विद्यमानता सं० १६४० तक मानी जा सकती है।

वे संस्कृत भाषा के विख्यात कवि थे। उनकी रचनाएँ गौड़ीय भक्ति-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। संस्कृत के अतिरिक्त उन्होंने बंगभाषा में भी कुछ पदों की रचना की थी। उनके नाम से १२ पद 'पद कल्पतरु' में संकलित हैं, जिनमें दो पद सं० २८५८ और सं० २८७१ ब्रजभाषा के भी हैं। इन पदों में 'परमानंद' की नाम-छाप है। सुश्री रत्नकुमारी जी ने इन्हें कर्णपूर कृत माना है[1], किंतु हमें वे किसी अन्य परमानंद कवि के रचे हुए ज्ञात होते हैं।

उनके प्रमुख ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. चैतन्य चरितामृत—यह २० सर्गो का महा काव्य है। इसमें मुरारि गुप्त कृत 'कड़चा' के आधार पर चैतन्य देव की [illegible] का कथन किया गया है। ऐसा कहा जाता है, इसकी रचना सं० १५९९ में हुई थी[2], जब कर्णपूर की आयु केवल १८ वर्ष की थी। इस महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह किसी प्रौढ़ कवि की रचना है। सुश्री रत्नकुमारी जी ने इसका रचना-काल सन् १६७० (सं० १६२७) लिखा है[3], जो इसकी रचना-शैली को देखते हुए ठीक हो सकता है।

---

१. १६वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० ६३ और ४६३

२. बंगला साहित्य की कथा, पृ० ४३

३. १६वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० ६३

प्रबोधानंद के नाम से कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। उन सब में भक्ति-भागीरथी के साथ काव्य-कलिंदजा का अपूर्व संगम हुआ है, इसीलिए वे भक्ति-मार्ग के अनुयायियों और काव्य-प्रेमियों को समान रूप से प्रिय रहे हैं। उनकी रचनाओं में जैसा लालित्य और माधुर्य है, वैसा कम कवियों के कथन में मिलता है।

उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. चैतन्य चंद्रामृत—यह चैतन्य देव की महिमा का प्रकाशक सुंदर काव्य ग्रंथ है। इसमें १२ विभाग और १४२ श्लोक हैं। इसकी प्रेमोन्माद-कारिणी रचना-शैली चैतन्य-भक्ति से ओत-प्रोत है।

२. संगीत माधव—यह जयदेव कृत 'गीत-गोविंद' जैसा अनूठा गीत-काव्य का ग्रंथ है। गीत-गोविंद में जहाँ १२ सर्ग हैं, वहाँ इसमें १६ सर्ग हैं। इसके गीतों की संख्या १३६ है, जो विभिन्न रागों में कथित हैं। इसमें गीत-गोविंद की-सी कोमल-कांत पदावली, उसी की-सी स्वर-लहरी और संगीतात्मकता तथा उस जैसी ही राधा-कृष्ण के उत्तान शृंगार की उन्माद-कारिणी केलि-क्रीड़ाओं का गायन हुआ है।

३. वृंदावन-महिमामृत शतक—यह वृंदावन महिमा का अपूर्व काव्य ग्रंथ है। वृंदावन के उत्कर्ष का जैसा रस पूर्ण कथन इसमें हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इससे कवि की वृंदावन-निष्ठा पर भली भाँति प्रकाश पड़ता है। कहते हैं, उन्होंने सौ-सौ श्लोकों के १०० शतक रचे थे, किंतु अब १७ शतक ही प्राप्त हैं, जो बंगाक्षरों में सानुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं। शेष शतक प्राप्त नहीं होते हैं। प्रथम चार शतक नागरी अक्षरों में हिंदी अनुवाद सहित वृंदाबन से प्रकाशित हुए हैं। इसके एक शतक का ब्रजभाषा काव्यानुवाद भगवत मुदित जी ने सं० १७०७ में किया था।

उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त आश्चर्य रास प्रबंध, काम गायत्री व्याख्या और गीत गोविंद की टीका भी उनकी रचनाएँ हैं। 'निकुंज विलास स्तव' और 'हरिवंशाष्टक' भी उनके रचे हुए कहे जाते हैं, किंतु ये दोनों ही संदिग्ध ग्रंथ हैं। 'निकुंज विलास स्तव' कदाचित 'निकुंज रहस्य स्तव' है, जो गौड़ीय साहित्य में रूप गोस्वामी की रचना के रूप में प्रसिद्ध है। 'हरिवंशाष्टक' के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह किसका रचा हुआ है। प्रबोधानंद के सभी प्रमुख ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है।

५. कर्णपूर

वे वंग प्रदेश के नदिया जिलांतर्गत कांचरापाड़ा ग्राम के निवासी थे। उनका जन्म सं० १५८१ में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवानंद सेन था। उनके भाइयों के नाम चैतन्यदास और रामदास थे। वे सब चैतन्य देव के परम भक्त थे। उनका वास्तविक नाम परमानंददास अथवा पुरीदास था, किंतु चैतन्य देव ने उनकी काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर बाल्यावस्था में ही उन्हें कर्णपूर के नाम से संबोधित किया था। वे इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

उनका [illegible] सं० १६३३ माना जाता है, किंतु यह ठीक नहीं मालूम होता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि वे नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा आमंत्रित होकर अपने भाइयों सहित खेतुरी उत्सव में सम्मिलित हुए थे, अतः उनकी विद्यमानता सं० १६४० तक मानी जा सकती है।

वे संस्कृत भाषा के विख्यात कवि थे। उनकी रचनाएँ गौड़ीय भक्ति-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। संस्कृत के अतिरिक्त उन्होंने बंगभाषा में भी कुछ पदों की रचना की थी। उनके नाम से १२ पद 'पद कल्पतरु' में संकलित हैं, जिनमें दो पद सं० २८५८ और सं० २८७१ ब्रजभाषा के भी हैं। इन पदों में 'परमानंद' की नाम-छाप है। सुश्री रत्नकुमारी जी ने इन्हें कर्णपूर कृत माना है[1], किंतु हमें वे किसी अन्य परमानंद कवि के रचे हुए ज्ञात होते हैं।

उनके प्रमुख ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. चैतन्य चरितामृत—यह २० सर्गो का महा काव्य है। इसमें मुरारि गुप्त कृत 'कड़चा' के आधार पर चैतन्य देव की जीवन-लीलाओं का कथन किया गया है। ऐसा कहा जाता है, इसकी रचना सं० १५९९ में हुई थी[2], जब कर्णपूर की आयु केवल १८ वर्ष की थी। इस महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह किसी प्रौढ़ कवि की रचना है। सुश्री रत्नकुमारी जी ने इसका रचना-काल सन् १६७० (सं० १६२७) लिखा है[3], जो इसकी रचना-शैली को देखते हुए ठीक हो सकता है।

---

१. १६वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० ६३ और ४६३

२. बंगला साहित्य की कथा, पृ० ४३

३. १६वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० ६३

२. चैतन्य-चंद्रोदय नाटक—इसकी रचना सं० १६२६ में हुई थी। इसके १० अंकों में चैतन्य-चरित का अभिनय के रूप में मनोहर कथन हुआ है।

३. गौर गणोद्देश दीपिका—इसमें गौरांग महाप्रभु का परिकर किस उद्देश्य से अवतीर्ण हुआ, इसका वर्णन है। इसकी रचना सं० १६३२ में हुई थी।

४. आनंद-वृंदाबन चम्पू—यह श्री कृष्ण-लीला का सुप्रसिद्ध चम्पू काव्य है। इसमें भागवत दशमस्कंध के आधार पर श्रीकृष्ण के जन्म से उनकी रास-लीला तक का रसपूर्ण कथन है। इसमें २२ स्तवक हैं। यह संस्कृत-साहित्य की प्रसिद्ध रचना है। संस्कृत के विद्वानों और भागवत के वक्ताओं में इसकी बड़ी ख्याति है।

५. कृष्णाह्निक कौमुदी—इसमें श्री राधा-गोविंद की अष्ट कालीन दैनिक लीलाओं का कथन है। इसका रसास्वादन भक्त-गण प्रेम पूर्वक करते हैं।

६. अलंकार कौस्तुभ—यह काव्य-शास्त्र विषयक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ है। इसके उदाहरण कृष्ण-लीला संबंधी हैं, अतः यह काव्य-शास्त्र के विद्यार्थियों के साथ ही साथ भक्तों को भी प्रिय है। इसमें 'किरण' नामक १० अध्याय हैं। इसकी कई टीकाएँ हुई हैं, जिनमें विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'सार बोधिनी' विशेष प्रसिद्ध है।

६. वृंदाबनदास

वे चैतन्य महाप्रभु के आरंभिक भक्त श्रीवास पंडित के भाई नलिन पंडित के दौहित्र और नारायणी देवी के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १५६४ से १५७० के बीच किसी समय में हुआ था। वे नित्यानंद जी के शिष्य और उनके अन्यतम कृपा-पात्रों में से थे। उनका आरंभिक जीवन नवद्वीप के अंतर्गत मामगाछी नामक स्थान में व्यतीत हुआ था। वहाँ पर ही उन्होंने अपनी शिक्षा प्राप्त की थी।

चैतन्य देव के संन्यासी होने के अनंतर नित्यानंद जी नवद्वीप के गौड़ीय भक्तों में कृष्ण-भक्ति का प्रचार करते थे। उनके अनेक शिष्य-सेवक थे, जिसमें वृंदाबनदास अंतिम थे। इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं चैतन्य भागवत में किया है[१]।

---

१. सर्व शेष भृत्य तान वृंदाबनदास।
अवशेष पात्र नारायणी गर्भ जात ॥१२५॥ —अन्त्य खंड, ६ अध्याय

नित्यानंद जी के सत्संग में रह कर ही उन्होंने चैतन्य महाप्रभु की जीवन-लीलाओं का परिचय प्राप्त किया था, और उन्हीं के आदेश से अपने विख्यात ग्रंथ 'चैतन्य भागवत' की रचना की थी। इसका उल्लेख उन्होंने उक्त ग्रंथ के आरंभ में ही किया है[1]।

'चैतन्य भागवत' बंगभाषा में लिखा हुआ चैतन्य देव का सर्व प्रथम जीवनी-काव्य है। इसका पूर्व नाम 'चैतन्य मंगल' था। वृंदाबनदास ने स्वयं ग्रंथ के आरंभ में इसका नाम 'चैतन्य मंगल' बतलाया है[2]। कृष्णदास कविराज ने भी इसका उल्लेख 'चैतन्य मंगल' नाम से ही किया है[3]। ऐसा ज्ञात होता है, बाद में इसे लोचनदास कृत 'चैतन्य मंगल' से पृथक् करने के लिए 'चैतन्य भागवत' कहा जाने लगा। इसका यह नाम भी कविराज महोदय द्वारा वृंदाबनदास की प्रशस्ति करने से ही पड़ा जान पड़ता है। उन्होंने 'चैतन्य चरितामृत' में लिखा है, जिस प्रकार भागवत की श्रीकृष्ण-लीला के व्यास वेदव्यास हैं, उसी प्रकार चैतन्य-लीला के व्यास वृंदाबनदास हैं—

> कृष्ण–लीला भागवते कहे वेदव्यास।
> चैतन्य–लीलार व्यास वृंदाबनदास॥

यदुनाथ सरकार के मतानुसार 'चैतन्य भागवत' की रचना सं० १६३२ में हुई थी, किंतु इसका रचना-काल इससे पूर्व का ज्ञात होता है। इसमें आदि, मध्य और अन्त्य नामक तीन खंड है। प्रथम दो खंडों में चैतन्य देव के जीवन की आदि और मध्य की लीलाओं का विस्तार पूर्वक कथन है, किंतु अंतिम खंड में वर्णित उनके नीलाचल-निवास की लीलाएँ संक्षिप्त ही नही, अपूर्ण भी हैं। इस खंड के अंतिम परिच्छेदों में चैतन्य देव की शेष लीलाओं का कथन न कर नित्यानंद जी का वृत्तांत लिखा गया है। इससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना

---

१. अन्तर्जामी नित्यानंद बलिला कौतुके।
चैतन्य-चरित्र किछु लिखिते पुस्तके॥७३॥
—आदि खंड, १ अध्याय

२. चिंतिया चैतन्य चाँदेर चरण कमल।
वृंदाबनदास गान 'श्री चैतन्य मंगल'॥१७९॥

३. वृंदाबनदास कैल 'चैतन्य मंगल'।
जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल॥

चैतन्य देव के अंतिम समय में नहीं, तो उनके तिरोधान के कुछ समय बाद ही हुई होगी। 'चैतन्य भागवत' में चैतन्य देव के साथ ही साथ नित्यानंद जी के अलौकिक महत्व का भी कथन है, जो ग्रंथकार की गुरु-निष्ठा पर आधारित है। उन्होंने अपने ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय का अंत दोनों के नाम-स्मरण के साथ इस प्रकार किया है—

श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानंद चाँद जान ।
वृंदाबनदास तछु पद युगे गान ।।

कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' में वर्णित चैतन्य देव की आदि और मध्य लीलाओं का आधार 'चैतन्य भागवत' ही है, किंतु उनकी अंतिम लीलाओं का वर्णन कविराज महोदय की अपनी देन है।

वृंदाबनदास के वैवाहिक जीवन का उल्लेख नहीं मिलता है। इससे समझा जाता है, वे जीवन पर्यंत नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे थे। उनका अंतिम जीवन देनुड़ ग्राम में व्यतीत हुआ था। वहाँ ही उनकी पाटबाडी है। कहते हैं, स्वयं उनके द्वारा लिपिवद्ध 'चैतन्य भागवत' की मूल प्रति वहाँ सुरक्षित है। उनका कोई अन्य ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। उनके रचे हुए कुछ पद अवश्य मिलते हैं। उनका देहावसान सं० १६४६ की कार्तिक शुक्ला १ को हुआ था।

७. लोचनदास

वे वर्धमान जिला के कोग्राम में सं० १५८० के लगभग उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम कमलाकर दास था। उनके गुरु नरहरि सरकार थे। उन्हीं के आदेश से उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'चैतन्य मंगल' की रचना मुरारि गुप्त कृत 'कड़चा' के आधार पर की थी।

'चैतन्य मंगल' में ४ खंड हैं। इनके नाम क्रमशः सूत्र खंड, आदि खंड, मध्य खंड और शेष खंड हैं। इनमें मंगल काव्य की शैली में चैतन्य देव की जीवन-लीलाओं का कथन हुआ है। चैतन्य देव की जीवनी विषयक इसमें कोई विशेषता नहीं है, किंतु काव्य की दृष्टि से यह सुंदर कृति है। इसकी रचना कई प्रकार के छंदों में हुई हैं। यह उत्तम कोटि का लोक-काव्य है।

उनकी अन्य रचनाएँ 'दुर्लभ सार' और 'जगन्नाथ वल्लभ नाटक' का पद्यानुवाद हैं। उन्होंने पदों और गीतों की भी रचना की थी। उनका देहावसान सं० १६४६ के लगभग हुआ था।

८. कृष्णदास कविराज

वे वर्धमान जिला के झामटपुर ग्राम में सं० १५७३ के लगभग उत्पन्न हुए थे। उनके माता-पिता का देहांत उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया था, अतः उनकी भूआ ने उनका पालन-पोषण किया। उन्होंने आरंभ में फारसी पढ़ी थी। बाद में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन इस विचार से किया कि वे अपने पैतृक व्यवसाय आयुर्वेदिक चिकित्सा में निपुणता प्राप्त कर सकें; किंतु वे पूर्व संस्कार वश भक्ति-मार्ग की ओर प्रेरित होकर निष्ठावान कृष्ण-भक्त हो गये।

वे आरंभ से ही विरक्त स्वभाव के थे, अतः उन्होंने अपना विवाह नहीं किया। जब वे १६–१७ वर्ष के थे, तभी भिक्षुक के वेश में तीर्थ यात्रा करते हुए ब्रज की ओर चल दिये। वे सं० १५६० के लगभग वृंदावन पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने रूप गोस्वामी से वैष्णव धर्म ग्रंथों की शिक्षा प्राप्त की। वे गौड़ीय भक्तों के साथ वृंदाबन और राधाकुंड में निवास कर भगवद्भजन और शास्त्र-चर्चा में सदैव व्यस्त रहते थे। उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे वैष्णव धर्म ग्रंथों के मार्मिक विद्वान थे।

अपने अंतिम काल में वे रघुनाथदास गोस्वामी के साथ राधाकुड में निवास करते थे। वहाँ पर ही उन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'चैतन्य चरितामृत' की रचना की थी। यह ग्रंथ वृंदाबन-राधाकुंड आदि ब्रज के विभिन्न स्थानों में निवास करने वाले गौड़ीय भक्तों के आग्रह पर रचा गया था। वे भक्त-जन सायंकाल में एकत्र होकर वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' का पाठ किया करते थे। उक्त ग्रंथ में चैतन्य देव के आरंभिक जीवन का विस्तारपूर्वक कथन है, किंतु उनकी अंतिम लीलाओं का इसमें संक्षिप्त और अपूर्ण वर्णन हुआ है। इससे उन भक्त जनों की संतुष्टि नहीं होती थी। इसलिए गोविद देव जी के मुख्य पुजारी हरिदास जी सहित अनेक गौड़ीय भक्तों ने कृष्णदास कविराज से प्रार्थना की वे चैतन्य-चरित् के सर्वांगपूर्ण काव्य-ग्रंथ की रचना करें।

वे तब तक वृद्ध हो चुके थे, अतः शरीर से शिथिल थे। फिर भी वे चैतन्य-चरित् की रचना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने कई वर्षों तक दिन-रात परिश्रम कर अपने अमर काव्य 'चैतन्य चरितामृत' की रचना पूर्ण की। उसके कुछ समय पश्चात् सं० १६४५ में उनका देहावसान हो गया। उनकी समाधि वृंदाबन के राधा-दामोदर जी के मंदिर में बनी हुई है।

उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. गोविंद-लीलामृत—इस ग्रंथ की रचना रूप गोस्वामी कृत एकादश श्लोकात्मक 'स्मरण मंगल स्तोत्र' के आधार पर हुई है। इसमें श्री राधा-गोविंद जी की अष्ट कालीन दैनंदिनी लीलाओं का विस्तार पूर्वक कथन है। इसमें २३ अध्याय और २५०० श्लोक हैं। यह ग्रंथ गौड़ीय भक्तों का परम धन है।

२. कृष्ण-कर्णामृत टीका—लीला-शुक बिल्वमंगल कृत सुप्रसिद्ध स्तोत्र काव्य 'कृष्ण-कर्णामृत' की यह सर्वोत्तम टीका है। इसका नाम 'सारंग रंगदा' है। इसमें चैतन्य-मत की रागानुगा भक्ति का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है। यह कविराज महोदय की प्रौढ़ावस्था की रचना है।

३. चैतन्य चरितामृत—यह उनकी अंतिम और सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसकी रचना बंगभाषा के पयार छंद में हुई है। इसकी भाषा अत्यंत सरल है, जिसमें कुछ हिंदी शब्दों का भी मिश्रण है; किंतु इसके भाव अत्यंत गंभीर और मर्मस्पर्शी हैं। यह आरंभिक बँगला भक्ति-साहित्य की बहुमूल्य कृति है। इसमें चैतन्य महाप्रभु की विस्तृत जीवनी के साथ ही साथ उनके मत और भक्ति तत्व की नैतिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। इसमें प्रसंगानुसार गीता, भागवतादि पुराण, वैष्णव धर्म ग्रंथ और रूप-सनातन गोस्वामियों की कृतियों का सार संकलित होने से यह गौड़ीय वैष्णवों की सैद्धांतिक रचना है। इसके निर्माण में वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' का भी आधार लिया गया है, बल्कि यह कहना चाहिए कि उसका विस्तार किया गया है। चैतन्य-चरित् की जो बातें 'चैतन्य भागवत' में अधिक हैं, वे इसमें कम हैं; किंतु जो बातें उसमें कम हैं, वे इसमें विस्तार पूर्वक लिखी गई हैं।

इसकी रचना में रघुनाथदास गोस्वामी से विशेष सहायता मिली थी। दास गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु के सत्संग में नीलाचल में निवास करते हुए उनकी अंतिम लीलाओं को अपनी आँखों से देखा था और उनके अंतरंग पार्षद स्वरूप दामोदर आदि से उनकी अन्य लीलाओं को सुना था। वे सब बातें रघुनाथदास ने कविराज महोदय को बतलाई थीं। इसीलिए यह ग्रंथ चैतन्य-चरित् की प्रामाणिक रचना के रूप में कथित हुआ है। चैतन्य महाप्रभु की जीवन-लीलाएँ उनके गृहस्थ जीवन, संन्यासी रूप में देश-भ्रमण और नीलाचल के स्थायी निवास से संबंधित हैं। इनका वर्णन 'चैतन्य चरितामृत' में आदि

इसी बीच में उन्हें विष्णुपुर के राजकुमार से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ। वह श्रीनिवास की विद्वत्ता और भक्ति से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने लूटे हुए ग्रंथों को खोज करा कर मँगा दिया और उन्हें उनके हवाले कर दिया। इसके साथ ही वह अपने परिवार और अनुचरों सहित चैतन्य-मत का अनुगामी हो गया।

श्रीनिवास अपनी योग्यता के कारण आचार्य पदवी से विभूषित हुए। उनके उपदेश और प्रभाव से विष्णुपुर तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में चैतन्य-मत का प्रचार होने लगा। उनके अनेक शिष्य थे, जिन्होंने समस्त पश्चिमी और दक्षिणी बंग प्रदेश में वैष्णवता की धारा प्रवाहित कर दी, जिसके कारण वहाँ पर चैतन्य देव के भक्ति-सिद्धांत और हरिनाम-कीर्तन का व्यापक प्रचार हो गया। उन्हें इस कार्य में नरोत्तमदास के अतिरिक्त नित्यानंदजी की पत्नी जाह्नवा गोस्वामिनी और उनके पुत्र वीरचंद्र गोस्वामी से भी सहायता मिली थी।

श्रीनिवासाचार्य के दो विवाह हुए थे, जिनसे उनकी कई संतानें हुई। उनके अनेक शिष्य-प्रशिष्य थे, जिनमें कई चैतन्य-मत के प्रसिद्ध विद्वान, भक्त और कवि हुए हैं। उनके शिष्यों में गोविंददास कविराज, गोविंददास चक्रवर्ती, मोहनदास, राधाबल्लभदास एवं यदुनंदन प्रसिद्ध पद-रचयिता और कवि थे। उनकी पुत्री हेमलता देवी बड़ी योग्य महिला थी। उसने अपने पिता के कार्य को और भी आगे बढ़ाया था।

श्रीनिवासाचार्य प्रसिद्ध विद्वान और धर्मोपदेशक होने के अतिरिक्त कवि भी थे। उनके रचे हुए बंगभाषा के कुछ पदों का संकलन 'पद कल्पद्रुम' में मिलता है। उनका देहावसान सं० १६६४ में हुआ था।

१०. नरोत्तमदास

वे राजशाही जिलांतर्गत गोपालपुर परगना के धनी कायस्थ जमीदार राजा कृष्णानंद दत्त के पुत्र थे। इस परगना की राजधानी पद्मावती नदी के तट पर खेतुरी नामक स्थान में थी। वहाँ पर नारायणी देवी के गर्भ से उनका जन्म सं० १५८० की माघ पूर्णिमा को हुआ था।

वे आरंभ से ही भक्ति-मार्ग की ओर आकर्षित थे, अतः वे छोटी आयु में ही विरक्त हो गये और अपने राज्याधिकार, घर-बार और परिवार को छोड़ कर वृंदाबन चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने लोकनाथ गोस्वामी का शिष्य

बनना चाहा। लोकनाथ जी वृंदाबन के चीरघाट पर एक छोटी सी कुटिया में भजन-ध्यान किया करते थे। वे किसी को शिष्य नहीं बनाते थे, अतः उन्होंने नरोत्तमदास से भी इसके लिए निषेध कर दिया।

नरोत्तमदास इससे निराश नहीं हुए। वे गुप्त रूप से अपने मनोनीत गुरु की सब प्रकार से सेवा करते रहे। उन्होंने जीव गोस्वामी के सत्संग में रह कर वैष्णव भक्ति-ग्रंथों का अध्ययन किया और उन्हीं की कृपा से वे लोकनाथ जी से मंत्र-दीक्षा प्राप्त करने में सफल हो सके।

सं० १६३६ में जब जीव गोस्वामी के आदेशानुसार श्रीनिवास और श्यामानंद वृंदाबन के गोस्वामियों की रचनाओं को बंग प्रदेश में प्रचारार्थ ले जाने लगे, तब नरोत्तमदास भी उनके साथ गये। उन्होंने बंग प्रदेश में पहुँच कर अपने जन्म-स्थान खेतुरी में एक आश्रम बनाया। उसमें सं० १६४० में चैतन्य, नित्यानंद और राधा-कृष्णादि कई विग्रहों की प्रतिष्ठा की गई। इसके उपलक्ष में उन्होंने खेतुरी में एक विशाल उत्सव का भी आयोजन किया, जिसमें समस्त वैष्णव भक्तों को आग्रह पूर्वक निमन्त्रित किया गया। उक्त उत्सव में चैतन्य देव के सभी प्रमुख अनुगामी और उनके शिष्य-प्रशिष्य एकत्र हुए थे। उस अवसर पर नरोत्तमदास ने देवीदास मृदंगी के सहयोग से रस-कीर्तन की एक विशिष्ट शैली प्रचलित की, जो 'गरानहाटी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह उत्सव गौड़ीय भक्ति-जगत् में कई दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है।

नरोत्तमदास और उनके शिष्यों के कारण उत्तरी बंग प्रदेश में चैतन्य-मत का व्यापक प्रचार हुआ। उन्होंने दीर्घायु प्राप्त की थी। उनका देहावसान गंगा तट पर सं० १६६८ की कार्तिक कृष्णा ५ को हुआ था। उनकी भस्मि वृंदाबन लाई गई। उनकी समाधि उनके गुरु लोकनाथ जी की समाधि के पास वृंदाबनस्थ श्री गोकुलानंद जी के मंदिर में है। उनका और चैतन्य महाप्रभु का प्राचीन चित्र राधाकुंड के जाह्नवा जी के मंदिर में है।

वे बंगभाषा के सुकवि और भक्तिपूर्ण विशिष्ट पदावली के रचयिता थे। उनके रचे हुए अनेक पद उपलब्ध हैं, जो गौड़ीय वैष्णवों में श्रद्धा पूर्वक गाये जाते हैं। उनके प्रार्थना के पद तो बेजोड़ हैं। उनमें भक्त हृदय की आकुलता और उत्कट श्रद्धा-भावना व्यक्त हुई है। उनके शिष्यों में भी कई बड़े पद-रचयिता थे। नरोत्तमदास के ६४ पद 'पदकल्पतरु' में संकलित हैं। उनके

रस-कीर्तन की शैली तो प्रसिद्ध ही है। जब वे मधुर कंठ से पद-कीर्तन करते थे, तब भक्ति-भागीरथी की अमृत-धारा प्रवाहित होने लगती थी; जिसके रसास्वादन से भक्तों को कभी तृप्ति नहीं होती थी[1]।

उनके रचे हुए कई छोटे-छोटे ग्रंथ भी हैं, जिनमें गौड़ीय भक्ति-तत्व और भजन-पद्धति का सार निहित है। इनमें 'प्रेम भक्ति चंद्रिका' और 'प्रार्थना' विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. **प्रेम भक्ति चंद्रिका**—इसमें सरल भाषा द्वारा त्रिपदी छंदों में गौड़ीय भक्ति-साधना का मार्मिक कथन हुआ है। यह छोटी रचना है, किंतु वैष्णव भक्तों के हृदय का हार बनी हुई है। इसके अनेक छंद सूक्तियों के रूप में प्रचलित हैं।

२. **प्रार्थना**—इसमें प्रार्थना के पदों का संकलन है। यह रचना वैष्णव भक्तों में बड़ी लोकप्रिय है। वे लोग इसके पदों को कंठस्थ करते हैं। इन पदों का गायन नित्य कीर्तनों और धार्मिक उत्सवों में किया जाता है।

उक्त दोनों रचनाओं के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इनका हिंदी में भावानुवाद भी हो चुका है।

११. श्यामानंद

वे मेदनीपुर जिला के धरेंदा बहादुरपुर ग्राम के निवासी सद् गोप थे। उनका जन्म-संवत् अनिश्चित है, किंतु ऐसा अनुमान होता है कि वे सं० १५९१ में उत्पन्न हुए थे। वे नित्यानंद प्रभु के शिष्य गौरीदास पंडित के प्रशिष्य थे। उन्होंने जीव गोस्वामी से वैष्णव भक्ति-ग्रंथों की शिक्षा प्राप्त की थी। वे वृंदाबन में श्रीनिवास और नरोत्तमदास के साथी थे। वे उनके समान विद्वान तो नहीं थे, किंतु भक्ति-भावना में उनसे कम भी नहीं थे।

वे सं० १६३९ में जीव गोस्वामी के आदेशानुसार श्रीनिवास और नरोत्तमदास के साथ वैष्णव भक्ति-ग्रंथों के प्रचारार्थ बंग प्रदेश को वापिस चले

---

१. **नरोत्तम-कंठ-ध्वनि अमृतेर धार।**
जे पिये ताहार तृष्णा बाढ़े अनिवार॥

—नरोत्तम विलास, वि० ७

गये थे और सं० १६४० के खेतुरी उत्सव में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने मेदिनी-पुर उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्र में वैष्णव धर्म का प्रचार किया था। इस कार्य में उनके सुप्रसिद्ध शिष्य रसिकानंद से उन्हें बडी सहायता मिली थी।

उन्होंने कई छोटे-छोटे ग्रंथों की रचना की थी। उनके नाम भावमाला, उपासना-सार, अद्वैत-तत्व, गोवर्धनोपदेश-संप्रार्थना और गोवर्धन-स्तव कहे जाते हैं। उन्होंने बंगभाषा में अनेक पदों की भी रचना की थी। इनमें 'दुखी कृष्णदास', 'दीन-दुखी कृष्णदास' और 'दु:खिनी' की छाप मिलती है। इनके कुछ पदों में ब्रजभाषा का भी मिश्रण है।

१२. गोविंददास

वे बंग प्रदेश के तेलिया बुधरी ग्राम के निवासी थे। उनका जन्म सं० १५८७ में हुआ था। वे पहले शाक्त धर्मावलंबी थे, किंतु श्रीनिवासाचार्य के उपदेश से वैष्णव हो गये थे। वे उनके प्रधान शिष्यों में गिने जाते हैं।

उन्होंने सं० १६४० में खेतुरी के सुप्रसिद्ध उत्सव में कीर्तन किया था, जो वहाँ पर बहुत पसंद किया गया। उनका देहावसान सं० १६७० में हुआ था।

वे गौड़ीय वैष्णव पदावली के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उनके समस्त पद 'ब्रजबुलि' में रचे गये हैं, जिनकी भक्ति-भावना और रचना-माधुरी अनुपम है। उनके पदों ने बंगीय जनता में चैतन्य-मत की भक्ति का व्यापक प्रचार किया है। उनके रचे हुए पदों की संख्या बहुत अधिक है। उनके ४६० पद तो 'पद कल्पद्रुम' में ही संकलित हैं।

उन्होंने अपने पदों का एक संकलन 'गीतामृत' अथवा 'गीतावली' के, नाम से स्वयं किया था, किंतु यह आजकल अप्राप्य है।

१३. नारायण भट्ट

ब्रज की गौरव-वृद्धि करने वाले महात्माओं में नारायण भट्ट का सर्वोपरि महत्व है; किंतु हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका अत्यंत अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण वर्णन मिलता है। यहाँ तक कि उनका जन्म-संवत् भी अशुद्ध लिखा गया है[1]।

---

१. डा० ग्रियर्सन कृत 'मौडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान', पृ० ३० और 'मिश्रबंधु विनोद' पृ० ४०३ पर उनका जन्म संवत् १६२० लिखा गया है, जो सर्वथा भ्रमात्मक है।

नारायण भट्ट की सातवीं पीढ़ी में एक जानकीप्रसाद भट्ट (जन्म संवत् १७२२) हुए हैं। उन्होंने संस्कृत में 'श्री नारायणभट्ट चरितामृतम्' की रचना सं० १७७० के लगभग की थी। उक्त ग्रंथ में नारायण भट्ट का आद्योपांत जीवन-वृत्तांत अत्यंत विस्तार पूर्वक लिखा गया है। ग्रंथ के अंत में लेखक ने बतलाया है कि इसकी रचना उन्होंने अनेक ग्रंथों के अवलोकन के उपरांत की है और इसके वर्णन के संबंध में उन्हें कोई भ्रम अथवा संदेह नहीं है। इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि इसकी रचना में उस समय की प्रचलित किवदंतियों और अनुश्रुतियों का भी आधार लिया गया है, जिनमें कुछ बातें भ्रमात्मक हैं; फिर भी नारायण भट्ट के जीवन-वृत्तांत के लिए यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण है।

'श्री नारायण भट्ट चरितामृतम्' से ज्ञात होता है कि उनका जन्म सं० १५८८ की वैशाख शुक्ला १४ (नृसिंह चौदस) को दक्षिण के मदुरा नगर में हुआ था। वे भृगुवंशी दीक्षित ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम भास्कर भट्ट और माता का नाम यशोमती था। उनके बड़े भाई का नाम गोपाल भट्ट था। उनका घराना माध्व मतावलंबी कृष्णोपासक वैष्णव था।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा दक्षिण में हुई थी। वे इतने प्रतिभाशाली थे कि उन्होंने अल्पायु में ही यथेष्ट ज्ञानोपार्जन कर लिया था। वे बाल्यावस्था से ही कृष्ण-भक्त और ब्रज-वृंदाबन के अनुरागी थे। कहते हैं, उन्होंने १२ वर्ष की अल्यावस्था में ही अपने प्रथम ग्रंथ 'ब्रज प्रदीपिका' की रचना दक्षिण में की थी। इसके उपरांत वे ब्रज में निवास करने के लिए घर से चल दिये।

वे ढाई वर्ष तक अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए सं० १६०२ में ब्रज में पहुँचे। उन दिनों वृंदाबन, राधाकुंड आदि ब्रज के पुण्य स्थलों में अनेक गौड़ीय भक्तों का निवास था। वे चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से भक्ति-ग्रंथों की रचना, कृष्ण-भक्ति और हरि-कीर्तन का प्रचार तथा ब्रज के लुप्त तीर्थों के उद्धार का कार्य कर रहे थे। ये सब कार्य कालांतर में नारायण भट्ट द्वारा पूर्णता को प्राप्त हुए। चैतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद गदाधर पंडित गोस्वामी के शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी थे। वे सनातन गोस्वामी के आदेशानुसार राधाकुंड में श्री मदनमोहन जी की सेवा करते थे। नारायण भट्ट ने उक्त ब्रह्मचारी जी से दीक्षा ली और राधाकुंड के गौड़ीय भक्तों के साथ निवास किया। उनका ब्रजागमन इस पुण्य भूमि के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। उन्होंने जीवन पर्यंत विविध भाँति से ब्रज की गौरव-वृद्धि का यत्न किया और उसमें सफलता प्राप्त की।

उनके महत्वपूर्ण कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) श्रीमद्भागवत और वाराह पुराणादि में श्रीकृष्ण-लीला के जिन स्थलों का उल्लेख मिलता है, उन्हें काल के प्रवाह से लोग भूल गये थे। उन्होंने अनुसंधान पूर्वक उन्हें पुन: प्रकट किया। उनके इस महत्वपूर्ण कार्य का उल्लेख नाभाजी ने 'भक्तमाल' में इस प्रकार किया है—

गोप्य स्थल मथुरा-मंडल, जिते बाराह बखाने ।
ते किये नारायण प्रगट, प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने ।।

(२) ब्रज के बन, उपबन, तीर्थ और देवी-देवताओं की महिमा तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचारार्थ उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की।

(३) ब्रज के आध्यात्मिक और भौतिक रूप के प्रदर्शन के लिए तथा वहाँ के वन-वैभव का आनंद प्रदान करने के लिए उन्होने 'ब्रज-यात्रा' और 'बन-यात्रा' का प्रचार किया। इससे प्रति वर्ष देश के सहस्रों नर-नारियों को ब्रज के समग्र रूप के दर्शन करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

(४) भावुक भक्तों को राधा-कृष्ण की सरस लीलाओं से आनंदित करने के लिए उन्होंने 'लीलानुकरण' के रूप में 'रास' का प्रचार किया और ब्रज के अनेक स्थानों में रास-मंडलों का निर्माण कराया। इससे ब्रज के गायन, वादन, नृत्य और नाट्य विषयक प्राचीन कलाओं का पुनरुद्धार हुआ। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने इस संबंध में लिखा है—

भट्ट श्री नारायण जू, भये ब्रज-परायन,
जाँय जहाँ गायें, तहाँ ब्रज करि ध्याये हैं ।×
ठौर-ठौर रास के विलास लै प्रकास किये,
जिये यों रसिक जन, कोटि सुख पाये हैं ।।×

राधाकुंड नामक स्थान में १२ वर्ष तक निवास करने के अनंतर वे ब्रज के ऊँचेगाँव में चले गये। वहाँ उन्होने गृहस्थ जीवन आरंभ किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम दामोदर भट्ट था, जिनका जन्म सं० १६१५ में हुआ था। नारायण भट्ट ने ऊँचेगाँव में बलदेव जी और बरसाने में लाड़िलीलाल जी की सेवा प्रचलित की थी, जो अभी तक उनके उत्तराधिकारियों और शिष्यों के अधिकार में है। उनके शिष्यों में नारायणदास श्रोत्रिय मुख्य थे। उनके वंशज बरसाने के गोस्वामी हैं, जिनको लाड़िली जी के मंदिर की सेवा का अधिकार प्राप्त है।

उन्होंने पूर्णायु प्राप्त की थी। उनका देहावसान १७वीं शताब्दी के अंत में भाद्रपद शुक्ला १२ (बामन द्वादशी) को ऊँचेगाँव में हुआ था, जहाँ उनकी समाधि बनी हुई है। इस समाधि पर प्रति वर्ष चैत्र कृष्णा ५ को बरसाना के गोस्वामियों द्वारा 'समाज' का आयोजन होता है। उस अवसर पर गायक गण भट्ट जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

'श्री नारायण भट्ट चरितामृतम्' से ज्ञात होता है कि उन्होंने ६० ग्रंथों की रचना की थी। १ ग्रंथ दक्षिण में, ७ ग्रंथ राधाकुड में और ५२ ग्रंथ ऊँचेगाँव में रचे गये थे। दक्षिण में रचा हुआ ग्रंथ 'ब्रज प्रदीपिका' है। राधाकुड में रचे हुए ग्रंथ ब्रज-भक्ति-विलास, ब्रज दीपिका, ब्रजोत्सव चंद्रिका, ब्रज महोदधि, ब्रजोत्सवाह्लादिनी, वृहत ब्रज गुणोत्सव तथा ब्रज प्रकाश हैं। ऊँचेगाँव में रचे हुए ग्रंथों में से भक्तभूषण संदर्भ, भक्ति विवेक, भक्तिरस तरंगिणी, साधन दीपिका, भागवत की रसिकाह्लादिनी टीका और प्रेमांकुर नाटक प्रमुख हैं।

ये समस्त ग्रंथ संस्कृत भाषा में हैं। इनमें ब्रज की महिमा और उनके पुण्य स्थलों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है, तथा वैष्णव भक्ति की शास्त्रीय विवेचना और सरस व्याख्या की गई है। इसमें कई ग्रंथ वृहत आकार के हैं। उनके बड़े ग्रंथों में 'ब्रज भक्ति विलास', 'वृहत् ब्रज गुणोत्सव' और भागवत की रसिकाह्लादिनी टीका विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उनके प्रमुख ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. **ब्रज भक्ति विलास**—इस वृहत् ग्रंथ में १३ अध्याय हैं, जिनमें ब्रज के समस्त बन, उपबन, तीर्थ-स्थल, लीला-स्थल और देवी-देवताओं का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इसकी रचना सं० १६०९ में राधाकुंड के तट पर हुई थी। इसे हिंदी टीका सहित बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है।

२. **ब्रजोत्सव चंद्रिका**—इसमें ब्रज के उत्सवों का विस्तृत वर्णन है। इसकी रचना भी राधाकुंड के तट पर सं० १६१२ में हुई थी। इसकी प्राचीन हस्त प्रति बरसाना में है।

३. **ब्रजोत्सवाह्लादिनी**—इस वृहत् ग्रंथ का उल्लेख ब्रजभक्ति विलास में हुआ है। इसमें तिथियों बार ब्रज के उत्सवों का सांगोपांग वर्णन है। इसकी भी हस्त प्रति बरसाना में सुरक्षित है।

४. **भक्तभूषण संदर्भ**—इसमें जीव तत्व, जगत तत्व और ईश्वर तत्व का निर्णय किया गया है।

५. **वृहत् ब्रज गुणोत्सव**—ब्रज भक्ति विलास में इस ग्रंथ का संकेत मिलता है। उससे ज्ञात होता है कि यह २६ हजार श्लोकों के वृहत् आकार का ग्रंथ है, जिसमें ब्रज-यात्रा के समस्त स्थानों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

६. **भक्ति-विवेक**—इसमें नाम श्रेष्ठ निर्णय, धाम श्रेष्ठ निर्णय और भक्त श्रेष्ठ निर्णय नामक तीन प्रकरण हैं; जिनमें क्रमश: श्रीकृष्ण की नाम-महिमा, ब्रज का श्रेष्ठत्व और ब्रजवासियों की महिमा वर्णित है।

७. **भक्ति रस तरंगिणी**—इसमें 'उल्लास' नामक ५ अध्याय हैं। द्वादश रसों में मुख्य मधुर रस का इसमें सांगोपांग वर्णन हुआ है। इसकी रचना में रूप गोस्वामी कृत 'भक्ति-रसामृतसिंधु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' का आधार लिया गया है। इसे हिंदी टीका सहित बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है।

८. **साधन-दीपिका**—इसमें साधनरूपा भक्ति का विवेचन और वैष्णवों के विधि-प्रतिषेध तथा व्रतादि का निर्णय है।

९. **रसिकाह्लादिनी**—यह श्रीमद्भागवत की टीका है। इसकी संपूर्ण प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, किंतु दशमस्कंध के आरंभ से रास पंचाध्यायी तक की प्रति मिल चुकी है।

१०. **प्रेमांकुर नाटक**—'श्री नारायण भट्ट चरितामृतम्' में इस नाटक का नामोल्लेख और संक्षिप्त परिचय मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का नाटक रूप में कथन किया गया है। इसकी कोई प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

उक्त ग्रंथों से भट्ट जी का प्रकांड पांडित्य और ब्रज के प्रति उनका उत्कट अनुराग प्रकट होता है। ये ग्रंथ उस समय लिखे गये थे, जब ब्रज के संबंध में लोगों को बहुत कम जानकारी थी। भट्ट जी ने इन्हें लिखने में कितना परिश्रम किया होगा, इसके विचार मात्र से ही उनके प्रति आदर से नत-मस्तक होना पड़ता है। इतना समय हो जाने पर भी ब्रज के परिचयात्मक ग्रंथों में अब भी इनका सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उनकी समस्त रचनाएँ संस्कृत में हैं। कहते हैं, उन्होंने ब्रजभाषा में भी कुछ रचनाएँ की थीं; किंतु उनकी कोई भी प्रामाणिक कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

ब्रजभाषा के अप्रकाशित पदों का संकलन करते समय हमें नारायण भट्ट की छाप का निम्न लिखित पद प्राप्त हुआ है—

आजु बरसाने होत बधाई ।
गोपी-ग्वाल फिरत आनंदे, गुन–निधि कन्या जाई ।।
भादौं माँझ उजियारी आठैं, गुरु–अनुराधा पाई ।
सिंह लग्न, सौभाग्य योग, नर भद्रा वई पराई ।।
बाजत तूर–मृदंग–झालरी, दुंदुभि अरु सहनाई ।
गावंति गीत जुबति मधुरे सुर, गृह-गृह तें उठि धाई ।।
एक समै ऋषि नारद आए, बिटिया पाँय लगाई ।
देव–देवऋषि मोह् भयौ मन, परम सुरति बिसराई ।।
इनके रूप–गुननि की महिमा, तीन लोक पर छाई ।
तहाँ बसैं लक्ष्मी–नारायन, सुन–नर सहित सहाई ।।
इनके गुन अनंत हैं औरौं, कहूँ तौ कहे न जाई ।
'नारायणभट्ट' स्यामा-बस कीने, स्याम सदा सुखदाई ।।

लाड़िली जी की बधाई के इस पद को नारायण भट्ट कृत मानने का कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता है । पद-रचयिता के नाम के साथ 'भट्ट' शब्द भरती का मालूम होता है, अतः यह पद नारायण भट्ट का नहीं, बल्कि इसी नाम के किसी अन्य कवि का हो सकता है । इससे यही सिद्ध होता है कि चैतन्य देव के अनुगामी गौड़ीय महात्माओं की भाँति नारायण भट्ट की रचनाएँ भी संस्कृत में ही हुई हैं ।

१४. वीरचंद्र

वे चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख सहकारी नित्यानंद प्रभु के पुत्र थे । उनका जन्म सं० १५९२ में नित्यानंद जी की बड़ी पत्नी वसुधादेवी के गर्भ से हुआ था । नित्यानंद जी के उपरांत वीरचंद्र और उनकी छोटी माता जाह्नवा देवी ने गौड़ीय भक्तों का नेतृत्व किया था । उनके कारण बंग प्रदेश की साधारण जनता में चैतन्य-मत का विशेष प्रचार हुआ था ।

वीरचंद्र जी के कोई औरस संतान नहीं हुई । उनके द्वारा पालित तीन पुत्र ही उनके उत्तराधिकारी हुए थे । श्रीनिवासाचार्य के पुत्र गतिगोविंद ने स्वरचित 'वीर रत्नावली' में वीरचंद्र की महिमा का वर्णन किया है ।

१५. विश्वनाथ चक्रवर्ती

उनका जन्म सं० १७०३ में[1] मुर्शिदाबाद जिला के देवग्राम नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता का नाम नारायण चक्रवर्ती था। उनकी आरंभिक शिक्षा उनके जन्म-स्थान में हुई। बाद में उन्होंने भक्ति-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान कृष्णचरण चक्रवर्ती से सैदाबाद में वैष्णव भक्ति-ग्रंथों की शिक्षा प्राप्त की थी। वे विवाहित होकर कुछ समय तक गृहस्थ भी रहे, किंतु सांसारिक मोह-ममता में उनका मन नहीं रमा। वे विरक्त होकर घर से चल दिये। वैष्णवी दीक्षा के उपरांत उनका नाम 'हरि वल्लभ' हुआ। उन्होंने अपनी काव्य-रचनाएँ इसी नाम से की हैं; किंतु वे विश्वनाथ चक्रवर्ती के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

विरक्त होने पर वे वृंदावन में जाकर निवास करने लगे। वे अपने समय के प्रकांड विद्वान और दार्शनिक, परम भक्त और रसवेत्ता तथा महान् कवि और ग्रंथकार थे। वे वृंदाबन के गौड़ीय विद्वानों में अग्रणी थे। उनके समय में रूप गोस्वामी आदि वैष्णव विद्वानों के ग्रंथ अनेक लोगों को दुर्बोध से ज्ञात होने लगे थे, अतः उन्होंने उन ग्रंथों की सरल टीकाएँ लिखीं और उनके सुबोध संस्करण प्रस्तुत किये। उन्होंने गीता, भागवत, गोपाल तापिनी और ब्रह्म संहिता आदि प्राचीन धर्म ग्रंथों की रसमयी व्याख्या की। इस प्रकार उन्होंने प्राचीन शास्त्रों और वैष्णव आचार्यों के सिद्धांत ग्रंथों के पठन-पाठन और प्रचार का नया मार्ग दिखलाया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना भी की थी। अपनी महान् साहित्यिक कृतियों के कारण उनको रूप गोस्वामी का अवतार माना जाता है।

जीव गोस्वामी के बाद गौड़ीय वैष्णवों के संगठन में शिथिलता और पांडित्य में न्यूनता आने लगी थी। उनकी परकीया भक्ति आदि विशिष्ट मान्यताओं के संबंध में भी तत्कालीन विद्वानों ने अनेक विवाद उपस्थित कर दिये थे। ऐसी स्थिति में विश्वनाथ चक्रवर्ती के नेतृत्व में, उनके प्रगाढ़ पांडित्य और महान् व्यक्तित्व के कारण, गौड़ीय वैष्णव परंपरा को पुनः गौरव प्राप्त हुआ।

उन्होंने वृंदावन में श्रीगोकुलानंद जी ठाकुर की सेवा प्रकाशित की थी। वे वृंदाबन और राधाकुंड में निवास करते थे। अपनी वृद्धावस्था में वे अधिकतर

---

१. 'वृंदाबन-कथा' के अनुसार उनका जन्म सं० १६८५ में और देहांत सं० १७६५ में हुआ था।

राधाकुंड में ही रहा करते थे। वे दीर्घजीवी हुए। उनका देहावसान सं० १८११ की माघ शु० ५ को राधाकुंड में हुआ था। उनकी समाधि वृंदाबन में है।

उन्होंने अनेक विद्वत्तापूर्ण मौलिक एवं टीका ग्रंथों की रचना की है। उनकी प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. कृष्ण भावनामृत—इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण की अष्ट कालीन दैनंदिनी लीलाओं का सरस वर्णन है। इसमें २० सर्ग और १३२६ श्लोक हैं। इसकी रचना सं० १७३६ में हुई थी।

२. माधुर्य कादम्बिनी—यह माधुर्य भक्ति पूर्ण मनोहर रचना है। इसमें ८ परिच्छेद हैं। यह प्रेमी रसिक भक्तों को अति प्रिय है।

३. स्तवामृत लहरी—इसमें अष्टकादि २८ स्तवों का संकलन है। इनका स्मरण और पाठ भक्तजन श्रद्धापूर्वक करते हैं।

४. चमत्कार चंद्रिका—इसमें श्रीकृष्ण द्वारा विविध रूप धारण कर राधा से मिलने का सरस वर्णन है।

५. क्षणदा गीति चिन्तामणि—यह बंगभाषा का प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ है, जिसमें चक्रवर्ती जी के भी अनेक गीत संकलित हैं। इन गीतों में उनका उपनाम 'हरिवल्लभ' दिया हुआ है। इसमें दैनिक क्रम से श्रीकृष्ण की अष्टकालिक लीला का वर्णन है।

इनके अतिरिक्त गौरांग लीलामृत, ऐश्वर्य कादंबिनी, राग वर्त्म चंद्रिका, और प्रेम सम्पुट भी उनकी रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने रूप गोस्वामी कृत 'भक्ति रसामृतसिंधु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' के सार रूप 'भक्ति रसामृत सिंधु बिंदु' और 'उज्ज्वल नीलमणि किरण'; सनातन गोस्वामी के 'वृहत् भागवतामृत' का सार 'भागवतामृत कण' तथा कवि कर्णपूर कृत सुप्रसिद्ध 'आनंद वृंदाबन चम्पू' के आधार पर 'ब्रज रीति चिन्तामणि' की रचना की है।

उन्होंने समस्त भागवत की 'सारार्थ दर्शिनी', गीता की 'सारार्थवर्षिणी', गोपाल तापिनी की 'भक्त हर्षिणी', भक्ति रसामृत सिंधु की 'भक्तिसार प्रदर्शिनी', उज्ज्वल नीलमणि की 'आनंद चंद्रिका', आनंद वृंदाबन चम्पू की 'सुख वर्त्तिनी', अलंकार कौस्तुभ की 'सुबोधिनी', दानकेलि कौमुदी की 'महती' तथा ब्रह्मसंहिता, हंसदूत, प्रेमभक्ति चंद्रिका और चैतन्य चरितामृत की सुप्रसिद्ध टीकाएँ की हैं। भागवत की 'सारार्थ दर्शिनी' टीका की रचना सं० १७६१ में हुई थी। विश्वनाथ चक्रवर्ती के ग्रंथ भक्ति और साहित्य दोनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

१६. बलदेव विद्याभूषण

वे उत्कल प्रदेशांतर्गत रेमुना के निकटवर्ती एक ग्राम के प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनका निश्चित जन्म-संवत् अज्ञात है। इतना निश्चय है कि वे विक्रम की १८वीं शती के पूर्वार्ध में विद्यमान थे। उनका घराना वैष्णव धर्मावलंबी नहीं था, किंतु वे स्वयं वैष्णव हो गये थे। उन्होंने श्यामानंद जी की शिष्य-परंपरा में राधादामोदर पंडित से दीक्षा लेकर उन्हीं से अपनी आरंभिक शिक्षा भी प्राप्त की थी।

उन्होंने आरंभ से ही विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया था। वे शीघ्र ही व्याकरण, अलंकार, न्याय, वेदांतादि के धुरंधर विद्वान हो गये। उन्होंने वैष्णव भक्ति-ग्रंथों का विधिवत् अध्ययन कर श्रीकृष्ण के लीला-धाम वृंदाबन जाने का विचार किया। वे नीलाचल और नवद्वीप के दर्शन करते हुए वृंदाबन पहुँचे। उस समय वृंदाबन के गौड़ीय भक्तों के नेता विश्वनाथ चक्रवर्ती थे। उनके प्रकांड पांडित्य और अद्वितीय विद्वत्ता की बड़ी ख्याति थी। वे तब तक वृद्ध हो चुके थे और ब्रज के राधाकुंड नामक तीर्थ-स्थान में निवास करते थे। बलदेव जी ने चक्रवर्ती महोदय से वैष्णव भक्ति-तत्व और रस-तत्व की विशेष शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने चक्रवर्ती जी के विकसित परकीयावाद में भी असाधारण योग्यता प्रदर्शित की और अनेक अवसरों पर विद्वत्-समाज में उसकी स्थापना की। इससे वे ब्रज-वृंदाबन के गौड़ीय भक्तों में सबसे अधिक विद्वान और विश्वनाथ चक्रवर्ती के योग्यतम उत्तराधिकारी समझे जाने लगे।

चैतन्य देव के मतानुसार श्रीमद्भागवत ही ब्रह्मसूत्र का सर्वोत्तम भाष्य है, इसीलिए स्वयं चैतन्य ने अथवा उनके किसी सहकारी विद्वान ने अन्य धर्माचार्यों की भाँति अपनी मान्यताओं के प्रतिपादन के लिए पृथक् भाष्य करने की आवश्यकता नहीं समझी थी। उस समय वृंदाबन जयपुर राज्य के प्रभाव क्षेत्र में था, और तत्कालीन जयपुर-नरेश महाराजा जयसिंह द्वितीय एक धर्म-प्राण राजा थे। कुछ पंडितों ने उन्हें चैतन्य मत के विरुद्ध इसलिए भड़का दिया कि उनके विचार से उक्त मत, विशेषकर उसकी परकीयावाद संबंधी मान्यता, अवैदिक थी।

महाराजा जयसिंह ने इसका निर्णय कराने के लिए जयपुर में एक वैष्णव सम्मेलन का आयोजन किया और उसमें चैतन्य मत का प्रतिनिधित्व करने के लिए विश्वनाथ चक्रवर्ती को निमंत्रण भेजा। चक्रवर्ती महोदय वृद्ध होने के कारण स्वयं नहीं जा सके, किंतु उन्होंने बलदेव जी को वहाँ भेज दिया।

उन्होंने उस सम्मेलन में बड़ी योग्यता पूर्वक चैतन्य मत का समर्थन किया और उसकी परकीयावाद विषयक मान्यता को भी वेदानुकूल प्रतिपादित किया। अंत में समस्त वैष्णवों ने चैतन्य मत को इस शर्त पर स्वीकार किया कि उसके समर्थन में वेदांत-भाष्य उपस्थित किया जाय। इसके लिए बलदेव ने अपने सुप्रसिद्ध ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना की, जो 'गोविंद भाष्य' कहलाता है। अपनी विलक्षण विद्वत्ता के कारण वे 'विद्याभूषण' उपाधि से विभूषित किये गये। उनका हरि संबंधी नाम गोविंददास था, किंतु वे बलदेव विद्याभूषण के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचनाएँ तथा प्राचीन ग्रंथों की टीकाएँ की थीं। विश्वनाथ चक्रवर्ती की तरह उनकी रचनाएँ भी भक्ति और साहित्य दोनों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। उनके प्रमुख ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. गोविंद भाष्य—यह चैतन्य मतानुसार ब्रह्मसूत्र का एक मात्र भाष्य है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु और उनके पार्षद गोस्वामियों की मान्यताओं को वेदांत के अनुकूल प्रतिपादित किया गया है। चैतन्य मत में इस भाष्य का बड़ा आदर है। इसकी रचना सं० १७७५ से १८०० तक के किसी वर्ष में हुई थी। इसे हिंदी टीका सहित बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है।

२. सिद्धांत रत्न—इसकी रचना गोविंद भाष्य की पृष्ठभूमि के रूप में हुई है। इसीलिए यह 'भाष्य पीठक' भी कहलाता है। इसमें ८ अध्याय हैं। इसके अध्ययन से गोविंद भाष्य के समझने में सुगमता होती है।

३. प्रमेय रत्नावली—इस पुस्तिका में श्रीमध्वाचार्य जी के उन नौ प्रमेयों का संक्षिप्त विवेचन है, जिनका प्रतिपादन गोविंद भाष्य में विस्तार पूर्वक किया गया है। इसकी संस्कृत टीका विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य कृष्णदेव भट्टाचार्य ने 'कांतिमाला' नाम से की है। इसकी हिंदी टीका भी वृंदावन से प्रकाशित हो चुकी है।

४. साहित्य कौमुदी—यह साहित्य शास्त्र का विद्वतापूर्ण ग्रंथ है। इसमें साहित्य के अंगोपांगों का विस्तार पूर्वक विवेचन है। इसके उदाहरण भक्ति ग्रंथों से लिये गये हैं, अतः यह भक्तों और काव्य-प्रेमियों को समान रूप से प्रिय है।

इनके अतिरिक्त वेदांत-स्यमंतक, काव्य-कौस्तुभ, छंद कौस्तुभ भाष्य, सिद्धांत दर्पण, गीता भाष्य, भागवत टीका, उपनिषद टीका, गोपाल तापिनी टीका, षट् संदर्भ टीका, लघु भागवतामृत टीका, नाटक चंद्रिका टीका, स्तव माला टीका और श्यामानंद शतक की टीका भी उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

पंचम परिच्छेद

चैतन्य मत का परिचय

★

१. पृष्ठ-भूमि

बंगाल की राजनैतिक और धार्मिक स्थिति—

पूर्वी भारत का महत्वपूर्ण प्रदेश, जिसे बंगाल कहते हैं, पहिले कई भागों में विभाजित था। उसका उत्तरी भाग गौड़, पूर्वी भाग बंग और पश्चिमी भाग राढ़ कहलाता था। बंग के अतिरिक्त उसके शेष भाग को प्राय: गौड़ भी कहते थे। कालांतर में उस समस्त प्रदेश को बंग और उसकी भाषा को बंग-भाषा कहा जाने लगा। मुसलमानी शासन में इस प्रदेश का नाम बंगाल अथवा बंगाला प्रचलित हुआ और उसकी भाषा बँगला अथवा बंगाली कही जाने लगी। आजकल इसका पूर्वी भाग पाकिस्तान में और पश्चिमी भाग भारत में है। दोनों भागों की एक-सी भाषा बँगला अथवा बंगाली है।

बंगाल और उसके निकटवर्ती बिहार, उड़ीसा तथा असम के प्रदेशों में वैष्णव भक्ति-तत्व का प्रचार होने से पहिले बौद्ध, जैन, शैव और शाक्त धर्मों का प्रभाव था। बौद्ध और जैन धर्मों का उदय और विकास ही उस भाग में हुआ था; अतः वे दोनों, विशेषतया बौद्ध धर्म; कई शताब्दियों तक बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम की जनता पर छाये रहे।

बौद्ध धर्म का आरंभिक रूप सदाचार और नीति प्रधान होते हुए भी कठोर व्यक्तिवादी था, इसलिए वह 'हीनयान' कहलाता था। उसके स्थान पर बौद्ध धर्म का जो समन्वयात्मक और समष्टिवादी रूप प्रचलित हुआ, उसे 'महा-यान' कहा जाने लगा। स्वतंत्रतावादी और परंपरा विरोधी होने के कारण कालांतर में महायान बाम-मार्गी तत्वों से विकृत होने लगा, जिसके फलस्वरूप उसमें से मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान आदि कई पंथों का उदय हुआ। बौद्ध धर्म का प्रवर्त्तन सदाचरण के प्रचार के लिए हुआ था, किंतु उसका शुद्ध नैतिक स्वरूप वज्रयान द्वारा बाम मार्ग और तंत्र पद्धति को ग्रहण करने से विकृत और वीभत्स हो गया। वज्रयान की तांत्रिक साधना अत्यंत भौतिकवादी थी, जिसके कारण वह काम-वासना और इंद्रिय-लिप्सा की पूर्ति का साधन मात्र रह गया। इससे बौद्ध धर्म का घोर नैतिक पतन होने लगा।

बौद्ध धर्म का विकृत रूप होने से जैन, शैव और शाक्त धर्मों के प्रति जनता की आस्था बढ़ गई। उस युग में वाम-मार्गी तांत्रिक उपासना का ऐसा जादू फ़ैला था कि वह उक्त धर्मों को भी विकृत करने लगा। जैन धर्म के कठोर अनुशासन से उसके शुद्ध रूप की किसी प्रकार रक्षा हो गई, चाहें वह सिमट कर जनता के एक सीमित वर्ग में ही रह गया; किंतु शैव और शाक्त धर्म वाम-मार्गी तांत्रिक भ्रष्टाचार के शिकार बन गये।

जब वज्रयान, शैव और शाक्त धर्मों का पतन चरम-सीमा पर पहुँच गया, तब उसकी प्रबल प्रतिक्रिया हुई। वज्रयान में से सहजयान का उदय हुआ। इस पंथ के 'सिद्धों' ने वज्रयान के मूल सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए भी उसकी पारभाषिक शब्दावली की नई बुद्धिपरक व्याख्या की। सहजयान के चौरासी सिद्धों में सरहपा विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने काम-वासना मूलक साधना और उससे उत्पन्न होने वाले भ्रष्टाचार की कटु आलोचना की है। शैव और शाक्त धर्मों में से जो शुद्धिवादी पंथ प्रचलित हुए, उनमें 'नाथ पंथ' विशेष उल्लेखनीय है। इस पंथ के प्रभावशाली गुरु गोरखनाथ ने शैव और शाक्त धर्मों की घोर विलासिता और कामुकता को दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया था।

विक्रम की आठवीं शती के लगभग बंगाल में पालवंशी राजाओं का शासन था। पाल राज्यवंश बौद्ध धर्मावलंबी था। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के प्रबल प्रचार से जो बौद्ध धर्म भारत के अन्य भागों से निष्काषित हुआ था, उसे बंगाल और उसके निकटवर्ती प्रदेशों में शरण मिली थी। पाल राजाओं से बौद्ध धर्म को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला, जिससे उसकी गिरती हुई स्थिति कुछ समय के लिए सँभल गई। पालों के पश्चात् बंगाल में वर्म और सेन वंशी राजाओं का शासन हुआ। उनके समय में बौद्ध धर्म वहाँ से भी लुप्त-प्राय हो गया।

बौद्ध धर्म के अनंतर बंगाल में जिस धर्म का विशेष प्रचार हुआ, वह प्रधानतया शैव आगमों के आधार पर निर्मित शाक्त धर्म का एक विशिष्ट रूप था। शैव और शाक्त धर्मों में पारस्परिक घनिष्टता है। शैवों के उपास्य देव शिव की पत्नी शक्ति रूपा दुर्गा है, जो शाक्तों की आराध्या देवी है। शिव अपने शुद्ध रूप में निष्क्रिय हैं। उनकी क्रियात्मकता का आधार शक्ति है, जो शिव की कृपा-मोक्षादिक समस्त कार्यों को संपन्न करती है। इसलिए शक्ति का महत्व शिव से भी अधिक माना गया है। शाक्त धर्म का अधिक प्रचार होने का शायद यह कारण भी है।

चैतन्य महाप्रभु के जन्म-समय तक प्राय: समस्त बंगाल शाक्त धर्म में आस्था रखता था। वहाँ के निवासी शाक्ताचार के अनुसार मद्य-मांस का उपयोग करते हुए विविध देवियों की उपासना करते थे। जन-साधारण में चंडी, मनसा और वाशुली-विषहरी नामक लोक-देवियों की पूजा प्रचलित थी। वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' से ज्ञात होता है कि बंगाल की साधारण जनता रात्रि-जागरण पूर्वक मंगल चंडी के गायन को ही एकमात्र धर्म-कर्म मानती थी। वहाँ के निवासी मनसा देवी की मूर्ति बना कर उसकी पूजा में दंभ पूर्वक प्रचुर धन-व्यय करते थे। वे लोग विविध उपहारों द्वारा वाशुलीदेवी की और मद्य-मांस द्वारा यक्ष की पूजा करते थे[1]। वहाँ पर ज्ञान मार्ग का फिर भी कुछ प्रचार था; किंतु भक्ति मार्ग के अनुयायी तो बहुत कम संख्या में थे। वैष्णव धर्म और कृष्ण-भक्ति का प्रचार नाम मात्र को था।

विक्रम की १२वीं शती में बंगाल सेन वंशी राजाओं के शासन में था। उसी समय से वहाँ पर वैष्णव धर्म का थोड़ा-बहुत प्रचार होने लगा। सेन वंश का मूल निवास दक्षिण का कर्णाटक प्रदेश है। वहाँ से जाकर वे लोग बंगाल के अधिपति हुए थे। दक्षिण में उस समय वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान की प्रबल धारा प्रवाहित हो रही थी। उसकी लहरें उत्तर की ओर भी बराबर बढ़ रही थीं। बहुत संभव है, इस प्रकार की लहर सेन वंशी राजाओं के साथ ही साथ बंगाल में पहुँची हो। सेन वंशी राजा विद्या और साहित्य के प्रेमी थे। वे स्वयं विद्वान और विद्वानों के आश्रय दाता थे। इस वंश का अंतिम राजा लक्ष्मणसेन था। उसका जन्म-संवत् ११७५ माना जाता है। उसके दरबार में अनेक विद्वान, पंडित और कवि रहते थे। आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य, धोयी कविराज, शरण कवि और उमापति धर जैसे सरस्वती-साधकों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध रससिद्ध कवि जयदेव भी लक्ष्मण सेन की राज्य-सभा के रत्न थे।

---

१. धर्म-कर्म लोक सभे एइ मात्र जाने।
मंगल चंडीर गीते करे जागरणे ॥६६॥
दम्भ करि बिषहरि पूजे कोन जने।
पुत्तलि करये केहो दिया बहु धने ॥६७॥
वाशुलि पूजये केहो नाना उपहारे।
मद्य मांस दिया केहो यक्ष पूजा करे ॥८६॥
—चैतन्य भागवत, आदि खंड, २ अध्याय

उसके समय में भारतवर्ष नव निर्मित यवन शक्ति से आक्रांत हो रहा था। यवन लोग पंजाब के मार्ग से आकर दिल्ली को हस्तगत कर चुके थे। उस समय कुतुबुद्दीन एबक दिल्ली का शासक था। उसने भीमदेव को पराजित कर दिल्ली से गुजरात तक का बहुत-सा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था। कुतुबुद्दीन के सेनापति इख्तियारुद्दीन ने सं० १२५३ में बिहार पर और संवत् १२५७ में बंगाल पर आक्रमण किया था। उसके फल स्वरूप लक्ष्मण सेन पराजित हुआ और उस प्रदेश के हिंदू राजाओं का परंपरागत राजवंश सदा के लिए समाप्त हो गया।

वैष्णव धर्म और कृष्ण-भक्ति का प्रचार—

लक्ष्मण सेन के शासन-काल में श्री जयदेव जी द्वारा 'गीत गोविंद' की रचना होने से यह समझा जा सकता है कि उस समय बंगाल में वैष्णव धर्म और राधा-कृष्ण के प्रेमीगण विद्यमान थे। उनकी संख्या निश्चय ही बहुत कम होगी, क्यों कि चैतन्य महाप्रभु के समय में भी वे लोग शाक्त धर्मावलंबियों की तुलना में आटा में नमक बराबर ही थे। अधिकांश लोग कृष्ण-भक्ति से रहित थे। वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' में इसलिए दुःख प्रकट किया गया है कि उस समय वहाँ के निवासी "कृष्ण के नाम और उनकी भक्ति से शून्य है[1]। कहने से भी कोई कृष्ण का नाम नहीं लेता है[2]। सब संसार व्यवहार रस में मत्त हो रहा है। कृष्ण-पूजा और कृष्ण-भक्ति से कोई भी प्रेम नहीं करता है[3]। निरंतर होने वाले व्यर्थ के नृत्य, गीत और वाद्य के कोलाहल में कोई भी परम मंगलकारी कृष्ण के नाम को नहीं सुनता है[4]।"

बंगाल में वैष्णव धर्म और कृष्ण-भक्ति का प्रचार सर्व प्रथम किस वैष्णव संप्रदाय द्वारा हुआ, यह निशचय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। बंगाल से पहिले उड़ीसा वैष्णव धर्म के प्रभाव-क्षेत्र में आया था। वहाँ पर सर्वप्रथम

---

१. कृष्ण नाम भक्ति शून्य सकल संसार ॥६५॥

२. वलि लेओ केहो नाहि लय कृष्ण-नाम ॥७७॥

३. सकल संसार मत्त व्यवहार रसे।
कृष्ण–पूजा, कृष्ण–भक्ति कारो नाहि वासे ॥८८॥

४. निरवधि नृत्य–गीत–वाद्य कोलाहले।
ना शुने कृष्णेर नाम परम मंगले ॥९०॥

—आदि खंड, २ अध्याय

विष्णु स्वामी संप्रदाय का और फिर अन्य संप्रदायों का प्रचार हुआ। उड़ीसा के भुवनेश्वर में अनंत-वासुदेव (बलराम-कृष्ण) का एक प्राचीन मंदिर है, जिसके निर्माण का समय ११वीं शती का आरंभिक काल कहा जाता है। पुरी के प्रसिद्ध देवता श्री जगन्नाथ जी भी प्रायः उसी समय से कृष्ण-रूप में पूजित होने लगे थे। बंगाल में वैष्णव धर्म और कृष्ण-भक्ति के प्रचार का आरंभ निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य के संप्रदायों द्वारा हुआ। उन्होंने वहाँ पर वैष्णव धर्म और कृष्ण-भक्ति का बीजारोपण किया, किंतु शाक्त धर्म से प्रभावित बंगाल की भूमि इनके लिए आरंभ में उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई। वहाँ पर बहुत कम लोग कृष्ण-भक्ति की ओर प्रेरित हुए। वहाँ के प्रेमोपासक विविध पंथों के कवियों और गायकों ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं के गीत तो गाये; किंतु वे न तो कृष्ण-भक्त थे और न किसी वैष्णव संप्रदाय में आस्था रखते थे। बंगाल में राधा-कृष्ण की सरस लीलाओं के सर्वप्रथम गायक महाकवि जयदेव थे। उनके गीत-काव्य से अनेक कृष्ण-भक्त कवियों को प्रेरणा मिली है; किंतु स्वयं उनके वैष्णव भक्त होने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है। मालाधर वसु, चंडीदास और यशोराजखाँ ने प्राचीन बंगला भाषा में तथा विद्यापति ने मैथिली में चैतन्य महाप्रभु से पहिले ही कृष्णलीला विषयक सरस काव्य की रचना की थी, किंतु वे लोग वैष्णव भक्त नहीं थे। चंडीदास शाक्त अथवा सहजिया और विद्यापति शैव कहे जाते हैं; किंतु उनकी रचनाएँ प्रेमोपासक सहजिया और आउल-बाउल तथा चैतन्य मतानुयायी कृष्ण-भक्तों में समान रूप से प्रिय रही हैं। चैतन्य महाप्रभु स्वयं जयदेव, चंडीदास और विद्यापति की रचनाओं का गायन सुनकर राधा-कृष्ण की प्रेम-भक्ति में विह्वल हो जाते थे।

श्री माधवेन्द्र पुरी—

बंगाल में वैष्णव धर्म और कृष्ण-भक्ति के व्यापक प्रचार का श्रेय चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारी भक्तों को है; किंतु इसके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि और समुचित वातावरण बनाने का कार्य श्रीमाधवेन्द्र पुरी ने किया था। उक्त पुरी महोदय माध्व संप्रदाय के प्रकांड विद्वान और परम भक्त संन्यासी थे। वे श्री मध्वाचार्य की शिष्य-परंपरा में लक्ष्मीपति के शिष्य थे। उनका निश्चित जीवन-वृत्तांत अज्ञात है। ऐसा कहा जाता है, वे तैलंग प्रदेश के दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। 'चैतन्य चरितामृत' में उनके द्वारा गोवर्धन में श्रीनाथ-गोपाल की देव-प्रतिमा के प्राकट्य की कथा लिखी गई है। उससे ज्ञात होता है, उन्होंने

श्रीनाथ जी की सेवा-पूजा की आरंभिक व्यवस्था बंगाली ब्राह्मणों से कराई थी। इससे श्री बलदेव उपाध्याय जी ने उन्हें 'बंगाल का पक्षपाती' समझ कर बंगाली वैष्णव बतलाया है[1]।

माधवेन्द्र पुरी जी चाहें दाक्षिणात्य हों और चाहें बंगाली, किंतु यह प्रायः निश्चित है कि बंगाल में कृष्ण-भक्ति के व्यापक प्रचार की आधार-शिला उन्हीं के द्वारा रखी गई थी। वे माध्व संप्रदाय के अंतर्गत राधा-भाव के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। उनकी यह विशिष्ट मान्यता ही चैतन्य मत की प्रेमाभक्ति का मूल कारण रही है। उन्होंने जयदेव और चंडीदास के गीतों की ध्वनि के साथ बंगाल में कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया था। वे चैतन्य महाप्रभु के आरंभिक काल तक विद्यमान कहे जाते हैं, किंतु उन दोनों के साक्षात्कार का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। माधवेन्द्र पुरी के अनेक शिष्य थे। उनमें सर्वश्री ईश्वरपुरी, अद्वैताचार्य और नित्यानंद प्रमुख थे। उन समस्त महानुभावों का चैतन्य मत से घनिष्ट संबंध रहा है।

श्री ईश्वर पुरी—

श्री ईश्वर पुरी माधवेन्द्र पुरी जी के प्रधान शिष्य और सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। 'चैतन्य भागवत' में लिखा है, माधवेन्द्र पुरी का समस्त प्रेम-तत्व ईश्वर पुरी को प्राप्त हुआ था। वे अपने गुरु के इस प्रेम-प्रसाद को अधिकारी भक्त जनों में वितरण करते हुए भ्रमण किया करते थे[2]। उनका जन्म हालि शहर के निकटवर्ती कुमार हट्ट नामक स्थान के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य होने के अनंतर वे एक स्थान पर स्थायी रूप से न रह कर प्रायः तीर्थाटन किया करते थे। वे उस समय नवद्वीप भी गये थे, जिस समय श्री चैतन्यदेव अपने आरंभिक जीवन में वहाँ अध्यापन का कार्य करते थे। वे चैतन्य जी की विद्वत्ता देख कर अत्यंत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने अद्वैताचार्य

---

१. भागवत संप्रदाय, पृ० ४९७

२. जत प्रेम माधवेन्द्र पुरीर शरीरे।
सन्तोषे दिलेन सब ईश्वरपुरीरे ॥२५३॥
पाइया गुरुर प्रेम कृष्णेर प्रसादे।
भ्रमेण ईश्वरपुरी अति निर्विरोधे ॥२५४॥
—आदि खंड, ७ अध्याय।

की भक्त-मंडली में भी उपस्थित होकर भक्त जनों को कृतार्थ किया था। कहते हैं, उसी समय उन्होंने गदाधर पंडित को स्वरचित 'श्री कृष्ण-लीलामृत' की शिक्षा दी थी। जब चैतन्य देव अपने पिता का श्राद्ध और पिंडदान करने गया धाम गये थे, तब वहाँ पर ईश्वर पुरी जी भी उपस्थित थे। चैतन्य देव पुरी जी से मिले और उनके शिष्य हो गये। उनसे कृष्ण-भक्ति की शिक्षा प्राप्त होने से चैतन्य देव के जीवन का क्रम ही बदल गया। उन्होंने ईश्वर पुरी के उपदेश को नवद्वीप के घर-घर में पहुँचा दिया।

चैतन्य के पूर्ववर्ती कृष्ण-भक्त—

माधवेन्द्र पुरी और ईश्वर पुरी के कारण नवद्वीप, शांतिपुर आदि स्थानों में बंगाली कृष्ण-भक्तों की छोटी-छोटी मंडलियाँ बन गई थीं। उस समय के कुछ प्रमुख कृष्ण-भक्तों के नाम चैतन्य भागवत में अद्वैताचार्य, गंगादास पंडित, मुरारि गुप्त, श्रीवास, चंद्रशेखर, गौरीनाथाचार्य, मुकुंददत्त आदि लिखे गये हैं। वे सब चैतन्य देव से पहिले कृष्ण-भक्ति में अनुरक्त हुए थे।

चैतन्य के पूर्ववर्ती उन कृष्ण-भक्तों में अद्वैताचार्य प्रमुख थे। वे परम भक्त, अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और अनुभवी महानुभाव थे। उनका स्थायी निवास शांतिपुर में था, किंतु वे प्रायः नवद्वीप में रहते थे। उन्होंने चैतन्य जी की माता को वैष्णवी दीक्षा दी थी। उनके नवद्वीप मे रहने पर वहाँ के कृष्ण-भक्त उनके निवास-स्थान पर एकत्र होकर कथा-कीर्तन किया करते थे।

कृष्ण-भक्ति का विरोध—

नवद्वीप के उन कतिपय कृष्ण-भक्तों के कथा-कीर्तन को वहाँ के बहु-संख्यक शाक्तों ने पहिले पसंद नहीं किया था। वे लोग नाम-कीर्तन को पागलों का प्रलाप कहकर उसकी हँसी उड़ाते थे। उनमें से कुछ पाखंडी लोगों ने कृष्ण-भक्तों के प्रत्येक कार्य में पग-पग पर विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करना आरंभ कर दिया। इससे दुखी होकर वे भक्त-जन श्रीवास के निवास-स्थान पर रात्रि के एकांत में एकत्र होते थे और वहाँ पर किंवाड़ बंद कर अपना कीर्तन करते थे। किंतु पाखंडी लोग फिर भी उन्हें नाना प्रकार के कष्ट देते रहे।

कृष्ण-भक्ति के विरोधी लोगों का कहना था कि इनके इस कृत्य से रुष्ट होकर वहाँ का यवन राजा संपूर्ण नगर को ही तबाह कर देगा। इससे

बचने के लिए वे स्वार्थी जन उन सीधे-सादे कृष्ण-भक्तों को नगर से निकाल कर उनके घर-बार को भी नष्ट करने की योजना बनाने लगे[1]।

कृष्ण-भक्तों की एक मात्र आशा—

यवन शासक और बहुसंख्यक शाक्तों की असहिष्णुता से उत्पीड़ित बंगाल के वे मुट्ठी भर कृष्णोपासक भक्त-जन अद्वैताचार्य की इस आशा पर जीवित थे कि भगवान् श्री कृष्ण स्वयं अवतीर्ण होकर शीघ्र ही उनका दुःख दूर करेंगे।

जयदेव, चंडीदास और विद्यापति के गीतों ने बंगाल में राधा-कृष्ण की प्रेमोपासना विषयक जो दिव्यानुभूति जागृत की थी, उसे माधवेन्द्र पुरी एवं ईश्वर पुरी की शिक्षाओं से और भी स्फूर्ति तथा उत्तेजना प्राप्त हुई थी। वहाँ के भक्तजन प्रेम के देवता का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए व्याकुल थे। ऐसी स्थिति में श्री चैतन्य देव ने अपने अलौकिक आचरण और दिव्य उपदेशों द्वारा बंगाल में प्रेम-भक्ति की जो निर्मल धारा प्रवाहित की थी, उसमें अवगाहन कर कृष्ण-भक्तों के साथ ही साथ विधर्मी पाखंडी जन भी कृतार्थ हो गये।

२. विकास-क्रम

वातावरण और नेतृत्व—

चैतन्य देव के जन्म-स्थान नवद्वीप में यद्यपि शाक्त धर्मावलंबियों की अधिकता थी, तथापि उनके घर और पड़ौस का वातावरण वैष्णव धर्म के अनुकूल था। उनके पिता आस्तिक वैष्णव थे। उनकी माता ने अद्वैताचार्य से वैष्णव धर्म की दीक्षा ली थी। उनके पड़ौस में भी कतिपय वैष्णव भक्तों का निवास था। यह सब होते हुए भी स्वयं चैतन्य ने अपने आरंभिक जीवन में वैष्णव-भक्ति की ओर ध्यान नहीं दिया था।

वे न्याय और व्याकरण के धुरंधर विद्वान थे, अतः अपने आरंभिक जीवन में उन्हें अपने पांडित्य-प्रदर्शन की विशेष लालसा रहती थी। विद्वान होने के साथ ही साथ वे सफल अध्यापक भी थे। उन्होंने नवद्वीप में जो पाठशाला खोली थी, उसमें पढ़ने के लिए दूर-दूर से छात्र-गण आते थे। वे चैतन्य देव से न्याय और व्याकरण की समुचित शिक्षा प्राप्त करने में सफसता प्राप्त करते थे।

---

१. श्री चैतन्य भागवत, आदि खंड, द्वितीय अध्याय, १११–११७.

चैतन्य देव के जीवन-वृत्तांत से प्रकट है कि जब वे अपने स्वर्गीय पिता के श्राद्ध और पिंडदान के निमित्त गया धाम गये थे, तभी ईश्वर पुरी की शिक्षा से उनके वैष्णव संस्कार जागृत हुए थे। वहाँ से वापिस आने पर वे अपने पड़ौसी कृष्ण-भक्तों की मंडली में सम्मिलित हो गये। उन्होंने अपना अध्यापन कार्य बंद कर दिया। वे अपने गार्हस्थिक कर्त्तव्य से भी उदासीन होकर दिन-रात भक्ति-भावना में ही लीन रहने लगे। उन्होने कृष्ण-भक्ति और हरिनाम-कीर्तन के प्रचार में इतना उत्साह प्रदर्शित किया कि वे नवद्वीप की वैष्णव मंडली के नेता समझे जाने लगे।

श्रीकृष्ण-बलराम के अवतार—

चैतन्य देव के चरित्र में इस प्रकार का आकस्मिक परिवर्तन होने से पूर्व गौड़ीय कृष्ण-भक्तों के नेता वयोवृद्ध अद्वैताचार्य थे। वे चैतन्य जी की भक्ति-भावना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उस युवा भक्त का नेतृत्व ही स्वीकार नहीं किया, वरन् उन्हें श्री कृष्ण का अवतार भी घोषित किया। उन्होंने नवद्वीप के कृष्ण-भक्तों को बतलाया कि वे वर्षों से उनके कष्टों के निवारणार्थ भगवान् श्री कृष्ण से अवतार लेने की प्रार्थना कर रहे थे। उन्होने चैतन्य देव के रूप में प्रकट होकर हमारी प्रार्थना स्वीकार की है। उनके इस विश्वास के कारण ही चैतन्य मत में चैतन्य देव को अवतीर्ण कराने का श्रेय अद्वैताचार्य को दिया जाता है।

श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य नित्यानंद जी अनेक स्थानों का भ्रमण करने के उपरांत नवद्वीप आकर रहने लगे थे। वे भी वहाँ की भक्त-मंडली में सम्मिलित हो गये। उनको बलदेव जी का अवतार समझा जाने लगा। नित्यानंद और चैतन्य की जोड़ी वहाँ के वैष्णव भक्तों को साक्षात् बलराम-कृष्ण के समान ज्ञात होती थी। वे लोग 'निताई-गौर' की जय-ध्वनि के साथ कीर्तन करते हुए आत्म-विभोर हो जाते थे।

आरंभिक सफलता—

नवद्वीप में चैतन्य देव की धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रधान केन्द्र श्रीवास का निवास-स्थान था। वहाँ पर प्रति दिन सायंकाल को कीर्तन, रास आदि का कार्यक्रम रहता था। उसमें भाग लेने वालों में मुख्य थे—सर्व श्री चैतन्य, नित्यानंद, अद्वैताचार्य, हरिदास, श्रीवास, गदाधर, पुंडरीक विद्यानिधि, मुरारि गुप्त, गंगादास, गोपीनाथ, वक्रेश्वर, शुक्लांबर, पुरुषोत्तम आदि।

हरिनाम-कीर्तन के प्रचार में चैतन्य देव को सबसे अधिक सहयोग हरिदास जी से मिला था। वे मुसलमान कुल में पालित-पोषित होने पर भी विख्यात कृष्ण-भक्त और हरिनाम-कीर्तन के प्रबल प्रचारक थे। उनको इसके लिए अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ी थीं, किंतु वे अपने विश्वास पर अटल रहे। उन्होंने हरिनाम-कीर्तन करना ही अपने जीवन का एक मात्र ध्येय बना लिया था। चैतन्य देव ने उन्हें अपने वर्ग में मिला कर गौड़ीय वैष्णवों को बतलाया कि भक्ति-मार्ग में जाति और कुल की भिन्नता के लिए कोई स्थान नहीं है।

चैतन्य देव द्वारा प्रचारित कृष्णोपासना और कीर्तन का आंदोलन इतना आकर्षक सिद्ध हुआ कि कट्टर शाक्तों के विरोध करने पर भी नवद्वीप, शांतिपुर और उनके आस-पास के ग्रामों की जनता उससे प्रभावित होने लगी। चैतन्य जी के नेतृत्व में अद्वैत, नित्यानंद और हरिदास ने शांतिपुर और नवद्वीप की गली-गली और घर-घर को हरिनाम-कीर्तन की प्रेममयी ध्वनि से गुंजायमान कर दिया। इसके फलस्वरूप प्रेम-भक्ति की जो अविरल धारा प्रवाहित हुई, उसमें शांतिपुर डुबकियाँ लेने लगा और नवद्वीप बह चला—

'प्रेमे शांतिपुर डुबु-डुबु, नदिया भासिया जाय।"

इस आरंभिक सफलता से उत्साहित होकर चैतन्य देव ने अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों को नवद्वीप, शांतिपुर और उनके आस-पास तक ही सीमित रखना उचित नहीं समझा। वे गौड़ प्रदेश से बाहर की जनता को भी लाभांवित करना चाहते थे; इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि यह महान् कार्य सफलता पूर्वक तब सम्पन्न हो सकता है, जब वे गृहस्थाश्रम के बंधन से सर्वथा मुक्त होकर उसमें लग जावेंगे।

संन्यासी होने का निश्चय—

उन दिनों विरक्त संन्यासियों का जनता में बड़ा आदर था। सब लोग श्रद्धा पूर्वक उनकी बातें सुनते थे और उनके आदेशानुसार कार्य करने को इच्छुक रहते थे। चैतन्य देव ने भी संन्यासी होकर अपने इच्छित कार्य को विस्तृत करने का निश्चय किया। उन्होंने केवल २४ वर्ष की आयु में ही सं० १५६७ के माघ मास की संक्रांति को केशव भारती से संन्यासाश्रम की दीक्षा ली। तब तक वे विश्वंभर, निमाई अथवा गौरांग के नाम से प्रसिद्ध थे।

संन्यासी होने पर उनका नाम 'श्री कृष्ण चैतन्य' हुआ और बाद में वे उसी नाम से विख्यात हुए।

संन्यासी होने पर उन्होंने बंगाल में कृष्ण-भक्ति के प्रचार का उत्तर-दायित्व नित्यानंद एवं अद्वैताचार्य पर छोड़ दिया और आप देश-भ्रमण के लिए चल दिये। वे पहिले जगन्नाथपुरी गये। वहाँ पर सार्वभौम भट्टाचार्य और तत्पश्चात् प्रकाशानंद नामक दो विख्यात दार्शनिक विद्वान उनके अलौकिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके अनुगत हो गये। इससे विद्वत्समाज में चैतन्य के नाम की धूम मच गई। उन्होंने ६ वर्ष तक देश के कतिपय भागों में भ्रमण कर कृष्ण-भक्ति और हरिनाम-कीर्तन का प्रचार किया। वे दक्षिण में रामेश्वर तक, पूर्व में बंगाल की तत्कालीन राजधानी गौड़ के निकटवर्ती ग्राम रामकेलि तक और पश्चिम में वृंदाबन तक गये। वे जहाँ भी गये, वहाँ ही उन्होंने अपने निर्मल आचरण और प्रेमपूर्ण उपदेशों से लोगों को कृष्ण-भक्त बना दिया।

दक्षिण-यात्रा का महत्व—

चैतन्य देव से कई शताब्दियों पूर्व ही दक्षिणी भारत वैष्णव धर्म का गढ़ बना हुआ था। वैष्णव धर्म के प्रायः सभी संप्रदायों का दक्षिणी भारत में जन्म हुआ था। वहाँ पर ही वे विकसित हुए और वहाँ से ही उनका समस्त देश में विस्तार हुआ था। चैतन्य मत के मूल स्रोत माध्व संप्रदाय का प्रधान केन्द्र उडुपी भी दक्षिण में ही था। इसलिए अपने विचारों की संपुष्टि और परिष्कृति के निमित्त चैतन्य देव ने सर्व प्रथम दक्षिण-यात्रा के लिए प्रस्थान करना उचित समझा।

दक्षिण जाते हुए वे सबसे पहिले जिस महत्वपूर्ण व्यक्ति से मिले, वे राय रामानंद थे। रामानंद जी उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र के राज्यांतर्गत गोदावरी तटवर्ती विद्यानगर के राज्यपाल थे। वे राधा-तत्व और रागानुगा भक्ति के मार्मिक विद्वान तथा वैष्णव भक्ति के महान् व्याख्याता थे। उनके साथ चैतन्य देव कई दिनों तक विचार-विमर्श करते रहे। इस वार्तालाप में साध्य-साधन तत्व पर विशेष रूप से विचार हुआ था। राय रामानंद का मत था कि भक्त को राधा जी की मंजरी-रूप में पूर्ण आत्मीयता के साथ राधा-कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए। चैतन्य देव ने इस तत्व को ग्रहण कर इसे रूप-सनातन गोस्वामियों को बतलाया था, जिन्होंने अपने ग्रंथों में इसका विवेचन चैतन्य मत के प्रमुख सिद्धांत रूप में किया है।

विद्यानगर से चल कर चैतन्य देव धुर दक्षिण में रामेश्वर तक गये थे। वहाँ से मालाबार-त्रिबांकुर राज्यों की तीर्थ-यात्रा और उडुपी-पंढरपुर आदि अनेक पुण्य-स्थलों के दर्शन करते हुए वे जगन्नाथ पुरी वापिस आ गये। इस यात्रा में उन्हें वैष्णव धर्म के अनेक विद्वानों से मिलने तथा उनके सिद्धांतों से परिचित होने का अवसर और साथ ही भक्ति-तत्व के लिए अनुकूल वातावरण भी मिला था। उन्होंने वहाँ के अनेक कर्मकांडी, ज्ञानोपासक और मायावादी जनों को कृष्ण-भक्ति की ओर प्रेरित किया। इसी यात्रा में उन्हें 'ब्रह्मसंहिता' और 'कृष्ण-कर्णामृत' जैसे महत्वपूर्ण भक्ति-ग्रंथ मिले, जिन्हें बाद में चैतन्य मत के मूल धर्म ग्रंथों में गौरवपूर्ण स्थान दिया गया।

चैतन्य मत के विकास में चैतन्य देव की दक्षिण-यात्रा का ऐतिहासिक महत्व है। राय रामानंद और दक्षिण के वैष्णव विद्वानों से विचार-विमर्श तथा ब्रह्मसंहिता और कृष्ण-कर्णामृत आदि ग्रंथों के अध्ययन-मनन के उपरांत ही चैतन्यदेव के विचारों को निश्चित रूप प्राप्त हुआ था। इसे उन्होंने रूप-सनातन गोस्वामियों को भली भाँति हृदयंगम कराया था।

चैतन्य देव से प्राप्त शिक्षा के आधार पर रूप-सनातन गोस्वामी-बंधुओं ने अपने भतीजे जीव गोस्वामी सहित अनेक ग्रंथों की रचना द्वारा चैतन्य मत को विकसित कर उसे सैद्धांतिक आधार पर स्थापित किया था।

३. प्रचार और प्रसार

चैतन्य देव ने लोगों को कृष्ण-भक्ति की ओर प्रेरित अवश्य किया था; किंतु उन्होंने किसी मत विशेष की स्थापना कर उसे व्यवस्थित रूप से प्रचारित करने का स्वयं कोई प्रयास नहीं किया था। यह कार्य उनके सहकारियों और अनुगामियों द्वारा संपन्न हुआ। चैतन्य मत का प्रचार आजकल के आंदोलनों की भाँति व्याख्यानों से नहीं हुआ; बलिक उसके अनुयायियों की भक्ति-भावना, विद्वत्ता, नम्रता, विनय तथा उनके सौहार्द्र और आत्म-त्याग के कारण हुआ था।

गौड़ प्रदेश में व्यापक प्रचार का आयोजन—

चैतन्य देव छै वर्षो तक देश के कतिपय भागों की यात्रा कर जगन्नाथ-पुरी वापिस आगये और वहाँ के नीलाचल पर स्थायी रूप से निवास करने लगे। इससे गौड़ीय भक्तों को अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे लोग अद्वैताचार्य और नित्यानंद

के नेतृत्व में उनके दर्शनार्थ नीलाचल में एकत्र हुए। श्री जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा के उत्सव, चैतन्यदेव के सत्संग और हरिनाम-कीर्तन का अलौकिक आनंद प्राप्त कर सब लोग अपने-अपने घरों को वापिस जाने लगे। चैतन्य देव ने अद्वैताचार्य और नित्यानंद जी को ब्रह्मसंहिता और कृष्ण-कर्णामृत ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ प्रदान करते हुए उन्हें आदेश दिया कि वे अब पूरी शक्ति के साथ गौड़ प्रदेश में कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार करें।

चैतन्य देव के आदेश का पालन उन्होंने पूर्ण आत्मीयता के साथ किया। अद्वैताचार्य ने कुलीन और योग्य व्यक्तियों को ही कृष्ण-भक्ति का उपदेश दिया था, किंतु नित्यानंद जी ने समाज के सभी वर्गों के लिये उसका द्वार खोल दिया। नित्यानंद जी के उपरांत उनकी पत्नी जान्हवा देवी, पुत्र वीरचंद्र और शिष्य द्वादश गोपालों ने उनके कार्य का अत्यधिक विस्तार किया था।

नित्यानंद जी के पुत्र वीरचंद्र ने बौद्ध-धर्म के अवशिष्ट आउल-वाउल, शाक्त, सहजिया और समाज के निम्न स्तर के व्यक्तियों को भी वैष्णव धर्म की दीक्षा दी थी। इससे गौड़ प्रदेश में चैतन्य मत का व्यापक प्रचार हो गया।

वृंदावन की देन—

चैतन्य मत का जन्म और आरंभिक प्रचार यद्यपि गौड़ प्रदेश में हुआ था, तथापि उसका शास्त्रीय रूप वृंदाबन में निवास करने वाले गौड़ीय गोस्वामियों द्वारा निर्मित हुआ था। उन गोस्वामियों में रूपगोस्वामी सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने चैतन्य देव की भक्ति-भावना को अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'भक्ति रसामृत सिंधु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' द्वारा चिन्मय रस-सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित किया है। सनातन गोस्वामी और गोपाल भट्ट चैतन्य मत के व्यवस्थापक माने जाते हैं। उनकी प्रसिद्ध रचना 'हरिभक्ति-विलास' इस मत का स्मृति ग्रंथ ही है। कृष्णदास कविराज कृत "चैतन्य चरितामृत" चैतन्य-चरित्र की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना है। जीव गोस्वामी वृंदाबन के गोस्वामियों में अन्यतम और सबसे अधिक विद्वान हुए हैं। उन्होंने अपने संदर्भ ग्रंथों में चैतन्य मत और उसके भक्ति-सिद्धांत का तात्विक विवेचन किया है।

जीव गोस्वामी विक्रम की १७ वीं शती के मध्य तक विद्यमान थे। वे दीर्घ काल तक वृंदाबन और गौड़ के वैष्णव भक्तों का बौद्धिक नेतृत्व करते रहे। उनके देहावसान के पश्चात् गौड़ीय वैष्णवों के संगठन में शिथिलता और

उनकी विद्वत्ता में न्यूनता के लक्षण दिखलाई देने लगे थे; किंतु विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपने पांडित्यपूर्ण ग्रंथों द्वारा वृंदाबन की गौड़ीय परंपरा को पुनः गौरव प्रदान किया। चक्रवर्ती जी के पश्चात् बलदेव विद्याभूषण वृंदाबनस्थ गौड़ीय भक्तों में सबसे अधिक विद्वान थे। उनका रचा हुआ 'गोविंद भाष्य' चैतन्य मत का सर्वाधिक प्रामाणिक दार्शनिक ग्रंथ माना जाता है।

इस प्रकार वृंदाबन में रचा हुआ ग्रंथ-समुदाय ही चैतन्य मत का सर्वमान्य प्रामाणिक साहित्य है। उसका महत्व समस्त गौड़ीय भक्तों को सदा ही स्वीकृत रहा है। चैतन्य मत के इतिहास में वृंदाबन का यह गौरव इसलिए और भी अधिक उल्लेखनीय है कि अन्य स्थानों में रचा हुआ चैतन्य मत का साहित्य उन दिनों तब तक प्रामाणिक नहीं माना जाता था, जब तक उसे वृंदाबनस्थ विद्वत्समाज से मान्यता प्राप्त नहीं हो जाती थी।

वृंदाबन के इस महत्व के कारण ही बंगाल-उड़ीसा से अनेक उत्साही भक्त जन मार्ग के संकटों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हुए भी वहाँ पहुँचते थे। वे वृंदावन के विद्वान गौड़ीय भक्तों से भक्ति-ग्रंथों की शिक्षा प्राप्त कर अपने-अपने स्थानों में जाकर वैष्णव धर्म का प्रचार किया करते थे। इस प्रकार चैतन्य मत के प्रसार और प्रचार में आरंभ से ही वृंदाबन की अत्यंत महत्वपूर्ण देन रही है।

बंगाल और उड़ीसा में प्रचार—

१७ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बंगाल से श्रीनिवास और नरोत्तमदास तथा उड़ीसा से श्यामानंद नामक तीन उत्साही भक्त जन भक्ति-तत्व की विशेष शिक्षा प्राप्त करने वृंदाबन गये थे। श्रीनिवास ने गोपाल भट्ट जी से और नरोत्तमदास ने लोकनाथ जी से चैतन्य मत की दीक्षा प्राप्त की था। वे तीनों वैष्णव भक्त जीव गोस्वामी से भक्ति-शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करने लगे।

अपना अध्ययन पूर्ण करने के उपरांत जब वे अपने प्रदेशों को वापिस जाने को प्रस्तुत हुए, तब जीव गोस्वामी ने उन्हें अपने-अपने स्थानों में चैतन्य मत के प्रचार करने का आदेश दिया। इस कार्य की पूर्ति के लिए वे लोग वृंदाबन में निर्मित भक्ति-ग्रंथों की अनेक प्रतियाँ अपने साथ ले गये थे। उन तीनों में श्रीनिवास सबसे अधिक योग्य थे; अतः उन पर इस कार्य का विशेष उत्तरदायित्व सोंपा गया था।

श्रीनिवास की योग्यता के कारण उन्हें आचार्य पदवी प्रदान की गई और वे श्रीनिवासाचार्य के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने बंगाल में बड़ी सफलता पूर्वक चैतन्य मत का प्रचार किया था। उनको इस कार्य में नरोत्तमदास के अतिरिक्त नित्यानंद जी की पत्नी जान्हवादेवी और उनके पुत्र वीरचंद्र से भी पर्याप्त सहायता मिली थी। श्रीनिवासाचार्य के अनंतर उनकी विदुषी पुत्री हेमलता ठकुरानी तथा उनके शिष्यों ने इस कार्य का और भी अधिक विस्तार किया था। श्यामानंद तथा उनके शिष्यों द्वारा उड़ीसा प्रदेश में चैतन्य मत का प्रचार हुआ था। इस प्रकार बंगाल, उड़ीसा और पूर्वी भारत के विभिन्न भागों में चैतन्य मत का व्यापक प्रचार होने लगा।

जयपुर-नरेश का विरोध और 'गोविंद भाष्य' की रचना—

१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वृंदाबन जयपुर राज्य के प्रभाव क्षेत्र में था। उस समय के जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह यद्यपि हिंदू धर्म के पक्षपाती और धर्मप्राण राजा थे, तथापि कुछ वैष्णव विरोधी लोगों ने उन्हें वृंदाबन के वैष्णव संप्रदायों के विरुद्ध भड़का दिया था। उन्हें समझाया गया कि इन संप्रदायों की प्रेम-भक्ति वैदिक सिद्धांत की विरोधिनी है, अतः ये प्रेमोपासक वैष्णव संप्रदाय अवैदिक हैं। वैष्णव भक्ति के प्रति इस प्रकार की धारणा बनाये जाने से उन्होंने समस्त वैष्णव संप्रदायों का ही विरोध किया और शैव धर्म के प्रति अपनी आस्था प्रकट की। उन्होंने अपने राज्य निवासियों को आदेश दिया कि वे वैष्णव तिलक लगाना बंद कर त्रिपुंड लगाया करें।

जयपुर-नरेश के विरोध के कारण ब्रज-वृंदाबन के वैष्णव संप्रदायों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उस समय के कई वैष्णव संप्रदायाचार्य अपने देव-विग्रहों और अनुयायी जनों के साथ वृंदाबन छोड़ कर अन्यत्र जाने को बाध्य हुए थे। बहुत से वैष्णव भक्तों ने जयपुर जाकर महाराज से फरियाद की, कि वे इस प्रकार का अन्याय न करें।

महाराज जयसिंह ने इस विषय पर भली भाँति विचार करने के लिए एक धर्म-संमेलन करने का आयोजन किया। वह संमेलन सं० १७७५ के लगभग जयपुर में हुआ था। उसमें समस्त वैष्णव संप्रदायों को अपने प्रतिनिधियों द्वारा अपने-अपने मतों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए आमंत्रित किया गया था।

उस समय वृंदाबन में चैतन्य मत का प्रभाव बढ़ रहा था। वहाँ के गौड़ीय भक्तों के नेता श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती थे, जो अपनी विद्वत्ता और विशिष्ट भक्ति-भावना के कारण वैष्णव भक्तों में विख्यात थे। उन्हें जयपुर संमेलन में चैतन्य मत की प्रामाणिकता सिद्ध करने का निमंत्रण मिला था। चक्रवर्ती जी अत्यंत वृद्ध होने के कारण वृंदाबन से जयपुर जाने में असमर्थ थे। उन्होने अपने सुयोग्य शिष्य बलदेव विद्याभूषण को इस कार्य के लिए जयपुर भेज दिया।

बलदेव ने जयपुर संमेलन में बड़ी विद्वत्ता पूर्वक अपने पक्ष का समर्थन किया। इसके फल स्वरूप चैतन्य मत को इस शर्त पर मान्यता प्रदान की गई कि उसके पक्ष में वेदांत भाष्य प्रस्तुत किया जाय। कहते हैं, बलदेव का 'गोविंद भाष्य' उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए रचा गया था। इसमें चैतन्य मत के अनुकूल ब्रह्मसूत्रों का भाष्य किया गया है। इसके कारण चैतन्य मत के दार्शनिक सिद्धांत की पुष्टि और संकट काल में उसके गौरव की रक्षा हुई है। इस प्रकार जयपुर-नरेश का विरोध भी अंततः चैतन्य मत के लिए वरदान ही सिद्ध हुआ; क्यों कि उसके कारण वैष्णव संप्रदायों में उसकी धाक ही नहीं जमी, वरन् उसके प्रचार और प्रसार में भी सहायता प्राप्त हुई।

सफलता का कारण और परिणाम—

चैतन्य मत के सफलता पूर्वक प्रचारित होने का कारण यह है कि चैतन्यदेव और उनके अनुगामी भक्तों ने अपनी विद्वत्ता से भी अधिक भक्ति-भावना तथा अपने निर्मल आचरण और त्यागपूर्ण जीवन से जनता के हृदय को जीत लिया था। उनके द्वारा प्रचारित प्रेम धर्म की अद्भुत प्रेरणा से उत्तरी भारत के ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक में अभूतपूर्व आनंद का संचार हो गया। वे लोग हजारों-लाखों की संख्या में चैतन्य मत के अनुयायी बनने लगे।

लोग प्रायः सुख, सौन्दर्य, प्रेम और आनंद के पीछे दौड़ा करते हैं। चैतन्य देव ने उनके समक्ष ऐसे भगवान् को प्रस्तुत किया, जिसमें ये समस्त गुण पूर्ण रूप में विद्यमान थे। उन्होंने बतलाया, भगवान् की भक्ति करने से सुख, सौन्दर्य, प्रेम और आनंद स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् स्वयं भी अपने भक्तों को इस मार्ग पर चलने में सहायक होते हैं। उच्च और नीच का भेद-भाव इसमें कतई बाधक नहीं हो सकता है। चैतन्य मत की यह विचार-धारा उसकी सफलता का एक बड़ा कारण रही है।

चैतन्य देव और उनके अनुगामी भक्तों ने प्रेम-भक्ति की जो आनंद-दायिनी निर्मल धारा प्रवाहित की थी, उसमें अवगाहन कर बंगाल, उड़ीसा तथा व्रजमंडल के करोड़ों नर-नारी आनंद विभोर होकर नाँच उठे और भगवान् का गुण-गान करने लगे।

४. स्वरूप-ज्ञान

मूल प्रेरणा और अस्तित्व—

श्री राधा-कृष्णोपासक संप्रदायों में चैतन्य मत का विशिष्ट स्थान है। इसका उद्गम स्थल बंगाल है। इसकी मूल प्रेरणा माध्व संप्रदाय के विख्यात संन्यासी श्री माधवेन्द्र पुरी और उनके शिष्य श्री ईश्वर पुरी से बंगाली भक्तों को मिली थी। ईश्वर पुरी से कृष्ण-भक्ति की शिक्षा प्राप्त कर चैतन्य महाप्रभु और उनके प्रमुख सहकारी अद्वैताचार्य और नित्यानंद ने बंगाल में तथा रूप-सनातन आदि गोस्वामियों ने ब्रज-मंडल में इसका प्रसार और प्रचार किया था।

यद्यपि चैतन्य मत का मूल स्रोत माध्व संप्रदाय है, तथापि चैतन्य और उनके अनुगामी भक्तों ने इसका इस प्रकार विस्तार किया कि वह माध्व संप्रदाय से पृथक् अपना अस्तित्व रखने लगा। फिर भी 'माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय' कहलाने से चैतन्य मत को माध्व संप्रदाय से पूर्णतया पृथक् भी नहीं माना जाता है।

भक्ति-क्षेत्र का विशाल वृक्ष—

इस देश के भक्ति-क्षेत्र में चैतन्य मत ऐसे विशाल वृक्ष के समान है, जिसका बीज श्री माधवेन्द्र पुरी, अंकुर श्री ईश्वर पुरी, तना श्री चैतन्य महाप्रभु और इसकी विविध शाखाएँ सर्वश्री नित्यानंद, अद्वैताचार्य तथा वृंदाबन के गोस्वामी गण हैं। इस विशाल वृक्ष की सुशीतल छाया में बैठ कर अगणित नर-नारियों ने अपने भौतिक ताप की ज्वाला को शांत किया है।

चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा—

चैतन्य महाप्रभु ने अपनी शिक्षाओं के स्पष्टीकरण के लिए किसी विशिष्ट ग्रंथ की रचना नहीं की थी। उन्होंने समय-समय पर अपने सहकारियों के साथ वार्त्ता करते हुए जो विचार प्रकट किये थे अथवा अपने अनुगामी भक्तों

को जो उपदेश दिये थे, वही उनकी शिक्षा के रूप में उपलब्ध हैं। इनसे संबंधित निम्न लिखित प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:—

(१) जगन्नाथपुरी में सार्वभौम भट्टाचार्य से वेदांत श्रवण करने के उपरांत उन्होंने ब्रह्मसूत्रों के शंकर-भाष्य को अमान्य ठहराते हुए उसे वेदांत-विरुद्ध बतलाया था।

(२) दक्षिण-यात्रा को जाते समय विद्यानगर में राय रामानंद के साथ जो महत्वपूर्ण वार्ता हुई थी, उसमें उन्होने साध्य-साधन तत्व को स्पष्ट किया था।

(३) वृंदावन-यात्रा से वापिस आते हुए प्रयाग में रूप गोस्वामी को और काशी में सनातन गोस्वामी को जो गूढ़ उपदेश दिये थे, उनमें उन्होंने भक्ति-सिद्धांत का विस्तृत विवेचन किया था।

(४) काशी में प्रकाशानंद संन्यासी के साथ वार्तालाप करते हुए उन्होंने अद्वैत वेदांत की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-नाम संकीर्तन की महत्ता स्थापित की थी।

(५) नीलाचल में छोटे हरिदास का परित्याग करते हुए उन्होंने बतलाया था कि विरक्त साधु को किसी भी दशा में स्त्री-संभाषण नहीं करना चाहिए।

उनकी शिक्षाओं के सार रूप उनके रचे हुए आठ श्लोक हैं, जो 'शिक्षाष्टक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त उनके रचे हुए छै श्लोक और कहे जाते हैं, जो रूप गोस्वासी कृत 'पद्यावली' में संकलित हुए हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार उनके रचे हुए तीन छोटे-छोटे स्तोत्र भी हैं, जो शिक्षाष्टक सहित 'श्री महाप्रभु ग्रंथावली' के नास से बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित हुए हैं। इन कतिपय रचनाओं में चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा स्वरूप उनकी भक्ति विषयक मान्यता स्पष्ट होती है।

शिक्षाष्टक—

शिक्षाष्टक के आठों श्लोकों में चैतन्य महाप्रभु ने श्री कृष्ण-भक्ति विषयक जो अपने हार्दिक उद्गार प्रकट किये हैं, वे वैष्णव भक्ति-सिद्धांत के मूल तत्व हैं। उनकी यह विशेषता है कि वे साधारण जनों के लिए सामान्य, किंतु भावुक भक्तों और अधिकारी विद्वानों के लिए सारगर्भित ज्ञात होते हैं।

इन श्लोकों को हिंदी टीका सहित यहाँ दिया जाता है—

[१]

चेतो दर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं,
श्रेय कैरवचंद्रिकावितरणं विद्यावधू-जीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं,
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम् ॥ १ ॥

चित्त रूपी दर्पण को स्वच्छ करने वाले, संसार रूपी विशाल दावाग्नि को बुझाने वाले, कल्याण रूपी कुमुद-विकासक ज्योत्स्ना को फैलाने वाले, विद्या रूपी वधू के जीवन स्वरूप, आनंद रूपी समुद्र की वृद्धि करने वाले, पग-पग पर पूर्ण अमृत का आस्वादन कराने वाले, समस्त आत्मा की निर्मलता एवं स्निग्धता के संपादन करने वाले अद्वितीय श्री कृष्ण-संकीर्तन की सदा जय हो !

[२]

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि, दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥ २ ॥

हे भगवन् ! आपके अनेक रूपों में प्रकट होने वाले नाम-समूह को आपकी समस्त शक्ति अर्पित हुई है। इन नामों के स्मरण में समय का कोई विचार नहीं है। आपकी तो इस प्रकार की कृपा है, किंतु मेरा दुर्भाग्य है कि हरि-नाम में मेरा अनुराग नहीं हुआ है।

[३]

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥ ३ ॥

तृण से भी अधिक तुच्छ और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होकर तथा स्वयं मान की इच्छा न रख कर दूसरों को मान देते हुए श्री हरि का गुण-गान करना चाहिए।

[४]

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥ ४ ॥

हे जगदीश ! मुझे धन, जन, कामिनी, काव्य किसी वस्तु की चाह नहीं है। मेरी तो केवल यह कामना है कि तुम परमेश्वर में मेरी अहैतुकी भक्ति जन्म-जन्मांतर तक बनी रहे।

[५]

अयि नन्दतनुज ! किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपंकजस्थितधूलिसदृशं विचिन्तय ।। ५ ।।

हे नंदनंदन ! इस विषम संसार-सागर में पड़े हुए मुझ किंकर को आप कृपा पूर्वक अपने चरण-कमल की रज के समान समझिये ।

[६]

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ।। ६ ।।

हे प्रभो ! आपके नाम लेते ही कब मेरे नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होगी, मेरा बदन गद्गद् वाणी से अवरुद्ध और शरीर पुलकित होगा ?

[७]

युगायितं निमिषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविंदविरहेण मे ।। ७ ।।

हे गोविंद ! आपके विरह में मेरा एक पल भी युग के समान बीत रहा है, मेरे नेत्रों से वर्षा की भाँति आँसुओं की झड़ी लगी हुई हैं और मुझे सारा संसार सूना जान पड़ता है ।

[८]

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।। ८ ।।

चरण-सेवा में लगे हुए मुझे वे चाहें आलिंगन करें चाहें पीस ही डालें, चाहें दर्शन न देकर मर्माहत ही करें । वे स्वेच्छाचारी जो चाहें करें; किंतु मेरे तो वही प्राणनाथ हैं, दूसरा कोई नहीं ।

चैतन्य-शिक्षा का मूल तत्व—

चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का मूल तत्व कृष्ण-भक्ति है । उन्होंने अनेक अवसरों पर अपने अनुगामी भक्तों को कृष्ण-भक्ति का विविध प्रकार से उपदेश दिया था । उनके भक्तिपूर्ण उपदेशों में उनका दार्शनिक सिद्धांत भी सन्निहित है । उक्त उपदेशों के आधार पर उनके विद्वान भक्तों ने चैतन्य मत की भक्ति-भावना और उसके दार्शनिक सिद्धांत का विस्तृत विवेचन किया है । चैतन्य मत के स्वरूप-ज्ञान के लिए उनका सांगोपांग परिचय प्राप्त होना आवश्यक है । इसलिए उनका पृथक शीर्षकों में आगे कथन किया जाता है—

५. भक्ति-भावना

भक्ति और भगवान्—

अखिल ब्रह्मांड नायक सच्चिदानंद स्वरूप परमतत्व साधक मात्र के लिए ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् नामक तीन रूपों में भासित होता है। शास्त्रों में उसकी साधना के भी तीन प्रमुख मार्ग बतलाये गये हैं; जो ज्ञान, योग और भक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। ज्ञान से ब्रह्म का आभास होता है और योग से परमात्मा की अनुभूति होती है, किंतु भक्ति से स्वयं भगवान् वश में हो जाते हैं।

जिस परमतत्व में ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य नामक छै 'भग' संपूर्ण मात्रा में विद्यमान होते हैं, उसे 'भगवान्' कहते हैं। श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण को स्वयं भगवान् बतलाया गया है—"**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**" भक्त और भगवान् के बीच का जो संबंध है, उसे 'भक्ति' कहते हैं। भक्ति-मार्ग ज्ञान और योग की अपेक्षा सरल और सुगम तो है ही, उसे इन दोनों से श्रेष्ठ भी माना गया है। चैतन्य मत भक्ति प्रधान धर्म है। इसमें कृष्ण-भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है।

धाम, परिकर और मुक्ति—

भगवान् के वैभव का विस्तार धाम, परिकर और सेवकादि के रूप में होता है। इनमें सर्व प्रथम धाम तत्व है। चैतन्य मत के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण के तीन धाम हैं—१. वृंदाबन, २. द्वारका, और ३. वैकुंठ। वृंदाबन माधुर्य प्रधान है, वहाँ ऐश्वर्य का लेश भी नहीं है। वैकुंठ ऐश्वर्य प्रधान है, वहाँ माधुर्य नहीं है। द्वारका में दास्य, सख्य, वात्सल्यादि की प्रधानता है। तीनों धामों में वृंदाबन सर्वोत्तम है, जहाँ भगवान् श्री कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति राधा के साथ नित्य प्रेम लीला में रत रहते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण के परिकर में सखा-सखी, गोप-गोपी आदि ब्रजवासी गण हैं। इनमें गोपियों का महत्व सबसे अधिक है। वे श्री कृष्ण की अनन्य सेविका और राधा की सखियों के रूप में उनकी लीलाओं में नित्य सहायक हैं। उनकी केवल यह इच्छा रहती है, वे राधा-कृष्ण का मिलन कराकर उनकी लीलाओं से स्वयं भी सुख प्राप्त करें। राधा की सखियाँ श्री कृष्ण की अहैतुकी प्रेमका हैं। उनका प्रेम निष्काम भाव का है। श्री कृष्णदास कविराज ने 'काम' और 'प्रेम' में अंतर बतलाते हुए कहा है, अपनी इंद्रिय-तृप्ति की वांछा 'काम' है, और श्री कृष्ण को प्रसन्न करने की इच्छा का नाम 'प्रेम' है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति वांछा तारे बलि 'काम'।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे 'प्रेम' नाम॥

भक्ति ही मोक्ष किंवा मुक्ति का साधन है। मुक्ति पाँच प्रकार की मानी गई है—१. सार्ष्टि, २. सारूप्य, ३. सालोक्य, ४. सामीप्य और ५, सायुज्य। इनमें से प्रथम चार प्रकार की मुक्ति की कामना भक्त जन कर सकते हैं, क्यों कि इनमें उन्हें भगवत्सेवा का परमानंद प्राप्त करने का अवसर मिलता है। वे सायुज्य भक्ति की कामना नहीं करते, क्यों कि इसमें भगवत्सेवा के लिए उनकी पृथक् सत्ता ही नहीं रहती है। चैतन्य मतानुसार सर्वोच्च श्रेणी का भक्त किसी भी प्रकार की मुक्ति को पसंद नहीं करता है। वह केवल वृंदाबन के माधुर्य की कामना करता है, ताकि उसे श्री कृष्ण से निष्काम प्रेम किंवा अहैतुकी भक्ति करने का नित्य सुअवसर प्राप्त हो। इस प्रकार की मुक्ति 'प्राप्ति' कहलाती है। चैतन्य महानुयायी भक्त की सर्वोपरि कामना 'वृंदावन-प्राप्ति' की होती है, जो श्री कृष्ण की निष्काम भक्ति करने से ही संभव है। यहाँ वृंदाबन से तात्पर्य अलौकिक और दिव्य प्रतीकात्मक नित्य वृंदाबन से है; किसी भौतिक स्थल विशेष से नहीं।

कृष्ण-भक्ति के प्रकार—

कृष्ण-भक्ति दो प्रकार की मानी गई है—१. वैधी भक्ति और २. राग भक्ति। शास्त्रोक्त विधि से श्री कृष्ण का भजन करना वैधी भक्ति है और श्री कृष्ण के प्रीत्यर्थ उनसे निष्काम प्रेम किंवा अहैतुकी भक्ति करना राग भक्ति कहलाती है। वैधी भक्ति के अनेक साधन हैं, जिनका विस्तृत विवेचन कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' में किया गया है। इन साधनों में पाँच सर्वश्रेष्ठ हैं,—१. साधु संग, २. नाम कीर्तन, ३. भागवत श्रवण, ४. मथुरा वास और ५. श्रीमूर्ति सेवन। राग भक्ति दो प्रकार की मानी गई है,—१. रागात्मिका और ३. रागानुगा। भगवान् श्री कृष्ण के नित्य परिकर ब्रजवासियों की भक्ति 'रागात्मिका' है, जो विधि-निषेध से सर्वथा परे है। कलिकाल में इस प्रकार की भक्ति असंभव है, और उसे करने का किसी को अधिकार भी नहीं है। इस समय तो भक्त जन श्री कृष्ण के नित्य परिकर नंद-यशोदा, गोप-गोपियों के अनुगत होकर 'रागानुगा' भक्ति ही कर सकते हैं। रागानुगा भक्ति भक्ति-तत्व की चरम अवस्था है, जिसे प्राप्त करना चैतन्य मत के परम भक्तों का सर्वोपरि लक्ष होता है।

भक्त के लिए आवश्यक गुण—

चैतन्य मत के अनुसार भक्ति-मार्ग के अनुयायी भक्तजनों में अतिशय दीनता, नम्रता और सहिष्णुता आदि गुणों का होना आवश्यक है। उन्हें स्वयं मान-प्राप्ति का इच्छुक न होकर दूसरों को आदर-मान देना चाहिए। चैतन्य महाप्रभु कृत 'शिक्षाष्टक' श्लोक ३ में बतलाया गया है कि भक्त को तृण से भी अधिक तुच्छ और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होना उचित है। इस मत में गुरु-सेवा को भी बड़ा महत्व दिया गया है। भक्त जन गुरु की कृपा से ही इष्ट को प्राप्त करने में समर्थ होता है। उसे ईश्वर, गुरु और मंत्र इन तीनों में अभिन्न दृष्टि रखनी चाहिए।

भक्ति में जाति-पाँति का भेद नहीं—

इस मत के अनुसार सब लोग समान रूप से ईश्वर-भक्ति कर सकते हैं। भक्ति-मार्ग में जाति-पाँति और उच्च-नीच का भेद-भाव नहीं होता है। सभी भक्त जन चाहें वे किसी जाति, कुल अथवा धर्म के हों, भगवान् श्री कृष्ण के चरणाश्रित होने के अधिकारी हैं। चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कहा है—

> **नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो,**
> **नाहं वर्णो न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।**
> **किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-**
> **र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥**

अर्थात्—मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य या शूद्र नहीं हूँ। मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं हूँ। किंतु मैं स्वयंप्रकाश निखिल परमानंदपूर्ण सुधासिंधु स्वरूप गोपीबल्लभ श्री कृष्ण-चरणारविंद के दास का भी दासानुदास हूँ।

चैतन्य महाप्रभु के जीवन-वृत्तांत और उनकी शिक्षाओं के व्याख्याता श्री कृष्णदास कविराज का कथन है—

> **नीच जाति नहे कृष्ण-भजने अयोग्य। सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य॥**
> **येई भजे सेइ बड़, अभक्त हीन छार। कृष्ण-भजने नाहि जाति-कुलादि विचार**
> **दीनेर अधिक दया करे भगवान। कुलीन-पंडित-धनीर बड़ अभिमान॥**

—चैतन्य चरितामृत, अन्त्यलीला, परि० ४

अर्थात्—नीच जाति होने से कृष्ण-भजन के अयोग्य और उच्च कुल के ब्राह्मण होने से ही उसके योग्य नहीं हो जाते। जो कृष्ण-भजन करे, वही बड़ा है। जो भक्तिशून्य है, वही नीच है। कृष्ण-भजन में जाति और कुल का विचार नहीं है। भगवान् जितनी दया दीनों पर करते हैं, उतनी कुलीन-पंडित-धनी लोगों पर नहीं; क्यों कि उन्हें अपने कुल-पांडित्य-धन का बड़ा अभिमान होता है।

चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारियों ने मुसलमान, अन्त्यज और निम्न वर्ग के लोगों को भी कृष्ण-भक्ति की शिक्षा दी थी। जगन्नाथपुरी में आज भी जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं है, बल्कि सभी जातियों के लोग एक पंक्ति में बैठ कर जगन्नाथ जी का प्रसाद ग्रहण करते हैं। यह चैतन्य मत की शिक्षा का ही परिणाम है।

हरिनाम-संकीर्तन—

चैतन्य मत के अनुसार कृष्ण-भक्ति का प्रथम और प्रमुख साधन हरिनाम-संकीर्तन है। चैतन्य महाप्रभु को संकीर्तन अत्यंत प्रिय था। उन्होंने अपने 'शिक्षाष्टक' में सर्व प्रथम संकीर्तन का ही गुण-गान किया है। श्री कृष्ण-दास कविराज का मत है, श्री कृष्ण का भजन करने के लिए नवधा भक्ति के अंतर्गत जो अनेक साधन बतलाये गये हैं, उनमें हरिनाम-संकीर्तन सबसे श्रेष्ठ है—

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति। कृष्ण-प्रेम कृष्णदिते धरे महा शक्ति॥
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम-संकीर्तन। निरपराधे नाम लैले पाय प्रेमधन॥

चैतन्य महाप्रभु को कीर्तन का पिता या प्रवर्तक कहा जाता है, किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि यह उनसे पूर्व भी प्रचलित था। डा० ग्रियर्सन के मतानुसार संकीर्तन मूलत: ईसाई धर्म की वस्तु है, जो भारतवर्ष में आने वाले आदिम ईसाइयों के प्रभाव से हिंदू धर्म में आई है। विद्वानों ने इस मत का खंडन कर सिद्ध किया है कि संकीर्तन का उद्गम स्थल भारतवर्ष ही है। यह निश्चित है, बंगाली वैष्णव-भक्ति पर बौद्ध महायान का काफी प्रभाव पड़ा है। नई खोजों से सिद्ध हुआ है, वैष्णव-भक्ति का प्रमुख अंग नाम-संकीर्तन भी मूलत: महायान मत की ही देन है। डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने बतलाया है—'आचार्य क्षितिमोहन सेन ने चीन और भारत के संकीर्तनों का साम्य देख कर यह निष्कर्ष निकाला है कि महायान मत ही संकीर्तन प्रथा का मूल उत्स है।'

संकीर्तन की प्रथा चाहें बौद्ध धर्म के महायान मत की ही देन हो, किंतु इसे सुसंस्कृत रूप में वैष्णव धर्मोपयोगी बनाने का श्रेय चैतन्य महाप्रभु को ही प्राप्त है। वैष्णव भक्ति संप्रदायों को यह उनकी सबसे बड़ी देन है। वाद्य यंत्रों के साथ सामूहिक रूप से भगवन्नाम का गायन करते हुए प्रेम-विह्वल हो जाने का नाम हरिनाम-संकीर्तन है। इसे इस रूप में निश्चय ही चैतन्य महाप्रभु ने प्रचारित किया था। इसलिए उन्हें संकीर्तन का प्रवर्त्तक या पिता भी कहा जाय तो अनुचित नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

वृहन्नारदीय पुराण के उक्त वचन की व्याख्या श्री चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, परि० १७ में इस प्रकार की गई है—

कलि काले नाम रूपे कृष्ण अवतार। नाम हैते हय सर्व जगत निस्तार॥
दार्ढ्य लागि हरेर्नाम उक्ति तिन वार। जड़ लोक बुझाइते पुनरेव कार॥

अर्थात्—कलिकाल में नाम के रूप में कृष्ण का अवतार है। नाम से ही समस्त जगत् का निस्तार होता है। दृढ़ता के लिए और जड़ लोगों को समझाने के लिए हरि नाम का तीन बार प्रयोग किया गया है।

निश्चय ही कलिकाल में हरिनाम-संकीर्तन भगवद्भक्ति का बहुत बड़ा साधन है। चैतन्य मत ने इसे प्रचारित कर जन-साधारण को कृष्ण-भक्ति के प्रति आकर्षित करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

अष्टकालीन लीलाओं का स्मरण और ध्यान—

भक्तिमार्ग में स्मरण और ध्यान का भी विशेष महत्व है। इससे भक्तों के मन में एकाग्रता और इष्टदेव के प्रति उनके भक्ति-भाव में दृढ़ता उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त भक्तों को अपने इष्टदेव की लीलाओं के चिंतन से अलौकिक आनद का भी अनुभव होता है। चैतन्य महानुयायी भक्तजनों में कृष्ण-लीलाओं के आकर-ग्रंथ रूप में श्रीमद्भागवत का बड़ा आदर है। उसमें श्री कृष्ण की अनेक नैमित्तिक लीलाओं का विस्तार पूर्वक कथन हुआ है; किंतु उसमें भक्तों की दैनिक उपासना की सुविधा के लिए उनके इष्टदेव की नित्य लीलाओं का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है। इस अभाव की पूर्ति के लिए रूपगोस्वामी ने पद्मपुराणोक्त पाताल खंड—वृंदाबन माहात्म्य के १४ वें अध्याय के आधार

पर 'स्मरण मंगल स्तोत्र' की रचना की थी। इस स्तोत्र के ११ श्लोकों में श्री कृष्ण की दैनिक लीलाओं की एक छोटी सी रूप-रेखा प्रस्तुत की गई है।

रूप गोस्वामी कृत 'स्मरणमंगल स्तोत्र' का विस्तार करते हुए अनेक कवियों ने वृहत् ग्रंथों की रचना की है। ये ग्रंथ वैष्णव भक्तों को बड़े प्रिय रहे हैं। इनमें कवि कर्णपूर कृत 'श्रीकृष्णाह्निक कौमुदी', कृष्णदास कविराज कृत 'गोविंद-लीलामृत' और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'श्रीकृष्ण भावनामृत' नामक संस्कृत काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'गोविंद लीलामृत' वृहत् ग्रंथ है। इसे कृष्णदास कविराज ने रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल स्तोत्र' के भाष्य रूप में रचा है। इसमें श्रीराधा-गोविंद की अष्टकालीन दैनंदिनी लीलाओं का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है। कालांतर में ब्रज के सिद्ध भक्त कृष्णदास बाबा जी ने अष्टकालीन लीलाओं से संबंधित प्रायः तीन हजार श्लोकों का एक वृहत् संकलन 'भावना-सार-संग्रह' के नाम से किया था। यह विशाल संग्रह ग्रंथ अपने विषय की उत्तम रचना है।

अष्टकालीन लीलाओं का आरंभ 'निशांत' लीला से होता है। इसके उपरांत क्रमशः प्रातः लीला, मध्याह्न लीला, अपराह्न लीला, सायं लीला, निशा लीला आदि का रस पूर्ण कथन किया जाता है। इन लीलाओं में राधा-कृष्ण के सरस कार्य-कलाप के साथ ही साथ उनकी लीलाओं में सहायक राधा की सखियों और मंजरियों तथा श्री कृष्ण के सखाओं की भी विविध चेष्टाओं का कथन किया जाता है।

चैतन्य मतानुयायी ब्रजभाषा कवियों ने 'स्मरण मंगल स्तोत्र' के आधार पर अपने 'अष्टयाम' ग्रंथों की रचना की है। इनमें माधुरी, प्रियदास, वैष्णवदास रसजानि, दक्षसखी, दामोदरदास, मधुसूदन गोस्वामी प्रभृत्ति कवियों की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। बंगला भाषा में भी अनेक कवियों ने अष्टकालीन लीलाओं संबंधी प्रचुर पदों की रचना की है। इसमें राय शेखर कृत बंगला पदावली गौड़ीय भक्तों में बड़ी प्रसिद्ध है।

भक्ति-रस—

चैतन्य मत की भक्ति-भावना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष रस सिद्धांत की मान्यता है। भक्ति को 'रस' रूप में प्रतिष्ठित कर उसका सांगोपांग कथन करने वाले सर्व प्रथम महानुभाव रूप गोस्वामी हैं। उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्ति-

रसामृत सिंधु' में भक्तिरस का सर्वांगपूर्ण विवेचन किया गया है। जीव गोस्वामी कृत 'षट् संदर्भ' में और कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' में भक्ति रस का विशद रूप में प्रतिपादन हुआ है। इस प्रकार रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज को चैतन्य मत में भक्ति-रस के निर्माता होने का गौरव प्राप्त है।

अपनी प्रिय वस्तु के प्रति सहज अनुराग को 'रति' कहते है। वैष्णव भक्तों की सर्वाधिक प्रिय वस्तु भगवान् श्री कृष्ण हैं, अतः उनके प्रति होने वाली रति को 'कृष्ण-रति' कहते हैं। इसकी परिपूर्णता ही 'भक्ति रस' है। कृष्णदास कविराज का कथन हैं, साधन भक्ति द्वारा बड़े भाग्य से कृष्ण-रति का उदय होता है। इस रति के गाढ़ी होने पर उसे 'प्रेम' कहते है। प्रेम की वृद्धि होने पर उसे क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव नाम दिये जाते हैं—

साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले तार प्रेम नाम कय॥
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह, मान, प्रणय।
राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥

—चैतन्य चरितामृत, मध्य लीला, परि० १९

जिस प्रकार ईख से रस, रस से गुड़, गुड़ से खाँड़, खांड़ से चीनी, चीनी से मिश्री और मिश्री से सितोपला की उत्पत्ति है, जिनमें एक दूसरे से बढ़ कर मधुरिमा होती है; उसी प्रकार कृष्ण-रति दृढ़ हो कर क्रमशः प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव में परिणत होती हुई उत्तरोत्तर माधुर्य को प्राप्त होती है। कृष्णदास कविराज कहते हैं,—ये प्रेम, स्नेह, भाव, महाभावादि कृष्ण-भक्ति रस के स्थायी भाव हैं। यदि इनमें उपयुक्त विभाव, अनुभाव, सात्विक, व्यभिचारी भाव मिलते हैं, तो वे कृष्ण भक्ति रस रूपी अमृत का आस्वादन कराते हैं—

एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव।
स्थायी भावे मिलि जदि विभाव अनुभाव॥
सात्विक, व्यभिचारी भावेर मिलने।
कृष्ण भक्ति रस हय अमृत आस्वादने॥

—चैतन्य चरितामृत, मध्य लीला, परि० १९

भक्ति-रस के भेद और उनका तारतम्य—

कृष्ण-भक्तों की रुचि और उनके स्वभाव के अनुसार 'कृष्ण-रति' शांता, प्रीता, प्रेयसी, अनुकम्पा और कांता नामक पाँच प्रकार की होती है। फलतः इनसे उत्पन्न भक्ति-रस भी निम्न लिखित पाँच प्रकार के होते हैं—

१. शांत, २. दास्य, ३. सख्य, ४. वात्सल्य और ५ मधुर।

जड़ जगत् में कांता रति निम्नतम कोटि की और शांता रति सर्वोच्च श्रेणी की मानी जाती है। इसके विपरीत भक्ति मार्ग में कांता रति सर्वश्रेष्ठ और शांता रति निम्नतम कोटि की मानी गई है। फलतः जड़ जगत् का सर्वश्रेष्ठ शांतरस भक्ति मार्ग में निम्नतम भक्तिरस है और जड़ जगत् का निम्नतम शृंगार रस भक्ति मार्ग में सर्वश्रेष्ठ मधुर किंवा उज्ज्वल रस कहा गया है।

कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य चरितामृत', मध्य लीला के १९ वें परिच्छेद में भक्ति रस के पूर्वोक्त पाँचों भेदों का तारतम्य उनके गुणों के आधार पर बतलाते हुए कहा है,——मधुर भक्ति रस में अन्य रसों के गुण तो होते ही हैं, किंतु उसमें कृष्ण-सुख की कामना से सर्वस्व समर्पण गुण की विशेषता होने से वह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उनका कथन है, शांत भक्ति रस में केवल एक गुण कृष्ण-निष्ठा का होता है, जब कि अन्य भक्ति रसों में उत्तरोत्तर अधिक गुण होते हैं। दास्य भक्ति में शांत भक्ति का गुण कृष्ण-निष्ठा तो है ही, उसमें कृष्ण-सेवा गुण की अधिकता है। सख्य भक्ति में कृष्ण-निष्ठा, कृष्ण-सेवा के अतिरिक्त कृष्ण में असंकोच बुद्धि गुण का आधिक्य है। वात्सल्य भक्ति में कृष्ण-निष्ठा, कृष्ण-सेवा और कृष्ण में असंकोच बुद्धि गुणों के अतिरिक्त कृष्ण के प्रति ममताधिक्य गुण की विशेषता है। मधुर भक्ति में पूर्वोक्त चारों भक्तियों के समस्त गुणों के अतिरिक्त कृष्ण के सुखार्थ सर्वस्व समर्पण की भावना का विशेष गुण होता है। इसलिये वह सर्वश्रेष्ठ भक्ति रस है।

मधुर रस का आस्वादन इंद्रियों का विषय तो है ही नहीं, वह मन और बुद्धि का भी विषय नहीं है। इसीलिए भक्ति ग्रंथों में इसकी साधना करने वाले के लिए अनेक कठिन नियमों के पालन करने का विधान किया गया है। मधुर रस के साधक का इंद्रिय, मन और बुद्धि पर पूर्ण रूपेण अधिकार और नियंत्रण होना आवश्यक है। उसे इस लोक के तो क्या, परलोक के भी समस्त भोग, यहाँ तक कि मुक्ति के अलौकिक सुखों की कामना भी छोड़नी पड़ती है। तभी वह मधुर भक्ति करने का अधिकारी हो सकता है।

कृष्णदास कविराज कृत भक्ति–रस–भेद विषयक पूर्वोक्त विवेचन का सार निम्नलिखित नक्शे में स्पष्ट किया गया है—

१. शांत भक्ति रस— १. कृष्ण-निष्ठा।

२. दास्य भक्ति रस— १. कृष्ण-निष्ठा, २. कृष्ण-सेवा।

३. सख्य भक्ति रस— १. कृष्ण-निष्ठा, २. कृष्ण-सेवा ३. कृष्ण में असंकोच बुद्धि।

४. वात्सल्य भक्ति-रस— १. कृष्ण-निष्ठा, २. कृष्ण-सेवा, ३. कृष्ण में असंकोच बुद्धि, ४. कृष्ण के प्रति ममताधिक्य।

५. मधुर भक्ति रस— १. कृष्ण-निष्ठा, २. कृष्ण-सेवा, ३. कृष्ण में असंकोच बुद्धि, ४. कृष्ण के प्रति ममताधिक्य, ५. कृष्ण सुखार्थ सर्वस्व-समर्पण।

संभोग और विप्रलंभ—

जड़ जगत् के शृंगार रस की भाँति भक्ति रस के भी संभोग और विप्रलंभ नामक दो भेद होते हैं। रूप गोस्वामी ने 'उज्ज्वल नीलमणि' ग्रंथ में कहा है—**"स विप्रलम्भो विज्ञेयः सम्भोन्नति कारकः।"** विप्रलंभ संभोग की उन्नति करता है, अतः रस व्यंजना में विप्रलंभ का स्थान संभोग की अपेक्षा उच्चतर है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायी भक्तों में श्री कृष्ण-विरह की विह्वलता विशेष रूप से दिखलाई देती है।

राधा-तत्व—

कृष्ण-भक्ति के मधुर रस की निष्पत्ति अधिकतर राधा-तत्त्व पर निर्भर है। राधा-कृष्णोपासक अन्य वैष्णव संप्रदायों की भाँति चैतन्य मत में भी राधा-तत्व का विशेष महत्व माना गया है। चैतन्य महानुयायी भक्त जन श्रीकृष्ण की ब्रज-लीलाओं में और उनके प्रधान स्रोत श्रीमद्भागवत में आस्था रखते हैं। ब्रज-लीलाओं की आधारभूता ब्रजेश्वरी राधा हैं; किंतु श्रीमद्भागवत में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। इसीलिए चैतन्य मत के सिद्धांत ग्रंथों के आरंभिक रचयिता वृंदाबन के गोस्वामियों को राधा की खोज-ढूँढ़ का विशेष प्रयास करना पड़ा था। उन्होंने श्रुतियों, स्मृतियों, तंत्रों और पुराणों में से राधा की प्राचीनता के प्रमाण संकलित किये है। प्रसिद्ध पुराणों में से उन्होंने पद्म पुराण और मत्स्य पुराण के राधा संबंधी कतिपय उद्धरण लिये हैं, किंतु

उन्होंने ब्रह्मवैवर्त पुराण में से कोई भी उद्धरण नहीं लिया। आज-कल ये पुराण जिस रूप में उपलब्ध हैं, उनमें राधा संबंधी अधिक उल्लेख मिलते हैं, विशेष कर ब्रह्मवैवर्त पुराण में। इससे अनुमान होता है, इन पुराणों में राधा संबंधी उल्लेखों की भरमार उक्त गोस्वामियों के बाद की गई है।

धार्मिक ग्रंथों में राधा का उल्लेख होने से बहुत पहिले ही उसका साहित्य में समावेश हो चुका था। प्राचीन साहित्य में राधा का प्रथम उल्लेख प्रतिष्ठानपुर के राजा हाल सातवाहन कृत 'गाहा सतसई' में हुआ है। प्राकृत गाथाओं के इस संकलन की रचना अब से प्राय: डेढ़-दो हजार वर्ष पूर्व हुई थी। इसका नामोल्लेख ७ वीं शती के बाणभट्ट ने अपने 'हर्ष चरित' में किया है। इसके बाद के कई संस्कृत काव्य-नाटकादि में राधा का उल्लेख बराबर हुआ है।

धर्म में राधा का प्रथम प्रवेश संस्कृत गीत-काव्य 'गीत गोविंद' और 'कृष्ण कर्णामृत' ग्रंथों द्वारा हुआ जान पड़ता है। इन ग्रंथों के रचयिता रसिकाचार्य जयदेव और लीलाशुक विल्वमंगल हैं, जिन्होंने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का माधुर्य-भक्तिपूर्ण गायन किया है। इससे ज्ञात होता है कि राधा का धर्म में प्रवेश काव्य के मधुर रस के माध्यम से हुआ था। गीत गोविंद की रचना बंगाल में और कृष्ण-कर्णामृत की रचना दक्षिण में १२ वीं शती के लगभग हुई थी। इसके बाद १३ वीं, १४ वीं, १५ वीं और १६ वीं शतियों में रची हुई बंगाल, बिहार और उड़ीसा के व्यापक भू-भाग में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला संबंधी धार्मिक रचनाएँ मिलती हैं। इनसे सिद्ध होता है, राधा का साहित्य से धर्म में प्रविष्ट होना किसी स्थल अथवा घटना विशेष का प्रभाव नहीं है, वरन् देशव्यापी कृष्ण-भक्ति के क्रमिक विकास का परिणाम है।

साहित्य, धर्म और दर्शन में राधा-तत्व के क्रमबद्ध विकास का विद्वता-पूर्ण विवेचन डा० शशिभूषण दासगुप्त ने 'श्री राधार क्रम-विकास' नामक अपने बंगला शोध प्रबंध में किया है। डा० दासगुप्त का मत है,–'राधा-तत्व के मूल में प्राचीन शक्ति तत्व निहित है। क्या विचार और क्या भाषा किसी भी दृष्टि से देखा जाय, शैव-शाक्त तंत्रोक्त शक्तिवाद और वैष्णव शक्तिवाद में कोई खास अंतर नहीं मालूम होता है। समजातीय भाव और विचार ही मानों भिन्न-भिन्न वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट हुए हैं।'

दासगुप्त महोदय का उपर्युक्त कथन बंगाल के विषय में ठीक है, जहाँ के वैष्णव धर्म और राधा-तत्व पर शाक्त धर्म का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। ऐसा

जान पड़ता है, मानों वहाँ पर शक्तिरूपिणी ही प्रेमरूपिणी होकर राधा के रूप में अवतरित हुई हो । यह प्रभाव चैतन्य महाप्रभु के पश्चात् विशेष रूप से लक्षित होता है, जब कि बंगाल में राधा-तत्व और परकीयावाद अभिन्न माने जाने लगे थे। बंगाल से अन्यत्र जहाँ राधा-तत्व का विकास हुआ है, वहाँ यह बात पूर्णतया ठीक नहीं मालूम होती है ।

बंगाल में राधा-तत्व के विकसित होने से पहिले ही दक्षिण भारत के वैष्णव संप्रदायों में लक्ष्मी-तत्व से राधा-तत्व का विकास हो चुका था । निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य के संप्रदायों में राधा-तत्व का जो विकास हुआ है, उस पर न तो शाक्त धर्म का प्रभाव है और न उनमें राधा को परकीया माना गया है । बंगाल में कृष्ण-भक्ति और राधा-तत्व के प्रवर्तक माध्व संप्रदाय के दाक्षिणात्य संन्यासी श्री माधवेन्द्रपुरी माने जाते हैं । उन्हीं की शिष्य-परंपरा में चैतन्यदेव भी थे, जो राधावाद के प्रधान प्रेरक होने के साथ ही साथ स्वयं भी राधा-भाव के प्रेमावेश में अहर्निश मग्न रहा करते थे । उनमें उस राधा महाभाव का अभ्युदय दक्षिण-यात्रा के पश्चात् ही हुआ था । चैतन्य मत में राधा-तत्व की प्रतिष्ठा का श्रेय रूप और जीव गोस्वामियों द्वारा ब्रज में रचे हुए ग्रंथों को है । जीव गोस्वामी कृत षट्संदर्भों में राधा-तत्व का सर्वाधिक सैद्धांतिक विवेचन हुआ है, किंतु इन ग्रंथों की रचना में दाक्षिणात्य गोपाल भट्ट गोस्वामी का सहयोग प्रसिद्ध है । इन बातों से सिद्ध होता है, चैतन्य मत का राधा-तत्व मूलतः दाक्षिणात्य विचार-धारा से अनुप्राणित है; किंतु वह बंगाल के व्यापक शाक्त धर्म से भी प्रभावित है । चैतन्यदेव द्वारा चंडीदास कृत परकीया प्रेम मूलक रचनाओं को मान्यता प्रदान करने से उक्त बंगाली प्रभाव को और भी अधिक बल मिला है ।

गौड़ीय गोस्वामियों के वृंदाबन आने से पहले ही ब्रज में निम्बार्क और मध्व के वैष्णव संप्रदायों ने कृष्ण-भक्ति और संभवतः राधा-तत्व का भी प्रचार कर रखा था। गौड़ीय गोस्वामियों के वृंदाबन-निवास के काल में ही ब्रज में सर्वश्री बल्लभाचार्य, हित हरिवंश और हरिदास स्वामी के भक्ति संप्रदायों का प्रचार हुआ था । इनके द्वारा प्रचारित राधा-तत्व पर शैव-शाक्त तंत्रोक्त शक्ति-वाद का प्रभाव नहीं कहा जा सकता है । यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है, वैष्णव संप्रदायों और शाक्त धर्मावलंवियों में बड़ा लंबा संघर्ष चला था । निर्गुण और सगुण दोनों विचारों के वैष्णव संतों और भक्तों ने शाक्त धर्म के प्रति अपनी

अरुचि दिखलाई है। उन्होंने शाक्तों की छाया से भी दूर रहना पसंद किया था। निर्गुण संत कबीर और सगुण भक्त हरिराम व्यास ने शाक्तों की बड़े कटु शब्दों में निंदा की है। ऐसी दशा में वैष्णव भक्तों की परमाराध्या राधा पर शैव-शाक्त तंत्रोक्त शक्तिवाद का प्रभाव समझना कहाँ तक ठीक होगा, यह विचारणीय है।

राधा-तत्व का विकास लक्ष्मी-तत्व से मानने पर भी उसके मूल के शक्ति-तत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता; क्यों कि लक्ष्मी स्वयं विष्णु की शक्ति हैं, और राधा श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति मानी जाती है। किंतु इस शक्ति-तत्व को सर्वत्र शैव-शाक्त तंत्रोक्त शक्तिवाद से जोड़ना उचित नहीं होगा। ब्रज के वैष्णव भक्ति संप्रदायों ने राधा-तत्व का निर्माण करते समय अत्यंत सावधानी से काम लिया है। उन्होंने एक ओर इसे शैव-शाक्त तंत्रोक्त शक्तिवाद के कलुषित प्रभाव से बचाया है, तो दूसरी ओर इसे परकीयत्व के अनर्थकारी दोष से भी मुक्त रखा है।

कृष्णदास कविराज ने चैतन्य मत में स्वीकृत राधा-तत्व का विस्तार पूर्वक विवेचन किया हैं। उन्होंने कृष्ण-तत्व और चैतन्य-तत्व की भाँति राधा-तत्व का भी निरूपण किया है। उनका कथन है, सच्चिदानद स्वरूप श्री कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति का सार प्रेम है। प्रेम का सार भाव और भाव की पराकाष्ठा का नाम महाभाव है। महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठकुरानी हैं, जो समस्त गुणों की खान और कृष्णकांताओं में सर्वश्रेष्ठ है। उनका चित्त, उनकी इंद्रियाँ और काया सभी कृष्ण-प्रेम से भरपूर हैं। वे कृष्ण की निज शक्ति हैं और उनकी क्रीड़ाओं में सहायक है—

ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव। भावेर परम काष्ठा नाम महाभाव ॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुरानी। सर्व गुण खनि कृष्णकांता शिरोमणी ॥
कृष्ण प्रेमे भावित जांर चित्तेन्द्रिय काय। कृष्ण निज शक्ति राधा क्रीड़ार सहाय

—चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, परि० ४

राधा पूर्ण शक्ति हैं और कृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। इन दोनों में कोई भेद नहीं है, यह शास्त्रों से प्रमाणित है। राधा-कृष्ण सदैव एक स्वरूप हैं। वे लीला रस के आस्वादन के लिए दो रूप धारण किये हुए हैं—

राधा पूर्ण शक्ति, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दुइ वस्तु भेद नाहिं शास्त्रेर प्रमाण ॥
राधा कृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप। लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप ॥

—चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, परि० ४

परकीया भक्ति—

चैतन्य मत की परकीया भक्ति राधा और गोपियों के कृष्ण-प्रेम पर आधारित है। कृष्णदास कविराज का कथन है, परकीया भाव में रस का अधिक उल्लास है, किंतु वह ब्रज से अन्यत्र संभव नहीं है। ब्रज की गोप बधुओं में यह भाव निरंतर विद्यमान है और राधा-भाव में इसकी परमावधि है—

परकीया भावे अति रसेर उल्लास। ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास॥
ब्रज वधू गणेर एइ भाव निरवधि। तार मध्ये श्री राधार भावेर अवधि॥

—चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, परि० ४

पुराणों से ज्ञात होता है, श्री कृष्ण के साथ अनेक प्रकार की लीलाएँ करने वाली गोपियाँ और राधा ब्रज के विविध गोपों की विवाहिता पत्नियाँ थीं। वे श्री कृष्ण से प्रेम करती थीं, अतः उन्हें श्री कृष्ण की प्रेमिका या प्रेयसी भी कहा जाता है। उनका यह आचरण श्रुति-स्मृति प्रतिपादित विधि मार्ग के विरुद्ध होने से अनुचित माना जा सकता है। इससे प्रत्येक व्यक्ति को शंका हो सकती है कि अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए अवतरित भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं इस प्रकार के अधर्माचरण को क्यों प्रोत्साहित किया था? भागवत् में रास-पंचाध्यायी के पश्चात् राजा परीक्षित द्वारा भी इसी प्रकार की शंका करने का कथन किया गया है। इसके समाधान में श्री शुकदेव मुनि ने कोई तात्विक विवेचन न कर सीधा सा यह उत्तर दिया था, 'तेजस्वी पुरुषों को अनुचित कार्य करने पर भी दोष नहीं होता है; जैसे अग्नि सब प्रकार के भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों को खाने पर भी उनके दोषों से दूषित नहीं होती है। भगवान् श्री कृष्ण तो परम तेजस्वी और सर्व सामर्थ्यवान् है, अतः वे सब प्रकार के दोषों से सर्वथा मुक्त हैं।'

भागवत की रचना के समय मध्य काल की भाँति भक्ति-तत्व समुचित रूप में विकसित नहीं हो पाया था और परकीयावाद भी तब तक एक तत्व के रूप में स्वीकृत नहीं हुआ था: अतः शुकदेव मुनि का उपर्युक्त उत्तर अधिक समाधान कारक ज्ञात नहीं होता है। मध्य काल के तात्विक विवेचकों ने परकीया भक्ति के समर्थन द्वारा इसका समाधान करने की चेष्टा की है।

मध्य काल में बंगाल प्रदेश बौद्ध-शाक्त तंत्रवाद का प्रधान गढ़ था। वहाँ धर्म के नाम पर परकीया प्रेम का प्रचार था। बौद्ध धर्म के सहजयान और

शाक्तों के वासनामूलक प्रेम-धर्म की पृष्ठभूमि पर बंगाली वैष्णव धर्म का विकास हुआ था। चैतन्य महाप्रभु ने एक ओर बंगाल के लोक धर्म को वैष्णव शास्त्रोक्त रूप प्रदान किया था और दूसरी ओर उन्होंने सहजिया पंथ के अनुयायी चंडीदास के परकीया प्रेम मूलक गीतों को भी मान्यता प्रदान की थी। इसलिए चैतन्य मत की कृष्ण-भक्ति में परकीया तत्व का समावेश हो गया है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में बतलाया है, चैतन्य महाप्रभु ने परकीया भाव की भक्ति को इसलिए स्वीकार किया कि इसमें रस का सर्वाधिक उल्लास होता है—**'परकीया भावे अति रसेर उल्लास'**।

चैतन्य मत में रागानुगा भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। रागानुगा भक्ति वैधी भक्ति से सर्वथा भिन्न है और इसमें विधि-निषेध का विचार भी नहीं है। परकीया प्रेम श्रुति सम्मत मार्ग के प्रतिकूल है, किंतु वह रागानुगा भक्ति में मान्य है।

चैतन्य देव के आदेशानुसार जब गौड़ीय गोस्वामी गण ब्रज-वृंदाबन में आये थे, तब वहाँ के वैष्णव संप्रदायों में भी प्रेम-भक्ति की धारा प्रवाहित थी; किंतु वह बंगाल की परकीया भक्ति से भिन्न स्वकीया भाव प्रधान थी। ब्रज के वैष्णव संप्रदायों में राधा जी को भी स्वकीया माना गया है। गौड़ीय गोस्वामी गण यद्यपि बंगाल के परकीया वाद से प्रभावित थे, तथापि ब्रज की स्वकीया भावना के कारण वे अपने ग्रंथों में स्पष्ट रूप से परकीया तत्व का समर्थन नहीं कर सके हैं।

गौड़ीय गोस्वामियों ने अपने ग्रंथों में चैतन्य मत की भक्ति-भावना को सैद्धांतिक आधार पर स्थापित किया है, किंतु जो परकीया भक्ति इस मत की विशेषता मानी जाती है, उसे उन्होंने तत्वतः स्वीकार नहीं किया। राधा के परकीयत्व दोष के निवारणार्थ ही कदाचित रूप गोस्वामी कृत 'ललित माधव नाटक' में और जीव गोस्वामी कृत 'गोपाल चम्पू' में राधा-कृष्ण का विवाह कराया गया है। पुराणों में उल्लिखित ब्रज के विविध गोपों के साथ राधा और गोपियों के वैवाहिक संबंध के विषय में गोस्वामियों का कथन है, वे विवाह स्वयं राधा और गोपियों के साथ न होकर उनके माया-विग्रहों के साथ हुए थे, अतः यथार्थ नहीं थे। राधा और गोपियाँ तो सदैव कृष्ण के साथ थीं, जब कि उनकी छायाएँ योग माया के प्रभाव से गोपों के घरों में निवास करती थीं।

गोस्वामियों के ग्रंथों मे परकीया प्रेम का समर्थन न होना उनका हार्दिक मत ज्ञात नहीं होता है । इस संबंध में दिये हुए उनके तर्को से ऐसा ग्राभास होता है कि वे ब्रज के स्वकीया प्रधान वातावरण के कारण ही इस प्रकार का कथन करने को विवश हुए थे । जीव गोस्वामी ने 'उज्ज्वल नीलमणि' की स्वकीय टीका 'लोचन रोचनी' मे परकीयावाद के विरुद्ध मत प्रकट करते हुए भी अपनी विवशता इस प्रकार स्वीकार की है -

स्वेच्छया लिखितं किंचित् किंचिदत्र परेच्छया ।
यत् पूर्वापरसम्बन्धं तत् पूर्वापरं परम् ।।

कृष्णदास कविराज इस प्रकार की दुविधा में नहीं पड़े है । उन्होंने स्पष्ट रूप से परकीया भक्ति का समर्थन किया है । कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' चैतन्य मत की सामूहिक विचार-धारा का प्रतिनिधि ग्रंथ है, अतः इसमें प्रतिपादित परकीया भक्ति को ही चैतन्य मत की विशिष्ट भक्ति-भावना का वास्तविक रूप मानना चाहिए ।

जीव गोस्वामी के उत्तर काल में बौद्ध-शाक्त सहजिया पंथों के प्रभाव से बंगाल के चैतन्य मतानुयायी भक्तों में भी सहजिया विचार-धारा की प्रबलता हो गई थी । उस समय चैतन्य मत के अंतर्गत सहजिया वैष्णवों ने परकीया भक्ति का जोर-शोर से प्रचार किया था । इसकी गूँज ब्रज में भी हुई थी, जिसके कारण वहाँ भी परकीया भक्ति का प्रचार होने लगा था । जीव गोस्वामी के पश्चात् ब्रज के गौड़ीय वैष्णवों के नेता विश्वनाथ चक्रवर्ती थे । उन पर बंगीय वातावरण का विशेष प्रभाव था । उन्होंने दृढ़ता पूर्वक परकीया भक्ति का समर्थन किया है। जीव गोस्वामी के परकीया संबंधी विचारों पर अपना मत प्रकट करते हुए उन्होंने 'उज्ज्वल नीलमणि' की स्वकीया टीका 'आनंद चंद्रिका' में लिखा है,—'मै श्री जीव गोस्वामी के उसी अभिमत को मानता हूँ, जिसे उन्होने स्वेच्छा पूर्वक व्यक्त किया है, अन्य प्रकार से लिखा हुआ उनका मत मुझे माननीय नहीं है—

अत्र श्री जीव गोस्वामि चरणान्तु यन्मतम् ।
स्वेच्छाभिमत मतेन्मे माननीयं न चेतरत ।।

विश्वनाथ चक्रवर्ती के समय में रूप कविराज नामक एक गौड़ीयभक्त ने चैतन्य मत के वाह्य धर्माचारों के विरुद्ध आवाज उठाई थी । उसने आंतरिक भक्ति के नाम पर ऐसी कुत्सित साधना प्रचलित करने की चेष्टा की थी, जिससे चैतन्य मत की साख कम होने की आशंका थी । चक्रवर्ती महोदय ने

रूप कविराज को शास्त्रार्थ में परास्त कर उसका बहिष्कार कर दिया। चक्रवर्ती जी के पश्चात् बंगाल के सहजिया वैष्णवों ने परकीया भक्ति को प्रचारित करने के जोश में वृंदाबन के गोस्वामियों पर भी आक्षेप करना आरंभ किया। वे अपने को चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित राग-मार्ग का वास्तविक अनुयायी मानते थे और चैतन्य मत के माननीय गोस्वामियों को विधि-मार्ग के प्रचारक बतलाते थे! सहजिया वैष्णवों की यह अनर्गल बात तो चैतन्य मत में मान्य नहीं हुई, किंतु परकीया भक्ति इस मत की भक्ति-भावना का प्रमुख अग बन गई।

श्री चैतन्य अवतार—

संन्यासी होने से पूर्व ही चैतन्य देव को श्रीकृष्ण का अवतार मान लिया गया था। इसकी सर्व प्रथम घोषणा अद्वैताचार्य जैसे वयोवृद्ध कृष्ण-भक्त ने तब की थी, जब चैतन्य देव गयाधाम से वापिस आकर नवद्वीप में कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने लगे थे। इसके बाद उनके अलौकिक आचरणों को देख कर नवद्वीप के सभी कृष्ण-भक्तों को विश्वास हो गया था कि चैतन्य देव निश्चय ही अवतारी पुरुष हैं। संन्यासी होने के पश्चात् जब वे नीलाचल में निवास करने लगे, तब उनकी कृष्ण-विरह जन्य प्रेम-विह्वलता के कारण उन्हें राधा का भी अवतार समझा जाने लगा। इस प्रकार वे राधा-कृष्ण के सम्मिलित अवतार माने गये और गौड़ीय भक्तों ने उनकी इसी रूप में पूजा की।

चैतन्य देव के अवतार लेने के दो कारण बतलाये गये हैं। एक कारण वहिरंग हैं, जो गौण है। दूसरा कारण अंतरंग है, जो मुख्य है। वहिरंग अर्थात् गौण कारण प्रेम-भक्ति, हरिनाम-संकीर्तन आदि का प्रचार कर हरि-भक्तों को सुख देना है। अंतरंग अर्थात् मुख्य कारण स्वयं राधा-भाव से प्रेम-रस का आस्वादन करना है। इस अंतरंग कारण का अभिप्राय यह है, राधा ने जिस प्रकार कृष्ण के प्रेम और उनकी रूप-माधुरी का आस्वादन किया था, उसी प्रकार स्वयं अपने प्रेम और रूप-माधुर्य का आस्वादन कर राधा के सुख का अनुभव किया जाय। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य-अवतार के इस अंतरंग कारण पर विशेष जोर देते हुए उन्हें राधा-कृष्ण के सम्मिलित रूप में अवतार लेने का प्रतिपादन किया है। वैसे उन्होंने कहीं पर उन्हें परब्रह्म का और कहीं पर कृष्ण का अवतार भी लिखा है, किंतु मुख्य रूप से उन्हें राधा-कृष्ण का सम्मिलित अवतार ही बतलाया है।

जैसा लिखा जा चुका है, चैतन्यदेव के समय में ही उन्हें अवतार मान लिया गया था; अतः उनके समकालीन कवियों ने उनका इसी रूप में गुण-गान करना आरंभ कर दिया था। फिर बाद के कवियों ने उसका और भी विशद रूप में वर्णन किया है। चैतन्य के समकालीन कवियों में से मुरारि गुप्त ने और उनके अंतरंग पार्षद स्वरूप दामोदर ने अपने संस्कृत 'कड़चा' काव्यों में उन्हें राधा-कृष्ण का सम्मिलित अवतार स्वीकार किया है। उनके इन कथनों में चैतन्य-अवतार का समस्त गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। स्वरूप दामोदर के कड़चा में उल्लिखित इस अभिप्राय का एक श्लोक यहाँ दिया जाता है—

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यञ्चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभा-
त्तद्भावाढ्यः समजनि शची गर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥

अर्थात्, जिस प्रेम द्वारा मेरी अद्भुत मधुरिमा का राधा आस्वादन करती है, वह प्रणय-महिमा कैसी है, और राधा के प्रणय द्वारा आस्वादित मेरी वह मधुरिमा कैसी है, तथा इसके अनुभव में राधा को जो सुख होता है, वह कैसा है; इसी लोभ से शची माता के गर्भ रूपी सिंधु से चैतन्य रूपी चंद्रमा ने राधा-भाव से जन्म लिया है।

जगन्नाथपुरी में सार्वभौम भट्टाचार्य से वेदांत श्रवण करने के उपरांत चैतन्य देव ने ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर जो मार्मिक विचार प्रकट किये थे, उनमें भट्टाचार्य जैसे विद्वत् शिरोमणि ने भी उन्हें अवतारी पुरुष समझ कर निम्न श्लोक द्वारा उनका स्तवन किया था—

वैराग्य-विद्या-निजभक्तियोगे, शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

अर्थात्, वैराग्य, विद्या और निज भक्तियोग की शिक्षा देने के लिए जिन्होंने श्री कृष्णचैतन्य का शरीर धारण किया है, उन कृपासिंधु पुराणपुरुष के मैं शरणापन्न होता हूँ।

रूप गोस्वामी ने अपनी 'स्तवमाला' में भी चैतन्य के इस अवतारी रूप की ओर संकेत किया है। उनके बाद कवि कर्णपूर कृत **'चैतन्य चरितामृत'** और **'चैतन्य चंद्रोदय नाटक'** जैसी संस्कृत भाषा की रचनाओं में तथा कृष्णदास कविराज कृत **'श्री चैतन्य चरितामृत'** और नरोत्तमदास, गोविंददास,

ज्ञानदास, राय शेखर प्रभृति कवियों की रची हुई पदावली जैसी बंगला भाषा की रचनाओं में चैतन्यदेव द्वारा राधा-कृष्ण के सम्मिलित अवतार लेने की बात कही गई है। वैष्णवों में चैतन्यावतार के प्रति इतनी श्रद्धा है कि वे राधा-कृष्ण से भी अधिक चैतन्य में आस्था रखते हैं। उनकी मान्यता है, चैतन्य में दशों अवतारों की स्थिति है, वे स्वयं भगवान् है, उनका मनोहर अवतार राधा-भाव के प्रकाशनार्थ हुआ है—

दशावतारा अस्यैव चैतन्यो भगवान् स्वयम् ।
राधा-भाव प्रकाशनार्थं अवतारो मनोहरः ।।

चैतन्य महाप्रभु के पश्चात् कुछ बंचकों ने बंगाल में उनके और भी अवतारों का प्रचार किया था। ऐसे कुछ अवतारों का उल्लेख वृंदाबनदास कृत 'चैतन्य भागवत' में भी हुआ है। उन नकली अवतारों की पोल शीघ्र खुल गई, और उक्त बंचकों को मुँह की खानी पड़ी थी।

चैतन्य मतानुयायी कवियों ने चैतन्यदेव की नवद्वीप लीलाओं का कथन राधा-कृष्ण की वृंदावन लीलाओं के समान ही किया है। रूपगोस्वामी की प्रेरणा से इस मत के कवियों ने राधा-कृष्ण की अष्टकालीन दैनंदिनी लीलाओं का स्मरण और ध्यान करने के लिए अनेक रचनाएँ की हैं। कालांतर में चैतन्यदेव की अष्टकालीन लीलाओं से संबंधित कुछ भावपूर्ण कविताएँ भी लिखी गईं; जो बंगाल के गौड़ीय भक्तों में अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं।

चैतन्य मत के अंतर्गत नरहरि सरकार द्वारा प्रवर्तित भक्तिवाद के अनुसार चैतन्य देव रसराज रूप श्री कृष्ण से तत्वत: अभिन्न होते हुए भी सर्वसाध्य शिरोमणि हैं। इसलिए नरहरि सरकार के अनुयायी गण चैतन्य को परमतत्व और वेदों का सार मान कर एक मात्र उन्हीं की सेवा-पूजा करते हैं। वे लोग चैतन्यदेव के जन्म-दिवस पर व्रत रखते हुए अनेक उत्सवादि भी करते हैं।

बंगाल के अनेक मंदिरों में चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठित है। वहाँ पर उनकी सेवा-पूजा बड़ी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक होती है। चैतन्य जी की मूर्ति बनाने की प्रथा कब से चली, इसके संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती है। ऐसा माना जाता है, चैतन्य महाप्रभु के संन्यासी हो जाने पर जब उनकी पत्नी विष्णुप्रिया जी को असह्य विरह-वेदना होने लगी, तब उसे शांत करने के लिए उनके घर में सर्वप्रथम चैतन्यदेव की मूर्ति स्थापित की गई थी। इसके बाद अन्य स्थानों में भी चैतन्य-मूर्तियों की स्थापना और उनकी सेवा-पूजा का प्रचलन हुआ था।

६. दार्शनिक सिद्धांत

दार्शनिक विभाग और द्वैतवाद—

चैतन्य मत का माध्व संप्रदाय से घनिष्ट संबंध है, अतः इस मत के दार्शनिक सिद्धांत पर लिखने से पूर्व माध्व सिद्धांत का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। वैष्णव धर्म के विभिन्न संप्रदायों में भारतीय चिंतन और मनन के निष्कर्ष स्वरूप श्रेयष्कर विचार-धारा का विस्तार किया गया है। इस विचार-धारा की शाखा-प्रशाखाएँ भारतीय दर्शन के विविध विभागों से संपुष्ट हुई हैं। भारतीय दर्शन में माध्व सिद्धांत की क्या स्थिति है, इसे जानने के लिए दार्शनिक विभाग की रूप-रेखा का कुछ ज्ञान होना आवश्यक है।

इस विश्व में अचेतन और चेतन दो प्रकार के पदार्थ हैं। अचेतन विषयक विचार-शास्त्र 'विज्ञान' कहलाता है और चेतन संबंधी निर्णय-शास्त्र 'दर्शन' कहा जाता है। 'दर्शन' को मुख्य रूप से वैदिक और अवैदिक दो भागों में विभाजित करते हैं। फिर इन दोनों दार्शनिक विभागों में से प्रत्येक के ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी उपभेद होते हैं। इस प्रकार दर्शन के चार विभाग हुए— १. ईश्वरवादी वैदिक दर्शन, २. अनीश्वरवादी वैदिक दर्शन, ३. ईश्वरवादी अवैदिक दर्शन, और ४. अनीश्वरवादी अवैदिक दर्शन।

ईश्वरवादी वैदिक दर्शनों में 'उत्तर मीमांसा' अर्थात् वेदांत दर्शन मुख्य है। उसमें भी दो मार्ग हैं,—१. निर्विशेष ब्रह्मवाद और सविशेष ब्रह्मवाद। निर्विशेष ब्रह्मवाद 'अद्वैतवाद' कहलाता है। सविशेष ब्रह्मवाद पाँच प्रकार का है,— १. विष्णुपरक, २. शिवपरक ३. शक्तिपरक, ४. सूर्यपरक, और ५. गणपति-परक। विष्णुपरक ब्रह्मवाद के चार दार्शनिक उपविभाग किये जाते हैं,— १. विशिष्टाद्वैतवाद, २. शुद्धाद्वैतवाद, ३. द्वैताद्वैतवाद और ४. द्वैतवाद।

दर्शन के इन भेदों का कारण क्या है, इस पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। भारतीय तत्व ज्ञान के विभिन्न वादों का प्रधान लक्ष यह निश्चय करना है कि ब्रह्म, जीव और जगत् का स्वरूप तथा उनका प्रकृत संबंध किस प्रकार का है। उपनिषदों और उनके सार रूप ब्रह्मसूत्रों में ऐसे अनेक वचन मिलते हैं, जिनसे ब्रह्म, जीव और जगत् विषयक स्पष्ट अर्थ का आभास नहीं होता है। इसी द्विविधा के विवेचन, विश्लेषण और स्पष्टीकरण के

लिए समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि और निष्ठा के अनुसार ब्रह्मसूत्र-भाष्यों की रचना की है। इन भाष्यों में शंकराचार्य का शारीरक भाष्य, रामानुजाचार्य का श्री भाष्य, निंबार्काचार्य का वेदांत पारिजात सौरभ भाष्य, मध्वाचार्य का पूर्णप्रज्ञा भाष्य और वल्लभाचार्य का अणु भाष्य विशेष प्रसिद्ध हैं। इन भाष्यों में उक्त आचार्यो ने ब्रह्म और जीव से संबंधित अपने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। मध्व संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत 'द्वैतवाद' कहलाता है। यही सिद्धांत कुछ परिवर्तन के साथ चैतन्य मत में भी स्वीकृत हुआ है।

माध्व संप्रदाय का द्वैतवाद—

माध्व संप्रदायी द्वैतवाद के आदि प्रवर्त्तक ब्रह्माजी माने जाते हैं, इसीलिए इसे 'ब्रह्म सप्रदाय' भी कहा जाता है। लोक में इसके सर्व प्रथम उपदेष्टा श्री मध्वाचार्य जी हुए हैं, जिनके नाम पर इसे 'माध्व संप्रदाय' कहते हैं। माध्व संप्रदाय का द्वैतवाद शांकर अद्वैतवाद के सर्वथा प्रतिकूल और उसका सबसे प्रबल विरोधी है। विशिष्टाद्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद भी अद्वैतवाद का विरोध करते हैं, अतः उन्हें भी एक प्रकार से द्वैतवाद की कोटि में रखा जा सकता है। पुरुष और प्रकृति केवल दो तत्वों की सत्ता मानने वाला सांख्य मत भी एक प्रकार से द्वैतवाद ही है; किंतु माध्व संप्रदाय का द्वैतवाद इन सब से भिन्न है। वास्तविक अर्थ में मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित सिद्धांत ही सच्चा द्वैतवाद है।

श्री मध्वाचार्य जी का जन्म मदरास प्रदेश के मंगलूर जिला के अंतर्गत उडूपी क्षेत्र में हुआ था। उनका जन्म-काल विक्रम की १३ वीं शती माना जाता है। उनके पिता का नाम नारायण भट्ट और माता का नाम वेदमती था। कहते हैं, आरंभ में उन्होंने अद्वैत मत के अंतर्गत संन्यास की दीक्षा ली थी, किंतु उक्त दार्शनिक सिद्धांत से उन्हें संतोष नहीं हुआ; अतः उन्होंने इसके विरुद्ध अपना द्वैत मत प्रचलित किया था।

उन्होंने अनेक स्थानों की यात्राएँ की और विभिन्न मतों के विद्वानों से शास्त्रार्थ कर अपने मत का प्रचार किया। उन्होंने जीवन पर्यंत मायावाद के खंडन, भगवद्भक्ति के प्रचार और मर्यादा मार्ग की स्थापना का प्रयास किया। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की और ब्रह्मसूत्र, गीता आदि पर भाष्य लिखे। ब्रह्मसूत्रों पर उनका पूर्णप्रज्ञा भाष्य द्वैतवाद का प्रधान प्रामाणिक ग्रंथ है। उनका देहावसान विक्रम की १४ वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ था।

श्री मध्वचार्य के द्वैतवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह यह शंकर के अद्वैतवाद के बिलकुल प्रतिकूल है। श्री शंकराचार्य ने कर्म प्रधान जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध करते हुए अद्वैत की स्थापना की है। इससे समस्त दृश्यमान जगत् झूठा मानना पड़ता है। उनके इस सिद्धांत से लोक जीवन में रुचि उत्पन्न नहीं हो सकती, क्यों कि जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह उनके मतानुसार भ्रम मात्र है—इसमें सत्य कुछ भी नहीं है। श्री मध्वाचार्य जीवन की वास्तविकता को नहीं भूलते और सच्ची व्यवहारिकता एवं जीवन को रुचि-पूर्ण बनाने का आधार उपस्थित करते हुए द्वैतवाद की स्थापना करते हैं।

माध्व सिद्धांत—

मध्वाचार्य के सिद्धांतानुसार दो पदार्थ या तत्व मुख्य हैं, जो स्वतंत्र और अस्वतंत्र हैं। स्वतंत्र तत्व परमात्मा है, जो विष्णु के नाम से प्रसिद्ध है, और जो सगुण तथा सविशेष है। अस्वतंत्र तत्व जीवात्मा है। ये दोनों तत्व नित्य और अनादि हैं तथा इनमें वास्तविक भेद है। समस्त जगत् परमात्मा से उत्पन्न है, अतः उसी के समान सत्य है। शंकराचार्य के मतानुसार यह जगत् भ्रमात्मक तथा मिथ्या है।

इस सिद्धांत में विष्णु ही सर्वोपरि तत्व माने जाते हैं। वे समस्त देवताओं में श्रेष्ठ हैं। विष्णु ही अखिल विश्व के सृष्टा, पालक और संहारक हैं। जीव अनादि काल से माया-मोहित एवं बद्ध है। उसका एक मात्र कर्त्तव्य विष्णु भगवान् की सेवा करना है। यही उसका परम पुरुषार्थ है। भगवान् की कृपा से ही वह सारूप्य तथा सालोक्य मुक्ति प्राप्त कर वैकुंठ में निवास करता हुआ आनंद प्राप्त करता है। वैकुंठ की प्राप्ति ही जीव की मुक्ति है। मुक्तावस्था में भी जीव की पृथक् स्थिति रहती है। मध्वाचार्य के समस्त सिद्धांतों की संक्षिप्त रूप-रेखा निम्न लिखित दो श्लोकों में व्यक्त हुई है—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्वतो।
भेदो जीवगणा हरेनुचरा नीचोच्चभावं गताः॥
मुक्तिर्नैज सुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधने।
ह्यक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैक वेद्यो हरिः॥

उपर्युक्त श्लोकों में ६ बातें बतलाई गई हैं,—१. हरि अर्थात् विष्णु सर्वोच्च तत्व है। २. जगत् सत्य है। ३ ब्रह्म और जीव का भेद वास्तविक है।

४. जीव ईश्वराधीन है। ५. जीवों में तारतम्य है। ६. आत्मा के आंतरिक सुखों की अनुभूति ही मुक्ति है। ७. शुद्ध और निर्मल भक्ति ही मोक्ष का साधन है। ८, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण है। ९. वेदों द्वारा ही हरि जाने जा सकते हैं। ये ९ बातें ही माध्व सिद्धांत के मूल तत्व हैं।

चैतन्य सिद्धांत—

चैतन्य मत का विकास माध्व संप्रदाय के अंतर्गत हुआ है। इसीलिए इसे 'माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय' भी कहते हैं। मध्वाचार्य के पश्चात् द्वैतवाद के अन्यतम प्रचारक चैतन्यदेव ही हुए हैं। मध्वाचार्य के द्वैतवाद का विकसित रूप चैतन्य सिद्धांत है। इसमें दार्शनिकता की अपेक्षा उपासना और भक्ति-भावना की विशेषता है।

चैतन्य सिद्धांत की संक्षिप्त रूप-रेखा निम्न श्लोक में व्यक्त हुई है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृंदावन-
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्-
श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो ना परः ॥

अर्थात्–भगवान् श्री कृष्ण एक मात्र आराध्य हैं और उनका धाम वृंदाबन है। उनकी आराधना का आदर्श ब्रज-गोपियों की उपासना है। श्रीमद्भागवत प्रमाण ग्रंथ है और प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है।

सभी धर्माचार्यो और मत-प्रवर्त्तकों ने अपने-अपने सिद्धांतों के समर्थन में विविध ग्रंथों की रचना की है और ब्रह्मसूत्र-गीता आदि के भाष्य लिखे है। चैतन्यदेव ने न तो किसी स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की और न ब्रह्मसूत्र आदि पर कोई भाष्य ही लिखा। उनके प्रमुख सहकारी नित्यानंद-अद्वैताचार्य ने भी कोई ग्रंथ-रचना नहीं की। चैतन्य महाप्रभु ने समय-समय पर अपने भक्तों और अनुचरों को जो उपदेश दिये थे, इन्हीं से उनके सिद्धांतों का ज्ञान होता है। चैतन्यजी की शिक्षा के आधार पर ही रूप-सनातन गोस्वामियों ने अपने ग्रंथों की रचना की है। उनमें चैतन्य मत के भक्ति-सिद्धांत का सर्व प्रथम प्रामाणिक विवेचन हुआ हैं। चैतन्य मत के दार्शनिक सिद्धांत का प्रथम विवेचन जीव गोस्वामी के ग्रंथों में किया गया है। जीव गोस्वामी के अनंतर कृष्णदास कविराज ने अपने 'चैतन्य चरितामृत' में चैतन्य मत के भक्ति-सिद्धांत के साथ ही

साथ उसके दार्शनिक सिद्धांत का भी स्पष्टीकरण किया है। जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज ने चैतन्य देव के दार्शनिक सिद्धांत के रूप में 'अचिन्त्य भेदाभेद' की प्रतिष्ठा की है, किंतु उनमें से किसी ने भी इसके समर्थन में ब्रह्मसूत्रों का भाष्य नहीं लिखा। यह कार्य १८ वीं शती में बलदेव विद्याभूषण द्वारा संपन्न हुआ था। बलदेव का ब्रह्मसूत्रों पर किया हुआ 'गोविंद भाष्य' चैतन्य मत के दार्शनिक सिद्धांत 'अचिन्त्य भेदाभेद' का एक मात्र प्रामाणिक ग्रंथ है।

चैतन्य मत में आरंभ से ही अनेक विद्वान होते रहे हैं। फिर भी इस मत के समर्थन में ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना इतने विलंब से क्यों हुई, इसका विशिष्ट कारण है। चैतन्य मत में श्रीमद्भागवत सर्वोपरि प्रमाण ग्रंथ माना जाता है। चैतन्यदेव के मतानुसार यह ब्रह्मसूत्र का भी सर्वोपरि भाष्य है। ब्रह्मसूत्र और भागवत दोनों के रचयिता व्यास मुनि हैं। यदि कोई लेखक स्वयं ही अपने ग्रंथ पर भाष्य लिखता है, तो वह अपने मत को भली भाँति स्पष्ट कर सकता है। दूसरा व्यक्ति चाहे कितना ही योग्य हो, वह मूल रचयिता के भावों को उतनी अच्छी तरह व्यक्त करने में सफल नहीं हो सकता। इसलिए भागवत के रूप में स्वयं व्यास मुनि कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य की विद्यमानता से चैतन्य महाप्रभु किसी अन्य भाष्य की आवश्यकता नही समझते थे। वैसे उन्होंने मध्वाचार्य कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य को भी अपने मत में मान्यता प्रदान की थी; क्यों कि वह अधिकतर भागवत के अनुकूल है। जहाँ उसका कथन भागवत से कुछ प्रतिकूल ज्ञात होता था, वहाँ वे उसका भागवत से समन्वय करने पर बल देते थे। बलदेव विद्याभूषण के समय में जो धार्मिक विवाद उठ खड़ा हुआ था, उसके कारण ब्रह्मसूत्रों से भी चैतन्य मत का समर्थन किये जाने की अनिवार्य आवश्यकता हो गई थी। इसकी पूर्ति बलदेव विद्याभूषण ने अपने 'गोविंद भाष्य' से भली प्रकार की है। चैतन्य मत की मान्यता के अनुसार 'गोविंद भाष्य' भागवत के सर्वथा अनुकूल है, और इसमें इस मत के दार्शनिक सिद्धांत 'अचिन्त्य भेदाभेद' का ब्रह्मसूत्रों से समर्थन किया गया है।

अचिन्त्य भेदाभेद—

कृष्णदास कविराज कृत 'श्री चैतन्य चरितामृत' में अचिन्त्य भेदाभेद का मुख्य सूत्र इस प्रकार बतलाया गया है—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश॥

श्री कृष्ण का नित्य दासत्व ही जीव का स्वरूप है। यह भेदाभेद प्रकाश द्वारा श्री कृष्ण की तटस्था शक्ति रूप है। श्री कृष्ण विभुचित् हैं और जीव अणुचित् है। दोनों का धर्म चेतनता होने से दोनों में 'अभेद' है। श्री कृष्ण विभु हैं और जीव अणु है, इसलिए दोनों में 'भेद' है। इस प्रकार परमात्मा और जीवात्मा के स्वरूप का यह भेदाभेद सिद्धांत बतलाया गया है।

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में जीव को अपनी परा और जड़ जगत् को अपरा प्रकृति बतलाया है। प्रकृति को ही शक्ति कहते हैं। शक्ति की सत्ता शक्तिमान् से पृथक् ज्ञात नहीं होती, इसलिए उन दोनों में परस्पर अभेद है और शक्ति का कार्य शक्तिमान् से पृथक् ज्ञात होता है, इसलिए इन दोनों में परस्पर भेद है। श्रीकृष्ण के साथ इस प्रकार जीव और जगत् का भेदाभेद संबंध है। यह संबंध नित्य और सत्य है, किंतु मानव के लिए अचिन्त्य है, अर्थात् उसकी चिंता से बाहर है। यह "अचिन्त्य भेदाभेद" ही चैतन्य मत का दार्शनिक सिद्धांत है।

पहले लिखा जा चुका है, अचिन्त्य भेदाभेद का गंभीर दार्शनिक विवेचन चैतन्य मत में सर्व प्रथम जीव गोस्वामी के ग्रंथों में हुआ है। उन्होंने इसका समर्थन भागवत के आधार पर किया है। जीव गोस्वामी के उपरांत बलदेव विद्याभूषण ने इसकी पुष्टि ब्रह्मसूत्र के स्वकीय गोविंद भाष्य द्वारा की है। यहाँ पर बलदेव विद्याभूषण के मतानुसार 'अचिन्त्य भेदाभेद' का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

बलदेव विद्याभूषण ने 'गोविंद भाष्य' में मुख्य तत्व पाँच माने हैं— १. ईश्वर, २. जीव, ३. प्रकृति, ४. काल और ५. कर्म। ईश्वर स्वतंत्र, विभु चैतन्य, सर्वकर्त्ता, सर्वज्ञ, मुक्तिदाता और विज्ञान स्वरूप है। वह जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। अपनी अचिन्त्य शक्ति के बल से वह स्वयं जगत् में परिणत होने पर भी स्वरूप से अविकृत रहता है। २. जीव अणु चैतन्य, अनादि किंतु मायामोहित और बद्ध है। ईश्वर की विमुखता ही उसके बंधन का कारण है। ईश्वर की कृपा से जीव के बंधन कट जाते हैं और वह मुक्ति को प्राप्त करता है। मुक्त जीव ब्रह्म के समान आनंद प्राप्त करता हुआ भी उससे पृथक् बना रहता है। वह अणु रूप होने के कारण स्वरूप तथा सामर्थ्य में विभुरूप ब्रह्म से पृथक् है। प्रकृत्ति नित्य और ब्रह्म की शक्ति रूपा है।

वह ब्रह्म के आश्रित और उसकी वशवर्तिनी है। ४. काल परिवर्तनशील जड़ द्रव्य है। वह प्रलय-सृष्टि का निमित्त रूप है। ५. कर्म अनादि, नश्वर और जड़ है। वह ईश्वर की शक्ति का रूप है।

उपर्युक्त पाँच तत्वों के अतिरिक्त गोविंद भाष्य में १. अधिकारी, २. संबंध, ३. विषय और ४. प्रयोजन नामक चार अनुबंधों का निर्णय किया गया है। बलदेव विद्याभूषण ने श्री मध्वाचार्य द्वारा मान्य नौ प्रमेयों को भी स्वीकार किया है। इनका विस्तार पूर्वक विवेचन उन्होंने अपनी पृथक् पुस्तक 'प्रमेय रत्नावली' में किया है।

बलदेव के मतानुसार भक्ति मुख्य साधन है, जिसके पाँच भेद हैं,— १. शांत, २. दास्य, ३. सख्य, ४. वात्सल्य और ५. मधुर। ज्ञान और वैराग्य भक्ति के सहकारी साधन हैं। भक्ति ज्ञानरूपिणी और आनंददायिनी है। भक्ति मार्ग की तीन उत्तरोत्तर अवस्थाएँ हैं,–१. साधन, २. भाव और ३. प्रेम। प्रेम जीव का नित्य धर्म है। यही परम पुरुषार्थ है और जीव के प्रयत्न का चरम फल है। जगत् का कर्त्ता और निमित्त कारण ब्रह्म है, जो स्वयं जगत् रूप में परिणत होता है। इसीलिए जगत् सत् है, किंतु वह अनित्य है। मुक्ति साध्य है, किंतु वह भगवान् की कृपा से ही प्राप्त होती है।

माध्व संप्रदाय से संबंध—

चैतन्य मत का जन्म और विकास माध्व संप्रदाय के अंतर्गत हुआ है, किंतु चैतन्य देव तथा उनके अनुगामी भक्तों के उपदेश, चिंतन-मनन और विचार-विमर्श के फल स्वरूप इसकी जो प्रगति हुई, उसके कारण यह मत पूर्णतया माध्व संप्रदाय के अनुकूल नहीं रह सका। इस मत के विद्वान गोस्वामियों ने अपने सिद्धांत ग्रंथों की रचना में माध्व संप्रदाय का कोई आग्रह नहीं दिखलाया है, बल्कि आवश्यकतानुसार उसके विरुद्ध भी अपना मत प्रकट किया है। १८ वीं शती में वैष्णव संप्रदायों के धार्मिक विवाद के कारण ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी कि नये वैष्णव मतों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए पुराने वैष्णव संप्रदायों में से किसी एक के साथ अपना संबंध जोड़ना आवश्यक हो गया था। उस समय बलदेव विद्याभूषण ने, चैतन्य मत की स्वतंत्र सत्ता मानते हुए भी, इसे माध्व संप्रदाय के अंतर्गत रखना स्वीकार किया। बलदेव के बाद जब उस संकटकालीन स्थिति का अंत हो गया, तब चैतन्य मत के तत्कालीन विद्वानों को इसे पूर्णतया माध्व संप्रदाय के अंतर्गत ही रखने में कोई सार्थकता

ज्ञात नहीं हुई। फलतः इसका पृथक् अस्तित्व स्वीकार किया गया और माध्व संप्रदाय से इसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता की स्पष्ट घोषणा की गई। माध्व संप्रदाय और चैतन्य मत में किन बातों में एकता है और किन बातों में विरोध है, इस पर यहाँ संक्षिप्त रूप में विचार किया जाता है।

माध्व संप्रदाय और चैतन्य मत दोनों ही ब्रह्म और जीव की भिन्नता में विश्वास रखते हैं। दोनों में ब्रह्म को सगुण, सविशेष और विभु-चेतन, तथा जीव को अणु-चेतन और भगवान् का सेवक माना जाता है। दोनों में समान रूप से जीव की मुक्ति भगवान् की कृपा से ही मानी जाती है। दोनों में जगत् को सत्य और ब्रह्म का परिणाम माना जाता है। माध्व संप्रदाय जहाँ ब्रह्म और जीव की चिर भिन्नता मानता है, वहाँ चैतन्य मत में गुण और गुणी भाव से जीव और ब्रह्म की भिन्नता के साथ अभिन्नता भी स्वीकृत है। इसी लिए माध्व संप्रदाय को पूर्ण द्वैतवादी और चैतन्य मत को अचिन्त्य भेदाभेदवादी कहा जाता है। जिन बातों में चैतन्य मत की माध्व संप्रदाय से पूरी तरह भिन्नता है, उन्हें निम्न लिखित नकशे में बतलाया गया है—

माध्व संप्रदाय में—	चैतन्य मत में—
१. विष्णु सर्वोच्च तत्व हैं।	१. कृष्ण सर्वोच्च तत्व हैं।
२. भगवान् के सभी पूर्णावतार हैं। उनमें से किसी की भी उपासना की जा सकती है।	२. कृष्ण ही पूर्णावतार हैं। वे स्वयं भगवान् हैं। दूसरे उनके अंशावतार हैं। कृष्ण ही एक मात्र उपास्य हैं।
३. सकर्मा भक्ति श्रेयष्कर है।	३. शुद्धा भक्ति श्रेयष्कर है।
४. दास्य भक्ति से भगवान् की प्राप्ति होती है।	४. दास्य के अतिरिक्त शांत, सख्य, वात्सल्य और मधुर भक्ति से भगवान् की प्राप्ति होती है।
५. ऐश्वर्य-प्रधान भक्ति की विशेषता है।	५. माधुर्य-प्रधान भक्ति की विशेषता है।
६. देवता गण श्रेष्ठ हैं।	६. ब्रज-गोपिका गण श्रेष्ठ है।
७. उच्च वर्णों के भक्त जन ही मोक्ष के अधिकारी हैं।	७. उच्च-नीच सभी वर्णों के भक्त जन समान रूप से मोक्ष के अधिकारी हैं।
८. महाभारत सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है।	८. भागवत सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि चैतन्य मत और माध्व संप्रदाय का क्या संबंध है। उनमें किन बातों में एकता है और किन बातों में भिन्नता है।

७. पतन और उत्थान

अनुशासन और एकता का अभाव—

बलदेव विद्याभूषण के समय तक बंगाल-उड़ीसा के चैतन्य मतानुयायी भक्तों पर वृंदाबन के गौड़ीय विद्वानों का किसी न किसी रूप में धार्मिक अनुशासन था। उन विद्वानों में से अधिकांश बंगाली थे, जो वृंदाबन में निवास करने के कारण बंगाल और ब्रज दोनों प्रदेशों के वातावरण से परिचित होते थे। उनका यह प्रयास रहता था कि बंगाल, उड़ीसा और ब्रज के चैतन्य मतानुयायी भक्तों की धार्मिक मान्यता में समन्वय और संतुलन होकर एकसूत्रता बनी रहे। बलदेव के समय में ही औरंगजेबी अत्याचारों के फल स्वरूप ब्रज का धार्मिक महत्व बहुत कम हो गया था। चैतन्य मत के सुप्रसिद्ध देवालयों के नष्ट-भ्रष्ट होने से उनके देव-विग्रह ब्रज से अन्यत्र ले जाये जा चुके थे। बलदेव के बाद होने वाले नादिरशाह और अहमदशाह के आक्रमणों ने तो ब्रज के रहे-सहे महत्व को भी नष्ट-प्राय: कर दिया। ऐसी दशा में बंगाल और उड़ीसा के चैतन्य मतानुयायी भक्तों पर वृंदाबन का अनुशासन समाप्त हो गया और परंपरागत एकसूत्रता भंग हो गई। बलदेव के पश्चात् वृंदाबन में चैतन्य मत का कोई ऐसा विद्वान भी नहीं हुआ, जो बंगाल और ब्रज की एकसूत्रता बनाये रखने में समर्थ होता।

सहजिया वैष्णवों की वासनामयी साधना और चैतन्य मत का पतन—

बौद्ध-शाक्त तंत्रवाद के कारण बंगाल का धार्मिक वातावरण चैतन्य महाप्रभु के समय से ही परकीया-प्रधान रहा है; किंतु वह वृंदाबनस्थ गोस्वामियों के प्रभाव से ब्रज के स्वकीया-वातावरण से समन्वित होकर संतुलित भी रहता रहा है। जब ब्रज का अंकुश बंगाल पर से हट गया, तब वहाँ के परकीयावाद ने और भी जोर पकड़ा। इसके फल स्वरूप चैतन्य मत के अंतर्गत सहजिया वैष्णवों की प्रबलता हो गई। उन्होंने बंगाली जनता में वृंदाबन के गौड़ीय गोस्वामियों की मान्यता के विरुद्ध अपनी वासनामयी परकीया भक्ति का प्रचार किया।

सहजिया विचार-धारा के अनुसार प्रत्येक साधक को अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त एक उपपत्नी भी रखना आवश्यक होता था; ताकि वह उसे राधा और अपने को कृष्ण समझ कर अपनी वासनामयी प्रेम-लीला की साधना कर सके। राग-मार्ग में विधि-निषेध का विचार न होने से सहजिया लोग चैतन्य मत में स्वीकृत सेवा-पूजा आदि धर्माचारों से भी अपने को मुक्त समझते थे।

चैतन्य मत के सर्वोच्च उपास्य भगवान् श्री कृष्ण के प्रति भी सहजिया वैष्णवों की उतनी आस्था नहीं थी, जितनी उन्हें इस कुत्सित साधना की प्रेरणा देने वाले तथाकथित गुरुओं के प्रति थी। वे लोग खान-पान के बंधन से भी बँधे हुए नहीं थे। सहजिया वैष्णवों के लिए निरामिष भोजी होना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार स्वच्छंदतापूर्ण आचार-विचार के प्रलोभन में पड़ कर बंगाल-उड़ीसा की चैतन्य मतानुयायी जनता सहजिया पंथ में सम्मिलित होने लगी। उसी परिस्थिति में चैतन्य मत के अंतर्गत 'वैरागी-वैरागिन' पंथ का जन्म हुआ। सहजिया और वैरागी वैष्णवों की हीन साधना के कारण चैतन्य मत का पतन होने लगा और वह विचारवान व्यक्तियों की नजरों से गिर गया।

पुनरुत्थान का प्रयत्न—

चैतन्य मत को इस दुखद पतन से बचाकर उसके पुनरुत्थान का प्रयत्न भी बंगाल की अपेक्षा ब्रज में ही हुआ था। अब से प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व ब्रज के गोवर्धन ग्राम में एक सच्चा वैष्णव भक्त 'सिद्ध बाबा' के नाम से विद्यमान था। उसने श्री कृष्ण और चैतन्यदेव की अष्टकालीन लीलाओं से संबंधित रचनाओं का एक वृहत् संकलन किया था, जिससे चैतन्य मत की तत्कालीन विकृत भक्ति-भावना के परिष्कृत होने में बड़ी सहायता मिली थो। सिद्ध बाबा और उसके सुयोग्य शिष्य सिद्ध कृष्णदास बाबा के निर्मल आचरण और निष्काम सेवा-भावना से किये गये सद् प्रयत्नों के कारण चैतन्य मत की उखड़ी हुई ख्याति की जड़ फिर से जमने लगी। इसके फल स्वरूप इस मत का पुनरुत्थान होने लगा।

चैतन्य मत के पुनरुत्थान में आधुनिक प्रचार के साधकों से भी बड़ी सहायता मिली है। चैतन्य जी के अस्तित्व-काल से ही इस मत के विद्वान समय-समय पर अनेक ग्रंथों की रचना संस्कृत और बंगला भाषाओं में करते रहे है। मुद्रण यंत्र के प्रचलन से इन ग्रंथों के प्रकाशन की सुविधा हो गई, जिससे इनका व्यापक प्रचार होने लगा। अगरतला के महाराज वीरचंद्र माणिक्य बहादुर, कासिम बाजार के महाराज मणीन्द्रचंद्र नंदी और तराश, जिला पावना के रायबहादुर बनमाली राय की आर्थिक सहायता से चैतन्य मत के दुर्लभ ग्रंथों को खोज-खोज कर बंगाली अनुवाद सहित प्रकाशित कराया गया। पत्र-पत्रिकाओं और सभा-समतियों द्वारा चैतन्य मत के प्रचार का आयोजन किया गया। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप पिछली एक शताब्दी में ही यह मत दृढ़ता पूर्वक अपने पैरों खड़ा हो गया और अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करने में समर्थ हो सका।

षष्ठम परिच्छेद

चैतन्य मत का साहित्यिक गौरव

★

१. संस्कृत साहित्य

चैतन्य महाप्रभु, उनके सहकारी और आरंभिक भक्त जन सभी संस्कृतज्ञ विद्वान थे। उन्होने सस्कृत भाषा के न्याय, वेदांत और भक्ति विषयक प्राचीन ग्रंथों का भली भाँति अध्ययन किया था। जिन ग्रंथो ने चैतन्य मत को सर्वाधिक प्रभावित किया है, उनमें सर्व प्रथम नाम श्रीमद्भागवत का आता है। इसके अनंतर हरिवंश, विष्णु पुराण, पद्म पुराण और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के नाम लिये जा सकते हैं। भागवत की टीकाओं में चैतन्य महाप्रभु ने श्रीधर स्वामी की टीका को मान्यता प्रदान की थी। इस मत के विद्वानों ने बाद में जो भागवत की टीकाएँ लिखीं, वे प्राय: श्रीधरी टीका के अनुकूल हैं।

अपनी दक्षिण-यात्रा में चैतन्य महाप्रभु ने 'ब्रह्मसंहिता' और 'कृष्ण-कर्णामृत' ग्रंथों को प्राप्त किया था। उन्होंने अपने भक्तों को इनके अध्ययन-मनन का आदेश दिया था। फलत: चैतन्य मत में जिन प्राचीन संस्कृत ग्रंथों ने मान्यता प्राप्त की है, उनमें 'ब्रह्म संहिता' और 'कृष्ण-कर्णामृत' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चैतन्य मतानुयायी विद्वानों ने इन ग्रंथों की टीकाएँ भी की हैं।

जयदेव कृत 'गीत गोविंद' चैतन्य महाप्रभु को अत्यंत प्रिय था। वे इसका गायन सुनकर आनंद-विभोर हो जाते थे। चैतन्य मत के गीत-काव्यों में 'गीतगोविंद' का सर्वोपरि स्थान है। जयदेव की इस अमर रचना ने चैतन्य मत के अतिरिक्त सभी वैष्णव संप्रदायों की माधुर्यमयी उपासना को प्रेरणा प्रदान की है। साहित्यिक दृष्टिकोण से भी इसका बड़ा महत्व है, क्यों कि विभिन्न भाषाओं के भक्त कवियों की अनेक रचनाएँ 'गीत गोविंद' से प्रभावित हैं।

इनके अतिरिक्त संस्कृत की और भी अनेक रचनाएँ चैतन्य मत में मान्य हैं। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है,—वोपदेव कृत 'मुक्ताफल', विष्णुपुरी कृत 'भक्ति रत्नावली', श्रीधर दास कृत 'सदुक्ति कर्णामृत', ईश्वरपुरी कृत 'श्रीकृष्ण लीलामृत' और लक्ष्मीधर कृत 'नाम कौमुदी'। चैतन्य मत के हरिनाम संकीर्तन को 'नाम कौमुदी' से बहुत प्रेरणा मिली है।

चैतन्य महाप्रभु ने किसी दार्शनिक विवाद में न पड़ कर सीधे-सादे भक्ति-धर्म का प्रचार किया था, अतः उन्होने वैष्णव धर्म के अन्य संप्रदायाचार्यों की भाँति अपने मत की पुष्टि के लिए वेदांत-भाष्य करने की आवश्यकता नहीं समझी थी। वे श्रीमद्भागवत को ही सर्वोत्तम वेदांत-भाष्य मानते थे। वैसे वे श्री मध्वाचार्य के ब्रह्मसूत्र-भाष्य को भी अपने मत में मान्य समझते थे।

यद्यपि चैतन्य महाप्रभु और उनके प्रमुख सहकारियों ने स्वयं ग्रंथ-रचना न कर पूर्वोल्लिखित ग्रंथों को ही अपने मत में मान्यता प्रदान की थी, तथापि उनके अनुयायी विद्वान भक्तो ने संस्कृत भाषा में विशाल साहित्य का निर्माण किया है। विविध विषयो से सम्पन्न यह समृद्धिशाली साहित्य चैतन्य मत की महत्वपूर्ण निधि है। इस मत के विशाल संस्कृत साहित्य में से प्रमुख ग्रंथों का विषयानुक्रम से यहाँ नामोल्लेख किया जाता है—

सिद्धांत, दर्शन, संदर्भ—

शिक्षाष्टक, वृहत् भागवतामृत, हरिभक्ति रसामृत सिंधु, उज्ज्वलनीलमणि, लघु भागवतामृत, षट संदर्भ कारिका, षट संदर्भ (१. तत्व संदर्भ, २. भगवत् संदर्भ, ३. परमात्म संदर्भ, ४. कृष्ण संदर्भ, ५ भक्ति संदर्भ, ६. प्रीति संदर्भ) सर्व संवादिनी, क्रम संदर्भ, राग वर्त्म चंद्रिका, ऐश्वर्य कादंबिनी (विश्वनाथ), ऐश्वर्य कादंबिनी (बलदेव), माधुर्य कादंबिनी, सिद्धांतरत्न, प्रमेय रत्नावली, वेदांत स्यमंतक, सिद्धांत दर्पण, भक्त भूषण संदर्भ, भक्ति विवेक, भक्ति रस तरंगिणी, प्रमाण लक्षण, कथा लक्षण, तत्व संख्यान, तत्व विवेक, तत्वोदय, श्री कृष्ण भक्ति प्रकाश, भक्ति सिद्धांत रत्न, श्री राधाकृष्णार्चन दीपिका, माध्वसिद्धांत सार, न्याय सुधा, न्यायामृत, गीता तात्पर्य निर्णय, भागवत तात्पर्य, महाभारत तात्पर्य, उपाधि खंडन, मायावाद खंडन, प्रपंच मिथ्यात्वानुमान खंडन, श्री कृष्ण चैतन्य संदर्भ, श्री गदाधर संदर्भ, भक्ति भूषण संदर्भ, मनः शिक्षा, वृषभानुपुर रहस्य, नंदीश्वर चंद्रिका, श्री चैतन्य रहस्य।

स्तोत्र, स्तव, विरुदावली—

प्रेम रसायन स्तोत्र, युगल परिहार स्तोत्र, राधा रस मंजरी, श्री कृष्ण लीला स्तव, स्मरणमंगल स्तोत्र, निकुंज रहस्य स्तव, स्तवावली, गोपाल विरुदावली, स्तवमाला, स्तवामृतलहरी, गोवर्धन स्तव, लीलास्तव, गोविंदविरुदावली, निकुंजकेलि विरुदावली, गौरांग विरुदावली, श्री कृष्ण विरुदावली, नरसिंह नख स्तोत्र, द्वादश स्तोत्र, कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र, रूप-सनातन स्तोत्र, गौरांग स्तोत्र।

भाष्य, टीका, व्याख्या—

वैष्णव तोषिणी, दिग्दर्शिनी, कृष्णवल्लभा, दुर्गम संगमनी, लोचन रोचनी, लघु तोषिणी, भक्तिरसामृत-शेष, गायत्री व्याख्या विवृत्ति, गोपाल तापनी टीका, योगसार स्तोत्र टीका, सारंग रंगदा, रसिकाह्लादिनी, भक्तिरसामृतसिंधु-बिंदु, उज्ज्वल [illegible], भागवतामृत-[illegible], ब्रजरीति चिंतामणि, सारार्थ दर्शिनी, सारार्थ वर्षिणी, भक्तिसार प्रदर्शिनी, आनंद चंद्रिका, सुखवर्तिनी, सुबोधिनी, महती, ब्रह्मसंहिता टीका, हंसदूत टीका, चैतन्य चरितामृत टीका, गौर विनोदिनी वृत्ति, राधा माधव भाष्य, गोविंद भाष्य, छंद कौस्तुभ भाष्य, बलदेव कृत भागवत टीका, उपनिषद टीका, गोपाल तापनी टीका, षट संदर्भ टीका, लघु भागवतामृत टीका, नाटक चंद्रिका टीका, स्तत्वमाला टीका, श्यामानंद शतक टीका, तत्वोदय टीका वृत्ति, उपनिषद वृत्ति, रसिकास्वादिनी, गीता भाष्य, दानकेलि कौमुदी टीका, ललित माधव टिप्पणी, विदग्ध माधव विवृत्ति, वैष्णवानन्दिनी, हंसदूत टीका, गीता भूषण भाष्य, लघु भागवतामृत टिप्पणी, रसिकरंगदा, तत्व संदर्भ की टीका, स्तवमाला विभूषण भाष्य, छंद कांतिमाला, कृष्ण भावनामृत टीका, स्तत्वावली काशिका, सदानंदविधायिनी, बालतोषिणी, अर्थ रत्नालय दीपिका, तत्वोदय टीका, तत्वसंख्यान टीका, तत्वविवेक टीका, प्रपंचमिथ्यात्वानुमान खंडन टीका, मायावाद खंडन टीका, विष्णुतत्व निर्णय टीका, उपाधि खंडन टीका, विजयध्वजी टीका।

स्मृति—

हरिभक्ति विलास, साधन दीपिका, सत्क्रियासार दीपिका, संस्कार दीपिका, पद्धति प्रदीप, श्री कृष्णाभिषेक, भक्तिचंद्रिका पटल, सदाचार स्मृति।

काव्यादि—

हंसदूत, उद्धव संदेश, पद्यावली, मुक्ता चरित, प्रेम संपुट, माधव महोत्सव, राधा-कृष्ण चैन दीपिका, चैतन्य चंद्रामृत, गोविंद लीलामृत, गौरांग लीलामृत, संगीत माधव, चैतन्य चरितामृत, कृष्णभावनामृत, श्री गौर कृष्णोदय, संकल्प कल्पद्रुम, प्रेम पत्तन, आश्चर्य रास प्रबंध, चमत्कार चंद्रिका, ब्रज रीति चिंतामणि, शुकदूत, आर्याशतक, चैतन्य शतक, नवद्वीप शतक, श्यामानंद शतक, वृंदाबन शतक।

कड़चा—

स्वरूप दामोदर कड़चा, मुरारि गुप्त कड़चा (श्रीकृष्ण चैतन्य चरितामृत)।

साहित्य, अलंकार, छंद—

साहित्य कौमुदी, काव्य कौस्तुभ, नाटक चंद्रिका, अलंकार कौस्तुभ, छंद कौस्तुभ, छंद समुद्र ।

नाटक, रूपक आदि—

जगन्नाथ वल्लभ, विदग्ध माधव, ललित माधव, दानकेलि कौमुदी, दानकेलि चिंतामणि, चैतन्य चंदोदय, प्रेमांकुर नाटक ।

चम्पू—

गोपाल चम्पू, भावार्थ सूचक चम्पू, आनंद वृंदावन चम्पू, गौरांग चम्पू, मधुकेलि वल्ली, राधा माधवोदय, राम रसायन, कौतुकांकुर, शृंगार हारावली ।

व्याकरण—

धातु संग्रह, हरिनामामृत व्याकरण, प्रयुक्ताख्यात चंद्रिका, शीघ्रबोध ।

परिचय—

श्री राधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका, गौर गणोद्देश दीपिका, पंडित गोस्वामी शाखा निर्णयामृत, नरहरि शाखा निर्णय, रघुनंदन शाखा निर्णय, गौर गण चंद्रिका, चैतन्य संहिता ।

माहात्म्य—

मथुरा माहात्म्य, वृंदावन महिमामृत, वृंदावन लीलामृत, ब्रज भक्ति-विलास, ब्रजोत्सव चंद्रिका, ब्रजोत्सवाह्लादिनी, वृहत् ब्रजगुणोत्सव, ब्रज प्रदीप ।

२. बंगला साहित्य

वर्तमान काल में बंगला साहित्य अत्यंत समृद्धिशाली माना जाता है, किंतु चैतन्य महाप्रभु से पूर्व इसमें रामायण- महाभारत के आधार पर रची हुई दो-चार रचनाओं तथा चंडी-मनसा जैसी लोक देवियों से संबंधित कतिपय गीतों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था । बंगला साहित्य की समृद्धि का अधिकांश श्रेय चैतन्य महाप्रभु को है, जिनके अनुयायी भक्त जनों ने अपनी भक्तिपूर्ण रचनाओं से इस साहित्य को प्रगति के पथ पर अग्रसर किया है ।

बंगला साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण भाग इसका पदावली साहित्य है । इसका आरंभ यद्यपि चैतन्य महाप्रभु से पूर्व हो गया था, तथापि इसकी वास्तविक उन्नति उनके काल में अथवा उनके पश्चात् ही हुई है । इसकी वास्तविक उन्नति का एक मात्र श्रेय चैतन्य मतानुयायी भक्त कवियों को है ।

चैतन्य-पूर्व के पदावली-रचयिताओं में चंडीदास और मालाधर वसु के नाम उल्लेखनीय हैं। चंडीदास १५वीं शती के कवि माने जाते हैं, किंतु उनका यथार्थ समय अनिश्चित है। 'चैतन्य चरितामृत' के अनुसार वे चैतन्य महाप्रभु के पूर्ववर्ती थे और उनकी रचनाओं का गायन सुनकर चैतन्य जी को अतीव आनंद प्राप्त होता था। चंडीदास की पदावली बंगला गीत-काव्य की प्राचीनतम रचना मानी जाती है, जो 'श्रीकृष्ण कीर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है। मालाधर वसु के 'श्रीकृष्ण विजय काव्य' की पूर्ति सं० १५३७ के लगभग हुई थी। इस रचना पर प्रसन्न होकर गौड़ेश्वर शमसुद्दीन शाह ने उन्हें 'गुणराज खां' की उपाधि से सन्मानित किया था। गौड़ेश्वर हुसैनशाह के राज्यकाल (सं० १५५०-१५७५) में उसके दरवारी हिंदू कवि 'यशोराज खाँ' ने भी कृष्ण लीला विषयक एक काव्य की रचना की थी, जो इस समय उपलब्ध नहीं है। 'यशोराज खाँ' उक्त कवि की उपाधि थी। उसका नाम क्या था, यह ज्ञात नहीं होता है।

मैथिल-कोकिल विद्यापति चैतन्य देव के पूर्ववर्ती पद-रचयिताओं में सब से अधिक प्रसिद्ध है। उनकी रचनाएँ भी चैतन्य देव को अत्यंत प्रिय थीं। बंगाली विद्वान विद्यापति की पदावली को आरंभिक बंगला काव्य की कृति मानते हैं, किंतु वास्तव में वे मैथिली बोली की रचनाएँ हैं, जिनका स्थान हिंदी साहित्य के अंतर्गत है। विद्यापति की पदावली से बंगला और हिंदी भाषाओं के अनेक पद-रचयिता कवियों को बड़ी प्रेरणा मिली है।

चैतन्य अनुयायी भक्त कवियों द्वारा रचा हुआ विशाल बंगला साहित्य उपलब्ध है। इसका विस्तार पूर्वक विवेचन करना अप्रासंगिक होगा। इसकी कुछ प्रमुख रचनाओं का नामोल्लेख ही यहाँ पर निम्नानुसार से किया जाता है—

जीवनी—

चैतन्य भागवत, चैतन्य चरितामृत, चैतन्य मंगल (लोचनदास कृत), चैतन्य मंगल (जयानंद कृत), गोविंददास कृत कड़चा, अद्वैत मंगल, अद्वैत प्रकाश, सीतागुण कदंब, प्रेम विलास, नित्यानंद वंश विस्तार, वीरचंद्र चरित्र, भक्ति रत्नाकर, नरोत्तम विलास, श्यामानंद प्रकाश।

सिद्धांत, दर्शन, उपासना आदि—

प्रेम भक्ति चंद्रिका, रस भक्ति चंद्रिका, उपासना पटल, आश्रय निर्णय, स्वरूप कल्पतरु, सिद्धांत चंद्रोदय, तत्वविलास, भक्तितत्व चिंतामणि, सिद्धांतचंद्रिका, दुलभ सार, गोविंद रति मंजरी, रस पुष्प कलिका, शिक्षा दीपिका, प्रार्थना।

टीका, अनुवाद आदि—

जगन्नाथ वल्लभ नाटक (लोचनदास कृत अनुवाद) स्मरण मंगल अनुवाद, रस कदंब (श्री कृष्ण संहिता पर आधारित), श्री राधा-कृष्ण लीला रस कदंब (विदग्ध माधव का आधार), दानलीला चंद्रामृत (दान केलि कौमुदी अनुवाद), गोविंद लीलामृत अनुवाद, कृष्ण कर्णामृत अनुवाद, कृष्ण प्रेम तरंगिणी (भागवत का अनुवाद), संगीत माधव (रूप गोस्वामी के नाटक का अनुवाद)।

कृष्ण लीला—

श्रीकृष्ण मंगल (माधव आचार्य कृत), श्रीकृष्ण मंगल (कृष्णदास कृत), कृष्ण लीलामृत, गोपाल विजय, गोविंद मंगल।

पदावली—

चैतन्य मतानुयायी अनेक कवियों का अपार पद-साहित्य उपलब्ध है। इसकी रचना विद्यापति के अनुकरण पर उनकी जैसी भाषा 'ब्रजबुली' में हुई है। बंगला भक्ति साहित्य में 'ब्रजबुली' में रची हुई पदावलियों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। पद-रचयिता कवियों में सर्वश्रेष्ठ गोविंददास है, जिसकी पदावली बंगला भक्ति-काव्य की अपूर्व निधि है। इन पदों के अनेक छोटे-बड़े संकलन किये गये हैं, जिनमें निम्न लिखित विशेष प्रसिद्ध हैं—

क्षणदा गीत चिंतामणि, गीतामृत, गीतचंद्रोदय, पदामृत समुद्र, पदकल्पतरु, तरंगिणी, गौरांग पदावली, संकीर्तनामृत, कीर्तनानंद आदि।

३. अन्य भाषा साहित्य

बंगाल के अतिरिक्त उडीसा और असम प्रदेशों पर भी चैतन्य मत की भक्ति का प्रभाव पड़ा है, अतः उत्कल और असमिया भाषाओं में भी चैतन्य मत का साहित्य उपलब्ध होता है। वर्तमान काल में अंगरेजी भाषा के विद्वानों ने इस मत से संबंधित अनेक ग्रंथ अंगरेजी में प्रकाशित कराये हैं, जिनके कारण भारतवर्ष से बाहर विदेशों में भी चैतन्य मत का प्रचार होने लगा है।

पहिले लिखा जा चुका है, ब्रज के वृंदाबन, राधाकुंड आदि स्थानों मे ही चैतन्य मत के आरंभिक सिद्धांत-ग्रंथों की रचना संस्कृत और बंगला भाषाओं में हुई थी। इसके पश्चात् वहाँ पर ब्रजभाषा–हिंदी में भी चैतन्य मत का प्रचुर साहित्य निर्मित हुआ, जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन इस ग्रंथ के द्वितीय खंड में आगे किया गया है।

सप्तम परिच्छेद

चैतन्य मत की सांस्कृतिक निधि

★

चैतन्य मत की सांस्कृतिक निधि के रूप में अनेक पुण्य-स्थल, मंदिर, मठ, देवालय, समाधियाँ और प्राचीन वस्तुएँ उपलब्ध हैं; जो बंगाल, उड़ीसा, तथा ब्रज के विभिन्न स्थानों में विद्यमान हैं। इन सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करना यहाँ संभव नही है, अतः कतिपय प्रमुख स्थलों आदि का नामोल्लेख मात्र ही किया जाता है—

१. पुण्य स्थल और स्मृति चिह्न

बंगाल—

मायापुरी-नवद्वीप—श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म स्थल है।

शांतिपुर—श्री अद्वैताचार्य जी का निवास स्थान है।

एकचाका जिला वीरभूमि—श्री नित्यानंद जी का जन्म स्थान है।

रामकेलि—श्री सनातन गोस्वामी और श्री रूपगोस्वामी का आरंभिक निवास स्थान है।

विहार—

गयाधाम—श्री चैतन्य महाप्रभु का श्री ईश्वरपुरी जी से दीक्षा लेने का स्थान है।

उड़ीसा—

जगन्नाथपुरी—श्री चैतन्य महाप्रभु का उत्तर कालीन निवास स्थान है। वहाँ पर हरिदास ठाकुर की भजन-कुटी और समाधि-स्थल है। जगन्नाथ वल्लभ उद्यान में राय रामानंद के निवास-स्थल और नाट्य स्थल है।

उत्तर प्रदेश—

प्रयाग—यमुना पार अड़ैल ग्राम में चैतन्य महाप्रभु और श्री बल्लभाचार्य जी का मिलन स्थल है। दशाश्वमेध घाट पर रूपगोस्वामी की शिक्षा-स्थली है।

काशी—यतनबट पर चंद्रशेखर भवन में चैतन्य महाप्रभु का विश्राम-स्थल और सनातन गोस्वामी की शिक्षा-स्थली है।

ब्रज-मंडल—

मथुरा—अपनी ब्रज-यात्रा के समय चैतन्य महाप्रभु सर्व प्रथम मथुरा में आये थे। उन्होंने यमुना-स्नान कर श्री कृष्ण जन्म-भूमि पर केशव भगवान् के दर्शन किये और उनके आगे नृत्य-संकीर्तनादि किया था। ब्रज-यात्रा के समय उनका निवास-स्थल अक्रूर घाट पर था।

गोवर्द्धन—चकलेश्वर में सनातन गोस्वामी, सिद्ध बाबा और सिद्ध कृष्णदास बाबा की भजन-कुटियाँ हैं। जतीपुरा में माधवेन्द्रपुरी द्वारा श्रीनाथ-गोपाल के प्राकट्य होने का स्थल है।

राधाकुंड—जाह्नवा घाट पर श्री नित्यानंद जी की पत्नी जाह्नवा ठकुरानी का स्थान, श्री रघुनाथदास गोस्वामी का निवास-स्थल और उनकी फूल समाधि है। वहाँ पर सर्व श्री माधवेन्द्र पुरी, चैतन्य महाप्रभु और जीव गोस्वामी के बैठने के स्थल तथा सर्व श्री रघुनाथदास गोस्वामी और कृष्णदास कविराज की भजन कुटियाँ एवं समाधियाँ हैं।

नौरंगाबाद—सिद्ध कृष्णदास बाबा का निवास-स्थल है।

रनवाड़ी—सिद्ध कृष्णदास बाबा की समाधि है।

खायरा—लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भ गोस्वामी के निवास स्थल हैं।

वृंदाबन—चैतन्य मत के सुप्रसिद्ध गौड़ीय गोस्वामियों के निवास-स्थल और उनके बनवाये हुए विख्यात देवालओं के कारण वृंदाबन की बड़ी ख्याति है। इसके द्वादशादित्य टीला पर सनातन गोस्वामी की भजन-कुटी और उनके सेव्य ठाकुर मदनमोहन जी का प्राचीन मंदिर है। इसकी दक्षिण दिशा में मदनमोहन जी के नये मंदिर के निकट सनातन गोस्वामी और उनके ग्रंथों की समाधियाँ हैं। इमली तला पर चैतन्य महाप्रभु के विश्राम और कीर्तन करने का स्थल है। कालियदह पर श्री प्रबोधानंद जी की समाधि है। शृंगार बट पर श्री नित्यानंद जी के वृंदाबन आगमन की स्मृति में देवालय बना हुआ है। श्री राधादामोदर जी के मंदिर में जीव गोस्वामी के सेव्य ठाकुर जी के दर्शन तथा सर्व श्री रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज की समाधियाँ हैं। गोकुलानंद जी और गोपीनाथ जी में क्रमशः लोकनाथ गोस्वामी और मधु पंडित की समाधियाँ और उनके सेव्य देव-विग्रहों के दर्शन हैं। राधा-रमण जी के मंदिर में श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित श्री राधारमण

जी का देव-विग्रह और श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त आसन तथा पीढ़ा है। वहाँ पर श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी और उनकी परंपरा के राधारमणीय गोस्वामियों की समाधियाँ भी हैं। इसके पूर्व की ओर रूप गोस्वामी के सेव्य ठाकुर गोविंददेव जी के प्राचीन और नवीन मंदिर हैं। श्री रंग मदिर के दक्षिण पार्श्व में एक घेरे के अंदर बहुत सी समाधियाँ बनी हुई है। यह स्थान 'चौसठ महंतों की समाधि' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मुख्य समाधि श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी की है। इसके अतिरिक्त चैतन्य मत के विख्यात गुरु वर्ग, प्रधान महत, द्वादश गोपाल, अष्ट गोस्वामी, षट् चक्रवर्ती, अष्ट कविराज तथा अन्य महानुभावों की स्मृति में भी अनेक समाधियाँ बनी हुई है। चैतन्य मत के इतने अधिक महात्माओं के स्मृति-चिह्न एक ही स्थान पर अन्यत्र मिलना कठिन है।

२. प्राचीन वस्तुएँ आदि

महाप्रभु जी की वस्तुएँ और उनके चिह्न—

१. करुवा, कंथा (गूदड़ी), काष्ठपादुका—गंभीरा मठ, राधाकांत मठ, पुरी।
२. करुवा, वस्त्र और [illegible]—[illegible]ंथ मंदिर, पाटवाड़ी-वराहनगर, कलकत्ता
३. वस्त्र श्री मदनमोहन जी का मंदिर, साइथिया भद्रक (उत्कल)।
४. आसन, पीढ़ा—श्री राधारमण जी का मंदिर, वृंदाबन।
५. पतवार और हस्तलिखित गीता—श्री गौरीदास पंडित का मंदिर, कालना
६. महाप्रभु जी के हस्ताक्षर, गदाधर पं० गोस्वामी द्वारा लिखित गीता में—भरतपुर, जिला वीरभूमि।
७. महाप्रभुजी द्वारा लिखित चंडी ग्रंथ—बुड़गाँव, जिला श्रीहट्ट।
८. चरण-चिह्न—श्री जगन्नाथ जी का मंदिर, उत्तर दरवाजा, पुरी।
९ साष्टांग दंडवत करने से समस्त अंगों के चिह्न—श्री अलालनाथ जी का मंदिर, पुरी।

महाप्रभु जी के प्राचीन चित्र—

१. कुंजघाट, राजबाड़ी, जि० मुर्शिदाबाद में।
२. श्री जान्हवा जी का मंदिर, राधाकुंड जि० मथुरा में।
३. भौंसला हाउस, बंबई में।
४. राजबाड़ी, जगन्नाथपुरी में।

प्राचीन श्री विग्रह—

१. श्री धामेश्वर महाप्रभु—श्री विष्णु प्रिया जी द्वारा स्थापित, नवद्वीप में।
२. श्री गौर—कंसारि घोष द्वारा स्थापित, गंगानगर, जि० बाग़ुड़ा में।
३. श्री निताई-गौर—महेश पंडित द्वारा स्थापित, चाँकदा जि० नदिया में।
४. श्री निताई-गौर—गदाधरदासजी द्वारा स्थापित, काटोया, जि०वर्धमान में।
५. श्री गौर गोपाल जी—जगदीश पंडित की पाट, जसोड़ा, जि० नदिया में।
६. श्री गौरांग—नरहरि सरकार द्वारा सेवित, श्रीखंड में।
७. श्री गौर गोविंद—काशीश्वर पंडित द्वारा स्थापित, गोविंद देव जी का मंदिर, वृंदाबन में।
८. श्री लक्ष्मी विष्णुप्रिया—नरोत्तमदास ठाकुर द्वारा स्थापित, खेतुड़ी, जि० राजसाही में।
९. श्री विग्रह—गौरीदास पंडित द्वारा स्थापित, कालना में।
१०. श्री विग्रह—मुरारि गुप्त द्वारा सेवित, बनखंडी महादेव के पास, वृंदाबन में।
११. श्री विग्रह—वाणीनाथ द्वारा स्थापित, चांपाहाटी, जि० वर्धमान में।
१२. श्री विग्रह—राजा प्रतापरुद्र द्वारा स्थापित, राजबाड़ी, पुरी में।

द्वितीय खंड

चैतन्य मत का ब्रजभाषा साहित्य

भ्रान्तं यत्र मुनीश्वरैपि पुरा यस्मिन् क्षमामण्डले ।
कस्यापि प्रविवेश नैव धिषणा यद्वेद नो वा शुकः ॥
यन्न क्वापि कृपामयेन च [illegible]तं शौरिणा ।
तस्मिन्नुज्ज्वल भक्तिवर्त्मनि सुखं खेलन्ति गौरप्रियाः ॥

—श्री चैतन्य चन्द्रामृतम्, श्लोक १८

जहाँ पहले बड़े-बड़े मुनीश्वर भटक चुके हैं, जिसमें पहले किसी की भी बुद्धि का प्रवेश नहीं हुआ, जिसे शुकदेव जी ने भी नहीं जाना, और जिसको कृपालु कृष्ण ने भी अपने भक्तों को नहीं बतलाया, उसी उज्ज्वल भक्ति-मार्ग में चैतन्य के कृपा-पात्र सुख पूर्वक विचरण करते हैं ।

चैतन्य मत का–
ब्र ज भा षा सा हि त्य

★

ब्रजभाषा का भक्ति साहित्य—

ब्रजभाषा के विशाल साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग वैष्णव धर्म के विविध संप्रदायों और उनसे संबंधित अनेक मतों तथा पंथों के भक्त कवियों द्वारा निर्मित हुआ है। वैष्णव धर्म के सर्वमान्य चारों संप्रदायों में से राधा-कृष्णोपासना के कारण निंबार्क संप्रदाय का संबंध कदाचित सबसे पहिले ब्रज और ब्रजभाषा से हुआ था। इस संप्रदाय के आचार्यों और उनके अनुगामी भक्तों ने संस्कृत के साथ ही साथ ब्रजभाषा में भी अनेक रचनाएँ की हैं। शेष तीनों संप्रदायों का संबंध स्वतः चाहें ब्रजभाषा साहित्य से अधिक न रहा हो; किंतु उनके अंतर्गत अथवा उनसे संबंधित उप संप्रदायों और मतों में ब्रजभाषा के प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ है। विष्णुस्वामी संप्रदाय के प्रतिनिधि बल्लभ संप्रदाय की गद्य–पद्यात्मक रचनाओं ने ब्रजभाषा साहित्य को सबसे अधिक गौरव प्रदान किया है। रामानुज संप्रदाय से संबंधित रामानंदी अथवा रामोपासक कवियों की भी ब्रजभाषा रचनाएँ प्रचुरता से उपलब्ध होती हैं। माध्व संप्रदाय के अंतर्गत चैतन्य मत की ब्रजभाषा रचनाओं ने संस्कृत और बंगला के साथ ही साथ ब्रजभाषा के साहित्य की समृद्धि में भी अपना योग दिया है। हित हरिवंश और स्वामी हरिदास के मतों का संबंध कुछ लोग प्राचीन संप्रदायों से जोड़ते हैं; किंतु वास्तव में इन दोनों मतों ने स्वतंत्र रूप में ही ब्रज के विशिष्ट भक्ति तत्त्व का प्रचार किया है। इन दोनों मतों के आचार्यों और भक्तों ने संस्कृत की अपेक्षा ब्रजभाषा में ही अधिकतर रचनाएँ की हैं, जो ब्रजभाषा भक्ति साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

चैतन्य मत का साहित्य—

इस प्रकार चैतन्य मत का स्थान मूलतः माध्व सप्रदाय के अंतर्गत आता है; किंतु अपनी विशेषताओं के कारण इसे भी स्वतंत्र मत ही माना जाता है। गौड़ (प्राचीन बंगाल) प्रदेश में उत्पन्न और विकसित होने पर भी अपनी कृष्णोपासना के कारण यह मत आरंभ से ही श्री कृष्ण के लीला-धाम ब्रज से संबंधित रहा; किंतु ब्रजभाषा और ब्रज साहित्य से इसका संबंध अपेक्षाकृत कम ही रहा है। इस मत के सर्वमान्य व्याख्याता गौड़ीय गोस्वामियों और

कृष्णदास कविराज प्रभृत्ति विद्वानों ने ब्रज में निवास करते हुए भी अपनी विशिष्ट रचनाएँ ब्रजभाषा में न लिख कर संस्कृत और बंगला भाषाओं में लिखी थीं। इस प्रकार चैतन्य मत का मूल साहित्य चाहें वह बंगाल में बना और चाहें अन्यत्र, अधिकतर संस्कृत और बंगला भाषाओं में ही मिलता है।

फिर भी इस मत के भक्त कवियों ने आरंभ से ही अपनी कुछ रचनाएँ ब्रजभाषा में भी की है। इनकी संख्या ब्रज के अन्य भक्ति संप्रदायों और मतों की ब्रजभाषा रचनाओं से कम अवश्य है; किंतु वह इतनी कम भी नहीं है, जितनी प्राय: समझी जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रथों में चैतन्य मत के केवल १०–१२ ब्रजभाषा कवियों का ही नामोल्लेख मिलता है। हिंदी साहित्य के अन्वेषक विद्वान भी इस मत के इतने कवियों की अपेक्षा कदाचित ८–१० कवियों तथा उनकी रचनाओं से और परिचय रखते हों; किंतु अब नवीन अनुसधान के कारण प्राय: एक सौ कवियों के नाम और उनकी कई सौ रचनाओं की सूचनाएँ मिल चुकी हैं। इस नवीन सामग्री की उपलब्धि से ब्रज-भाषा के भक्ति साहित्य की व्यापक समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है।

चैतन्य मत के ब्रजभाषा साहित्य का सिंहावलोकन—

इस मत के ब्रजभाषा साहित्य का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसका सर्वोत्तम भाग माधुर्य भक्ति की वे सरस पदावलियाँ हैं; जिनकी रचना सर्वश्री रामराय, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट, माधुरी जी, बल्लभ रसिक तथा रामराय जी के शिष्य भगवानदास, उनके अनुज चंद्रगोपाल और उनके वंशज राधिकानाथ, ब्रह्मगोपाल प्रभृति भक्त कवियों ने की हैं। इनके उपरांत सर्वश्री रूप, सनातन, रघुनाथदास, कृष्णदास कविराज, नरोत्तमदास ठाकुर प्रभृति चैतन्य मत के आरंभिक भक्तों की रचनाओं के आधार पर रचित अनेक सरस काव्य-कृतियाँ हैं। फिर गीत गोविंद और भागवत के कई अनुवाद हैं; श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना, जन्म-बधाई एवं उनकी लीलाओं से संबंधित बहुसंख्यक पद और छद हैं; भागवत दशम स्कंध में वर्णित श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का कथन करने वाली अनेक छोटी-बड़ी रचनाएँ हैं; ब्रज-वृंदाबन के माहात्म्य सूचक अनेक मुक्तक पद और छंद हैं, तथा चैतन्य मतानुयायी संतों की विविध नामावलियाँ और भक्त-गाथाएँ हैं। जिन रचनाओं में कवि-छाप और रचना-काल का उल्लेख है, उनसे रचयिताओं के नाम और समय का बोध तो हो जाता है, किंतु उनके जीवन-वृत्तांत की प्रामाणिक सूचनाएँ बहुत कम प्राप्त होती हैं। ऐसे कवियों की जीवन-घटनाएँ कुछ बाह्य साक्ष्य और कुछ अनुमान

से निश्चित की जा सकती हैं, यद्यपि इस प्रकार के निश्चय सर्वथा निर्भ्रांत नहीं हो सकते हैं। बहुत सी रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें कवि-छाप के साथ ही साथ चैतन्यदेव और उनके आरंभिक भक्तों का गुण-गान है, किंतु उनमें रचना-काल का उल्लेख नहीं है। इनसे रचयिताओं के नाम और उनके चैतन्य मतानुयायी होने का निश्चय तो हो जाता है; किंतु वे किस काल में हुए, इसे जानने का कोई साधन प्राप्त नहीं है। इस प्रकार यह सामग्री अपनी पूरी और अधूरी सूचनाओं सहित उपलब्ध है। आशा है, भविष्य के अनुसंधान से इसकी अधूरी बातें भी पूरी की जा सकेंगी।

जिस प्रकार चैतन्य देव के आरंभिक भक्तों के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा चैतन्य मत का विस्तार हुआ है, उसी प्रकार इसके साहित्य का भी सृजन हुआ है। इस मत के ब्रजभाषा साहित्य की सबसे अधिक रचनाएँ श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी और श्री नित्यानंद जी के तथाकथित शिष्य श्री रामराय जी के परिकर द्वारा वृंदाबन में हुई हैं। इनके बाद गदाधर पंडित गोस्वामी और वृंदाबन के रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी गण के शिष्यों द्वारा तद्विषयक साहित्य का निर्माण हुआ है। चैतन्य मत के ब्रजभाषा साहित्य के अंतर्गत कुछ ऐसे भक्त कवियों की रचनाएँ भी मानी जाती हैं, जो विभिन्न भक्त-परिकरों से स्वतंत्र ज्ञात होते हैं और जिनके चैतन्य मतानुयायी होने के निश्चित प्रमाण भी उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी परंपरा के अनुसार उन्हें चैतन्य मत के कवियों में ही स्थान दिया गया है।

इस सर्वेक्षण से सिद्ध होता है कि यह साहित्य चाहें परिमाण में कुछ कम है, किंतु महत्त्व में कम नहीं है। फिर भी चैतन्य मत की कतिपय विशिष्ट रचनाओं का अभाव इस मत के ब्रजभाषा साहित्य के महत्त्व को कम करता है। अध्ययन-अध्यापन में भी हरि-नाम का विस्मरण न हो, इसलिए उक्त मत के विद्वानों ने व्याकरण और साहित्यादि विषयों की शिक्षा के लिए हरिनामामृत व्याकरण, अलंकार-कौस्तुभ, नाटक-चंद्रिका, छंद-कौस्तुभ, उज्ज्वल नीलमणि जैसे अनुपम और अपूर्व ग्रंथों की रचना की थी। इस मत के ब्रजभाषा कवियों ने न तो उनके आधार पर ग्रंथ प्रस्तुत किये और न उनकी विचार-धारा का अनुकरण ही किया। उदाहरणार्थ ब्रजभाषा के विशाल नायिकाभेद-साहित्य में उज्ज्वल नीलमणि के ढंग की रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती हैं।

इस सिंहावलोकन के पश्चात् इस मत के ब्रजभाषा साहित्य का सृजन करने वाले कवियों के संक्षिप्त जीवन-वृत्त और उनकी रचनाओं के कतिपय उदाहरण आगामी पृष्ठों में उपस्थित किये जाते हैं।

३. **ग्वालिन झगरौ**—श्री कृष्ण के बाल-विनोद की यह रचना है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ—प्रथम स्याम गुन कथूं, गवरि के सुतहिं मनाऊँ
गुरु चरनन चित लाय, कछू हरि मारग पाऊँ
कृपावंत भई सारदा, भई बुद्धि परगास
झगरत आई ग्वालिनी, महरि जसोधा पास
तुम्हारै ई राज है

अहो जसोधा हमन गाँम कौ बसिवौ हि छाँड़्यौ
निकरन हमैं न देत, जितै तित होतहि आड़ौ
बरजि जसोधा लाड़िले, जो तुम दियौ सिखाय
कौतुक अपने लाल के, तुम देखौ जसोधा माय
तुम्हारै ई राज है

रहौ री ग्वालिनी, लाल मैं सोवत अबहि जगायौ
पकरै लाई बाँह, खरक लौ जान न पायौ
झूठी साँची जोरिकै, सब जुरि आईं नारि
निलजी लाज न आवती, तुम नित उठि करौ पुकारि
तुम्हारै ई राज है

अंत— या लीला है कहत सुनत कछु बनि नहिं आवै
पढ़ै गुनै चित लाय, बास वृंदाबन पावै
कुंज कुंज लीला करी, जहाँ जहाँ राधे पाय
उन कुंजन की झलक पर, माधौदास बलि जाय

४. **मदालसा आख्यान**—इस आख्यान की प्रति सं० १७[illegible] हुई मिली है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ—अब गाऊं मदालसा आख्यान ।
नारी और न तास समान ॥
सो मारकंडेय पुरान मैं गायौ ।
जड़ जु पिता अपनौ समुझायौ ॥

अंत— ज्यौं ज्यौं नचावै रामजी, त्यौं नाँचै 'माधौदास' ।
श्री दामोदर के सिखन कों, राम तुमारी आस ॥

"इति श्री मदालसा कथा संपूरन समाप्त ।
लिखते स्वामी श्री कल्यानदास जी कौ शिष्य नरोत्तमदास सं०

१. **नारायन लीला**—यह २६१ द्वैतुकी छंदों की एक साधारण सी लीला विषयक रचना है । इसकी हस्त लिखित प्रति सं० १८६८ के श्रावण शु० ११ गुरुवार की है । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ—**जै जै जै श्री जगन्नाथ, नारायन स्वामी ।**
ब्रह्मादिक कीटान, जीव सब अंतरजामी ।।
सचराचर वहिरावृता, अभ्यंतर होई ।
सर्वात्मा सर्वज्ञ, नाम नारायन सोई ।।

मध्य— **गोकुल मथुरा द्वारका, बास कियौ मुरारी ।**
त्रिविध प्रकार लीला करी, सब असुर संहारी ।।
बकी, सकट, तृणावर्त, जमलार्जुन भंजन ।
अघ, बक, धेनु, काकली, अहि सिर गंजन ।।
अनिल प्रबल दावानल पान कियौ मुरारी ।
इंद्र कोप तें गिरि धरचौ, ब्रज विपति निवारी ।।

अंत— **मेघ स्याम अभिराम, सदा सुंदर मृदु हासा ।**
अर्ध चंद्र आकार, अरुन बिंबाधर भासा ।।
प्रफुलित कमल लोचन विसाल, भाल तिलक बिराजै ।
चंदन लेपन सकल गात, बनमाला छाजै ।।
संख चक्र गदा पद्म, मुकुट कुंडल पीतांबर धारी ।
नील सिखर श्री भ्राजमान, सेवक सुखकारी ।।
श्री जगन्नाथ कौ रूप देखि, मन भयौ हुलासा ।
सर्व वैष्णवन की आज्ञा पायकै, गावै माधौदासा ।। २६१ ।।

।। इति श्री माधौदास जी कृत नारायन लीला संपूर्ण ।।

२. **जगन्नाथ माहात्म्य**—इसका भी आदि-अंत पूर्वोक्त नारायन लीला की तरह हुआ है । ऐसा जान पड़ता है, जगन्नाथ माहात्म्य और नारायन लीला एक ही पुस्तक के दो नाम हैं । जगन्नाथ माहात्म्य की प्रति असम प्रदेश के गोहाटी नामक स्थान में लिपिबद्ध हुई है, जो इसकी पुष्पिका से प्रकट है—

"लिखतं कृष्ण पक्षे नग्र गुआहाटी मध्ये
लिखतं अस्थान कमख्या मध्ये कामरूप मध्ये ।"

५. परतीत परीच्छा—यह राधा-कृष्ण की लीला विषयक रचना है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ—राधा बाधा दूर करि, साधा सिगरे काम ।
आराधा श्री कृष्ण जू, सुमिरत आठौ जाम ॥
राधा राधा कहत ही, बाधा जात पलाय ।
परमारथ तें सुख अधिक, रहत नित्य हिय छाय ॥
एक दिना नंदलाल, मन में करी जु इच्छा ।
लेन राधिका पै चले, परतीत - परीच्छा ॥

मध्य— क्यों मेरी साँवल सखी, तेरौ बदन बिहाली ।
काहे तें तू उनमनी, कहि मेरी आली ॥
कै आवत तोहि स्रम भयौ, कर चरन दबाऊँ ।
कै तोहि लागी लपट है, घसि चंदन लाऊँ ॥
कै साँवल तेरी ननद खिजी, कै सास रिसानी ।
कै तेरे पिय परमेस नें, तेरी कहिय न मानी ॥
कै काहू नें दुख दियौ, ताहि पकरि मँगाऊँ ।
सुनि मेरी साँवल सखी, जो कहै सो लाऊँ ॥

अंत— गो - दोहन की बेला, गिरिधर घर आए ।
जुरे सबारे ग्वाल बहु, आनंद बधाए ॥
बाल कृष्ण के प्रभू, कृष्ण मन पूजी आसा ।
भक्ति आपनी दीजियै, गावत 'माधौदासा' ॥

॥ इति श्री परतीत-परीच्छा संपूर्ण ॥

अन्य पुस्तकें—श्री जी की बड़ी कुंज, वृंदाबन में सं० १७७६ की लिखी हुई एक हस्त प्रति है, जिसमें माधवदास जी की निम्न लिखित रचनाएँ हैं—

१. बाल लीला, २. जानराय लीला, ३. जनम करम लीला, ४. ध्यान लीला, ५. रथ लीला, ६. स्वयंवर लीला, ७. रघुनाथ लीला।

उक्त रचनाओं में रघुनाथ लीला कुछ बड़ी है। शेष रचनाएँ ५ से लेकर १० पत्रों तक की हैं। इनकी प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—

"सं० १७७६ मिती श्रावण मासे शुभ कृष्ण पच्छे तिथौ त्रयोदश्याम् शनि वासरे। लिखितं दुबे रामचंद्र। लिखायतन चिरंजीव कृष्णगोपाल।

पूर्वोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त उनके जो स्फुट पद मिलते हैं, उनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं—

तुम देखौ सखी री, रथ वैठे हरि आज ।
अग्रज सहित स्याम घन सुंदर, सबै मनोरथ साज ।।
हाटक कलस अरु धुजा पताका, छत्र-चँवर सिर ताज ।
तुरँग चाल अति चपल चले हैं, देखि पवन मन लाज ।।
सुदी असाढ़ द्वैज सुभ दिन कति, नछत्र पुष्य सुभ जोग ।
बनमाला पीतांबर राजत, धूप दीप बहु भोग ।।
गारी देत सबै मन भाई, कीरति अगम अपार ।
'माधवदास' चरन कौ सेवक, जगन्नाथ स्तुति-सार ।।

जै-जै हरि पद सब सुखरासी ।
ससि सत अजित विजित नख-मनि गन, मुनि-मन ज्ञान प्रकासी ।।
अरि दर मीन कमल ध्वज वज्र जब, अंकुस कुलिस निवासी ।
नव किसलय श्री रमा कर पल्लब, ललित प्रीति सुविलासी ।।
कोटि कल्पतरु बसत अँगुरियनि, कामधेनु बसै पूरी ।
नूपुर रनित निगम निमसित नित, नमित सक्र बिधि सूरी ।।
ब्रज - बनिता उर उरगराज सिर, पसु संग बनें बिहारी ।
'माधवदास' सोई जगन्नाथ पद, नील सिखर सुखकारी ।।

आज सफल सखी जनम हमारौ । देख्यौ री द्रगनि भरि नंद-दुलारौ ।।
बाम कपोल, बाम भुज दीयें । अधर मधुर मुरली कर लीयें ।।
नाद वेद संगीत सुनावै । भवन चलत सिर सिखर डुलावै ।।
नैन तरंग रंग रस पेखे । अब हरि हम अपने कर लेखे ।।
जनम-जनम की पूरी मेरी आसा । जगन्नाथ-मुख देखै 'माधवदासा' ।।

भज मन नंदनंदन - चरन ।
विजय पंजर पोत पद, भव-सिंधु तारन - तरन ।।
जिन भजे तें अटल टरे, मिटे जीवन - मरन ।
साक्षी स्तुति स्मृति पुकारें, कोटि कलिमल हरन ।।
सदा चारु विचार जिनकें, पतित पावन करन ।
अधमोधारन दीनबंधु, विरुद असरन - सरन ।।
श्री जगन्नाथ अनाथ बंधु, विश्व पोषन - भरन ।
'दास माधव' हरि - भजन तें, सोध अंतःकरन ।।

२. आनंदघन

इस नाम के कई कवि हुए हैं, जिनमें तीन प्रसिद्ध हैं। वे तीनों सौ-सौ वर्ष के अंतर से विद्यमान थे। पहिले आनंदघन १६ वीं शती के उत्तरार्ध में ब्रज के नंदगाँव में रहते थे। दूसरे जैनी आनंदघन (महात्मा लाभानंद जी) १७ वीं शती के उत्तरार्ध में थे। तीसरे सुजानप्रेमी आनंदघन (घनानंद) १८ वीं शती में ब्रज के वृंदावन में निवास करते थे। इन तीनों में से प्रथम आनंदघन चैतन्य मत के अनुयायी कहे जाते हैं।

श्री चैतन्य देव के जीवन-वृत्तांत से प्रकट है कि उन्होंने सं० १५७२ में ब्रज-वृंदाबन की यात्रा की थी। उस समय वे नंदगाँव भी गये थे, जहाँ उनसे आनंदघन जी मिले थे। ऐसा कहा जाता है, उसी समय आनंदघन श्री चैतन्यदेव के अनुगत हुए थे। सं० १५७२ में उनकी विद्यमानता से उनका समय सं० १५५० से १६०० के लगभग अनुमानित होता है। श्री विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने चैतन्यदेव से आनंदघन के मिलने का संवत् १५६३ लिखा है[1]; किंतु काल-क्रम से यह ठीक नहीं है।

वे नंदगाँव के निकटवर्ती खरोट ग्राम के निवासी ब्राह्मण थे। उन्होंने नंदगाँव में मंदिर बनवा कर उसमें नंदबाबा, यशोदा, श्री बलदेव और श्री कृष्ण के विग्रहों की स्थापना की थी। उन देव विग्रहों के दर्शन श्री चैतन्य देव ने किये थे। आनंदघन के वंशज अब भी उस मंदिर में सेवा-पूजा करते हैं। वे लोग खरोट और नंदगाँव में रहते हैं और श्री चैतन्य देव में श्रद्धा रखते हैं।

आनंदघन के नाम से बहुसंख्यक पद मिलते हैं। उनमें से अधिकांश सुजान-प्रेमी घनानंद के माने जाते हैं। ऐसे १०५७ पदों का संकलन श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है[2]। उनके मतानुसार वे समस्त पद सुजानप्रेमी घनानंद के हैं; किंतु हमारा अनुमान है कि उनमें कुछ पद इन आनंदघन के भी मिले हुए हैं। उदाहरणार्थ सं० ८०८ का पद इनका हो सकता है—

भागनि भरी जसोदा मैया, मन कौ मोद कहौं।
गोद लिएँ लालहिं दुलरावति, यह सुख देखि रहौं॥
याही के पायनि प्रसाद कौ लेस असेस लहौं।
गोकुलचंद नंदनंदन कौ, निसि दिन उदौ चहौं॥

---

१. 'घनानंद' ग्रंथ का 'वाङ्मुख' पृ० ६७
२. 'घनानंद', पृ० ३२६ से ५८४

नव सुकुमार बैस मनमोहन, ब्रजजन - जीवनप्रान ।
ऐसे सुत के मुखहि सपूती, देति पयोधर - पान ।।
मुसकत पियत जियत अरु ज्यावत, जननी-जिय-आधार ।
प्रबल मोह की उमँग - तरंगनि, द्रवित दूध की धार ।।
झाँपि लेति आँचर मों त्यामहि.निधरक सकति न चाहि ।
अतुल अगम क्यों बरनि बताऊँ,हित-गति अकथ कथाहि ।।
नंदघरिनि की भाग-निकाई, सुत लखि कही न जाई ।
अति लाड़हूँ चिर जियौ, सभागौ ऐसी जननी पाई ।। ×
सुत हित चोंप चाय सों भीजी, 'आनंदघन' झर लाग्यौ ।
जसुमति कूख सदा सुख सीतल, सब ब्रज हित अनुराग्यौ ।।

आनंदघन जी के रचे हुए कुछ पदों का गायन नंदगाँव के मंदिर में भी किया जाता है । श्री चैतन्यदेव की वंदना का निम्न लिखित पद उनका रचा हुआ माना जाता है, यद्यपि इसमें स्पष्ट रूप से उनकी नाम-छाप नहीं है। यह पद कुछ पाठ-भेद से सुजान प्रेमी घनानंद की पदावली में भी संकलित मिलता है[1] । वह पद इस प्रकार है—

श्री चैतन्य दयानिधि धीर ।
कलि कालीन मलीन दीन जन, पावन करन परम गंभीर ।।
पूरन चंद नंदनंदन कौ उदै, सदा उमगन की भीर ।
बोहित नाव चढ़ाये बहु जन, प्रेम मगन करि पठये तीर ।।
भाव-तरंग अभंग-भंग गति, महा मधुर रस रूप सरीर ।
निज जन रतन जाल युत राजत, धुन-हुंकार उसाँस समीर ।।
त्रिविध ताप तें जरे जीव जे, सीतल किये परस पद-नीर ।
करुना दृष्टि वृष्टि सों सींचे, जय-जय-जय 'आनंदमुदीर' ।।

'पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ' (पृ० ३५६) में आनंदघन के तीन पद छपे हुए हैं, जो पदावली के प्रसिद्ध पदों में नहीं मिलते हैं। संभव है, वे भी इन्हीं आनंदघन के हों। उन पदों की टेक इस प्रकार हैं—

(१) **ए मेरे मन-नैनन रोम-रोम मधि कृष्ण रम्यौ है।**
(२) **ए री बन बाजी बाँसुरिया, कैसे रहौं घर दैया।**
(३) **मोहन प्रीति करी मैं जानी।**

---

१. 'घनानंद', पृ० ४४६, पद सं० ५१४

३. रामराय

रामराय जी ब्रजभाषा के एक उत्कृष्ट वाणीकार थे। नाभा जी कृत 'भक्तमाल' में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण तथा भक्त, ज्ञानी, विरक्त और कथा-कीर्तन में मग्न रहने वाले साधुसेवी सज्जन बतलाया गया है[1]। इस सामान्य परिचय के अतिरिक्त नाभा जी ने न तो उनके संप्रदाय का उल्लेख किया है, और न उनके जीवन का कोई विशेष वृत्तांत ही बतलाया है। 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास ने भी उनके संबंध में कुछ नहीं लिखा है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अंत में 'रामराय हित भगवानदास' की वार्ता है। इससे ज्ञात होता है, रामराय जी गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक और चैतन्य मतानुयायी भगवानदास के पुरोहित थे। भगवानदास आगरा के सूबेदार के दीवान थे, जो रामराय जी के प्रभाव से चैतन्य मत को छोड़ कर बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हो गये थे। उक्त कथन के अतिरिक्त वार्ता में उनका रचा हुआ गोसाईं जी की वंदना का एक पद भी दिया गया है, जो रागकल्पद्रुम (भाग २, पृ० १००) में भी मिलता है[2]। इस प्रकार वार्ता में रामराय जी को बल्लभ संप्रदायी बतलाया गया है; किंतु चैतन्य मत में उन्हें श्री नित्यानंद जी का शिष्य और श्री चैतन्यदेव का अनुगामी माना जाता है।

१. भक्ति, ज्ञान, बैराग, जोग अंतरगति पाग्यौ ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मतसर सब त्याग्यौ ।।
कथा, कीरतन मगन, सदा आनँद-रस झूल्यौ ।
संत निरखि मन मुदित, उदित रबि पंकज फूल्यौ ।।
बैर - भाव जिन द्रोह किय, तासु पाग खसि भ्वै परी ।
बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि - रति करी ।।

२. जयति बल्लभ-सुवन, उद्धरन त्रिभुवन, फेरि नंद के भवन की केलि ठानी ।
इष्ट गिरवर धरन, सदा सेवत चरन, द्वार चारौं बरन भरत पानी ।।
वेद-पथ व्यास से, हनूमान दास से, ज्ञान कों कपिल से कर्मयोगी ।
साधु लच्छमन निपुन, मनहुँ ब्रजराज-सुत, प्रगट सुखरासि मनों इंदु भोगी ।।
सिंधु सम गंभीर, विमल मन अति धीर, प्रीति कों जल-छीर, ब्रज-उपासी ।
ध्यान कों सनक से, भक्ति कों फनिग से, याही तें बस किये ब्रह्म-रासी ।।
मनहुँ इंद्रिय जीत, कृष्ण सों करी प्रीत, निगम की चली नीति अति विवेकी ।
रहित अभिमान तें, बड़े सन्मान तें, सील और दाम गोबिंद टेकी ।।
सदा निर्मल बुद्धि, अष्ट सिद्धि, नव निधि, द्वार सेवत तहाँ मुक्ति दासी ।
'रामराय' गिरधरन जानि आयौ सरन, दीन के दुःख-हरन, घोष-बासी ।।

नव सुकुमार बैस मनमोहन, ब्रजजन - जीवनप्रान ।
ऐसे सुत के मुखहि सपूती, देति पयोधर - पान ॥
सुसकत पियत जियत अरु ज्यावत, जननी-जिय-आधार ।
प्रबल मोह की उमँग - तरंगनि, द्रवित दूध की धार ॥
झाँपि लेति आँचर सों स्यामहिं, निधरक सकति न चाहि ।
अतुल अगम क्यों बरनि बताऊँ, हित-गति अकथ कथाहि ॥
नंदघरिनि की भाग-निकाई, सुत लखि कही न जाई ।
अति लाड़हूँ चिर जियौ, सभागौ ऐसी जननी पाई ॥ ×
सुत हित चोंप चाय सों भीजी, 'आनंदघन' झर लाग्यौ ।
जसुमति कूख सदा सुख सीतल, सब ब्रज हित अनुराग्यौ ॥

आनंदघन जी के रचे हुए कुछ पदों का गायन नंदगाँव के मंदिर में भी किया जाता है । श्री चैतन्यदेव की वंदना का निम्न लिखित पद उनका रचा हुआ माना जाता है, यद्यपि इसमें स्पष्ट रूप से उनकी नाम-छाप नहीं है । यह पद कुछ पाठ-भेद से सुजान प्रेमी घनानंद की पदावली में भी संकलित मिलता है[1] । वह पद इस प्रकार है—

श्री चैतन्य दयानिधि धीर ।
कलि कालीन मलीन दीन जन, पावन करन परम गंभीर ॥
पूरन चंद नंदनंदन कौ उदै, सदा उमगन की भीर ।
बोहित नाव चढ़ाये बहु जन, प्रेम मगन करि पठये तीर ॥
भाव-तरंग अभंग-भंग गति, महा मधुर रस रूप सरीर ।
निज जन रतन जाल युत राजत, धुन-हुंकार उसाँस समीर ॥
त्रिविध ताप तें जरे जीव जे, सीतल किये परस पद-नीर ।
करुना दृष्टि वृष्टि सों सींचे, जय-जय-जय 'आनंदमुदीर' ॥

'पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ' (पृ० ३५६) में आनंदघन के तीन पद छपे हुए हैं, जो पदावली के प्रसिद्ध पदों में नहीं मिलते हैं । संभव है, वे भी इन्हीं आनंदघन के हों । उन पदों की टेक इस प्रकार हैं—

(१) ए मेरे मन-नैनन रोम-रोम मधि कृष्ण रम्यौ है ।
(२) ए री बन बाजी बाँसुरिया, कैसे रहौं घर दैया ।
(३) मोहन प्रीति करी मैं जानी ।

---

१. 'घनानंद', पृ० ४४९, पद सं० ५१४

३. रामराय

रामराय जी ब्रजभाषा के एक उत्कृष्ट वाणीकार थे। नाभा जी कृत 'भक्तमाल' में उन्हें सारस्वत ब्राह्मण तथा भक्त, ज्ञानी, विरक्त और कथा-कीर्तन में मग्न रहने वाले साधुसेवी सज्जन बतलाया गया है[1]। इस सामान्य परिचय के अतिरिक्त नाभा जी ने न तो उनके संप्रदाय का उल्लेख किया है, और न उनके जीवन का कोई विशेष वृत्तांत ही बतलाया है। 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास ने भी उनके संबंध में कुछ नहीं लिखा है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अंत में 'रामराय हित भगवानदास' की वार्ता है। इससे ज्ञात होता है, रामराय जी गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक और चैतन्य मतानुयायी भगवानदास के पुरोहित थे। भगवानदास आगरा के सूबेदार के दीवान थे, जो रामराय जी के प्रभाव से चैतन्य मत को छोड़ कर बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हो गये थे। उक्त कथन के अतिरिक्त वार्ता में उनका रचा हुआ गोसाईं जी की वंदना का एक पद भी दिया गया है, जो रागकल्पद्रुम (भाग २, पृ० १००) में भी मिलता है[2]। इस प्रकार वार्ता में रामराय जी को बल्लभ संप्रदायी बतलाया गया है; किंतु चैतन्य मत में उन्हें श्री नित्यानंद जी का शिष्य और श्री चैतन्यदेव का अनुगामी माना जाता है।

---

१. भक्ति, ज्ञान, बैराग, जोग अंतरगति पाग्यौ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मतसर सब त्याग्यौ॥
कथा, कीरतन मगन, सदा आनँद-रस झूल्यौ।
संत निरखि मन मुदित, उदित रबि पंकज फूल्यौ॥
बैर-भाव जिन द्रोह किय, तासु पाग खसि भ्वै परी।
बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि-रति करी॥

२. जयति बल्लभ-सुवन, उद्धरन त्रिभुवन, फेरि नंद के भवन की केलि ठानी।
इष्ट गिरवर धरन, सदा सेवत चरन, द्वार चारौं बरन भरत पानी॥
वेद-पथ व्यास से, हनूमान दास से, ज्ञान कों कपिल से कर्मयोगी।
साधु लच्छमन निपुन, मनहुँ ब्रजराज-सुत, प्रगट सुखरासि मनों इंदु भोगी॥
सिंधु सम गंभीर, विमल मन अति धीर, प्रीति कों जल-छीर, ब्रज-उपासी।
ध्यान कों सनक से, भक्ति कों फनिग से, याही तें बस किये ब्रह्म-रासी॥
मनहुँ इंद्रिय जीत, कृष्ण सों करी प्रीत, निगम की चली नीति अति विवेकी।
रहित अभिमान तें, बड़े सन्मान तें, सील और दाम गोबिंद टेकी॥
सदा निर्मल बुद्धि, अष्ट सिद्धि, नव निधि, द्वार सेवत तहाँ मुक्ति दासी।
'रामराय' गिरधरन जानि आयौ सरन, दीन के दुःख-हरन, घोष-बासी॥

वृंदावन में श्री यमुनाबल्लभ गोस्वामी नामक एक चैतन्य मतानुयायी सारस्वत ब्राह्मण निवास करते हैं । वे अपने को श्री रामराय जी का वंशज बतलाते हुए अपनी वंश-परंपरा का आरंभ [illegible]-कार श्री जयदेव जी से मानते हैं । उनके पास जयदेव जी से अब तक होने वाले अपने पूर्वजों की संवत्वार नामावली, और उनमें जो कवि हुए हैं, उनकी अनेक रचनाएँ हस्त लिखित रूप में सुरक्षित हैं । उनके पास जो सामग्री है, उससे ज्ञात होता है कि रामराय जी श्री जयदेव जी की १४ वीं पीढ़ी में हुए थे । उनके पिता का नाम गौरगोपाल था, जो लाहौर में रावी नदी के तट पर निवास करते थे । उनके घर में श्री राधा-माधव की सेवा होती थी । रामराय जी का जन्म लाहौर में हुआ था और वहाँ पर ही उनका आरंभिक काल भी बीता था । उनके छोटे भाई का नाम चंद्रगोपाल था, जो उनसे आयु में १२ वर्ष छोटे थे । रामराय जी के स्वभाव में आरंभ से ही विरक्ति-भाव था, जिसके कारण वे युवावस्था में ही बिना किसी से कहे-सुने घर से चल दिये और वृंदावन में आकर वहाँ के लीला-स्थलों में निवास करने लगे । उसी काल में वे ब्रज के भक्ति संप्रदायों के प्रति आकर्षित हुए होंगे ।

यमुनाबल्लभ जी ने रामराय जी कृत 'आदि वाणी' और 'गीत गोविंद भाषा' नामक दो ग्रंथों का प्रकाशन किया है । उन ग्रंथों के आरंभ में उन्होंने रामराय जी का परिचय देते हुए बतलाया है कि उनका जन्म सं० १५४० में हुआ था और वे श्री नित्यानंद जी के शिष्य होकर चैतन्य मत में दीक्षित हुए थे । उन्होंने कृष्णदास कृत रामराय जी की जन्म-बधाई का एक पद भी उद्धृत किया है, जिसमें बतलाया गया है कि उन्होंने श्री बल्लभाचार्य जी के पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी को उपदेश दिया था और वे श्री हित हरिवंश जी के मित्र थे[1] । उक्त पद के रचयिता कृष्णदास को उन्होंने अष्टछाप के विख्यात कवि अधिकारी कृष्णदास बतलाया है ।

---

१. **परम रसिक जन मंगल छाये ॥**
पुन्य अपूरब प्रघट भये, श्री रामराय गोस्वामि सिधाये ।
महाप्रभु श्री बल्लभ-सुत श्री विट्ठल जू कों उपदेस सिहाये ॥
हित हरिवंश हंस सम्मत अति, आचारज जू मित्र मिलाये ।
नित्यानंद महाप्रभु पद रज, सिष्य प्रसिद्ध जगत हित आये ॥
गोकुल गाँम वर्ष द्वै बसि, पुनि तीरथ संत अनंत बनाये ।
भज श्री कृष्णदास लखि परमहंस गति, बहुत समैं बपु दृगन जुड़ाये ॥

यमुनाबल्लभ जी द्वारा प्रस्तुत पद और तत्संबंधी कथन 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और बल्लभ संप्रदाय की मान्यता के विरुद्ध होने से विचारणीय है। उक्त पद को अधिकारी कृष्णदास जैसे उत्कृष्ट कवि की रचना बतलाना ठीक नहीं मालूम होता है। इसकी शिथिल रचना-शैली कृष्णदास नामक किसी साधारण गौड़ीय कवि की सोद्देश्य कृति जान पड़ती है। जहाँ वार्ता में रामराय जी को गो० विट्ठलनाथ जी का सेवक बतलाया गया है, वहाँ उक्त पद में उनके द्वारा स्वयं गोसाई जी को उपदेश देने की बात लिखी गई है! गोसाई जी का चरणाट एवं अड़ैल में विद्याध्ययन और आरंभिक जीवन, फिर सं० १६२८ में स्थायी रूप से गोकुल का निवास और उनका अतुलित धार्मिक प्रभाव आदि तथ्य यमुनाबल्लभ जी द्वारा प्रस्तुत पद को इतिहास विरुद्ध एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

जहाँ तक रामराय जी द्वारा श्री नित्यानंद जी से दीक्षा लेने की बात है, उसका समर्थन चैतन्य मत के सर्वमान्य ग्रंथों से नहीं होता है। चैतन्य मत के आरंभिक ग्रंथ चैतन्य भागवत, चैतन्य चरितामृत, और उनके बाद के कई ग्रंथों में चैतन्य मत के भक्तों की वृहत् नामावलियाँ दी हुई हैं, किंतु उनमें से किसी में भी रामराय जी के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। नाभा जी कृत 'भक्तमाल' में उनके नित्यानंद जी के शिष्य होने का कथन नहीं है। 'भक्तमाल' के बाद रची हुई ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में; यहाँ तक कि चैतन्य मतानुयायी प्रियादास कृत 'भक्तमाल-टीका' में भी उनका उल्लेख नहीं हुआ है।

यमुनाबल्लभ जी द्वारा प्रकाशित 'आदि वाणी' की भूमिका में चैतन्य मत के उद्भट विद्वान सर्वश्री जीव गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत रामराय जी की वंदना के दो श्लोक दिये गये हैं[1]। 'गीत गोविंद भाषा' और 'आदि वाणी' के मंगलाचरण में तथा 'आदि वाणी' के ८८ वें पद में स्वयं रामराय जी ने

---

१. वन्दे श्री परमानन्दं भट्टाचार्यं रसालयम्।
रामरायं तथा वाणीविलासञ्चोपदेशकम्॥
—श्री जीव गोस्वामी कृत 'तोषिणी'

श्रीमद् गदाधर नमो, नृहरे नमस्ते।
श्री रामराय नम एव नमः स्वरूप॥
श्री रूप सानुग नमोस्तु नमोस्तु तुभ्यं।
श्री मत्सनातन नमोस्तु नमो नमस्तु॥
—श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'दशम टीका'

चैतन्य महाप्रभु एवं उनके प्रमुख सहकारी महानुभावों की वंदना की है[1]। यदि ये श्लोक और पद प्रामाणिक हैं, तो रामराय जी का चैतन्य मतानुयायी होना निश्चित होता है।

ऐसी स्थिति में वे बल्लभ मत के थे अथवा चैतन्य मत के; यह बड़े उलझन की बात मालूम होती है। हमारा अनुमान है कि रामराय जी पहिले वल्लभ मतानुयायी थे और बाद में वे चैतन्य मत की ओर आकर्षित हो गये थे; लेकिन उनका संबंध बल्लभ मत से बराबर बना रहा। इसीलिए संभवतः चैतन्य मतानुयायी भक्तों में उन्हें उचित स्थान नहीं मिल सका। उनके अनुज चंद्रगोपाल जी और उनके वंशज निश्चित रूप से चैतन्य मतानुयायी थे। चंद्रगोपाल जी अपने अग्रज रामराय जी की प्रेरणा से ही गौर चरणाश्रित हुए थे, जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है—

गौर - चरन की रति दई, दई दास - गति मोय।
बलिहारी ता बंधु की, जा सम कोऊ न होय॥

यदि श्री नित्यानंद जी द्वारा रामराय जी के दीक्षित होने की बात मानी जाय, तब इसकी संभावना उस काल (सं० १५७४ से १५९० तक) में हो सकती है, जब चैतन्य महाप्रभु स्थायी रूप से जगन्नाथ पुरी में निवास करते थे। उस समय प्रति वर्ष रथ-यात्रा के अवसर पर श्री नित्यानंद जी गौड़ीय भक्तों के साथ वहाँ जाया करते थे। रामराय जी का भी उस अवसर पर जगन्नाथपुरी जाना सिद्ध है। यमुनाबल्लभ जी के पिता प्रियतमलाल जी कृत 'श्री रसिकाचार्य चरितावली' में बतलाया गया है कि रामराय जी आसुधीर जी के साथ

---

१. **बंदौं श्री गुरु गौर - पद, जगमग जोति अभंग।**
मिल अनंगमंजरि सहित, एक अंग दो रंग॥

—'गीत गोविंद भाषा' का मंगलाचरण

मंगल जय श्री गौर किसोर।
मंगल श्री बृंदाबन - भूषन, राधा - भाव रसिक रस बोर॥
नित्यानंद अद्वैत गदाधर, श्रीबासादि चतुर चित चोर।
मंगल महाभाव भावित तन, रूप सनातन हिये हिलोर॥

—'आदि वाणी' का मंगलाचरण

गौर हरि, गौर हरि भजत भज भागवत, तत्व विस्तार निस्तार गति लेखे।
वेद - वेदांत सिद्धांत संति संतन के, पुष्टि परमान धर ध्यान मति देखे॥

—'आदि वाणी' पद सं० ८८

ललित लता मंदिर के आँगन, प्रात समैं राजत पिय - प्यारी ।
प्रीतम कौ पट पीत प्रिया पै, ओढ़ै लाल प्रिया की सारी ।।
सिथिल सरीर नखर उर अंकित, बिथुरी अलकन की छवि न्यारी ।
उठत अनंग तरंगनि की दुति, अंग - अंग रुचि मंगलकारी ।।
करत विसाखा चमर चतुर इत, उत ललिता ठाढ़ी लिएँ झारी ।
निरखत 'रामराय' दंपति छवि, नैन - चकोरी टरत न टारी ।।

प्यारी, मोहि अति प्यारी लागै, तेरे तन तनसुख की सारी ।
अतलस की कंचुकी उरोजन, लहँगा लहरिया ललित किनारी ।।
सीस फूल बंदनी चंद्रिका, अलकावलि छिटकी ह्वै न्यारी ।
सेंदुर माँग भाल तिलकावलि, नकबेसर अँखियाँ कजरारी ।।
पोत पुंज कुंदन मुकतन खचि, मरगजी माल कंठ छवि भारी ।
चार-चार चूरी कर कंकन, महँदी बिंदु विद्रुम रुचि हारी ।।
कटि किंकिनि पद मंजु महावर, 'रामराय' पीवत पय बारी ।।

मुकुट मनि चंद्रिका स्याम स्यामा बनी ।
पलक अलकन लुकीं, तिलक झलकन झुकीं,
कमल कुंडल रुकीं, ललक भृकुटी तनी ।
अधर दर कंदरी, सुघर वर सुंदरी,
जुगल गल बंद री, धवल हीरन खनी ।।
चटक पट केसरी, नील नव वेस री,
कनक नकबेसरी, मनिक मुक्ता मनी ।
जटित कंकन करन, पगन नूपुर धरन,
मदन मन हरन, 'रामराय' कटि करधनी ।।

कुंज किलोल कदंब कनक मनि, श्री राधा रवनी ।
मधुर भाव भूषन तन भूषित, विलसत सील घनी ।।
केस - पास किसलय कोषांतर, राजत अलिन अनी ।
माँग माँझ कालिंदी सुरसरि, सरस्वती तटिनी ।।
अरुन बरुन जुग भृकुटि पंचसर, बिंदु प्रवाल कनी ।
जटित रतन रूषित धर पल्लव, कंदुर सिंदुरनी ।।
अंजन दै खंजन गंजन करि, कंज हरिन नयनी ।
चिबुक चटक नासा पुट पर हू, रुरिकत रुचिर मनी ।।
सारी स्याम सरीर सकल धरि, अंबर घन-दमिनी ।
'श्री रामराय' जुग पानि पदांबुज, सरन त्रिलोक धनी ।।

२. **गीत गोविंद भाषा**—श्री जयदेव कृत संस्कृत के सुप्रसिद्ध गीत-काव्य 'गीत गोविंद' का यह ब्रजभाषा के पदों और छंदों में सरस अनुवाद है। इसकी रचना वृंदाबन में सं० १६२२ के वैशाख मास में हुई थी, जैसा इसकी पुष्पिका से प्रकट होता है—

> संवत् सोलहसौ बाईसा, रितु बसंत सरसाई।
> माधव मास राधिका-माधव, की जहि लीला गाई॥
> जमुना तट अद्वैत निकट बट, मदनगोपाल सहाई।
> 'रामराय' श्री वृंदाबन की, अति अदभुत प्रभुताई॥

अनुवाद में कवि को अच्छी सफलता मिली है। पंचम सर्ग के श्याम-विरह का अनुवाद इस प्रकार किया गया है—

> श्री राधे तव वियोग बनमाली।
> काम सहाय बनाय मलय की, वायु बहति दुखसाली ॥१॥
> विरही हिये बिदारन कारन, कुसुमकली किलकारी।
> पीड़ा मरन समान दै रही, चंद-किरन चिनगारी ॥२॥
> भ्रमर-गुंज नहिं सुनत विरह में, निस तन दसा बिसारी।
> गहवर बन में बास करत हरि, धरनि सैन गिरधारी ॥३॥
> राधे राधे बोलत विलपत, सुन जीवन-धन प्यारी।
> बिरह-बान बरसत ऊपर सों, बिकल विलाप बिहारी ॥४॥
> कोकिल कूक सुनत चहुँ दिसि में, जानत तव मुख-बानी।
> हँसत लोग जिह दसा देखि तव, पुनि लाजत मनमानी ॥५॥
> बोध होत रति सबद सुनत, सुंदर पच्छिन की भाषा।
> सुरतानंद होत अनुभव तब, करत तासु अभिलासा ॥६॥
> राधे राधे नाम कोऊ तिन सन्मुख सहज बखानै।
> तब सब सों तजि प्रीति पियारी, सुनत ताहि दै कानै ॥७॥
> श्री जयदेव कवीश्वर हरि के, विरह विलास उचारे।
> 'रामराय' जा पुन्य तिनहीं के, प्रगट होहिं पिय प्यारे ॥८॥

अंतिम श्लोक का अनुवाद इस प्रकार है—

> महुआ मत चिंता कर, सर्कर तो में कर्कसताई।
> दाख तोहि देखेंगे अब को, सुधा धरा में नाँई॥
> खीर नीर रस कांताधर तू, धरनि रसाल रुबाई।
> बब तक श्री जयदेव देव की, भू तल पर कविताई॥

४. सूरदास मदनमोहन

चैतन्य मत के रससिद्ध कवियों में सूरदास मदनमोहन का विशिष्ट स्थान है; किंतु उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपलब्ध नहीं है। नाभा जी कृत 'भक्तमाल', प्रियादास कृत 'भक्ति रस बोधिनी' और नागरीदास कृत 'पद-प्रसंग-माला' में उनकी जीवनी के कुछ सूत्र मिलते हैं; किंतु वे अधिकतर किंवदंतियों पर आधारित हैं। उन्हीं के आधार पर हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में उनका अपूर्ण जीवन-वृत्तांत लिखा गया है।

नाभा जी ने उनके गेय काव्य की तो बड़ी प्रशंसा की है; किंतु उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में कुछ भी नहीं बतलाया है। प्रियादास और नागरीदास ने उनके जीवन की कुछ बातें लिखी हैं। उनसे ज्ञात होता है कि उनका नाम सूरदास था; किंतु वे इसी नाम के सुप्रसिद्ध भक्त-कवि अष्टछापी सूरदास की तरह नेत्र-हीन नहीं थे। वे मुगल सम्राट अकबर के शासन-काल में संडीला परगना के अमीन थे। वे सूरध्वज ब्राह्मण थे। वृंदावनस्थ सनातन गोस्वामी के उपास्य ठाकुर मदनमोहन जी उनके इष्ट तथा चैतन्य महाप्रभु उनके आराध्य थे[1]

राजकीय नौकरी करने पर भी वे भगवद्भक्ति और साधु-सेवा में अधिक रुचि रखते थे। संडीले में रहते हुए वे ठाकुर मदनमोहन जी को श्रद्धांजलि

---

१. **सूरदास नाम नैन कंज अभिराम फूले,**
झूले रंग फीके नीके जी के ओर ज्याये हैं।
भये सो अमीन यों संडीले के नवीन,
प्रीतिरीति गुड़ देखि दाम बीस गुने लाये हैं ।।४६८।।
सूरद्वज द्विज निज महल टहल पाय,
चहल पहल हिय जुगल प्रकास है।
मदनमोहन जू हैं इष्ट, इष्ट महाप्रभु,
अचरज कहा कृपा दृष्टि अनायास है ।।५०२।।
—प्रियादास कृत 'भक्ति रस बोधिनी टीका'

"एक सूरधज ब्राह्मण गृहस्थ, उनकें नेत्र तो आछे हे, परंतु नाम सूरदास जी, पातसाही एक परगना के दिवान हे।........एई सूरधज सूरदास गृहस्थ कों त्याग करि वृंदाबन आय बैठे। ठाकुर श्री मदनमोहन जी के सेवक आसक्तवान हे।" —नागरीदास कृत 'पद-प्रसंग-माला'

५. गदाधर भट्ट

चैतन्य मतावलंबी ब्रजभाषा कवियों में गदाधर भट्ट जी अत्यंत उच्च स्थान के अधिकारी हैं । नाभा जी, ध्रुवदास, नागरीदास, भगवत रसिक प्रभृत्ति सुप्रसिद्ध भक्त-कवियों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की है । उन्होंने भट्ट जी के उज्ज्वल चरित्र एवं अपूर्व भक्ति-भावना के साथ ही साथ उनकी वाणी की मधुरता और उनके द्वारा कही हुई भागवत-कथा की सरसता का प्रशंसा पूर्ण शब्दों में उल्लेख किया है[१]; किंतु उन्होंने उनके जीवन-वृत्तांत पर कोई प्रकाश नहीं डाला । भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने उनसे संबंधित कई किंवदंतियों का कथन किया है । उनमें से एक में जीव गोस्वामी की प्रेरणा से उनके वृंदाबन जाकर वहाँ निवास करने का उल्लेख है । यह किंवदंती अत्यंत प्रसिद्ध है और इससे ही उनके जीवन-वृत्तांत की एक अस्पष्ट सी रूप-रेखा का आभास होता है ।

उक्त किंवदंती से प्रकट होता है कि गदाधर भट्ट जी वृंदाबन से पृथक् किसी स्थान पर भगवान् श्री कृष्ण की माधुर्य भाव से उपासना करते हुए ब्रजभाषा के सरस पदों की रचना में लीन रहा करते थे । उन्होंने एक बार भक्ति-भाव में विभोर होकर निम्न लिखित पद की रचना की थी—

सखी, हौं स्याम - रंग रँगी ।
देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरति माँझ पगी ॥
संग हुतौ सपुनें अपुनें, पुनि सोइ गई रस भोय ।
जागे हु आगे दृष्टि परै सखि, नैक न न्यारौ होय ॥
एक कन्हैया मेरे नैननि में, निसि-द्यौस रह्यौ करि भौन ।
गाय चरावन जात सुन्यौ सखि, सो धौं कन्हैया कौन ॥
कासों कहौं कौन पत्याइ, मेरें कौन करै बकबाद ।
कैसैकें कह्यौ जात 'गदाधर', गूँगे कौ गुड़ स्वाद ॥

---

१. सज्जन सुहृद सुसील, बचन आरज प्रतिपालै ।
निर्मत्सर निहकाम, कृपा-करुना कौ आलै ॥
अनन्य भजन दृढ़ करन, धरचौ बपु भक्तन काजै ।
परम धरम कौ सेतु, बिदित बृंदाबन गाजै ॥
भागौत - सुधा बरसै बदन, काहू कों नाँहिन दुखद ।
गुन - निकर गदाधर भट्ट अति, सब ही कों लागै सुखद ॥ —(भक्तमाल)

भट्ट गदाधर नाथ भट, विद्या - भजन प्रबीन ।
सरस कथा बानी मधुर, सुनि रुचि होत नबीन ॥ —(भक्त नामावली)

संयोग से उक्त पद साधु-कंठों के माध्यम से वृंदाबन में जीव गोस्वामी ने सुना। इसे सुनते ही वे भक्ति-भाव से विह्वल हो गये। उन्हें आश्चर्य हुआ कि वृंदाबन से अन्यत्र ऐसे भावपूर्ण सरस पद की रचना किस प्रकार हुई ! उन्होंने पद के रचयिता के निवास-स्थान का पता लगा कर उनके लिए एक पत्र लिखा, जिसे कतिपय भक्त जन भट्ट जी के पास ले गये। उस पत्र में निम्न श्लोक लिखा हुआ था—

अनाराध्य राधापदाम्भोज युग्म,
मनाश्रित्य वृंदाटवीं तत्पदाङ्कम् ।
असम्भाष्य तद्भाव गम्भीर चित्तान्,
कुतः श्याम सिन्धो रसस्यावगाहः ।।

गदाधर भट्ट जी को जब वह पत्र मिला, तब उसे पढ़ कर वे आनंद विभोर हो गये। उन्होंने श्लोक के मर्म को समझ कर अनुभव किया कि वृंदाबन में निवास किये बिना वास्तव में वे माधुर्य रस का कथन करने के अधिकारी नहीं हैं। निदान वे अपने निवास स्थान और पुरजन-परिजन प्रभृत्ति का परित्याग कर वृंदाबन को चल दिये। वृंदाबन पहुँच कर वे जीव गोस्वामी जी से मिले और उनकी प्रेरणा से चैतन्य महाप्रभु के कृपा पात्र षट् गोस्वामियों के सत्संग में रहने लगे। उन्होंने रघुनाथ भट्ट गोस्वामी से चैतन्य मत की दीक्षा ली और वृंदाबन के भक्त-समुदाय में सम्मिलित होकर राधा-कृष्ण की माधुर्य भक्ति तथा पद-रचना द्वारा अपने जीवन को सार्थक करने लगे। उनके स्थायी रूप से वृंदाबन वास करने के कारण उनके वंशज भी वहाँ जाकर बस गये। इस समय वृंदाबन के अठखंभा मुहल्ला में गदाधर भट्ट जी के वंशजों का निवास है। भट्ट-परिवार के उपास्य देव श्री मदनमोहन लाल जी ठाकुर हैं, जिनका मंदिर भी इसी मुहल्ला में बना हुआ है। इस मंदिर में दर्शन-झाँकी और संगीत-समाज की सुंदर व्यवस्था है।

वृंदाबन के चैतन्य मतानुयायी गोस्वामियों में रघुनाथ भट्ट श्रीमद्भागवत के सुप्रसिद्ध वक्ता थे। उनकी सरस कथा-वार्ता से ब्रज में कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार हो रहा था। उनके सत्संग में रहने से गदाधर भट्ट जी भी भागवत के विख्यात वक्ता हो गये। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान और भक्त-हृदय तो थे ही, उनकी वाणी भी अत्यंत सरस और मधुर थी। इसलिए रघुनाथ भट्ट के बाद गदाधर भट्ट ही भागवती कथा के सुप्रसिद्ध वक्ता माने गये। नाभा जी आदि भक्त कवियों ने उनकी भागवत-कथा की बड़ी प्रशंसा की है। उनके वंशजों में भी भागवत के अनेक मार्मिक वक्ता होते रहे हैं।

गदाधर भट्ट जी के निवास-स्थान, माता-पिता और पारिवारिक जनों का कोई वृत्तांत उपलब्ध नहीं है । उनका यथार्थ काल भी अनिश्चित है । हिंदी साहित्य के विद्वानों ने उनके संबंध में बहुत कम लिखा है; और जो कुछ लिखा भी है, वह भ्रमात्मक है । मिश्रबंधु विनोद में उनका केवल कविता-काल लिखा गया है; जो काल-क्रम से बहुत बाद का सिद्ध होता है । ब्रजमाधुरीसार तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के इतिहास ग्रंथों में यह गलत बात बार-बार दुहराई गई है कि गदाधर भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के समकालीन और उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य थे । वे महाप्रभु जी को भागवत की कथा सुनाया करते थे ! इस भ्रमात्मक कथन के आधार पर ही उनका काल निश्चित किया गया है । वास्तविक बात यह है कि चैतन्य महाप्रभु को भागवत की कथा सुनाने वाले गदाधर पंडित गोस्वामी थे, जो गदाधर भट्ट से भिन्न महानुभाव थे । गदाधर पंडित चैतन्य देव के साथ जगन्नाथ पुरी में निवास करते थे । वे चैतन्य महाप्रभु के अंतरंग पार्षद थे, जिनका वृत्तांत गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है । चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किसी को शिष्य नहीं बनाया । उनकी शिष्य-परंपरा उनके सहकारी और कृपा-पात्र भक्त जनों से चली है । हिंदी साहित्य के विद्वानों का भ्रमात्मक कथन नाम-साम्य के कारण हुआ है । गदाधर भट्ट जी रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है । वे भागवत के वक्ता अवश्य थे, किंतु वे चैतन्य महाप्रभु को नहीं, बल्कि वृंदाबन की भक्त-मंडली को भागवत की कथा सुनाया करते थे । गदाधर भट्ट जी को चैतन्य महाप्रभु से साक्षात्कार करने का कभी सुयोग नहीं मिला । वे जब वृंदाबन गये थे, उससे पहिले ही चैतन्यदेव का तिरोधान हो चुका था ।

गदाधर भट्ट जी आंध्र प्रदेशीय दाक्षिणात्य वेल्लनाटीय तैलंग ब्राह्मण थे; जैसा उनके वृंदाबन निवासी वंशजों से निश्चित होता है । उनका मूल स्थान आंध्र प्रदेश का कोई नगर अथवा ग्राम होगा । वृंदाबन आने से पूर्व उन्होंने ब्रज-भाषा में जिस सरस पद की रचना की थी, उससे अनुमान होता है कि उस समय भट्ट जी अथवा उनके पूर्वज आंध्र प्रदेश से आकर उत्तर भारत के उस स्थान में बसे होंगे, जो ब्रजभाषा क्षेत्र से अधिक दूर न होगा; क्यों कि आंध्र प्रदेश में रहते हुए ब्रजभाषा की उतनी सुंदर रचना करना संभव नहीं था । उस काल में दक्षिण के अनेक परिवार उत्तर भारत के विविध नगरों में आ कर बस गये थे । पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्त्तक श्री बल्लभाचार्य जी भी गदाधर भट्ट के सजातीय तैलंग ब्राह्मण थे, जिनके पिता श्री लक्ष्मण भट्ट दक्षिण से आ कर

गदाधर भट्ट जी के निवास-स्थान, माता-पिता और पारिवारिक जनों का कोई वृत्तांत उपलब्ध नहीं है । उनका यथार्थ काल भी अनिश्चित है । हिंदी साहित्य के विद्वानों ने उनके संबंध में बहुत कम लिखा है; और जो कुछ लिखा भी है, वह भ्रमात्मक है । मिश्रबंधु विनोद में उनका केवल कविता-काल लिखा गया है; जो काल-क्रम से बहुत बाद का सिद्ध होता है । ब्रजमाधुरीसार तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के इतिहास ग्रंथों में यह गलत बात बार-बार दुहराई गई है कि गदाधर भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के समकालीन और उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य थे । वे महाप्रभु जी को भागवत की कथा सुनाया करते थे ! इस भ्रमात्मक कथन के आधार पर ही उनका काल निश्चित किया गया है । वास्तविक बात यह है कि चैतन्य महाप्रभु को भागवत की कथा सुनाने वाले गदाधर पंडित गोस्वामी थे, जो गदाधर भट्ट से भिन्न महानुभाव थे । गदाधर पंडित चैतन्य देव के साथ जगन्नाथ पुरी में निवास करते थे । वे चैतन्य महाप्रभु के अंतरंग पार्षद थे, जिनका वृत्तांत गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है । चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किसी को शिष्य नहीं बनाया । उनकी शिष्य-परंपरा उनके सहकारी और कृपा-पात्र भक्त जनों से चली है । हिंदी साहित्य के विद्वानों का भ्रमात्मक कथन नाम-साम्य के कारण हुआ है । गदाधर भट्ट जी रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है । वे भागवत के वक्ता अवश्य थे, किंतु वे चैतन्य महाप्रभु को नहीं, बल्कि वृंदाबन की भक्त-मंडली को भागवत की कथा सुनाया करते थे । गदाधर भट्ट जी को चैतन्य महाप्रभु से साक्षात्कार करने का कभी सुयोग नहीं मिला । वे जब वृंदाबन गये थे, उससे पहिले ही चैतन्यदेव का तिरोधान हो चुका था ।

गदाधर भट्ट जी आंध्र प्रदेशीय दाक्षिणात्य वेल्लनाटीय तैलंग ब्राह्मण थे; जैसा उनके वृंदाबन निवासी वंशजों से निश्चित होता है । उनका मूल स्थान आंध्र प्रदेश का कोई नगर अथवा ग्राम होगा । वृंदाबन आने से पूर्व उन्होंने ब्रजभाषा में जिस सरस पद की रचना की थी, उससे अनुमान होता है कि उस समय भट्ट जी अथवा उनके पूर्वज आंध्र प्रदेश से आकर उत्तर भारत के उस स्थान में बसे होंगे, जो ब्रजभाषा क्षेत्र से अधिक दूर न होगा; क्यों कि आंध्र प्रदेश में रहते हुए ब्रजभाषा की उतनी सुंदर रचना करना संभव नहीं था । उस काल में दक्षिण के अनेक परिवार उत्तर भारत के विविध नगरों में आ कर बस गये थे । पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्त्तक श्री वल्लभाचार्य जी भी गदाधर भट्ट के सजातीय तैलंग ब्राह्मण थे, जिनके पिता श्री लक्ष्मण भट्ट दक्षिण से आ कर

नमो - नमो जय श्री गोबिंद ।
आनँद मय ब्रज सरस सरोबर, प्रगटित विमल नील अरबिंद ।।
जसुमति नीर नेह नित पोषित, नव नव ललित लाड़ सुख कंद ।
ब्रजपति तरनि प्रताप प्रफुल्लित, प्रसरित सुजस सुबास अमंद ।।
सहचरि जाल मराल संग रँग, रस भरि नित खेलत सानंद ।
अलि गोपी जन नैन 'गदाधर', सादर पिवत रूप मकरंद ।।२।।

जयति श्री राधिके, सकल - सुख - साधिके,
तरुन - मनि, नित्य नव तन किसोरी ।
कृष्ण - तन - लीन - मन, रूप की चातकी,
कृष्ण - मुख हिम - किरन की चकोरी ।।
कृष्ण - दृग - भृंग विस्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण - दृग - मृगज - बंधन सुडोरी ।
कृष्ण - अनुराग - मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण - गुण - गान रससिंधु बोरी ।।
बिमुख पर चित्त तें चित्त जाकौ सदा,
करति निज नाह कौ चित्त चोरी ।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसै बनै,
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी ।।३।।

मो मन स्याम - सरोबर न्हाहि ।
बहुत दिनन कौ जरचौ बरचौ तू, तब ही भलै सिराहि ।।
नयन - बयन - कर - चरन कमल से, कुंडल मकर समान ।
अलकावली सिबाल - जाल तहँ, भौंह मीन मो जान ।।
कमठ - पीठ दोउ भाग उरस्थल, सोभित दोय - नितंब ।
मनि मुकता आभरन बिराजत, ग्रह नछत्र प्रतिबिंब ।।
नाभि भँवर त्रिवली तरंग, झलकत सुंदरता वारि ।
पीत बसन फहरानि उठी जनु, पदुम रेनु छबि धारि ।।
सारस सरिस सरस रसना रव, हंसक धुनि कल हंस ।
कुमुद दाम बग - पंगति बैठी, कविकुल करत प्रसंस ।।
क्रीड़ा करति जहाँ गोपी जन, बैठि मनोरथ नाव ।
बार - बार यह कहत 'गदाधर', देह सँवारौ दाव ।।४।।

सुमिरहु वर नागरवर सुंदर गोपाल लाल ।
सब दुख मिटि जैहैं, वै चित लोचन बिसाल ।।
अलकनि की झलकनि लखि, पलकनि गति भूलि जाति,
भुव - विलास मंद हास रदन - छदन अति रसाल ।
निंदित रवि कुंडल छवि गंड - मुकर झलमलात,
पिच्छ गुच्छ कृतबतंस, इंदु विमल बिंदु भाल ।।
अंग - अंग जित अनंग, माधुरी तरंग रंग,
विमद मद गयंद होत, देखत लटकीली चाल ।
रतन रसन पीत बसन, चारु हार वर सिंगार,
तुलसी रचित कुसुम - खचित, पीन उर नव तमाल ।।
ब्रज नरेस बंस दीप, वृंदाबन वर महीप,
श्री वृषभान नाम पात्र, सहज दीन जन दयाल ।
रसिक रूप भूप रासि, गुन - निधान जान राय,
'गदाधर' प्रभु जुबती जन, मन - मानसर - मराल ।।५।।

झूलति नागरि नागर लाल ।
मंद - मंद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल ।।
फरहरात पट पीत नील के, अंचल चंचल चाल ।
मनहुँ परस्पर उमँगि ध्यान छबि, प्रकट भई तिहि काल ।।
सिलसिलात अति प्रिया सीस तें, लटकत बेनी नाल ।
जनु पिय-मुकुट-बरहि भ्रम बस तहँ, ब्याली विकल विहाल ।।
मल्ली - माल प्रिया की उरझी, पिय तुलसीदल माल ।
जनु सुरसरि रवि - तनया मिलि कै, सोभित स्रेनि मराल ।।
स्यामल - गौर परस्पर प्रति छबि, सोभा बिसद बिसाल ।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुँवरि मन, परचौ सुरस जंजाल ।।६।।

कहा हम कीनौ नर - तन पाइ ।
हरि परितोषन एकौ कबहुँ, बन आयौ न उपाइ ।।
हरि हरिजन आराधि न जाने, कृपन वित्त चित लाइ ।
वृथा विषाद उदर की चिंता, जनमहिं गयौ विताइ ।।
सिंह त्वचा कौ मढ़्यौ महा पसु, खेत सबन कौ खाइ ।
ऐसे ही धरि भेष भक्त कौं, घर-घर फिरचौ पुजाइ ।।
जैसे चोर भोर के आये, इत चितवत वित ताइ ।
ऐसै ही गति भई 'गदाधर', प्रभु किन करहु सहाइ ।।७।।

दोहा—चरन - पादुका पाय दै, सखी लियें चहुँ ओर ।
अंग - अंग झलकत झुकत, भीतर गौर किसोर ॥

पद— पधारे भीतर गौर किसोर ।
चरन-पादुका पाय बिराजत, सोभा सुधा समुद्र झकोर ।
उजराई सुघराई अँग-अँग, झलकत झुकत अनौखी जोर ।
स्याम धाम अभिराम माधुरी, प्यारी प्रनय-सिंधु दई बोर ॥
पधराये हुलसाये गाये, विविध सिंगारन लेत हिलोर ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' लड़ाये, श्री राधा - माधव चित-चोर ॥

दोहा—श्री जमुना - जल तीर में, सोभित धीर - समीर ।
गौर स्याम क्रीड़त महा, लाड़ भरे गंभीर ॥

पद— जुगल वर क्रीड़त जमुना तीर ।
श्री गौरांग गदाधर मिलि-मिलि, सुंदर धीर - समीर ॥
ललिता श्री स्वरूप दामोदर, लाड़ भरे गंभीर ।
गलबाहीं दै चलत महासुख, परछाईं लखि नीर ॥
रामानंद बिसाखा वपु सों, खेल खिलावत वीर ।
श्री प्रभु 'चंद्र' भीर भौंरन की, बोलत कोकिल-कीर ॥

दोहा—चलौ चलौ मिलि खेलि हैं, ललित लतागृह माँझ ।
गावत गान महान सुख, बाजत बीना झाँझ ॥

पद— देखहु सखी बिसाखा - नेह ।
चलौ चलें मिल खेल देखिहैं, रस बरसत नव मेह ॥
ललित लतागृह की परछाहीं, गलबाहीं दै वेह ।
गावत गान महान सुखी ह्वै, एक प्रान द्वै देह ॥
बाजत बीना ताल झाँझ संग, मद मृदंग रस लेह ।
श्री प्रभु 'चंद्र' झुकीं सब आली, बनमाली गुन - गेह ॥

दोहा—कितने - कितने रस लिये, कौन - कौन सी कुंज ।
बतरावत आवत अली, गली - गली छवि पुंज ॥

पद— अरी अब कौन कुंज के माहीं ।
बिलसत गौर किसोर चोर चित, लियें दियें गलबाहीं ॥
बतरावत आवत जो पूछत, सो बतात जब नाहीं ।
अपनी - अपनी बातन भूलीं, एक तान चित लाहीं ॥
मेला मच्यौ डगर में दीसत, कोउ दरसन हित जाहीं ।
श्री प्रभु 'चंद्र' कलिंद - सुता की, छटा छई परछाहीं ॥

२. **अष्टयाम सेवा-सुधा**—इसमें श्री राधा-माधव की अष्टयाम सेवा का सरस कथन हुआ है। इसके पदों की संख्या ३५ है। कुछ पदों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

श्री राधा - माधव दोऊ प्यारे ॥
बर बिहार विहरत गुन भारे ।
प्रेम-सुधा-रस पगे, उमंग रँग रँगे, अंग अंगन मतवारे ॥
सकल कला कुल कुसल, किसोरी जोरी मिलत नैन रतनारे ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' मोहनी - मोहन उठत उनींद सकारे ॥१॥

उठे दोऊ लाड़ - लड़ीले लाल ।
भोर किसोर - किसोरी जोरी, भोरी परम रसाल ॥
बीती निसा तहूँ रस घूँटत, रसिक रसीली बाल ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' रूप-निधि, मिले सहचरी जाल ॥२॥

श्री राधा - माधव मुसिक्यात ॥
परम सरस सुभ सुरति बिजय जुत, मानत मोद प्रभात ।
स्रमकन बिंदु बदन पर सोहत, अविचल भूषन गात ॥
अलक कुटिल मुख पंकज ऊपर, मानहु अलि बलि जात ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' स्वामिनी, नैनन में हरसात ॥३॥

प्रति प्रत्यूष निकुंज पुंज में, बरसत रस अधिकात ।
जुगल धाम अभिराम परस्पर, छिन बिछुरे न सुहात ॥
प्यारी प्रिया ओढ़ि पीतांबर, मन ही मन मुसकात ।
जुग उरोज कुंकुम लखि निज हिय,पियतम हँसत-हँसात ॥
मिलि सहचरी सँभारत सुंदर, निस रस चिह्न जु गात ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' स्वामिनी, दीठ देखि बलि जात ॥४॥

सिता नवनीत सखी मिल लाईं ।
कंचन कलस जटित मुक्ता-मनि, भरि जमुना-जल धाईं ॥
मुख कर सरस परस दोऊ जन, दीनीं भुज गलबाईं ।
प्रिय प्यारी कों प्रात रास जहँ, मुद सों सकल कराईं ॥
मगद - मलाई - बासोंदी रुचि, मेवा भोग लगाईं ।
श्री प्रभु 'चद्रगोपाल' आचमन, बीरी दै बलि जाईं ॥५॥

३. **गौरांग अष्टयाम**—इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की अष्टयाम सेवा का वर्णन है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

[जागरण] राग भैरव

जागहु श्री गौर देव, देव वंद्य स्वामी ॥
रवि की छवि प्रगट भई, ससि की सब कांति गई,
कोकिल कल कंठ छई, गुन - निधि गज - गामी ।
सुखकर करुना - निधान, भक्त वृंद परम प्रान,
दीजै निज भक्ति दान, नाथ गौर धामी ॥
मंगलमय तेज धार, अनुपम रस - रासि सार,
भक्ति - विभव के आगार, पूज्य धन्य नामी ।
परिकर निज ले कृपाल, संग सुखद गौर लाल,
श्री श्री प्रभु 'चंद्रलाल', उठहु हे अकामी ॥

[स्नान] राग विलावल

करहु हे गौर - चंद स्नान ॥
सीतल जल निर्मल सों सुंदर, सर्बस कृपा-निधान ।
अतर गुलाब आव सों सुखकर, परम रम्य सुरमान ॥
श्री नित्यानंद महाप्रभु संग मिल, मुदित प्रेम धीमान ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' सची-सुत, निज जन-जीवन-प्रान ॥

[भोग] राग सारंग

भोजन करत सची - सुत सब रस ॥
मधुर - मधुर रस खीर मुदित अति, परिकर के है सोहै सर्वस ।
सची मात रस कौर देत मुख, पावत प्रेम भरे गत आलस ॥
दूध पान करि-करि हँस सब जन, बासोंदी रुचि राजे रति खस ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' अलौकिक, भोग धरचौ श्रीगौर पूर्ण ससि ॥

[आरती] राग सारंग

आरती कीजै श्री गौड़ेश्वर की ॥
नित्यानंद महाप्रभु राजत, प्यारे सची - कुँमर की ।
कलि पावन अवतार धरन की, गजगति विस्वंभर की ॥
श्री राधा पद-पदुम मत्त मन, मोद भरे मधुकर की ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' प्रेम सों, प्रवर पंच परिकर की ॥

४. **ऋतु बिहार**—इसमें षट् ऋतुओं के विहार का कथन किया गया है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

[बसंत]

श्री राधा - माधव जुगल, प्रेम बिहार निहार।
सखी - सहेली कुंज में, करत रहत बलिहार।।
करत रहत बलिहार, निरखि कुसुमाकर अनुचर।
श्री राधा सुकुमार, स्याम सुंदर सेवन कर।।
नव निकुंज अलि पुंज, गुंज मंजुल जन मनहर।
सेवा हित नव लता धारि, नव दल सौरभ भर।।
नवल नेह जोरी कियौ, नव उत्सव अनुराग जस।
श्री प्रभु 'चंद्र' मिलाप नव, नव बसंत ऋतु प्रियावस।।१।।

कामदेव कौ चित्त अति, करिवे कों अभिराम।
बने बसंती बेस अज, श्री राधा-घनस्याम।।
श्री राधा - घनस्याम, कूल कालिंदी ऊपर।
मधु माधव सम मास, नवल नागरि अरु नागर।।
ब्रज बीथी अति मुदित, पाय सुंदर बिहार धर।
रसिक छबीलौ छल, लाड़िली मान मगन कर।।
जुगल माधुरी सुभग अति, ध्यान करत आनंद नव।
श्री प्रभु 'चंद्र' प्रसन्न है, करत मलिंद मनोज्ञ रव।।२।।

५. **श्री राधा विरह**—इसमें एक सौ अरिल्ल छंदों में राधा-विरह वर्णन किया गया है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

अरिल्ल—बनि ठनि कै नित आइ, कन्हाई भोर ही।
मुरली मधुर बजाइ, सबै हम भो रही।।
सखि वाके छल छंद, कहौ अब को कहै।
'चंद्र' रसिक नँदनंद, पढ़्यौ जहँ कोक है।।

बात बतावत कहत, मिलो मोहि अतर सों।
भीजे सौंधे बार, भये सनि अतर सों।।
फूलो केसर ललित, सुगंधी बाट में।
तोले ऐसौ को है, जहँ सुख वाट में।।
'चंद्र' गुसाईं करीं, अरिल्लै एक सौ।
मुजरा मुहरा मिलवौ, तिनकौ एकसौ।।

मनहरन छैल नंदराय कौ,
छवि सों इत निकस्यौ आय ।
देखत ही दृग छकि रहे,
मेरौ जीय रह्यौ ललचाय ।।
चंपकली धरैं कुटिल अलक परि,
ऐंड़ों ऐंड़ भरचौ ऐंड़ाय ।
सूँघत कमल कमलदल - लोचन,
चितैं - चितैं मुसिकाय ।।
(ए री) अंग-अंग छवि कहा कहौं,
तन साँवल रंग चुचाय ।
मोहि देखि ठाढ़ो रह्यौ प्यारौ,
पगिया पेच बनाय ।।
रौम - रौम नख - सिख रम्यौ,
मन रमि, लई रमाय ।
कहैं 'भगवान हित रामराय',
प्रिय सब विधि रहे समाय[1] ।।२।।

[राग सामंत]

मुरली वारे साँवरे, नैक मारग मोहिं बताव रे ।
संग न सहेली, फिरौं अकेली, कित नंदीसुर-गाँव रे ।।
भूलि परी संकेत सघन बन, हौं अबला कित जाउँ रे ।
मृगनैनी के वचन सुनत ही, आय मिले तिहिं ठाँउ रे ।।
मारग मिले, अंक भरि भेंटे, भलौ बन्यौ है दाउ रे ।
कहै 'भगवान हित रामराय' प्रभु, राधारमन है नाँउ रे ।।

बन्यौ मोर मुकट, नटवर वपु, स्यामसुंदर, कमल नयन,
बाँकी भौहैं, ललित भाल, घूँघरि वारी अलकैं ।
पीत बसन, मुक्ता-माल, हियें पदक, कंठ लाल,
हँसन - बोलन, गावन गंडन, स्त्रवन कुंडल झलकैं ।।
कर - पद भूषन अनूप, कोटि मदनमोहन रूप,
अदभुत बदन चंद देखि, गोपी भूलीं पलकैं ।
कहि 'भगवान हित रामराय', प्रभु ठाड़े रास मंडल में,
राधा सों बाँहि जोरि, किये हिये प्रेम - ललक[2] ।।३।।

---

१. 'नागर समुच्चय', पद प्रसंग माला, पृ० २३६ २. कीर्तन संग्रह

८. गरीबदास (२)

वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके माता-पिता का देहावसान उनकी बाल्यावस्था में हो गया था। वे अनाथावस्था में रामगिरि संन्यासी के शिष्य हो गये। उक्त संन्यासी ने इनका नाम गोविंदगिरि रखा था। एक बार सोरों में उनको रामराय जी से मिलने का सुअवसर मिला। वे उनकी भक्ति-भावना से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गये और उनके साथ वृंदाबन आ गये।

उनकी तीन रचनाएँ कही जाती हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. शृंगार शतक, २. आनंद शतक और ३. वृंदाबन शतक

इनमें से 'आनंद शतक' का रचना-काल सं० १५८० बतलाया गया है। उक्त ग्रंथों के कुछ अंश यहाँ उदाहरणार्थ उपस्थित किये जाते हैं—

शृंगार शतक— **तन-मन-वचन विनोद सों, जन-धन-रतन बिहाय।**
सतक कहौं सिंगार, गुरु रामराय पद नाय॥

गूढ़ भाव अंकुर सोई, शृंग नाम विख्यात।
आर नाम रस कौ कह्यौ, सो शृंगार सुहात॥

आलंबन श्री राधिका, उद्दीपन ब्रज-धाम।
मूरतिमान निहारियै, राधा-माधव स्याम॥

आनंद शतक— **ब्रह्म कह्यौ श्रुति नेति, पार सोहू नहिं पायौ।**
अगनित ताके नाम, कविन कितनौ करि गायौ॥

ताके रूप अनूप दोय, बरनित हैं जानों।
ब्रह्मानंद अमंद, मंद विषयानंद मानों॥

विषयानंद विलीन, दीन डूबे भव-सागर।
जो श्री कृष्णानंद, प्रगट त्रैलोक उजागर॥

ताके साधन अब, गरीबदासहिं जो पाये।
रामराय गुरुदेव, कृपा करि सहज सुनाये॥

संवत पंद्रह सौ असी, श्री वृंदाबन धाम।
ग्रंथ कियौ गुरु कृपा सों, 'दास गरीब' ललाम॥

वृंदावन शतक—**बृंदाबन कौ चूहरौ, आन गाँम कौ भूप ।**
ताकी सरबर ना करै, बेच खाय जो सूप ।।
बेच खाय जो सूप, रूप-रस छक्यौ न जानै ।
कहा मोहि करतव्य, नाम बन राज बखानै ।।
रज रानी की कृपा मिलै, प्यारी पिय छानै ।
ब्रह्मादिक जहाँ चकित रहैं धरि-धरि हिय ध्यानै ।।
जहँ 'गरीब' के बोल, बोलिबे कौ प्रमान पन ।
श्री राधा-माधव, रामराय गुरु भज वृंदाबन ।।

६. विष्णुदास (३)

वे आगरा निवासी अग्रवाल वैश्य थे । उनकी सर्राफ़े की दूकान थी। वे अपने कारोबार में इतने आसक्त थे कि अनाचार पूर्वक धनोपार्जन करने में भी उनको संकोच नहीं होता था । एक बार रामराय जी अपने ठाकुर राधा-माधव जी का शृंगार ठीक कराने आगरा में विष्णुदास की दूकान पर गये थे। रामराय जी के क्षणिक सत्संग का विष्णुदास पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अपने घर-बार, धंधे-रोजगार और धन-वैभव को छोड़ कर विरक्त हो गये तथा रामराय जी के शिष्य बन कर उनके साथ वृंदाबन चले गये ।

उन्होंने वैराग्यपूर्ण काव्य-रचना की है । इस प्रकार की रचनाओं का संकलन 'वैराग्य विज्ञान' के नाम से उपलब्ध है । इस ग्रंथ में १०० सवैया हैं। इसके कुछ छंद उदाहरण स्वरूप यहाँ दिये जाते हैं—

मो मन आस सदा अभिलास, गुरु जी के पास निबास बनाऊँ ।
दास के धर्म सों सेवा करूँ, पद-पंकज-बित्त से चित्त बसाऊँ ।।
श्री जमुना जल पान करूँ, सुमिरूँ ब्रजधाम - लता, सुख पाऊँ ।
'विष्णु' के प्रान श्री राम के राय, श्री राधिका-माधव के गुन गाऊँ ।।१।।

काम तजो, धन - धाम तजो, गृह - गाँम तजो, मनिदीप अटारी ।
लाज तजो, कुल-काज तजो, बनराज के साज-समाज सुखारी ।।
धाम तजो, सुत-माय तजो, निज भाय तजो, जो रजोगुन धारी ।
'विष्णु' सबै तजियै, भजियै गुरु, राधिका-माधव प्रीतम-प्यारी ।।२।।

श्री वृंदाबन नित्य निकुंज, जहाँ अलि - पुंज गुंजारत भारे ।
बास कुटी जमुना - तट सुंदर, राधिका - माधव मंदिर प्यारे ।।
तीनहुँ लोक की संपद तुच्छ, लता नव पल्लव सोभित न्यारे ।
'विष्णु' न त्याग - विराग के पायै, मिलै न कहूँ ब्रजराज दुलारे ।।३।।

१०. जुगलदास (४)

वे दिल्ली के निवासी कपूर खत्री थे । सत्संग के कारण उन्हें संसार से विरक्ति हो गई, अतः वे निर्वाणपुरी नामक संन्यासी के शिष्य होकर उनके साथ तीर्थयात्रा को चल दिये । दोनों गुरु-शिष्य वृंदाबन में आकर रामराय जी के निवास-स्थान श्री राधा-माधव वाटिका में ठहरे । वहाँ पर रामराय जी के सत्संग और उनके प्रवचन से जुगलदास अत्यंत प्रभावित हुए । वे रामराय जी के शिष्य होकर उनकी सेवा में वृंदाबन रहने लगे ।

उन्होंने दो पुस्तिकाओं की रचना की है । उनके नाम हैं—१. 'भक्तियोग' और २. 'योग कल्पवल्ली' । इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

[भक्तियोग]

श्री गुरुदेव कृपा लही, सार - सार सिद्धांत ।
बिना भक्ति नहिं पाइयै, जिही योग एकांत ।।
रामराय जा दिन मिले, मिलि गये जुगल किसोर ।
जुगल नाम साँचौ कियौ, सेवा-निधि धन जोर ।।
श्री वृंदाबन धाम कौ, धन है भक्ति नितांत ।
भक्तियोग तासूँ कहैं, 'जुगलदास' निभ्रांत ।।

[योग कल्पवल्ली]

श्री गुरु श्री जयदेव हरि, श्री वृंदाबन चंद ।
बंदन करि बरनन करूँ, जोगकल्प स्वच्छंद ।।
जोग कल्पवल्ली ललित, लाल - लाड़िली रूप ।
पात्र प्रेम निश्चै रसी, मेलौ अमृत - कूप ।।
जा जोगी नें नहिं लखी, जहि बानी रस-धार ।
रूखे - सूखे जोग में, भटकत है संसार ।
भक्ति - प्रेम जोगी कहैं, सोही आठौं जाम ।
राधा - माधव चाकरी, श्री वृंदाबन धाम ।।

११. राधिकानाथ (५)

रामराय जी के शिष्यों में भगवानदास के बाद राधिकानाथ प्रमुख थे। वे चंद्रगोपाल जी के पुत्र होने से रामराय जी के भतीजे भी थे । उनका जन्म चंद्रगोपाल जी के वृंदाबन आने पर हुआ था । यमुनाबल्लभ जी के मतानुसार उनका जन्म-संवत् १५७० है; किंतु हमारे अनुमान से वे सं० १६०० के लगभग उत्पन्न हुए थे।

उन्होंने बाल्यावस्था से ही रामराय जी का सत्संग किया था; अतः वे प्रसिद्ध विद्वान, परम भक्त और उत्कृष्ट वाणीकार हुए। उन्होंने 'राधाप्रिया', 'श्यामा' और 'माखन' के उपनामों से रचना की है। उनकी काव्य-रचनाओं के नाम—१. 'महावाणी', २. 'प्रेम संपुट', ३. 'राधा रस सुधानिधि' और ४. 'रसबिंदु' हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने ब्रजभाषा गद्य में 'प्रणालिका' की भी रचना की है, जिसमें सेवा-पद्धति का उल्लेख हुआ है । इसका रचना-काल सं० १६४० है। यहाँ पर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

१. महावाणी—इसमें ब्रज-महिमा के भावपूर्ण पदों का संकलन है, जिनकी रचना 'राधा प्रिया' के नाम से हुई है। इसे 'महावाणी' नाम किसने दिया, यह ज्ञात नहीं होता है । ऐसा अनुमान है, इसका यह नाम स्वयं रचयिता का रखा हुआ नहीं है। कालांतर में जब रामराय जी और उनके परिकर की रचनाओं के संकलन और संपादन का आयोजन हुआ; तभी उनके नामकरण भी किये होंगे। रामराय जी के पदों को 'आदि वाणी' और राधिकानाथ के पदों को 'महावाणी' कहा गया है । उनके ये नाम कदाचित निंबार्क संप्रदायी महात्मा श्री भट्ट जी और हरिव्यास जी की रचनाओं के नामों के अनुकरण पर रखे गये थे। राधाबल्लभीय महात्मा हित हरिवंश जी की 'हित चौरासी' और उनके संप्रदाय के सेवकजी की 'सेवक वाणी' के अनुकरण पर कदाचित चंद्रगोपाल जी और उनके शिष्य रसिकमोहन की रचनाओं को क्रमशः 'चंद्र चौरासी' और 'रसिक सेवक वाणी' कहा गया। इसी प्रकार ब्रह्मगोपाल कृत 'बारह वैष्णवन की वार्ता' का नाम भी बल्लभ संप्रदाय की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' अथवा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर रखा हुआ जान पड़ता है।

महावाणी अभी तक अप्रकाशित है । इसकी हस्त प्रति वृंदाबन में यमुनाबल्लभ जी के पास है । उसमें 'विलास' नाम से कई परिच्छेद हैं और

आरंभ में संस्कृत के ३ श्लोक हैं । उनके बाद मंगलाचरण और परिचय के ९ दोहे हैं। फिर एक-एक दोहा और एक-एक पद के क्रम से रचना की गई है। इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

स्वयं कृष्ण पूरन कला, प्रगटे नदिया धाम ।
अवतारी परिकर सहित, श्री गौरांग सुनाम ।।
श्री गौरांग प्रान - आधार ।
षोड़स कला पूर्न पुरुषोत्तम, प्रगट भये नदिया रस-धार ।।
कलि पावन हरिनाम दान करि, पतितन कौ कीनौ उद्धार ।
नित्यानंद - अद्वैत - गदाधर, श्रीबासादि रसिक - प्रतिहार ।।
रूप - सनातन - भट्ट - जीव - रघु, रामराय पारषद सुखसार ।
भव-रोगन के बैद जिही सब, औषध बाँटी विविध प्रकार ।।
दसौ दिसा के दीन-हीन जन, इन अनुरागिन दीने तार ।
'राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, एक रूप अनुपम विस्तार ।।१।।

एक सहारौ है मेरौ, श्री वृंदाबन धाम ।
नित्य केलि राधा प्रिया, राधामाधव स्याम ।।
मेरौ एक श्री वृंदाविपिन सहारौ ।
ललित लता कुंजन की छैंया, जब ही नैन पसारौ ।।
श्री राधामाधव दर्सन होय, जो है नैनन तारौ ।
श्री जमना जल पान करन कूं, जो कहुँ नैंक विचारौ ।।
नित्यकेलि दरसन अनुपम छवि, मिट जाय मोह अँध्यारौ ।
'श्री राधा प्रिया' बसहु दृढ़ व्रत करि, जो चाहौ सुख भारौ ।।२।।

श्री वृंदाबन अति सघन, मगन मोर गन जोर ।
नाँचत श्री राधा प्रिया, जीबन जुगल किसोर ।।
श्री वृंदाबन रमन अथोर ।
सघन बाटिका जमना तट वट, नाँचत मोर नगन के जोर ।।
स्याम तमाल कनक नव लतिका, कौतुक करत मुदित मन मोर ।
बहु बिध वाद्य बजत बंसी-रव, राग अलौकिक उपजत घोर ।।
जुगल किसोर लाल पर बरसत, पुहपन की बरसा बरजोर ।
जिह छवि फबी मालती मुकलित, सरद मल्लिका पंछिन रोर ।।
आभूषन हिय के भूषन कों, केतिक नित पहिरावत जोर ।
'श्री राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, नाँचत नवरंगी रँग बोर ।।३।।

मेरें तौ वृंदाबिपिन, सब सुख कौ आधार ।
सदा सदा राधा प्रिया, राधा - माधव सार ॥
श्री वृंदाबिपिन सर्व सुख - सार ।
मेरें तौ दूजौ नहिं कोऊ, जिहीं प्रान-जीवन-आधार ॥
सेवहुँ श्री राधा-माधव पद, गाऊँ तिनकौ नित्य बिहार ।
पढ़ि - पढ़ि पोथी त्याग दईं, मन पायौ नहीं तत्व कौ पार ॥
जाकों ब्रह्म कहत वेदांती, सो मेरे प्यारे कौ प्यार ।
'श्री राधा प्रिया' निरख रजधानी, रजरानी रखि हिय में धार ॥४॥

पाँच तत्व त्रिभुवन बिसें, जो तू जान्यौ चाह ।
तौ निस्चै राधा प्रिया, बन गयौ साहंसाह ॥
प्रथम तत्व श्री वृंदावन धाम ।
दूजें श्री गोबर्द्धन गिरिवर, सोभा हिय लोभा अभिराम ॥
तीजौ तत्व दीन जन - जीवन, श्री जमना जी ललित ललाम ।
चौथौ श्री राधा-माधव जू, पावत जहाँ जीव बिश्राम ॥
पंचम श्री जयदेव महाप्रभु, गीत गोबिंद गान निष्काम ।
'श्री राधा प्रिया' पाँच के जानें, है गयौ साहंसाह सुनाम ॥५॥

एक नियम व्रत एक है, एक मेरें आधार ।
श्री जमना जल पीवनौ, निरखन नित्य बिहार ॥
श्री जमना जी मेरें जह व्रत एक ॥
एक जिही आधार स्वामिनी, छाँड़े सकल विवेक ।
तट बंसीबट नव नट-नागर, निरखूं हौं अनिमेख ॥
नित्य बिहार आहार निरंतर, जीवन - जीवन रेख ।
पीवहुँ रस पीयूष पयोव्रत, जीवहुँ तुमकों देख ॥
कुंज - कुंज सेवा - रस चाखूं, आपुन कृपा बिसेख ।
'श्री राधा प्रिया' राधिका-माधव, चरन-कमल धरि टेक ॥६॥

जो चाहत जीवन सफल, श्री वृंदावन कौ बास ।
तौ निसि-दिन राधा प्रिया, करि श्री जमना आस ॥
श्री जमना जी एक तुमारी आस ।
मदनमोहन सुख सदन सँभारत, छिन नहिं छाँड़त पास ॥
जीवन सफल करत महारानी, सब बिधि सुख की रास ।
निसि - दिन गाय - गाय हौं जीऊँ, अदभुत रास - बिलास ॥

ललित लता बल्लरी प्रफुल्लित, मंडित कमल विकास ।
निरख - निरख गाऊँ गुन प्यारी, छाँड़ि अन्य बिस्वास ।।
रूप - माधुरी कौन बखानै, मोहन करत प्रकास ।
'श्री राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, श्री वृंदाबिपिन निबास ।।७।।

श्री जमना माथे मुकट, कटि - काछनी सुधंग ।
कमल-मालिनी कर कमल, नैन-कमल रस - रंग ।।

श्री जमना सुंदर सिंगार ।
प्यारे के सब बसन धारिकै, अंग - रंग कों करै उचार ।।
माथे मुकट कान लगि कुंडल, कटि-काछनी रंग रुचिधार ।
कमल-मालिनी कर-कमलन सों, रसिक जनन के ताप निबार ।।
नैन - कमल अवलोकत लोचन, भूलत दसा आपनी मार ।
'श्री राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, चकित भये लखिकै नव हार ।।८।।

ललित कदंब - कदंब के, नव नितंब नव फूल ।
बरसत श्री राधा प्रिया, सोहत जमना - कूल ।।

सोहत अतिसय जमना - कूल ।
ललित कदंब - कदंब नितंबन, बरसत नव - नव फूल ।।
वृंदावन की नवल माल है, प्यारी प्यारे कों सुख मूल ।
झोका लेत देत डारन पर, अति उछाह भूले सब भूल ।।
सीतल - मंद - सुगंध पवन के, लगत झकोरा हिय अनुकूल ।
'राधा प्रिया' श्री राधा - माधव, जमना तीर उड़ात दुकूल ।।९।।

सुख-बर्धन मर्दन गरब, गोबर्धन गुन - खान ।
सेवन करि राधा प्रिया, श्री वृंदाबन जान ।।

श्री गोबर्धन सब गुन - खान ।
सुख-बर्धन गर्बन कौ मर्दन, इंद्र समान कियौ रतमान ।।
सात कोस संतत राजत है, गाजत है भेदत मद हान ।
श्री ब्रज मंडल के रखवारे, दीखत हैं जैसैं पाषान ।।
कोमल महा लता द्रुम विद्रुम, फूले फूल गोप सन्मान ।
'श्री राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, नित्य केलि वृंदाबन जान ।।१०।।

सदा-सदा राजत जहाँ, सघन लतन के झुंड ।
गोबर्धन गिरि में प्रगट, सोहत राधा कुंड ।।

श्री राधा कुंड की बलि जैयै ।।
सघन लतान बितान तनाये, गिरिवर सोभा पैयै ।
श्री गोबिंद नाम प्रभु पायौ, जनम - जनम जस गैयै ।।

ऐराबत अप्सरा मानसी, गंग - धार सुख लैयै ।
दास जहाँ कौ बास सुहायौ, चक्रेस्वर छबि छैयै ॥
श्री गोबर्धन सघन तरहटी, लोटि - लोटि हरसैयै ।
'श्री राधा प्रिया' श्री राधा - माधव, सेवा - रस में न्हैयै ॥११॥

श्री गिरिबर की कंदरा, श्री राधा - माधव बास ।
रैन करत राधा प्रिया, नित नव भाव विलास ॥

श्री गिरिबर कंदरा सुहाई ।
रति - सुख-सार राधिका-माधव, रैन बसत जहाँ जाई ॥
छहौ ऋतुन कौ सुख लखि लीजै, गोबर्धन गिरिराई ।
जहँ हरिदास वर्य रसिकोत्तम, धारि रहे जड़ताई ॥
बाहिर फूल मूल फल दल बल, जल झरना झर लाई ।
'राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, मगन मनोनिधि पाई ॥१२॥

ब्रज-जीवन ब्रज प्रान-धन, ब्रज-रक्षक ब्रजधाम ।
वृंदाबन राधा प्रिया, श्री गोबर्धन नाम ॥

हमारौ माई ब्रज जन कौ रखवारौ ।
इंद्र कियौ जब कोप गोप सब, जाकौ लियौ सहारौ ॥
सात दिबस औ सात रात लों, जहँ ही आयौ आरौ ।
मद चूरन पूरन जन कारज, मिट्यौ अँधेरौ भारौ ॥
सुरभी सुरपति लै ऐरावत, आवत चरन पखारौ ।
करि अभिसेक टेक दियौ माथौ, गोबिंद नाम उचारौ ॥
बिनती करी बिबिध बिध देबन, सेवन भाव सिंगारौ ।
आप पुजै आपहिं पुजबावै, ब्रज - बासिन कौ प्यारौ ॥
अपनौ नाम-रूप निज मुख सों, गोबर्धन बिस्तारौ ।
सात कोस कौ देव न देख्यौ, बेदहु पचि - पचि हारौ ॥
जीव - जंतु त्रिभुवन कौ स्वामी, सो गिरिराज उचारौ ।
बाल किसोर आदि कौमारिक, लीला ललित बिचारौ ॥
भक्तन कों हरिदास वर्य है, दुष्ट - दलन दई मारौ ।
सकल गोप-कुल गोकुल - पालक, पुनि हू सबतें न्यारौ ॥
दूध - दही - माखन कौ भोगी, रोगी रोग निकारौ ।
भव कौ बैद कंद द्वंदन कों, सब कौ पूरौ पारौ ॥
श्री वृंदाबन जमना - तट कौ, खेल खिलाबन हारौ ।
'श्री राधा प्रिया' श्री राधा-माधव, रसिकन नैनन तारौ ॥१३॥

२. **प्रेम संपुट**—इस पुस्तिका में पदावली के साथ वार्ता भी है । इसमें श्री कृष्ण का सखी रूप में राधा जी के निवास स्थान पर जाना वर्णित है। इसका उदाहरण देखिये—

रस - चर्चा अर्चा जुगल, पर्चावत हैं एक ।
प्रान बान बाजी लगी, सरस प्रेम रस टेक ।।
सरस प्रेम रस टेक, एक सों भए अनेकन ।
भटकत सब संसार, पाइवे जाके कन - कन ।।
जाहि मिल्यौ सो खिल्यौ, हिल्यौ नहिं फँसिकै पंकन ।
गरक्यौ आचूड़ांत, सांत निस्तब्ध न अंकन ।।
'राधा प्रिया' विलास, रूप की रासि न खर्चा ।
प्रथम अपुनपौ तजै, भजै प्रेमहि रस - चर्चा ।।

३. **राधा-रस सुधा-निधि**—इसकी रचना सवैया छंद में 'स्यामा' की छाप से की गई है। इसके उदाहरण देखिये—

अग सुधंग में रोम तरंग, कदब प्रसून कों नून बनावैं ।
दोनों भुजान उठान सों प्रेम, प्रिया-प्रिय रूप अनूप जतावैं ।।
हे हरि - माधव - कृष्ण पुकार, कहाँ हो हे नंद - कुमार सुनावैं ।
'स्यामा' के भाव भरे नव निर्तत, गौर किसोर कों मोर प्रनावैं ।।१।।

दिव्य प्रमोद रसांबुधि-सार, निजांग के संग सुधा की तरंगैं ।
पाँच के कोटिन बान किये, अति बेधत काम की घात अभंगैं।।
मूर्छित माधवलाल बिहारी कों, सींचत हैं रसमत्त उमंगैं ।
'स्यामा' की स्वामिनी, कुंज की भामिनी, राधिका नामनी की जय जंगैं ।।२।।

भारी सी भौंर भरी चकरी, नव नाभि धरी, सिर मोती की मंगा ।
कोमल नील सुपीत गुलाब, प्रसूननि पाँति बिराजी उछंगा ।।
जोर करोर करार बिदार, प्रवाहित दिव्य अभंग तरंगा ।
स्याम-सुधारस-सागर सों, मिलि बैठी जे 'स्यामा' सलौनी सी गंगा ।।३।।

४. **रसबिंदु**—इसमें 'माखन' छाप मिलती है। उदाहरण देखिये—

रसनिधि रसिक - सिरोमनि, स्यामा सोहत संग धनी ।
गलबाँही दै गुननिधि, गोकुलचंद की मौलि मनी ।।
ब्रज - बनिता बन - बन कै बीनी, कुसुम कलीन कनी ।
पटका - जामा - लहँगा - सारी, मुकट चंद्र कमनी ।।

फूल - सिंगार सिंगारत, बारत विविध विवेक बुनी ।
जाल - जाल जातिन के जेवर, रायबेल रमनी ॥
गेंद गुलाब गहावत गोरी, गति सुगम्य गमनी ।
'माखन' मधुर ग्रीष्म की बैनी, गुही हाथ अपनी ॥

१२. किशोरदास (६)

वे चित्तौड़ के निकट रहने वाले खंडेलवाल थे । अपनी युवावस्था में वे वहाँ के एक महंत के उत्तराधिकारी बन गये थे । महंत की मृत्यु के अनंतर उसके धन-वैभव के कारण वे दुराचारी और व्यभिचारी हो गये। एक बार रामराय जी वहाँ गये थे। उन्होंने उनके दुराचार की कथा सुनी। रामराय जी के कारण किशोरदास के मन की वृत्ति बदल गई । वे रामराय जी के शिष्य हो गये और सब-कुछ छोड़ कर उनके साथ वृंदावन चले गये।

उनकी एक 'काम-कलेवर' नामक रचना उपलब्ध है, जिसमें दोहा और सवैया छंद हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ छंद उद्धृत किये जाते हैं—

लग्यौ जाहि जोबन बिसैं, महा भयंकर रोग ।
पर नारी तकिवौ सदा, करिवौ उनकौ भोग ॥
आँख रहे अंधौ भयौ, ज्ञान रहे अज्ञान ।
धूर काम के पाँम की, परी सीस पै आन ॥
कामी कों जप - तप सदा, नारी - मुख मुसक्यान ।
कूकर - सूकर तें गयौ, करतब करत महान ॥
काम फँस्यौ संसार सब, कोऊ अधिक कोऊ थोर ।
राजा - रानी, रंक - बुध, सुध नहिं करत 'किसोर' ॥

धाम वृंदाबन, नाम वृंदाबन, गाँम वृंदाबन बास करायौ ।
बेद - पुरान न पावत पार, अपार सुधा - रस - सिंधु बहायौ ॥
राधिका - माधव सेवा मिली, मन मेवा मिली, त्रय ताप नसायौ ।
दास 'किसोर' कौ जीवन, श्री गुरुदेव गुनाकर संतन गायौ ॥२॥

श्री गुरुदेव कथा में बिसेस, असेस श्री गीत गोबिंद सुनायौ ।
बारहै सर्ग सो बारहै कुंज, चौबीस औतार कौ सार बनायौ ॥
नायिकभेद रसामृत पूरक, राधिका - माधव कौ गुन गायौ ।
दास 'किसोर' दसौं दिसि मैं, गुरुदेव की कीरति कौ जस गायौ ॥३॥

13. केशवदास (७)

वे ब्रज के करहला ग्राम के निवासी अहीर थे । उन्हें यक्षिणी सिद्ध थी, जिसके कारण वे अनेक चमत्कार दिखलाया करते थे। कालांतर में रामराय जी के प्रभाव से वे भक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर हुए और उनसे दीक्षा प्राप्त कर वृंदाबन में निवास करने लगे ।

उन्होंने ६ पुस्तिकाओं की रचना की है। इनके नाम इस प्रकार हैं—

१. गुरु पूर्णिमा, २. वैष्णव भेद, ३. भक्तिवर्धिनी,
४. लोक दीपिका, ५. क्रोध क्रूरता, ६. तत्वत्रयी

[१. गुरु पूर्णिमा]

गो-बर्धन - वृंदाबिपिन, सुमन अनेकन रूप ।
दरसन जमुना-पुलिन मैं, राधा-माधव भूप ।।
राधा - माधव भूप, अनूपम रूप सुहाये ।
ब्रज - जात्रा निज करी, तबै गुरु सँग पधराये ।।
ठौर - ठौर मैं राग - रंग, कीर्तन सुख छाये ।
गाँम करहला मोर कुटुंबिन लाड़ लड़ाये ।।
जनम सुफल मान्यौ तबै, जब पाये आनंद - घन ।
'केसव' राधा - माधवहु, हरषाये गिरि गोरधन ।।

[२. वैष्णव भेद]

वैष्णव भेद अनेक हैं, बरने गुरु सत्संग ।
जितने भक्ति-प्रकार हैं, तितने वैष्णव अंग ।।
तितने वैष्णव अंग, संग डोलें हरि लीयें ।
इनकी संगति कियें, सुधा - रस केतिक पीयें ।।
तिनके भेद प्रधान, भागवत बर्नन कीये ।
नव योगेश्वर जनक, नृपति संमत सुख दीये ।।
उत्तम मध्यम पराकृत, निरगुन जा बिधि और सब ।
'केसव' तिन गावत सुजस, जैसे हैं वे वैष्णव ।।

[३. भक्तिवर्धिनी]

श्री गुरुदेव पदाब्ज - रति, भक्ति बढ़ावन हार ।
कछु उपाय बरनन करूँ, शास्त्र सुनें अनुसार ।।

प्रथम उपाय श्रवन करि लीजै । कृष्ण - कथामृत नियमित पीजै ।।
जो कहुँ तीरथ पावहि बासा । संतत संत संग अभिलासा ।।
समय पाइ चरितामृत पाना । हरि-लीला-रति रुचिकर गाना ।।
फल श्री राधा - माधव सेवा । सार जिहीं हिय मैं धरि लेवा ।।
हरि हरि-भक्तन भेद न जानै । दोउन की सेवा सन्मानै ।।
सुमिरन प्रभु कौ फल न बिसारै । 'केसव' भक्ति बढ़ै प्रतिपारै ।।

[४. लोकदीपिका]

घोर अँधेरे मति टकराई । मिली दीपिका सबन सहाई ।।
दीन भाव तन राख निरंतर । संत और भगवंत न अंतर ।।
संत सदा परमारथ प्यारे । संत बने श्री नंद - दुलारे ।।
श्री गुरु के पद-पद्म की, सेवा सब मिल जाय ।
'केसव' कों सोई भई, साधन-बल न सहाय ।।

[५. क्रोध-क्रूरता]

क्रोध होत है काम तें, काम - क्रोध तें नास ।
हानि - लाभ दोनों भरे, काम सनार हतास ।।
क्रोध बढ़ायौ रुद्र नें, काम जरायौ लोक ।
सुख पायौ निज रूप में, भयौ जगत में सोक ।।
क्रोध करत तामस बने, क्रोधी जन चंडाल ।
हरि गुरु कों सोहै नहीं, भक्ति-विमुख विकराल ।।
श्री राधा - माधव चरन, गुरु - प्रताप बल पाय ।
जन्म-जन्म की भटकना, मिटी बिपिन-रज लाय ।।
संवत् सोलैसौ प्रथम, माधव मास निवास ।
रामराय गुरु की कृपा, रख्यौ आपने पास ।।

[६. तत्त्वत्रयी]

तीन तत्व गुरुदेव बताये । प्रथम तत्व ईश्वर समुझाये ।।
दुतिय तत्व जो जीव बखाने । तीजी माया सब लपटाने ।।
अनुपम अविनासी सुख-रासी । जानौं ईश्वर घट-घट बासी ।।
सब समर्थ, कर्ता सकल, करतब कीने हाथ ।
'केसव' दासन पाइयै, दिये तासु पद माथ ।।

१४. मनोहरदास (८)

वे पटना निवासी कलवार जाति के बड़े धनी और विपुल कुटुंबी थे। उनको मदिरा-पान का व्यसन था, जिसके कारण वे अविनयी और उग्र स्वभाव के हो गये थे। एक बार रामराय जी जगन्नाथ पुरी जाते समय पटना ठहरे थे। उनके सत्संग से मनोहरदास की वृत्ति बदल गई। वे विरक्त होकर रामराय जी के शिष्य हुए और उनके साथ जगदीश पुरी चल दिये। वहाँ से वापिस होने पर भी वे घर पर न जाकर वृंदाबन चले गये। वहाँ श्री राधा-माधव जी की सेवा और काव्य-रचना करने लगे। उनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

श्री रामराय प्रभु के चरन, जनम-जनम मिल जाय।
काल न बाधा करि सकै, श्री गुरुदेव सहाय।।

श्री रामराय के नाम कौ, जप मेरैं दिन-रात।
श्री राधा-माधव प्रकट, भूलें मोहि बतात।।

श्री रामराय गुरु वर चरन, भूले-भटके पाय।
श्री वृंदाबन माधुरी, नैनन माँहि समाय।।

१५. लाखादास (६)

वे कोल (अलीगढ़) के निवासी गौतम ब्राह्मण थे। पहिले वे तामसी सिद्धि में विश्वास करते थे, किंतु रामराय जी के कारण उनका उद्धार हुआ। उनका रचा हुआ ग्रंथ 'श्री वृंदाबन कल्पद्रुम' है, जिसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया है—

हमारे सखी राधा-माधव लाल।
भीजे श्री वृंदाबन जमुना-तट समीर सुर साल।।
चहुँ दिसि तें झर लाग्यौ बरसन, हँसत सखिन के जाल।
आभूषन अँग-अँग भीजत हैं, रंग बरसत मनि-माल।।
कोकिल कुहकत, मोर-पपैया बोलत, मदन बिहाल।
'लाखादास' ओट करि-करिकै, गावत गुन गोपाल।। १।।

भीजत सखी हमारे प्यारे।
ओट करत अचरान की बहु बिधि, जात कदंब किनारे।।
तिलक धुल्यौ, मृग-मद सब धुबि गयौ, नैन बहे कजरारे।
एकटक कों ओटत आगें ह्वै, सकल उपाय बिसारे।।
सारी लगी अंग सों, देखत सहचरि हँसनि गिरारे।
कोऊ सहाय न करति, जुगल मिलि अंग-अंग प्रतिपारे।।
उपरैना-चूनरि रंग मिलि गयौ, मिले रुचिर रुचिकारे।
'लाखादास' धन्य गुरु करुना, दरसन मिले सवारे।।२।।

१६. मधुसूद

वे काशी के रहने वाले पोरवाल थे ।
उनकी मान-प्रतिष्ठा बहुत थी । घर में
परिवार था। इसके कारण उनका मन संसार में अनुरक्त
के उपदेश से उनका मन सत्संग और भगवद्भक्ति में लग गया ।
हो गये। उनकी रची हुई 'सत्संग पच्चीसी' और 'प्रेम दर्शन' नामक
रचनाएँ उपलब्ध हैं। उन रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं—

[सत्संग पच्चीसी]

चर्चा है सत्संग की, जानत नहिं सत्संग ।
जो बनि जाये छिनक हू, तौ न कहूँ दुस्संग ।।
श्री रामराय प्रभु की कृपा, सो जान्यौ कछु अंग ।
सेवा में सर्वांग सों, पूरन सब विधि रंग ।।
यह सत की संगति करै, गुरु-चरनामृत पाय ।
मधुसूदन सेवक भयौ, सेव्य राम के राय ।।
विक्रम के संबत बिपिन, जो सोलह सौ तीन ।
मधुसूदन रचना करी, श्री गुरु चरनन दीन ।।

[प्रेम दर्शन]

हमारी सखी, श्री राधा - माधव जोरी ।
सजल घटा सम स्याम माधुरी, प्यारी बिज्जुत गोरी ।।
एक प्रान द्वै देह, अलौकिक रूप रसामृत घोरी ।
गलबाँही दै चलत परस्पर, सखी जूथ दोऊ ओरी ।।
अंग - अंग आभूषन राजत, लाजत मदन करोरी ।
मृदु मुसकान, बैन रस - सागर, नागर नवल किसोरी ।।
बरसत सुधा नैन छवि निरखत, चतुर सिरोमनि भोरी ।
'मधुदासी' हाँसी पर सरबस, न्यौछावर करि चोरी ।। १ ।।

हमारे श्री राधा - माधव प्यारे ।
श्री राधा वृषभानु - नंदिनी, माधव नंद - दुलारे ।।
कोटि - कोटि कंदर्प - दर्प हर, मधुर माधुरी ढारे ।
जहाँ-जहाँ नैन जात छवि निरखन, रास-बिहार बिहारे ।।
उपमा नाँहि कोऊ इनकी जग, अनुपम छटा सिंगारे ।
'मधुदासी' सुख-रासी दंपति, संपति सरबस वारे ।। २ ।।

१७. हरिदास पटैल (११)

भक्त हरिदास पटैल कच्छ में रहने वाले धनी परिवार के व्यक्ति थे। जब रामराय जी द्वारका की यात्रा को गये, तब उन्होंने हरिदास को शिष्य किया था। हरिदास ने विरक्त भाव से मृत्यु पर्यंत वृंदाबन में निवास किया। उनके गुजराती में रचे हुए पद और धोल उपलब्ध हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं—

म्हारा जीवन - धन सुख - धाम ।
श्री राधा - माधव करुनानिधि, भक्त जनों ना विश्राम ।।
गाया श्री जयदेव महाप्रभु, आदि - अनादि अकाम ।
जे - जे थया रसिक जगती - तल, मल्या तेने अभिराम ।।
श्री वृंदाबन महिमा अंकित, गीत - गोबिंद सुनाम ।
दास ना दास 'हरिदास' बखाणे, सेवा आठों याम ।। १ ।।
दान नी बान पड़ी सूँ स्याम ।
कुंज गली मां मारग रोक्या, भवन पड्या केता काम ।।
ब्राह्मण मांगणी करतां छाजे, तमे न लाज निकाम ।
केवा मांटे एवी रीति, धारी छै तमें आ गाम ।।
मारग मां हटकत दे नटखट, कुल नी अपकीरत भाम ।
दास ना दास 'हरिदास' बखाणे, म्हारा जीवन-धन धाम ।। २ ।।

१८. तीर्थराम (१२)

वे मारवाड़ के गूढ़ा ग्राम निवासी धनिक ब्राह्मण थे। उनके घर में यजमान वृत्ति होती थी, जिससे उन्होंने प्रचुर धन संचित किया था। स्वभाव के कृपण होने के कारण वे उस धन का कोई उपयोग नहीं करते थे। रामराय जी के सत्संग से उनकी प्रकृति में एक दम परिवर्तन हो गया। वे विरक्त भाव से सब कुछ त्याग कर वृंदाबन में जाकर रहने लगे।

उन्होंने कई रचनाएँ की हैं, जिनके नाम—१. द्रव्य-दोष, २. त्याग-तरणी, ३. श्री हरिलीला, ४. रसिकाचार्य चर्चा और ५. ब्रजवास हैं।

इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

[द्रव्य-दोष]

द्रव्य से भेंट किये दुख आवत, विद्या की भारी सी हानी भई ।
भक्तन कौ संग छूटि गयौ, मन लुब्ध भयौ, यह कहानी भई ।।
साधु की साधुता भाग गई, जब द्रव्य की चित्त चहानी भई ।
'तीरथ' चारु आचार भयौ, जब श्री गुरुदेव की बानी भई ।।

[त्याग-तरणी]

भोग के भोग में रोग करें, सब जोग डरें बिन बात बुलाये ।
सोक कौ सोक गयौ सो भयौ, पुनि आयौ न हर्ष-मुखांबुज पाये ।।
राजा के राजा भये बिन ताज, समाज के मुख्य भये सुख छाये ।
एक प्रताप है त्याग कौ 'तीरथ', कौन नहीं जाकों जो ललचाये ।।

[हरिलीला]

मंगल आरति माधव लाल ।
मंगल श्री राधा गल बाँही, दियें देत दर्सन छवि - माल ।।
मंगल घृत - वर्तिका उजारी, धूप अनूप सुगंध विसाल ।
मंगल सकल अली मिल बोलत, केलि कलाधर कीर्ति रसाल ।।
मंगल बाजे बाजत बहु विधि, सारंगी सु पखावज ताल ।
मंगल 'तीरथ' के तीरथ गुरु, रामराय प्रभु कुंज गोपाल ।।

आरति कीजै सखी रसिक रमन की । श्री जयदेव के प्रान - जीवन की ।।
श्री राधा-माधव श्री मोहन मदन की । जुगल किसोर भक्त जन - धन की ।।
रामराय गुरु वृंदा - बिपिन की । श्री जमुना तट आनंद के घन की ।।
छवि गोबिंद ब्रजेन्द्र - बदन की । 'तीरथ' सरन भयौ चरनन की ।।

[रसिकाचार्य चर्चा]

लुप्त भयौ रस राधिका - माधव, ता प्रगटान के हेतु पधारे ।
भोज के पुत्र, बिचित्र बड़े, जयदेव महाप्रभु नाम उचारे ।।
जन्म लियौ कंदविल्व से ग्राम, तहाँ गुन गोबिंद-गीत विचारे ।
'तीरथ' के जे आद्य आचारज, धाम वृंदाबन प्रानन-प्यारे ।।

[ब्रजवास]

ब्रज में सिव - ब्रह्मादिक नित्य ही निवास करें,
चित्त में है चिंता बहु त्रास उपबास है ।
ब्रज के ब्रजबासी मोहि बाहर न करें कहूँ,
मौन धरि यासों करें सेवा - अभ्यास है ।।
श्री जी की सोभा कहूँ छिनक हू सु दृष्टि परी,
पार भई नौका, जो अड़ी है भौ-विलास है ।
'तीरथ' तरि जात सब, पूर्वज बिना ही तप,
बंस में तें एक हू जो पावै ब्रज-वास है ।।

संबत् सोलहसौ सहित, विक्रम के चालीस ।
ग्रंथ रचे वृंदा बिपिन, सुख भयौ विस्वा बीस ।।

१६. रसिकमोहन राय

रामराय जी के अनुज चंद्रगोपाल जी के ४ शिष्य थे, जिनके नाम—१. रसिकमोहन राय, २. मोहनदास, ३. नारायणदास और ४. वृंदाबनदास कहे जाते हैं। उनमें से रसिकमोहन राय मुख्य थे। उनका जन्म गया के एक प्रतिष्ठित कायस्थ कुल में हुआ था। वे विरक्त होकर वृंदाबन चले आये और वहाँ पर चंद्रगोपाल जी के शिष्य हो गये। उनके जन्म, वृंदाबन-आगमन और देहावसानादि के ठीक-ठीक संवत् का पता नहीं चलता है। वैसे वे १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे।

उनकी प्रमुख रचना 'रसिक सेवक वाणी' कही जाती है। इसमें १५५ कुंडलियाँ छंद हैं, जिनमें वृंदाबन के विविध आचार्यों और भक्तों का श्रद्धांजलि परक वर्णन किया गया है। अपने गुरु चंद्रगोपाल जी के प्रति उन्होंने अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की है। उनकी रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

रसिक आद्य आचार्य वर, महाप्रभु श्री जयदेव।
प्रगट कियौ निज वंस जहाँ, श्री राधा-माधव सेव॥
श्री राधा - माधव सेव, देव देवन नें माँगी।
सहज मिली सो आय, पाय सेवक अनुरागी॥
रागी राग प्रभात, करत प्रारंभ सुभागी।
सैन प्रजंत अनंत, संत सुख पावत लागी॥
श्री प्रभु चंद्रगोपाल गुरु, करुना करि दीनी चसिक।
श्री वृंदाबन धाम बसि, पाये ऐसे गुरु रसिक॥ १॥

श्री राधा - माधव मिले, रूप धरें चैतन्य।
प्रगट भये वृंदाबिपिन, गुप्त जहाँ तहाँ धन्य॥
गुप्त जहाँ तहाँ धन्य, धाम सो नवद्वीप वर।
श्री गौरांग प्रताप, दसौ दिसि छायौ रुचिकर॥
हीन दीन मतिछीन, पतित पाखंड पयोधर।
सरद काल सम हरे, हरे कहि बने सुखद तर॥
श्री प्रभु चंद्रगोपाल लाल, पद; मेटत बाधा।
'रसिक मोहन' के सेव्य, प्रान माधव श्री राधा॥ २॥

मेरे देवी - देवता, माता - पिता नृपाल ।
जो कछु हैं सर्वस्व जिहिं, श्री प्रभु चंद्रगोपाल ।।
श्री प्रभु चंद्रगोपाल, छाँड़ दूजौ नहिं जानूँ ।
आज्ञा इनकी पाय, अनेकन संत बखानूँ ।।
गाऊँ श्री गुरु देव, राधिका - माधव ध्यानूँ ।
प्रान समान न आन, मान सन्मान समानूँ ।।
बन बिहार आनंद सहस, नहीं लोकन फेरे ।
जहाँ बिराजत सदा इष्ट, श्री गुरु वर मेरे ।। ३ ।।

श्री रामराय सम खोजते, श्री रामराय ही पाय ।
रामराय कीनी कृपा, सो वर्णन न कराय ।।
सो वर्णन न कराय, आय नहिं कछु है जिनकूँ ।
सिद्धि बुहारत बिपिन, महा बल योग लखन कूँ ।।
नित उत्सव नित भाव, भावना सूझत मन कूँ ।
दर्सन वृंदाबिपिन, राधिका - माधव धन कूँ ।।
श्री गुरुदेव प्रसन्न कही है, बड़े भ्रात मम ।
'रसिक मोहन' सुख भयौ, न कोई रामराय सम ।। ४ ।।

उन्होंने 'रसिक सखी' की छाप से सेवा के भी कुछ पद लिखे हैं। उदाहरण—

आरति कीजै नव नागर की ।
खंजन नैन बैन रसमाते, रूप - सुधा - सागर की ।।
पान खात मुसकात मनोहर, मुख सुखमा - आगर की ।
'रसिक सखी' दंपति आरति सों, नैन सैन - आगर की ।।

उन्होंने चंद्रगोपाल जी कृत 'अष्टयाम सेवा-सुधा' का मंगलाचरण भी लिखा है। इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

प्रथम सहचरी भाव हिय, धार कुंज के द्वार ।
सेवा जुगल किसोर हित, गावै रुचिर प्रकार ।।
ध्यान धरै सखि वृंद कौ, सुस्वर मधुर उचार ।
वाद्य विसेष बजाय पुनि, क्रम सों लिपि अनुसार ।।
प्रगट भये जिनके हितू, रावल राधा लाल ।
वंदौं तिन चंद्रावली, रूप भोज के बाल ।।
कुंद केतकी माल धर, केसर कलित कपोल ।
श्री कृष्ण जू के चरन, प्रनति सुनैन सलोल ।।

श्री राधागोबिंद कों, गोद लियें कर खेल ।
तिन श्री गोबिंदी - चरज, वंदन करों सुमेल ।।
मंगल मुक्तामनि धरें, जुगल लाल जिन ओर ।
श्री मुक्ता जू पाद - रज, मस्तक मम निस - भोर ।।
श्री राधा - माधव बिना, अन्य न भावत चेत ।
नमूं अनन्या के सुभग, पद - पंकज रस हेत ।।
श्री राधा - माधव सुखद, रस सिंगार निकेत ।
वंदों तिन श्री माधवी, पद सुरेंद्र संकेत ।।
प्यारी - प्रीतम प्रीति में, प्रफुलित दोऊ नैन ।
प्रीतिलता जू के परम, पद-पंकज भज बैन ।।×
जहि प्रभात परबंध कछु, पद्यन सों लिख आज ।
'रसिक सखी' चित्रा कृपा, सेवा रसिक समाज ।।

२०. नारायणदास श्रोत्रिय

नारायण भट्ट जी के शिष्यों में नारायणदास भाठोठिया और नारायणदास श्रोत्रिय मुख्य थे। नारायणदास भाठोठिया विरक्त थे और बलभद्र जी के सेवक होने से बलभद्री कहलाते थे। नारायणदास श्रोत्रिय गृहस्थ थे। उन्हें नारायण भट्ट जी ने बरसाने के श्री लाड़िली जी के मंदिर की सेवा प्रदान की थी। उन्हीं के वंशज बरसाने के गोस्वामी गण हैं; जो आज कल भी लाड़िली जी की सेवा करते हैं। वे दीर्घायु में नारायण भट्ट जी के शिष्य हुए थे, अतः वे आयु में अपने गुरु से कुछ ही कम थे। उनका जन्म सं० १६०० के लगभग और देहावसान सं० १७०० से पूर्व अनुमानित होता है।

उनका रचा हुआ नारायण भट्ट जी की वंदना का एक पद मिला है। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने और भी पद रचे होंगे, जो इस समय नहीं मिल रहे हैं। उक्त पद में भट्ट जी द्वारा उन्हें लाड़िली जी की सेवा प्रदान करने का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

श्री भट्ट नारायन की बलि जाऊँ ।
जा प्रताप राधा-पद पाये, निसि-बासर जाके गुन गाऊँ ।।
श्री बरसाने धाम लाड़िली, जहाँ बसौं, राधा-पद ध्याऊँ ।
गुरु-पद-रेनु कृपा-बल स्वामी, जग नारायनदास कहाऊँ ।।
वेई मुनि नारद आदि जुगादि, वेई बलि बाल-लीला जिहिं गाई ।
ब्रज में सदा ब्रजचंद के आगै, बिराजें श्री नारायन भट्ट गुसाईं ।।

२१. नागरीदास

इस नाम के कई भक्त-कवि हुए हैं। उनमें तीन विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं—१. हित हरिवंश जी के अनुयायी 'नेही नागरीदास', २. स्वामी हरिदास जी के अनुयायी 'बड़े नागरीदास' और ३. बल्लभ मतानुयायी कहे जाने वाले 'राजा नागरीदास'। भारतेन्दु जी ने हरिवंश-मतानुयायी नागरीदास के साथ एक चैतन्य-मतानुयायी नागरीदास का भी उल्लेख किया है और उन दोनों को वृंदावन के सूर्य-चंद्र वतलाया है[1]।

भारतेन्दु जी के कथन से ऐसा आभास होता है कि चैतन्य-मतानुयायी नागरीदास नेही नागरीदास के समय मे ही विद्यमान थे, और उन दोनों ने ब्रजभाषा में पद-रचना की थी। जहाँ तक हमने अनुसंधान किया है, नेही नागरीदास के समय के लगभग स्वामी हरिदास के अनुयायी 'बड़े नागरीदास' ही थे। उस काल में चैतन्य मत के अंतर्गत किसी नागरीदास का उल्लेख नहीं मिलता है। बल्कि उसके बाद भी इस नाम के किसी विख्यात भक्त-कवि की विद्यमानता ज्ञात नही होती है; अतः उसकी ब्रजभाषा-रचना का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

ऐसा जान पड़ता है, भारतेन्दु जी भ्रम से 'बड़े नागरीदास' को चैतन्य-मतानुयायी नागरीदास लिख गये हैं। वैसे उन्होंने 'राजा नागरीदास' और 'बड़े नागरीदास' का भी उल्लेख (उत्तरार्ध भक्तमाल, पद सं० १७८ और १७९ में) किया है; किंतु 'बड़े नागरीदास' को उन्होंने भ्रम से बल्लभ संप्रदायी लिखा है। तथ्य यह है कि 'बड़े नागरीदास' हरिदासी मत के थे और चैतन्य मत में कोई नागरीदास नहीं हुए।

---

१. निज गुरु हित हरिबंस, कृष्ण चैतन्य चरन रत।
हरि-सेवा में सुदृढ़, काम-क्रोधादि दोष गत॥
अदभुत पद बहु किये, दीन जन दै रस पोषे।
प्रभु-पद-रति विस्तारि, भक्त जन मन संतोषे॥
दृढ़ सखी भाव जिय में बसत, सपने हु नहिं कहुँ और मन।
श्री वृंदाबन के सूर-ससि, उभय नागरीदास जन॥

—उत्तरार्ध भक्तमाल, छप्पय सं० १८०

हरिदास जी के सेवा-अधिकार का समय सं० १६४८ के बाद से माना जाय, तब वह १६६० के लगभग होगा। किंतु उनके काल को इससे पहिले का मानना उचित होगा; क्यों कि श्री गोविंददेव जी की सेवा की व्यवस्था तो मंदिर बनने से पूर्व भी थी।

कृष्णदास कविराज ने हरिदास जी की प्रशंसा करते हुए उन्हें सुशील, सहिष्णु, शांत और गंभीर स्वभाव के मधुर-भाषी संत बतलाया है[1]। वे रूप-गोस्वामी और कृष्णदास कविराज के समकालीन थे। उन्हीं के आग्रह से कविराज महोदय ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'श्री चैतन्य चरितामृत' की रचना की थी। उनका जन्म-संवत् १६१० के लगभग अनुमानित होता है। उन्होंने दीर्घायु प्राप्त की थी। ऐसा अनुमान है, उनका देहावसान सं० १६८० के लगभग वृंदाबन में हुआ था। उनके शिष्यों में भगवतमुदित जी विशेष प्रसिद्ध है।

वे बंगाली महात्मा ज्ञात होते हैं; किंतु उनकी एक ब्रजभाषा रचना 'युगल प्रेम रस बाधिका' कही जाती है। इससे उनका ब्रजभाषा-कवि होना ज्ञात होता है। उक्त पुस्तक को उन्होंने रूप गोस्वामी जी की रचना के आधार पर उन्हीं की आज्ञा से लिखा था। इसका उल्लेख उक्त पुस्तक की पुष्पिका में इस प्रकार हुआ है—

राधा प्रेम निज माधुरी, और आपनौ सीत।
ये आस्वादन हेतु हित, मन में उपजी प्रीत॥
निसि-दिसि राधा भाव धरि, स्याम भये दुति गौर।
मन अरु आनन नैन ये, राधा बिन नहिं और॥
मन में राधा भाव धरि, आस्वादत निज प्रीत।
हिय बसि रूप गुसाईं के, प्रगट करी यह रीत॥
जिनकौ उज्ज्वल नील मनि, निज जन कौ हिय-हार।
दरसायौ सब रसिक रस, रस-सागर कौ पार॥
मैं अनुमति लै जथा सक्ति, तिहिं पद पंकज बास।
'जुगल-प्रेम-रस-बोधिका', रचत श्री हरिदास[2]॥

---

१. पंडित गोसांञिर शिष्य अनंत आचार्य।
तार प्रिय शिष्य इहों पंडित हरिदास॥
सुशील-सहिष्णु-शांत, वदान्य गंभीर।
मधुर वचन मधुर चेष्टा, अति धीर॥
—चैतन्य चरितामृत, आदिखंड, ८ परि०

२. 'नाम माहात्म्य', वाणी अंक, पृ० ६०

२४. माधव मुदित

वे आगरा निवासी भावुक भक्त थे। उनका जन्म-संवत् १६२५ के लगभग अनुमानित होता है। उनके पुत्र भगवत मुदित जी ब्रजभाषा के विख्यात भक्त-कवि हुए हैं। उनके कारण ही माधव मुदित का नाम भी प्रसिद्ध हुआ है। नाभा जी ने 'भक्तमाल' में उनके संबंध में कुछ नहीं लिखा है; किंतु प्रियादास जी ने 'भक्ति रस बोधिनी' में उनके अंतिम काल की एक घटना का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि वृंदाबन के प्रति माधव मुदित जी के मन में कितनी पवित्र भावना थी।

प्रियादास जी का कथन है, जब माधव मुदित जी अत्यत रुग्णावस्था में बेहोश होकर अंतिम साँस ले रहे थे, तब उनके आत्मीय जन उन्हें पालकी में डाल कर आगरा से वृंदाबन ले चले, ताकि उनका देहावसान उनके प्रिय धाम में ही हो। मार्ग में अकस्मात उन्हें होश हुआ। उन्होंने पूछा—"मुझे कहाँ ले जा रहे हो?" उत्तर मिला—"आपके प्रिय धाम वृंदाबन में।" यह सुनते ही वे बड़े दुखी हुए। उन्होंने कहा—"पालकी वापिस ले चलो। अब यह शरीर वृंदाबन जाने योग्य नहीं रहा है। इसकी दुर्गंध से प्रिया-प्रियतम को कष्ट होगा।" निदान वे आगरा लौट गये और वहाँ पर ही उनका देहावसान हुआ। भावुकता की यह अवस्था ही भक्त-जीवन की विशेषता है।

ध्रुवदास जी ने परमानंददास के साथ उनका उल्लेख करते हुए उनके सरस काव्य की प्रशंसा इस प्रकार की है—

परमानंद माधौमुदित, नव किसोर कल केलि।
कही रसीली भाँति सों, तिहि रस में रहे झेलि[1]॥

इस उल्लेख से उनका सुकवि होना ज्ञात होता है। इस समय उनकी वे रचनाएँ नहीं मिलतीं, जिनसे ध्रुवदास जी के उक्त कथन की सार्थकता सिद्ध हो सके। उनकी रचना के उदाहरण स्वरूप रूप गोस्वामी जी की प्रशंसा में लिखा हुआ उनका एक पद दिया जाता है—

जो कलि 'रूप' सरीर न धारत।
तौ व्रज-भूतल प्रेम महानिधि, कौन कपाट उघारत॥
नीर छीर हंस पान विधायन, कौन पृथक करि पारत।
को सब तजि अरु भजि वृंदाबन, बहु निधि ग्रंथ बिचारत॥

---

१. 'भक्त-नामावली', दोहा सं० ८१

हरिदास जी के सेवा-अधिकार का समय सं० १६४८ के बाद से माना जाय, तब वह १६६० के लगभग होगा। किंतु उनके काल को इससे पहिले का मानना उचित होगा; क्यों कि श्री गोविंददेव जी की सेवा की व्यवस्था तो मंदिर बनने से पूर्व भी थी।

कृष्णदास कविराज ने हरिदास जी की प्रशंसा करते हुए उन्हें सुशील, सहिष्णु, शांत और गंभीर स्वभाव के मधुर-भाषी संत बतलाया है[1]। वे रूप-गोस्वामी और कृष्णदास कविराज के समकालीन थे। उन्हीं के आग्रह से कविराज महोदय ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'श्री चैतन्य चरितामृत' की रचना की थी। उनका जन्म-संवत् १६१० के लगभग अनुमानित होता है। उन्होंने दीर्घायु प्राप्त की थी। ऐसा अनुमान है, उनका देहावसान सं० १६८० के लगभग वृंदाबन में हुआ था। उनके शिष्यों में भगवतमुदित जी विशेष प्रसिद्ध हैं।

वे बंगाली महात्मा ज्ञात होते हैं; किंतु उनकी एक ब्रजभाषा रचना 'युगल प्रेम रस बाधिका' कही जाती है। इससे उनका ब्रजभाषा-कवि होना ज्ञात होता है। उक्त पुस्तक को उन्होंने रूप गोस्वामी जी की रचना के आधार पर उन्हीं की आज्ञा से लिखा था। इसका उल्लेख उक्त पुस्तक की पुष्पिका में इस प्रकार हुआ है—

राधा प्रेम निज माधुरी, और आपनौ सीत।
ये आस्वादन हेतु हित, मन में उपजी प्रीत॥
निसि-दिसि राधा भाव धरि, स्याम भये दुति गौर।
मन अरु आनन नैन ये, राधा बिन नहिं और॥
मन में राधा भाव धरि, आस्वादत निज प्रीत।
हिय बसि रूप गुसाईं के, प्रगट करी यह रीत॥
जिनकौ उज्ज्वल नील मनि, निज जन कौ हिय-हार।
दरसायौ सब रसिक रस, रस-सागर कौ पार॥
मैं अनुमति लै जथा सक्ति, तिहिं पद पंकज बास।
'जुगल-प्रेम-रस-बोधिका', रचत श्री हरिदास[2]॥

---

१. **पंडित गोसांञिर शिष्य अनंत आचार्य।**
तार प्रिय शिष्य इहों पंडित हरिदास॥
सुशील-सहिष्णु-शांत, वदान्य गंभीर।
मधुर वचन मधुर चेष्टा, अति धीर॥
—चैतन्य चरितामृत, आदिखंड, ८ परि०

२. **'नाम माहात्म्य', वाणी अंक, पृ० ९०**

२४. माधव मुदित

वे आगरा निवासी भावुक भक्त थे। उनका जन्म-संवत् १६२५ के लगभग अनुमानित होता है। उनके पुत्र भगवत मुदित जी ब्रजभाषा के विख्यात भक्त-कवि हुए हैं। उनके कारण ही माधव मुदित का नाम भी प्रसिद्ध हुआ है। नाभा जी ने 'भक्तमाल' में उनके संबंध में कुछ नहीं लिखा है; किंतु प्रियादास जी ने 'भक्ति रस बोधिनी' में उनके अंतिम काल की एक घटना का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि वृंदाबन के प्रति माधव मुदित जी के मन में कितनी पवित्र भावना थी।

प्रियादास जी का कथन है, जब माधव मुदित जी अत्यत रुग्णावस्था में बेहोश होकर अंतिम साँस ले रहे थे, तब उनके आत्मीय जन उन्हें पालकी में डाल कर आगरा से वृंदाबन ले चले, ताकि उनका देहावसान उनके प्रिय धाम में ही हो। मार्ग में अकस्मात उन्हें होश हुआ। उन्होंने पूछा—"मुझे कहाँ ले जा रहे हो?" उत्तर मिला—"आपके प्रिय धाम वृंदाबन में।" यह सुनते ही वे बड़े दुखी हुए। उन्होंने कहा—"पालकी वापिस ले चलो। अब यह शरीर वृंदाबन जाने योग्य नहीं रहा है। इसकी दुर्गंध से प्रिया-प्रियतम को कष्ट होगा।" निदान वे आगरा लौट गये और वहाँ पर ही उनका देहावसान हुआ। भावुकता की यह अवस्था ही भक्त-जीवन की विशेषता है।

ध्रुवदास जी ने परमानंददास के साथ उनका उल्लेख करते हुए उनके सरस काव्य की प्रशंसा इस प्रकार की है—

परमानंद माधौमुदित, नव किसोर कल केलि।
कही रसीली भाँति सों, तिहि रस में रहे झेलि[1]॥

इस उल्लेख से उनका सुकवि होना ज्ञात होता है। इस समय उनकी वे रचनाएँ नहीं मिलतीं, जिनसे ध्रुवदास जी के उक्त कथन की सार्थकता सिद्ध हो सके। उनकी रचना के उदाहरण स्वरूप रूप गोस्वामी जी की प्रशंसा में लिखा हुआ उनका एक पद दिया जाता है—

जो कलि 'रूप' सरीर न धारत।
तौ व्रज - भूतल प्रेम महानिधि, कौन कपाट उघारत॥
नीर छीर हंस पान विधायन, कौन पृथक करि पारत।
को सब तजि अरु भजि वृंदाबन, बहु निधि ग्रंथ बिचारत॥

---

१. 'भक्त-नामावली', दोहा सं० ८१

जब रितु बन - फल फूलत नाना, बिबिध राज अरबिंद ।
सो मधुकर बिन पान को जानत, विद्यमान कर बंध ॥
को जानत मथुरा - वृंदाबन, को जानत ब्रज - रीति ।
को जानत राधा-माधव रति, को जानत सोई प्रीति ॥
जा कर चरन प्रसाद सकल जन, गाय - गाय सुख पावत ।
चरन - कमल सरनागत 'माधौ', तव महिमा उर माँगत ॥

२५. माधुरी

माधुरी जी चैतन्य मतानुयायी ब्रजभाषा कवियों में अपने काव्य-माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है । उनकी रचनाओं में. उनका नाम 'माधुरी' मिलता है; किंतु कांकरौली विद्या विभाग (बंध सं० ७४) में उनकी रचनाओं की जो हस्त प्रतियाँ हैं, उनकी पुष्पिकाओं में 'श्री माधवदास विरचिता' तथा बंशीवट-माधुरी में 'माधवदास कपुर श्री वृंदाबन वासी रचित' शब्दावली उपलब्ध है[1] । इससे ज्ञात होता है, उनका मूल नाम माधवदास था । वे कपूर खत्री थे और वृंदावन में निवास करते थे ।

उनका जन्म-स्थान क्या था, इसका पता नहीं चलता है । खत्रियों का निकास प्राय: पंजाब प्रदेश से है; इससे अनुमान होता है कि वे अथवा उनके कोई पूर्वज पंजाब से आकर ब्रज में रहे होंगे । मथुरा-गोवर्धन मार्ग पर, अड़ींग से पहिले, सड़क की दक्षिण दिशा में एक स्थान 'माधुरी कुंड' है । बाबा कृष्ण-दास के मतानुसार यह माधुरी जी का भजन-स्थल है, जिसका नाम उनके नाम पर ही 'माधुरी कुंड' पड़ा है[2] । नारायण भट्ट जी कृत 'ब्रज भक्ति विलास' में इस स्थान का नाम राधिका जी की सखी माधुरी के नाम पर होना बतलाया गया है । ऐसा मालूम होता है, माधवदास जी ने इस स्थान पर भजन करते हुए अपना उप नाम 'माधुरी' रखा था । बाद में वे विशेष रूप से वृंदाबन में रहने लगे थे । उनकी अधिकांश रचनाएँ वृंदाबन में ही रची हुई जान पड़ती हैं । उन्होंने बड़ी स्वाभाविक चलती हुई सरस ब्रजभाषा में रचनाएँ की हैं, जिनसे उनका ब्रज से घनिष्ट संबंध ज्ञात होता है । इसी आधार पर कहा जा सकता है, या तो उनका जन्म ब्रज में हुआ अथवा वे बाल्यावस्था में ही ब्रज में आकर रहे थे ।

---

१. गुजराती और ब्रजभाषा काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ६२
२. श्री माधुरी वाणी की भूमिका, पृ० १

उनके जन्म-काल का भी यथार्थ संवत् ज्ञात नहीं है; किंतु उनके रचना-काल का बोध उनकी कतिपय कृतियों से होता है । 'केलि-माधुरी' में उसका रचना-काल सं० १६८७, श्रावण कृ० ६ बुधवार लिखा गया है[1] । कांकरौली विद्या विभाग में उनकी रचनाओं की जो हस्त प्रतियाँ हैं; उनमें 'बंशीवट माधुरी' और 'वृंदाबन माधुरी' का रचना-काल सं० १६९९ लिखा हुआ है । इससे माधुरी जी का काव्य-काल सं० १६७५ से १७१० वि० के लगभग अनुमानित होता है । इसी के आधार पर उनका जन्म सं० १६५० के लगभग और उनका देहावसान सं० १७१५ के लगभग माना जा सकता है ।

उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं में चैतन्य महाप्रभु और रूप-सनातन गोस्वामियों की वंदना की है । रूप गोस्वामी जी का उल्लेख उन्होंने वर्तमान काल की सी क्रिया में किया है[2] । इससे ऐसा लगता है कि उक्त रूप गोस्वामी जी माधुरी जी के समय में विद्यमान थे । कदाचित इसी कारण बाबा कृष्णदास ने माधुरी जी को रूप गोस्वामी का शिष्य लिखा है[3] । कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह ने उन्हें रूप गोस्वामी के शिष्य होने के साथ ही साथ चैतन्य मत के कवियों में 'सभवतः सबसे पुराने' बतलाया है[4] । रूप गोस्वामी जी और माधुरी जी दोनों के अस्तित्व-काल पर विचार करने से यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि माधुरी जी न तो रूप गोस्वामी जी के साक्षात् शिष्य थे और न चैतन्य मत के सबसे पुराने कवि ।

चैतन्य मत की भावना के अनुसार रूप गोस्वामी जी श्री राधिका जी की अंतरंगा सेविका रूपमंजरी के अवतार थे । वे उसी रूप में राधिका जी की सेवा में नित्य उपस्थित रहते हैं । इसीलिए कदाचित माधुरी जी ने उनका उल्लेख वर्तमान काल की सी क्रिया में किया है । वैसे रूप गोस्वामी का भौतिक शरीर

---

१. **संबत सोलहसै असी, सात अधिक हिय धार ।**
केलि माधुरी छटि लिखी, श्रावण बदि बुधवार ।।

२. **रूपमंजरी प्रेम सों, कहत बचन सुख-रास ।**
श्री बंसीवट माधुरी, होहु सनातन बास ।।३०८।। (बंसीवट माधुरी)
सदा सनातन रूप बिराजै । बरनत ही जिय अति ही लाजै ।।५।।
विपिन-सिंधु रस-माधुरी, कृपा करी निज रूप ।
मुक्ता मधुर विलाप के, निज कर दिये अनूप ।।१२६।। (केलि माधुरी)

३. **माधुरी वाणी का आवरण पृष्ठ और भूमिका ।**

४. **त्रिपथगा (सितंबर १९५६), पृ० १२२**

माधुरी जी के वृंदाबन-वास करने से पहिले ही पंचतत्व को प्राप्त हो चुका था। माधुरी जी ने अपनी रचनाओं में रूप गोस्वामी जी के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की है। संभव है, अपनी भावना के अनुसार वे रूप गोस्वामी जी को ही अपना गुरु मानते हों; किंतु उन्होंने उक्त गोस्वामी जी से दीक्षा भी ली हो, यह संभव नहीं मालूम होता है।

बाबा कृष्णदास ने माधुरी जी की रचनाओं का प्रकाशन 'श्री माधुरी वाणी' के नाम से किया है। उसमें उनकी रचनाएँ—१. उत्कंठा माधुरी, २. बंशीवट माधुरी, ३. केलि माधुरी, ४. वृंदाबन माधुरी, ५. दान माधुरी, ६. मान माधुरी, ७. होरी माधुरी और ८. प्रिया जी की बधाई हैं।

उक्त रचनाओं में 'उत्कंठा माधुरी' और 'बंशीवट माधुरी' कुछ बड़ी हैं और शेष छोटी हैं। उनकी एक रचना 'अष्टयाम' भी कही जाती है। उसमें 'गौतमी तंत्र' और कृष्णदास कविराज कृत 'गोविंद लीलामृत' के आधार पर श्री राधा-कृष्ण की अष्टकालिक लीलाओं का कथन किया गया है।

माधुरी जी की रचनाएँ विविध छंदों में कथित हैं, केवल होरी माधुरी और प्रिया जू की बधाई गेय पदों में हैं। सभी रचनाओं में वाणीकार की आत्मानुभूति मानों साकार हो उठी है। ब्रज के रासधारी रास-लीलाओं में इनके अनेक छंदों और पदों का गायन करते हैं। उनकी रचनाओं में रूप, सनातन और रघुनाथदास प्रभृति गोस्वामियों की उक्तियों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है, जिनके कारण उनमें सरसता के साथ ही साथ भाव-गांभीर्य भी दिखलाई देता है।

यहाँ पर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

१. उत्कंठा माधुरी—इसमें ३ कवित्त और २०३ दोहा छंद हैं। यह तीव्र अनुराग, असह्य विरह-वेदना और मिलन की उत्कंठा पूर्ण चाह की उत्तम रचना है। इसमें भक्त-हृदय की भावुकता सजीव हो उठी है। इसकी रचना में रघुनाथदास गोस्वामी कृत 'विलाप कुसुमांजलि' का आधार लिया हुआ जान पड़ता है। इसके कुछ छंद उदाहरणार्थ उपस्थित हैं—

कहि - कहि काहि सुनाइयै, सहि - सहि उपजै सूल।
रहि - रहि जिय ऐसै जरै, दहि - दहि उठै दुकूल॥
विरह-अग्नि उर में बढ़ी, तप्यौ श्रवनि तन जाय।
सुरति तेल ता पर परै, कह किहि भाँति सिराय॥

यह उत्कंठा की लता, चली वेगि मुरझाय ।
संग दामिनी स्याम घन, जो बरसे नहिं आय ।।
रोम-रोम तन जरि उठै, बरि-बरि उठै सरीर ।
कब छिरकौगे आनि कै, कृपा-कटाच्छन नीर ।।
गिर-बन-पुलिन-निकुंज गृह, सकों देखि नहिं नैन ।
सदा चकित देखत फिरौं, कहुँ न धरति चित चैन ।।
जा कारन छोड़ी सबै, लोक - वेद - कुल कानि ।
सो कबहूँ नहिं भूलि कै, देत दिखाई आनि ।।
सदा चटपटी चित बसै, समुझि सकै नहिं कोय ।
कोऊ खटपटी हिये में, कहत लटपटी होय ।।
एक बार तौ आय कै, नैनन ही मिलि जाउ ।
सोंह तुम्हैं जो साँवरे, नैक न दरस दिखाउ ।।
ऊरध स्वाँस समीर सों, सीतल है गई देह ।
तन - मन डूबौ जात है, इन नैनन के मेह ।।
कीये कों सब करत हैं, दीये कों सब देत ।
अन कीये कों कीजियै, यहै प्रेम कौ हेत ।।
नहिं संजम सुमिरन कछू, नहिं साधन नहिं नेम ।
नहिं मन में समझौं कछू, कहा कहावत प्रेम ।।
इन लोचन की लालसा, कबहु न मन तें जाय ।
ज्यों प्यासे कों नीर बिन, और न कछू सुहाय ।।
नैन दुखी तव दरस बिन, देत छिनहिं छिन रोय ।
नैनन के दुख हरन कों, तुम बिन नाँहिन कोय ।।

२. **बंशीवट माधुरी**—इसमें ३६ कवित्त, २२० दोहा, ५ सवैया, १४ रोला, ३२ चौपाई और १ सोरठा छंद हैं । यह संयोग शृंगार की उच्च कोटि की रचना है । इसमें प्रिया-प्रियतम की सरस चेष्टाओं के साथ ही साथ प्रकृति का मनोरम कथन भी किया गया है । इसके कुछ छंद यहाँ दिये जाते हैं—

[वृंदाबन-बंशीवट की शोभा]

बंशीवट तट निकट, भूमि सोभित हरियारी ।
निसि बासर इक संग, सदा बिहरहिं पिय - प्यारी ।।
कालिंदी के कूल, कमल फूले बहु भाँतिन ।
अरुन पीत सित असित, कोऊ सोभित सत पातन ।।

बिमल कल्पतरु छाँह, निकट सोभा अधिकाई ।
रचि - पचि मन रमि रह्यौ, नैक कहुँ अनत न जाई ।।
मधु ऋतु आगम जानि, बिपिन मिलि विहरत दोऊ ।
एक बैस गुन - रूप, एक सम घटित न कोऊ ।।
ललितादिक सब सखी - सहेली परम सुहाई ।
नवल माधुरी संग, सदा सहचरि सुखदाई ।।
अति आरत सों अरस - परस, अंसन भुज दीयें ।
डगमगात डग भरत, रूप - माधुरि रस पीयें ।।
जित देखौं तित छवि - प्रकास सों छाय रह्यौ बन ।
जनु अवनी पर चरन धरत डोलत दामिन - घन ।।
फूलि रहीं नव लता, देखि लागत मन लोभा ।
थकित रहे हैं नैन, देखि वृंदाबन सोभा ।।

पल्लब प्रसून पत्र परस सलोल लता,
नख - सिख सोभा सब अंगन में झलकै ।
दिनकर हू तें दुति दीपति अधिक देखि,
दंपति की देह सत द्रुमनि में दलकै ।।
'माधुरी' की धारा रोम-रोम तें उमँगि चली,
अरस - परस छवि दुहुँन की छलकै ।
प्यारी जू की कांति न समाति कहूँ कानन में,
मानौं दीप-मालिका सी डोलै ढिग जल कै ।।

[जल-क्रीड़ा]

धाय - धाय सब जल में आईं । अपने - अपने जूथ बनाईं ।।
अरस - परस छिरकत हैं दोऊ । एक बैस गुन घटित न कोऊ ।।
सन्मुख सूर सबै मिलि खेलत । जल-धारा कर सों भरि पेलत ।।
भरि अंजुलि नैनन में डारत । कबहूँक नैन-कमल भरि मारत ।।
नख-सिख भीज रहे सब गात । उमड़े आनंद उर न समात ।।
भीजे बसन अंग लिपटाने । अति सूच्छम तन जात न जाने ।।
मनमोहन कीनी कछु घात । छिरक छींट जल में दुरि जात ।।
हेरि - हेरि जल में दुरि आईं । गहत प्रिया के उर लपटाईं ।।
अरस-परस रस सों झकझोरत । हार-चीर-कंचुकि बंद तोरत ।।
तब ललिता कछु जतन बनायौ । सब सखियन कों भेद बतायौ ।।

डूबक लै उछरी कहुँ जाई । गहे धाय मनमोहन आई ॥
मध्य कुँवर राखे कर ठाढ़े । चहूँ ओर छिरकत जल गाढ़े ॥
मनमोहन इकले कर पाई । करति सबै अपने मन भाई ॥

[रूप-वर्णन]

सोंधों अति सरस सुगंधि बहु भाँतिन के,
भीजे हैं बसन तन मृग - मद मेद सों ।
चरन की माधुरी चलत मंद - मंद गति,
खिसत कुसुम कछु छीन भई भेद सों ॥
भाँति-भाँति मान लैके वाम भुज अंस धरि,
भामते के ढिग ठाड़ी भई काहू भेद सों ।
रस भरचौ रूप भरचौ सुख के सरूप भरचौ,
सोभित है मुख कछू स्रमित प्रस्वेद सों ॥

माधुरी की रास सब सोभा कौ निवास जहाँ,
खेलत रसीले रास मंडल वलित री ।
नूपुर कंकन कंठमाल कंठ सोभित है,
किंकिनी प्रकट कलि कूजति ललित री ॥
भृकुटी विलास मृदु पद न्यास नृत्य लास,
बदन विकास कोटि मदन दलित री ।
मुरली की धुनि मंद - मंद गति बाजति है,
ताके अनुसार चारु लोचन चलत री ॥

क्रम सों कुसुमावलि सीस गुही, कवरी कलि गूँथि दई कसि री ।
उर चंचल अंचल चारु चलै, चख चाहनि चित्त किये बसि री ॥
सुठि सोभित है मुख सों स्रम के कन, भाल में जाल रहे लसि री ।
सबके मन सीतल सींचि किये, जु सुधारस-सिंधु सबै ससि री ॥

कमल से लोइन ललित अति सोभा देत,
कुँवर के संग तौ बिराजें कोटि कामिनी ।
अपने-अपने कर जोर जुरि-जुरि ठाड़ी भईं,
चहुँ ओर मानों घन घेरौ आय दामिनी ॥
रूप - गुन गान रस एक - एक तें सरस,
निर्तत सकल नाना भाइन सों भामिनी ।
रस सीम रास सीम परम विलास सीम,
राजै रास मंडल में माधुरी की स्वामिनी ॥

३. केलि-माधुरी—इसमें ६ कवित्त, १५ दोहा, ६ रोला, ६२ चौपाई, १ छंद, १ सवैया, ११ सोरठा और १ छप्पय छंद हैं। इसमें प्रिया-प्रियतम की केलि का सरस कथन किया गया है। इसका उदाहरण उपस्थित है—

सो०—नवल वैस नव नेह, नव किसोर नव रँग भरे ।
नव विलास भर मेह, बरषत जनु नव बूँद तें ॥
नव केसरि के कुंज अनूपा । नव किसोर दोऊ सुखद सरूपा ॥
रजनी सेष रह्यौ जब आई । तब सजनी बैठी अकुलाई ॥
अपनी सोंज सबै कर लीये । झाँकत नैन झरोखन दीये ॥
कोउ बीना कर मधुर बजावति । कोउ सारंगी सरस सुनावति ॥
कोउ रागिनि सों राग मिलावति । कोउ भैरव विभास सहिं गावति ॥
सोये सुनत सुस्वर वर राय । यह तन दृष्टि परी फिर जाय ॥
नैना बहुरि गये ललचाय । अति सरसौहैं उठे जँभाय ॥
लपटि रहे दोउ ललित भाँति । स्यामा-स्याम प्रिय गौर कांति ॥
दो०—एकै मन एकै सु तन, एकै चिह्न चिह्नार ।
प्रिया पीय कै पिय प्रिया, कछू न होत विचार ॥
सैन करचौ सुख सेज सुगंधनि, रैन जगे रति नैन लगे हैं ।
चैन परे न बिना चितवे, सुख बैन कहैं कछु प्रान मिले हैं ॥
जिय उपजै सोई जान कहैं, जनावत लोचन के ढिग जौहैं ।
हेरि प्रिया पिय के हिय की, गति भौंह चले चख चारु हँसौहैं ॥

इसके अंत में रचना-काल का भी इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

दो०—केलि माधुरी बेलि की, छिन-छिन लेहु सुबास ।
होहि सदा सुख सहज ही, श्री वृंदावन-बास ॥
संबत सोलह सै असी, सात अधिक हिय धार ।
केलि-माधुरी छटि लिखी, सावन बदि बुधवार ॥

४. वृंदाबन-माधुरी—इसमें १२ कवित्त, ४५ दोहा, २ सवैया, ३१ चौपाई और ३ सोरठा छंद हैं। इसका उदाहरण देखिये—

वृंदावन की बात कछु, कहत बनै नहिं बैन ।
नैन समाने विपिन में, विपिन समाने नैन ॥
मुकुलित मल्ली मालती, मंजुल मधुर सुबास ।
जुही-सुही फूली सबै, अपने सहज हुलास ॥
कूँजा-करना-केवड़ा, कनिकार-कैल्लार ।
बेलि-चमेली-मौलस्री, अति सौरभ सुकुमारि ॥

किंसुक केबरि कबलि दल, कृत्यमालि कचनार ।
कुंदी कुंद सुकुंदनी, पारिजात मंदार ।।
चंपक कों चंपकलता, दीनों कंठ लगाय ।
ए दूल्हा और दुलहिन, दोऊ सरस सुभाय ।।
सरस सेवती लतनि सों, लपटेहु स्याम तमाल ।
निपट कटीली नायिका, नायक परम रसाल ।।
लता माधुरी अति मृदुल, मोदक मई सुख जोग ।
उरझी कठिन कदंब सों, कौन बन्यौ संजोग ।।
बक्र ढरनि बक्रहि चलनि, बक्र मिलन गति केलि ।
तरुवर सरस सुभायते, सहज बाम पर बेलि ।।
सहज लता कोमल सरस, फूलि रहत निसि-भोर ।
मन कोमल तन बक्रता, तरु तन मनहिं कठोर ।।
सब कुसुमन में केतकी, जस सौरभ रह्यौ छाय ।
मधुप कठिन कंटक सहै, तऊ अनत नहिं जाय ।।
लंपट लोभी लालची, इनहिं कछू नहिं लाज ।
आदर अन आदर कहा, निज कारज सों काज ।।

५. दान-माधुरी—इसमें १७ कवित्त, १६ दोहा और ३ सोरठा छंद हैं । इसकी रचना सरस और कौतुकमयी है । इसका अंतिम अंश उदाहरणार्थ उपस्थित है—

माधुरी लता में अति मधुर विलासन की,
मधुकर आनि लपटानी सब सखियाँ ।
दुलहिन दूलहू के फूल के विलास कछु,
बास लै - लै जीवति हैं जैसे मधु - मखियाँ ।।
ऐसौ दाब बार - बार माँगत बिधाता जू पै,
कुंज - केलि माधुरी में कीजै जल - झकियाँ ।
दान मिस आनि कछु दंपति कों सुख भयौ,
ऐसौ दिन - दिन देखें सुख मेरी अँखियाँ ।।

सुनै - सुनावै जो कोऊ, दान माधुरी रूप ।
मन वांछित फल दुहुन कौ, निरखै सदा सरूप ।।
दान-केलि जो मन बसै, ताहि न और सुहाय ।
तजि वृंदाबन - माधुरी, अंत कहूँ नहीं जाय ।।

३. **केलि-माधुरी** — इसमें ६ कवित्त, १५ दोहा, ६ रोला, ६२ चौपाई, १ छंद, १ सवैया, ११ सोरठा और १ छप्पय छंद हैं। इसमें प्रिया-प्रियतम की केलि का सरस कथन किया गया है। इसका उदाहरण उपस्थित है—

सो०—नवल वैस नव नेह, नव किसोर नव रँग भरे ।
नव विलास भर मेह, बरषत जनु नव बूँद तें ॥
नव केसरि के कुंज अनूपा । नव किसोर दोऊ सुखद सरूपा ॥
रजनी सेष रह्यौ जब आई । तब सजनी बैठी अकुलाई ॥
अपनी सोंज सबै कर लीये । झाँकत नैन झरोखन दीये ॥
कोउ बीना कर मधुर बजावति । कोउ सारंगी सरस सुनावति ॥
कोउ रागिनि सों राग मिलावति । कोउ भैरव बिभाब सहिं गावति ॥
सोये सुनत सुग्नर वर राय । यह तन दृष्टि परी फिर जाय ॥
नैना बहुरि गये ललचाय । अति सरसौहैं उठे जँभाय ॥
लपटि रहे दोउ ललित भाँति । स्यामा-स्याम प्रिय गौर कांति ॥
दो०—एकै मन एकै सु तन, एकै चिह्न चिह्नार ।
प्रिया पीय कै पिय प्रिया, कछू न होत विचार ॥
सैन करचौ सुख सेज सुगंधनि, रैन जगे रति नैन लगे हैं ।
चैन परे न बिना चितवे, मुख बैन कहैं कछु प्रान मिले हैं ॥
जिय उपजै सोई जान कहैं, जनावत लोचन के ढिग जौहैं ।
हेरि प्रिया पिय के हिय की, गति भौंह चले चख चारु हँसौहैं ॥

इसके अंत में रचना-काल का भी इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

दो०—केलि माधुरी बेलि की, छिन - छिन लेहु सुबास ।
होहि सदा सुख सहज ही, श्री वृंदाबन - बास ॥
संवत सोलह सै असी, सात अधिक हिय धार ।
केलि-माधुरी छटि लिखी, सावन बदि बुधवार ॥

४. **वृंदाबन-माधुरी**—इसमें १२ कवित्त, ४५ दोहा, २ सवैया, ३१ चौपाई और ३ सोरठा छंद हैं। इसका उदाहरण देखिये—

वृंदाबन की बात कछु, कहत बनै नहिं बैन ।
नैन समाने विपिन में, विपिन समाने नैन ॥
मुकुलित मल्ली मालती, मंजुल मधुर सुबास ।
जुही - सुही फूली सबै, अपने सहज हुलास ॥
कूँजा - करना - केवड़ा, कनिकार - कैल्लार ।
बेलि - चमेली - मौलस्री, अति सौरभ सुकुमारि ॥

किंसुक केबरि कबलि दल, कृत्यमालि कचनार ।
कुंदी कुंद सुकुंदनी, पारिजात मंदार ।।
चंपक कों चंपकलता, दीनों कंठ लगाय ।
ए दूल्हा और दुलहिन, दोऊ सरस सुभाय ।।
सरस सेवती लतनि सों, लपटेहु स्याम तमाल ।
निपट कटीली नायिका, नायक परम रसाल ।।
लता माधुरी अति मृदुल, मोदक मई सुख जोग ।
उरझी कठिन कदंब सों, कौन बन्यौ संजोग ।।
बक्र ढरनि बक्रहि चलनि, बक्र मिलन गति केलि ।
तरुवर सरस सुभायते, सहज बाम पर बेलि ।।
सहज लता कोमल सरस, फूलि रहत निसि-भोर ।
मन कोमल तन बक्रता, तरु तन मनहिं कठोर ।।
सब कुसुमन में केतकी, जस सौरभ रह्यौ छाय ।
मधुप कठिन कंटक सहै, तऊ अनत नहिं जाय ।।
लंपट लोभी लालची, इनहिं कछू नहिं लाज ।
आदर अन आदर कहा, निज कारज सों काज ।।

५. दान-माधुरी—इसमें १७ कवित्त, १६ दोहा और ३ सोरठा छंद हैं । इसकी रचना सरस और कौतुकमयी है । इसका अंतिम अंश उदाहरणार्थ उपस्थित है—

माधुरी लता में अति मधुर विलासन की,
मधुकर आनि लपटानी सब सखियाँ ।
दुलहिन दूलहू के फूल के विलास कछु,
बास लै - लै जीवति हैं जैसे मधु - मखियाँ ।।
ऐसो दाव बार - बार माँगत बिधाता जू पै,
कुंज - केलि माधुरी में कीजै जल - झकियाँ ।
दान मिस आनि कछु दंपति कों सुख भयौ,
ऐसौ दिन - दिन देखें सुख मेरी अँखियाँ ।।

सुनै - सुनावै जो कोऊ, दान माधुरी रूप ।
मन वांछित फल दुहुन कौ, निरखै सदा सरूप ।।
दान-केलि जो मन बसै, ताहि न और सुहाय ।
तजि वृंदाबन - माधुरी, अंत कहूँ नहीं जाय ।।

६. **मान-माधुरी**—इसमें १६ कवित्त, ९ दोहा, १५ सवैया और ६ सोरठा छंद हैं। इसमें प्रिया जू के मान का रसपूर्ण कथन है। उदाहरण देखिये—

आये सनमुख लाल लोचन सजल कीने,
माला एक मल्ली की नवल कर लीने हैं ।
आगे लै-लै धरत करत मनुहार अति,
पाँइन परत कर कैसै डारि दीने हैं ॥
मोहन मनावति उठावति चिबुक गहि,
जतन बनावत न सौंहे दृग कीने हैं ।
छुउ न सकात, पै न रह्यौ पुनि जात जिय,
अति अकुलात जैसे मीन जल-हीने हैं ॥
अहो जू हठीली हठ छाँड़ि दीजै रस कीजै,
दीजै लाल मिठबोले अब बोलियत हैं ।
नैक हू सुरति आय सोक न रहत कछू,
नैक मुसिकान में सुधा सौ पीजियत हैं ॥
जाकौ मुख देखि सुख-संपति सरस आवै,
ऐसे मनमोहन सों मान कीजियत हैं ।
मान को कहा है, तन-मन-प्रान वार दीजै,
देखि-देखि याकौ मुख देखि जीजियत हैं ॥

इसका अंतिम अंश इस प्रकार है—

सो०—बिन सनेह नहिं मान, मान बिना न सनेह कछु ।
जैसे रस मिष्ठान्न, नोंन सहित रोचक अधिक ॥
जैसौ जहाँ सनेह, मान तहाँ तैसौ बनै ।
ज्यौं बरषै नित मेह, सोख न सूर प्रकास बिन ॥
मिस्री मान समान, छूवत कर लागत कठिन ।
जब कीजै रस पान, तब जानै रसना सरस ॥
दो०—मान-माधुरी जो पढ़ै, सुनै सरस चित लाय ।
राग मार्ग में चित रहै, राधा-कृष्ण सहाय ॥

७. **होरी-माधुरी**—इसमें होली विषयक ६ पद हैं। इनमें होली खेल का सरस वर्णन हुआ है।

८. **प्रिया जू की बधाई**—इसमें राधा जी की जन्म-बधाई के केवल दो पद हैं।

२६. कृष्णदास

कृष्णदास उपनाम कृष्ण कवि वृंदावन के विख्यात गौड़ीय विद्वान श्री जीव गोस्वामी के शिष्य थे। जीव गोस्वामी जी का अस्तित्व-काल सं० १५७४ से १६६० के लगभग है। इससे कृष्णदास का समय सं० १६४० से १७०० तक अनुमानित होता है। कृष्णदास कृत 'श्री गौर नाम रस चम्पू' और 'लघु गोपाल चम्पू भाषा' नामक रचनाओं की प्रतियाँ क्रमशः सं० १७४२ और १७४७ में लिपिबद्ध उपलब्ध हुई हैं। इससे अनुमान होता है कि उनका रचना-काल सं० १७०० के बाद का नहीं होगा।

उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'श्री गौर नाम रस चम्पू' के आरंभ में उन्होंने अपना जो संक्षिप्त परिचय दिया है, उससे केवल इतना मालूम होता है कि वे जीव गोस्वामी जी के सेवक थे और ब्रज-वास करते थे[1]। उससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि वे जन्मतः ब्रजवासी थे, अथवा कहीं बाहर से आकर ब्रज में निवास करने लगे थे। उनकी रचना की भाषा देखने से ऐसा अनुमान होता है कि वे मूलतः ब्रजवासी नहीं थे; बल्कि किसी अन्य स्थान से आकर ब्रज में रहे थे। बहुत संभव है, वे बंगाली भक्त जन हों।

उनकी रचना के रूप में 'श्री गौर नाम रस चम्पू' और 'लघु गोपाल चम्पू भाषा' नामक दो छोटी कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। इन्हें बाबा कृष्णदास ने एक ही पुस्तिका में प्रकाशित किया है। इनके संक्षिप्त परिचय और कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

१. श्री गौर नाम रस चम्पू—इसमें १६ अंक हैं। रचना साधारण कोटि की है और इसमें छंदोभंग भी है। इसकी हस्त प्रति में ५२ खुले पत्रा है, जो बड़े सुंदर अक्षरों में लिखे हुए हैं। यह वृंदावन में यमुना तट पर सं० १७४२ की कार्तिक शु० १५ शनिवार को लिखी गई है। इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

---

१. श्री जीव जीवन मेरौ, उन ही कौ मैं हूँ चेरौ,
जाके राधा - दामोदर वृंदावन गाजे हैं।
कृष्णदास ब्रजवास रचत नाम - बिलास,
'गौर नाम रस चम्पू' जामैं रस भ्राजे हैं॥

रसीली किसोरी भोरी, काम की कमानं जोरी,
भ्रू-लता बिलास-हास स्याम रंग पागी है ।
मृग-साबक नैन-बान चलत हैं जहाँ-तहाँ,
अंगन की जोति भूमि-द्रुम-लता लागी है ।।
कंचन की कांति, अहो बचनन मैं मायै कहाँ,
नील पट जोति ज्यों बीजुरी सी भागी है ।
बदन की जोति देखि मदन निपत होत,
कमल सुगंध भृंग वृंद भीख माँगी है ।।१।।

कपट की कपाट आड़ चित्त मधि लगी गाँठ,
ममता सों आड़ परी कैसी विधि करियै ।
छाती पै नाँचत है वासना नवीन नारि,
बँधि गई तार, ता पै कहो कैसे तरियै ।।
अंगन की गाँठ-गाँठ घोंटू की मटक अहो,
खट-खट आवाज ता पै तरियै कहा मरियै ।
पासान एहसान होत वैसी बोझ वैसी चोट,
घोटि कोटि होत हाय तामैं हू तौ चरियै ।।
बजर कौ आहाट जैसौ वैसौ कोउ करत हीयें,
धरचौ है पहचान ताकौ कैसो विधि करियै ।
अपार करुना धारी साधुन कों हितकारी,
सिरी गौर नाम सक्र चक्र 'कृष्ण' झरियै ।। २ ।।

हरि नाम बिना हरि काम कहाँ, काम बिना कहा बीज ।
बीज बिना हरि तनु कहाँ, कहा तनु बिना बीज ।।
हरि राग बिना हरि भाग कहाँ, भाग बिना कहाँ भोग ।
भोग बिना सुख-भोग कहाँ, सुख-भोग बिना कहाँ लोग ।।
हरि रंग बिना सतसंग कहाँ, सतसंग बिना कहाँ अंत ।
अंत बिना एकंत कहाँ, एकांत बिना कहाँ कंत ।।
कंत बिना कंतार कहाँ, गौर बिना कहाँ स्याम ।
स्याम बिना अभिराम कहाँ, अभिराम बिना कहाँ नाम ।।

अंत—घोर कलि काल निरखि चित चंचल, मोहन मोहिनी स्यामा ।
नाम चंपु तृष हृदि दसनांकृत, फुत्कृत कृष्ण कवि नामा ।।
अतिसय घोर कलि काल तरन कूँ, जो चाहौ हौ उपाउ ।
सार सारतम "गौर नाम रस चंपू" चित लगाय कै गाउ ।।

२. **श्री लघु गोपाल चम्पू भाषा**—यह श्री जीव गोस्वामी कृत 'गोपाल चम्पू' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का अत्यंत संक्षित रूप में ब्रजभाषा पद्यानुवाद है। इसकी हस्त प्रति किसी जगन्नाथ भट्ट द्वारा सं० १७४७ की वैशाख कृ० ५ की लिखी हुई उपलब्ध हुई है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ—श्री जुत कृष्ण कृष्ण चैतन्य। सहित सनातन रूप सु धन्य॥
श्रीगोपाल भट्ट रघुनाथ। ब्रज प्रिय पद-रज धर निज माथ॥
श्रीजुत जीव गुसाईं ध्याऊँ। नित बंदन करि कृपा मनाऊँ॥
रची जु प्रभु मन सिच्छा चार। करसु तासु भाषा सुख सार॥

अंत—छिननि मिलनि लहलहनि सुहाई। प्रति पल नवल ललित सुखदाई॥
लपटी तरुवर दृढ़ विस्वास। सुरभि कुसुम कल हास विलास॥
सखि रुचि गुन गुहि रच्यौ हार हिय। श्री राधा-दामोदर जसु जिय॥
श्री कृष्णदास सुललित गुन गावै। सुनि मन सिच्छा सरस सुनावैं॥
फिरि-फिरि वरन मनहिं समुझाई। उक्ति युक्ति रस भक्ति सुभाई॥
सुनि भजि लहि सुप्रेम विस्वास। पावै नित वृंदाबन बास॥
मधि श्री लघु चंपू गोपाल। पूरन द्वादस बरनि रसाल॥
श्री राधा - कृष्णहिं जु लड़ावै। सुललित 'कृष्णदास' गुन गावै॥

२७. भगवत मुदित

भगवत मुदित जी आगरा निवासी भक्तवर माधव मुदित जी के पुत्र और वृंदाबनस्थ ठाकुर श्री गोविंददेव जी के सेवाधिकारी हरिदास जी के शिष्य थे; जैसा स्वयं उन्होंने अपनी रचना 'वृंदाबन शतक'-टीका के अंत में बतलाया है[1]। प्रियादास जी ने लिखा है कि वे आगरा के सूबेदार शुजाउल्मुल्क के दीवान और ब्रजवासी साधु-संतों की धनादि से सेवा करने वाले उदारमना भक्त जन थे[2]। वे अपने गुरु के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखते थे और उनके लिए सदैव अपना सर्वस्व अर्पित करने को तत्पर रहते थे[3]।

---

१. माधौ मुदित प्रसंस हंस, जिन रति - रस गायौ।
तिनकौ हौं निज अंस, रहसि - रस तिनतें पायौ॥
प्रथम दया पदमोद, मोद जिहिं मन कौं दीनौं।
श्री गुरु श्री हरिदास - दया, मैं भाषा कीनौं॥

२. सूजा के दिवान भगवंत रसवंत भए, वृंदाबन बासिन की सेवा ऐसी करी है।
विप्र कै गुसाईं साधु कोई ब्रजवासी जाहु,देत वहु धन एक प्रीति मति हरी है॥
—'भक्ति रस बोधिनी', कवित्त ६२६

३. भक्ति रस बोधिनी, कवित्त सं० ६२७

चैतन्य मतावलंबी होते हुए भी वे हित हरिवंश जी और उनके राधाबल्लभीय रस-सिद्धांत के प्रति आस्था रखते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के आरंभ में श्री चैतन्य देव की वंदना करने के उपरांत वृंदाबन के जिन संतों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है, उनमें सबसे पहिला नाम हित हरिवंश जी का है। अपनी रचना 'वृंदाबन शतक'-टीका की समाप्ति पर उन्होंने अपने को 'हित-संगी' रसिकों के रंग में रँगा हुआ बतलाया है[1]। राधाबल्लभीय भक्त जनों का सर्व प्रथम चरित्र ग्रंथ 'रसिक अनन्य माल' उनकी प्रसिद्ध रचना है। इसीलिए मिश्रबंधुओं ने उन्हें भ्रम से 'राधाबल्लभीय संप्रदाय के अनुयायी' लिखा है[2]; किंतु जैसा पहिले कहा जा चुका है, उन्होंने चैतन्य मत की दीक्षा ली थी और वे अंत तक इसी मत के अनुयायी रहे थे।

उनके अस्तित्व-काल का निश्चय उनकी रचनाओं के आधार पर किया जा सकता है। 'वृंदाबन शतक'-टीका की रचना उन्होंने सं० १७०७ के चैत्र मास में की थी, जैसा उसकी पुष्पिका से विदित होता है[3]। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसिक अनन्य माल' की रचना का अनुमान सं० १७१४ के कुछ बाद का किया गया है[4]। इससे उनका अस्तित्व-काल सं० १६५० से १७२० तक माना जा सकता है। ऐसा अनुमान है, उनका जन्म सं० १६५० के लगभग और उनका देहावसान सं० १७२० के लगभग हुआ होगा।

नाभा जी कृत 'भक्तमाल' में उनका उल्लेख उक्त ग्रंथ के प्रायः अंत में हुआ है[5]। भक्तमाल का रचना-काल सं० १६५० के लगभग माना जाता है।

---

१. प्रनवौं श्री चैतन्यवर, नित्यानंद सरूप।
श्री हरिवंस प्रताप बल, बरनौं कथा अनूप॥ (रसिक अनन्य माल)
इष्ट चंद गोबिंदवर, श्री राधा-जीवन प्रान-धन।
हित संगी रंगी भजन, सु कहत सुनत कल्यान बन॥ (वृंदाबन शतक)

२. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृ० ४५५

३. संबत दस पै सात सै, अरु सात बरस है जानि।
चैत्र मास में चतुर वर, भाषा कियौ बखानि॥

४. रसिक अनन्य माल (ललिताप्रसाद शुक्ल), प्रस्तावना, पृ० १२

५. कुंजबिहारी - केलि सदा अभ्यंतर भासै।
दंपति सहज सनेह, प्रीति परिमिति परकासै॥
अनन्य भजन रस रीति, पुष्टि मारग करि देखी।
बिधि-निषेध बल त्यागि, पागि रति हृदय विसेखी॥
माधव-सुत संमत रसिक, तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवत मुदित उदार जस, रस रसना आस्वाद किय॥१६८॥

भगवत मुदित जी के अस्तित्व-काल को देखते हुए ऐसा अनुमान होता है कि भक्तमाल का उक्त छप्पय स्वयं नाभा जी रचित नहीं है; बल्कि उनके बाद और प्रियादास जी से पहिले के किसी कवि ने उसे रच कर भक्तमाल में मिला दिया था। यदि उक्त छप्पय को स्वयं नाभा जी कृत मानते हैं, तब भक्तमाल का रचना-काल सं० १७२० के बाद का मानना होगा, जो समीचीन नहीं है।

भगवत मुदित जी राजकीय कर्मचारी होते हुए भी उच्च कोटि के भक्त और सुकवि थे। उन्होंने राधावल्लभीय भक्तों का खोजपूर्ण जीवन-वृत्तांत लिखने के साथ ही साथ अपने पदों में प्रिया-प्रियतम के नित्य विहार का गायन भी किया है। इससे ज्ञात होता है, वे माधुर्य भक्ति के उपासक रसिक महात्मा थे। हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज रिपोर्ट, मिश्रबंधु विनोद और हिंदी साहित्य के विविध इतिहास ग्रंथों में उनकी ४ रचनाओं का उल्लेख हुआ है। उनके नाम—१. हित चरित्र, २. सेवक चरित्र, ३. रसिक अनन्य माल और ४. वृंदाबन शतक लिखे गये हैं[१]।

भगवत मुदित जी की रचनाओं के संबंध में उक्त उल्लेख भ्रमात्मक है। वास्तव में उनके रचे हुए चार के स्थान पर केवल दो ही ग्रंथ है, जिनके नाम 'वृंदाबन शतक-टीका' और 'रसिक अनन्य माल' हैं। 'हित चरित्र' राधावल्लभीय मतानुयायी उत्तमदास की कृति है, जो प्राय: 'रसिक अनन्य माल' के आरंभ में लगी हुई मिलती है। 'सेवक चरित्र' स्वतंत्र रचना न होकर 'रसिक अनन्य माल' का ही एक अंश है। उक्त साहित्यिक भ्रम का निवारण अब अच्छी तरह कर दिया गया है[२]। इस प्रकार भगवत मुदित जी की रचनाओं के रूप में उक्त दोनों ग्रंथ और २०७ स्फुट पद हैं। उनका संक्षिप्त परिचय और कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते।

१. वृंदाबन शतक की टीका—यह ग्रंथ प्रबोधानंद सरस्वती कृत 'श्री वृंदाबन महिमामृत' के एक शतक का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है। इसकी रचना सं० १७०७ के चैत्र मास में हुई थी। इसके मंगलाचरण में पहिले श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना है। उसके बाद उन्होंने अपने गुरु हरिदास जी,

---

१. हस्त लिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, (सन् १९०० से १९११ तक) ज २३, ए-बी-सी और 'खोज रिपोर्ट' (सन् १९१२–१४), पृ० ३०। मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृ० ४५५

२. श्री वेदप्रकाश गर्ग का लेख—'भगवत मुदित कृत ग्रंथ' (शोध पत्रिका, उदयपुर,भाग ८,अंक २-३) और मुद्रित 'रसिक अनन्य माल'की प्रस्तावना।

पिता माधव मुदित जी तथा वृंदाबन के रसिक भक्त सर्व श्री हित हरिवंश, प्रबोधानंद, रूप-सनातन और हरिदास स्वामी का नमन किया है । इसे बाबा वंशीदास वृंदाबन वालों ने प्रकाशित किया है । इसका उदाहरण देखिये—

श्री कृष्ण चैतन्य जय-जय बिहारी ॥
नागरी रूप-गुन आगरी विधि सबै, भाग री भक्ति कौ दयाकारी ।
भजन हौ अगम, सो सुगम कियौ सहज ही, श्री राधाकांत कौ हित हियारी ॥
'मुदित भगवंत' रसवंत जे रसिक जन, चरन-रज रहसि कै सीस धारी ।
कियौ उद्धार पै दया अनुसार तै, श्री कृष्ण चैतन्य जय-जय बिहारी ॥१॥

जयति-जयति बन, जयति-जयति श्री राधा-रमनी ।
जयति-जयति ललतादि, जयति हित कौतिक कवनी ॥
जयति-जयति गोबिंद चंद, वृंदाबन-नायक ।
जय-जय श्री हरिदास, भजन गुरु रस के दायक ॥
जयति-जयति यह हेतु कहि, नेति-नेति निगमनि कियौ ।
जयति-जयति माधव मुदित, रसिकनि जयति सुरस दियौ ॥ २ ॥

जै-जै श्री हरिवंस हंस हित कोविद बानी ।
ललिता ललित प्रसंस, केलि कल वला बखानी ॥
जै-जै श्री परमोद, मोद वृंदाबन गायौ ।
बहु विध हरष हुलास, वास यह वचन दृढ़ायौ ॥
श्री सत्य सनातन-रूप जै, नाना आरति मन हरन ।
जै श्री हरिदास अनन्य जै, श्री कुंजबिहारी हित करन ॥ ३ ॥

जयति बन फूल-फल, मूल-बल्ली विसद, कुंज रस-पुंज बापी-तड़ागहिं ।
ठौर सिरमौर जहाँ खग कुलाहल करैं, मत्त सारंग-सिखी-अलि परागहिं ॥
सिंधु आनंद कौ सार अनुपम निरखि, कोटि सत सारदा कथन रागहिं ।
सुखद गिरि-कंदरा सरस ह्रदनी तहाँ, सदा सेवत सखी प्रेम-बागहिं ॥१०॥

देखि दृग रूप छवि-भूप वृंदाबिपिन, स्रवन सुनि रहसि रस बन बिहारी ।
गंध लै घ्रान अवधान ह्वै चरन चल, केलि-कौतुक जहाँ प्रेम चारी ॥
जीभ गुन गाइ हित चाह वृंदाबिपिन, रहे लपटाय जहाँ छवि अहा री ।
प्रेम रस धाम अभिराम में लोट तू, होत रज परसि तें दरस प्यारी ॥११॥

श्री उद्धव निज दास, सखा हित जानि है ।
हरि सेवा में निपुन, सु निगम प्रमानि है ॥
ताकें भई अभिलास, बिपिन-तृन हूजियै ।
जै श्री राधे बिपिन, निरंतर पूजियै ॥१४॥

मन ऊसर हरि-भक्ति बीज, उपज्यौ नहिं नैकहु तामैं ।
अपमारग आसक्त डिंभ, कौलिक सब सहजहिं जामैं ।।
अधम पतित सिरमौर, विषय-लंपट खल अतिहि जुआरी ।
पर निंदा पर दोष, खुनस-जिद रहत है नित्त खुमारी ।।
'श्री भगवत' इहि विधि सब दोषनि भरचौ, वृंदाबन बसि धन हरत ।
देखि अति प्रभाव वृंदाबिपिन, सुमत्त प्रेम ताहू करत ।।२५।।

सो वह ग्रंथ पुरान, स्रवन-पथ परौ न तानै ।
श्री वृंदाबिपिन प्रताप, कथन रस कह्यौ न जामैं ।।
तासों करौं अलाप न, नैनन देखौं ताकों ।
सुनिकैं बिपिन-विलास, हरष मन मोह न जाकों ।।
'भगवत' ऐसे कुटिल कौ, संग करत जे भूलि जन ।
तिनकों कबहू ना मिलै, श्री वृंदाबन-रज लेस कन ।। ४२ ।।

रे मन ! सकल अधर्म-धर्म तजि, जे सब जग के साधक ।
ता गुरु हू कों छाँड़ि, बास वृंदावन बाधक ।।
उहै धर्म सत्कर्म उहै, श्री गुरु-पद-सेवा ।
उहै सिरोमनि संग-रंग वृंदाबन-देवा ।।
'श्री भगवत' पाय प्रताप सब, या दुख को कोउ नाहिं सर ।
अंतराय जो एक पल, बृंदाबन तें होइ नर ।।५६।।

अति स्निग्ध घनस्याम काम, कोटिकन कोटि छबि पावै ।
गौर माधुरी निरखि दीठि, उपमा नैकहु नहिं आवै ।।
ए किसोर चित-चोर मत्त जोबन, जोबन रँग भीने ।
झूमत झूमत नैन बैन मन, मैनहु आनंद दीने ।।
'श्री भगवत' केलि अनुराग में, मत्त मगन दोऊ रहत बन ।
नहिं बरनि सकति कोऊ सारदा, आस्वादन करि रहसि मन ।।६५।।

२. **रसिक अनन्य माल**—इसमें राधावल्लभीय मतानुयायी ३६ रसिक भक्तों का खोजपूर्ण चरित्र दोहा-चौपाई छंदों में लिखा गया है, जिससे इसमें हित हरिवंश जी के वृंदावन-आगमन (सं० १५९१) से उनके प्रपौत्र दामोदरचंद्र जी के देहावसान-काल (सं० १७१४) तक के १२३ वर्षों का इतिहास प्राप्त होता है । इसकी भाषा बोलचाल की ब्रजभाषा है । इसकी कई हस्त प्रतियाँ मिलती हैं, जिनमें सबसे प्राचीन सं० १७८९ की उपलब्ध है । इसका प्रकाशन ललिताप्रसाद जी पुरोहित कृत सुसंपादित प्रति के आधार पर वेणु प्रकाशन वृंदाबन द्वारा हुआ है । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

श्री नरवाहन की परचई

श्री हरिवंस चरन सिर नाऊँ । नरबाहन की कथा सुनाऊँ ।।
श्री हरिवंस रसिकमनि रास । सरनागत की पुजवत आस ।।
नरबाहन भौगाँउ निवासी । बार पार में एक मवासी ।।
जाकी आज्ञा कोउ न टारै । जो टारै तिहिं चढ़ि करि मारै ।।
बस करि लियौ सकल ब्रज देस । तासों डरपैं बड़े नरेस ।।
पातसाह के बचननि टारै । मन आवै तौ दगरौ मारै ।।
कबहुँक श्री वृंदाबन आयौ । श्री हित जू कौ दरसन पायौ ।।
चरचा होत नवल अरु आप । नरबाहन सब सुन्यौ अलाप ।।
दरसन तें मति सुद्ध जु भई । श्री हित जू की पद-रज लई ।।
बचन सुनत उपज्यौ निरवेद । पिछले कृत कौ मान्यौ खेद ।।
कहन लग्यौ हौं सरनहिं आयौ । अपनौ सब विरतांत सुनायौ ।।
अब प्रभु मोहि आपुनौ करौ । सिर कर धरौ कुमति मम हरौ ।।
बिना कपट कौ बचन सुनायौ । दिच्छा दै तब हित अपनायौ ।।
बाट मारिवौ तुरत छुड़ायौ । पूरन भाग्य उदै ह्वै आयौ ।।
इष्ट-धाम कौ भेद बतायौ । नरबाहन त्यों ही मन लायौ ।।
सेवा करन लग्यौ मन लाई । करत भावना नाहिं अघाई ।।
आयौ एक बड़ौ ब्यौपारी । लादें नाव सौंज बहु भारी ।।
देहि जगात न सबसों अरै । तुपक जमूरन सों बहु लरै ।।
ये हू माँगन लगे जगात । वह मद-अंध सुनै क्यों बात ।।
हौं सरावगी धर्म विरोधी । हरि-भक्तनि सों लरयौ किरोधी ।।

३. स्फुट पद—उनके रचे हुए २०७ स्फुट पद भी उपलब्ध हैं । इनमें प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं का सरस कथन किया गया है । इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

मेरो महारानी राधा रानी ।
जाके बल मैं सब सों तोरी, लोक-लाज कुल-कानी ।।
प्रान-जीवन धन लाल बिहारन, वार पिऊँ तित पानी ।
'भगवत मुदितन' कों मनमोहन, टहल भई मन मानी ।। १ ।।

रसिक सों बातें लाड़-लड़ौहीं ।
हँसि-हँसि जात समात हिये में, फिर चितवत पिय सौहीं ।।
करत बिहार उदार सकल अंग, प्रेम बिबस ललचौहीं ।
'भगवत मुदित' लड़ावत छिन-छिन, छैल दसा गहि गौहीं ।। २ ।।

२८. किशोरीदास गोस्वामी

वृंदावन के ठाकुर श्री मदनमोहन जी की आचार्य गद्दी पर श्री सनातन गोस्वामी की शिष्य-परंपरा की पाँचवीं पीढ़ी में किशोरीदास गोस्वामी आसीन थे। उनका अस्तित्व-काल १८ वीं शती का पूर्वार्ध है। उनका जन्म सं० १६८० के लगभग और देहावसान सं० १७५० के लगभग अनुमानित होता है। वे वंग प्रदेशीय ब्राह्मण और वंशीदास गोस्वामी के शिष्य थे। वंशीदास जी के अनंतर वे सं० १७२० के लगभग आचार्य हुए थे।

श्री मदनमोहन जी के मंदिर से 'श्री गौड़ेश्वर संप्रदाय का सचित्र इतिहास' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है। उसमें पृष्ठ १०० पर किशोरीदास गोस्वामी का अत्यंत संक्षिप्त परिचय दिया गया है। उससे ज्ञात होता है कि उन्होंने ठाकुर मदनमोहन जी के लिए बहुत सी संपत्ति उपार्जित की थी। बादशाही शासन से भी उन्हें सन्मान प्राप्त हुआ और कई सनदें मिली थीं। वे कविता और संगीत के प्रेमी थे। उनका रचा हुआ 'राग बसंत' का एक पद उसमें दिया गया है, जिससे उनका कवि होना सिद्ध होता है। वह पद इस प्रकार है—

खेलत बसंत श्री चैतन्य चंद। श्री नित्यानंद आनंदकंद।।
प्रभु अद्वैत भरि प्रेम रंग। श्री रूप-सनातन लिये संग।।
रघुनाथ भट्ट श्री जीव गोपाल। रघुनाथदास अतिसै कृपाल।।
चहुँ दिसि गौरा भक्त वृंद। मध्य बिराजत सचीनंद।।
रच्यौ परस्पर खेल फाग। जहँ मनु उमग्यौ अनुराग भाग।।
जहँ बाजत ताल-मृदंग-बीन। डफ अरु आवज सुर नवीन।।
ढोलक-झालरि-झाँझ-रुंज। जहँ छाय रह्यौ अनुराग-पुंज।।
महुवरि-किन्नर बाजैं निसान। अनाघात तहँ तान मान।।
तत और वितत बजत अनंत। जस बिमल-बिमल गावैं संत।।
छंदबद्ध गुन गान-प्रबंध। जहँ नदिया नगर बढ़ौ प्रेमस्पंध।।
जहँ बिवस भये तन नहिं सभार। जहँ भयौ परस्पर सुखद सार।।
जहँ भक्त-जूथ मिल करत गान। जहँ नृत्य करत हैं गुन-निधान।।
जहँ उड़त अबीर-गुलाल रंग। जहँ चोबा-मृगमद ज्वाद संग।।
जहँ बरषत हैं रँग-रंग धार। जहँ पिचकारिन की होत मार।।
जहँ हो-हो हो-हो मचत खेल। जहँ केसरि कुंकुम चली है रेल।।
जहँ भाव भरे नाचैं सुधीर। जहँ अंग पुलकि हग बहै नीर।।
को कवि बरनै तिहिं बार। जहँ 'किसोरिदास' सुख भयौ अपार।।

श्री नरवाहन की परचई

श्री हरिवंस चरन सिर नाऊँ । नरबाहन की कथा सुनाऊँ ।।
श्री हरिवंस रसिकमनि रास । सरनागत की पुजवत आस ।।
नरबाहन भौगाँउ निबासी । बार पार में एक मवासी ।।
जाकी आज्ञा कोउ न टारै । जो टारै तिहिं चढ़ि करि मारै ।।
बस करि लियौ सकल ब्रज देस । तासों डरपैं बड़े नरेस ।।
पातसाह के बचननि टारै । मन आवै तौ दगरौ मारै ।।
कबहुँक श्री वृंदाबन आयौ । श्री हित जू कौ दरसन पायौ ।।
चरचा होत नवल अरु आप । नरबाहन सब सुन्यौ अलाप ।।
दरसन तें मति सुद्ध जु भई । श्री हित जू की पद-रज लई ।।
बचन सुनत उपज्यौ निरवेद । पिछले कृत कौ मान्यौ खेद ।।
कहन लग्यौ हौं सरनहिं आयौ । अपनौ सब बिरतांत सुनायौ ।।
अब प्रभु मोहि आपुनौ करौ । सिर कर धरौ कुमति मम हरौ ।।
बिना कपट कौ बचन सुनायौ । दिच्छा दै तब हित अपनायौ ।।
बाट मारिबौ तुरत छुड़ायौ । पूरन भाग्य उदै ह्वै आयौ ।।
इष्ट-धाम कौ भेद बतायौ । नरबाहन त्यौं ही मन लायौ ।।
सेवा करन लग्यौ मन लाई । करत भावना नाहिं अघाई ।।
आयौ एक बड़ौ ब्यौपारी । लादें नाव सौंज बहु भारी ।।
देहि जगात न सबसों अरै । तुपक जमूरन सों बहु लरै ।।
ये हू माँगन लगे जगात । वह मद-अंध सुनै क्यों बात ।।
हौ सरावगी धर्म विरोधी । हरि-भक्तनि सों लरचौ किरोधी ।।

३. **स्फुट पद**—उनके रचे हुए २०७ स्फुट पद भी उपलब्ध हैं । इनमें प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं का सरस कथन किया गया है । इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

मेरी महारानी राधा रानी ।
जाके बल मैं सब सों तोरी, लोक - लाज कुल-कानी ।।
प्रान - जीवन धन लाल बिहारन, वार पिऊँ तित पानी ।
'भगवत मुदितन' कों मनमोहन, टहल भई मन मानी ।। १ ।।
रसिक सों बातें लाड़ - लड़ौहीं ।
हँसि-हँसि जात समात हिये में, फिर चितवत पिय सौहीं ।।
करत बिहार उदार सकल अंग, प्रेम बिबस ललचौहीं ।
'भगवत मुदित' लड़ावत छिन-छिन, छैल दसा गहि गौहीं ।। २ ।।

२८. किशोरीदास गोस्वामी

वृंदाबन के ठाकुर श्री मदनमोहन जी की आचार्य गद्दी पर श्री सनातन गोस्वामी की शिष्य-परंपरा की पाँचवीं पीढ़ी में किशोरीदास गोस्वामी आसीन थे। उनका अस्तित्व-काल १८ वीं शती का पूर्वार्ध है। उनका जन्म सं० १६८० के लगभग और देहावसान सं० १७५० के लगभग अनुमानित होता है। वे वंग प्रदेशीय ब्राह्मण और वंशीदास गोस्वामी के शिष्य थे। वंशीदास जी के अनंतर वे सं० १७२० के लगभग आचार्य हुए थे।

श्री मदनमोहन जी के मंदिर से 'श्री गौड़ेश्वर संप्रदाय का सचित्र इतिहास' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है। उसमें पृष्ठ १०० पर किशोरीदास गोस्वामी का अत्यंत संक्षिप्त परिचय दिया गया है। उससे ज्ञात होता है कि उन्होंने ठाकुर मदनमोहन जी के लिए बहुत सी संपत्ति उपार्जित की थी। बादशाही शासन से भी उन्हें सन्मान प्राप्त हुआ और कई सनदें मिली थीं। वे कविता और संगीत के प्रेमी थे। उनका रचा हुआ 'राग बसंत' का एक पद उसमें दिया गया है, जिससे उनका कवि होना सिद्ध होता है। वह पद इस प्रकार है—

खेलत बसंत श्री चैतन्य चंद। श्री नित्यानंद आनंदकंद॥
प्रभु अद्वैत भरि प्रेम रंग। श्री रूप-सनातन लिये संग॥
रघुनाथ भट्ट श्री जीव गोपाल। रघुनाथदास अतिसै कृपाल॥
चहुँ दिसि गौरा भक्त वृंद। मध्य बिराजत सचीनंद॥
रच्यौ परस्पर खेल फाग। जहँ मनु उमग्यौ अनुराग भाग॥
जहँ बाजत ताल-मृदंग-बीन। डफ अरु आवज सुर नवीन॥
ढोलक-झालरि-झाँझ-रुंज। जहँ छाय रह्यौ अनुराग-पुंज॥
महुवरि-किन्नर बाजैं निसान। अनाघात तहँ तान मान॥
तत और वितत बजत अनंत। जस विमल-विमल गावैं संत॥
छंदबद्ध गुन गान-प्रबंध। जहँ नदिया नगर बढ़ौ प्रेमस्पंध॥
जहँ बिबस भये तन नहिं सभार। जहँ भयौ परस्पर सुखद सार॥
जहँ भक्त-जूथ मिल करत गान। जहँ नृत्य करत हैं गुन-निधान॥
जहँ उड़त अबीर-गुलाल रंग। जहँ चोबा-मृगमद ज्वाद संग॥
जहँ बरषत हैं रँग-रंग धार। जहँ पिचकारिन की होत मार॥
जहँ हो-हो हो-हो मचत खेल। जहँ केसरि कुंकुम चली है रेल॥
जहँ भाव भरे नाचैं सुधीर। जहँ अंग पुलकि दृग बहै नीर॥
को कवि बरनैं तिहीं बार। जहँ 'किसोरिदास' सुख भयौ अपार॥

२९. किशोरीदास

वृंदाबन निवासी छुट्टन जी भट्ट के पुस्तकालय में प्राचीन पदों की एक हस्त-प्रति है। उसमें किशोरीदास जी के अनेक पदों का संकलन हुआ है, जिसे बाबा कृष्णदास ने अब 'श्री किशोरीदास जी की वाणी' के नाम से प्रकाशित कर दिया है। उक्त हस्त-प्रति पर लिपि-काल का उल्लेख नहीं है; किंतु उक्त बाबा जी का अनुमान है कि वह २५० वर्ष से अधिक की पुरानी है। इससे किशोरीदास जी का अस्तित्व-काल १८ वीं शती का मध्य काल अनुमानित होता है। ये किशोरीदास पूर्वोल्लिखित किशोरीदास गोस्वामी के कुछ परवर्ती ज्ञात होते हैं।

उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में कोई बात ज्ञात नहीं हो सकी है। बाबा कृष्णदास का मत है, वे ग्वालियर राज्य के अंतर्गत श्यौपुर के कोई बड़े जागीरदार थे। औरंगज़ेबी अत्याचार और उसके बाद के अशांत वातावरण के कारण ब्रज के अनेक देव-विग्रह वहाँ से हटा कर विभिन्न हिंदू राज्यों में ले जाये गये थे। उसी काल में बरसाने की श्री जी की प्रतिमा भी कुछ समय तक श्यौपुर में रही थी। वहाँ के जागीरदार श्री जी के अनन्य भक्त होने के साथ ही साथ ब्रज के प्रति भी आकर्षित हुए थे। कुछ समय बाद वे ब्रज-यात्रा को गये, किंतु फिर वहाँ से वापिस न आकर बरसाने में ही अंत समय तक निवास करते रहे थे। उनके निवास-स्थल के रूप में वहाँ पर 'श्यौपुर वाली कुंज' अभी तक विद्यमान है।

उन्होंने ब्रज-बरसाने में रहते हुए श्री जी की उपासना और ब्रजभाषा के सुंदर पदों की रचना में अपना शेष जीवन लगा दिया था। उनके रचे हुए पद किशोरीदास की छाप के उपलब्ध हैं। किशोरीदास उनका नाम था अथवा उप-नाम, यह ज्ञात नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके जीवन-वृत्तांत की अन्य बातें भी अविदित हैं।

'किशोरीदास की बानी' विभिन्न राग-रागनियों में कथित उत्सव के सरस पदों का संकलन है। उनका गायन बरसाना, नंदगाँव और वृंदाबन के मंदिरों में विविध उत्सवों के अवसर पर किया जाता हैं। इसमें सर्व प्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना और उनकी बधाई के पद हैं। फिर वृंदाबन, यमुना और भागवत-महिमा के पद हैं। उनके अनंतर क्रमशः लाल जी की बधाई, ढ़ाढ़ी-ढ़ाढ़िन, वर्षा, हिंडोरा-झूलन, राखी, लाल जी का पलना, राधा जी की बधाई,

राधा जी का पलना, बामन द्वादसी, दानलीला, साँझी, विजय दशमी, रास, हटरी, गोवर्धन-पूजा, भैयादोज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी, बसंत, होली, फूलडोल, रामनवमी, नृसिंह-जयंती, रथ-यात्रा आदि सभी प्रमुख उत्सवों के पद दिये गये हैं।

इस प्रकार के पद बल्लभ मतानुयायी कवियों ने तो अधिक संख्या में रचे हैं; किंतु चैतन्य मत के कवियों में किशोरीदास से अधिक किसी अन्य के रचे हुए नहीं मिलते हैं। उनके पदों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

[राग सूहो विलावल, रूपक ताल]

जै-जै श्री चैतन्य मंगल निधि गाइयै ।
सच्चिदानंद स्वरूप, रसिक सुख दाइयै ॥
प्रेम-अवधि, ललित लीला अधिकाइयै ।
ऐसे गौर किसोर सदा उर धाइयै ॥

चाल— ध्याइयै गौरांग सुंदर, निरखि नैन सिराइयै ।
भज सचीनंदन जगतवंदन, त्रिविध ताप नसाइयै ॥
पतित पावन विरद जाकौ, बड़े भागन पाइयै ।
'किसोरीदास' मंगलनिधि, जै-जै श्री चैतन्य गाइयै ॥१॥

[राग विहागरौ, रूपक ताल]

दोऊ मिल झूलत सुरंग हिंडोरैं ।
जमुना तीर कदंब की छइयाँ, आवत सुगंध झकोरैं ॥
झूलत-झूलत आलस उपज्यौ, चले कुंज की ओरैं ।
करि ब्यारू परिजंक हिंडोरे, पौढ़े रसिकन-मोरैं ॥
सखि ललितादिक पाँय पलोटति, चंपक-बिजना ढोरैं ।
'किसोरीदास' ब्रजचंद बिहारी, प्यारी पै डारत हैं त्रन तोरैं ॥२॥

दोहा—फूल-फूल द्रुम झुकि रहे, मधुप करत गुंजार ।
बोलत कोयल रस भरी, ललित कदम की डार ॥ ३ ॥
झूम-झूम बादर रहे, बिच चपला दरसाय ।
हरित भूमि ओढ़त मनों, चूनर जटित जड़ाय ॥ ४ ॥
रंग भरी छवि भरी सहचरी, पहरें रँग-रँग चीर ।
गावत मृदु कल कंठ लखि, छूटत मनमथ धीर ॥ ५ ॥
चटकीलौ रतनन जटित, रचि पचि रह्यौ हिंडोर ।
झूलत प्यारी राधिका, झुलवत नंदकिसोर ॥ ६ ॥
झूलन प्यारी की सरस, बरनत बनै न बैन ।
नैना के बैना नहीं, नहीं बैन के नैन ॥ ७ ॥

[राग केदारो, जलदि तितालौ]

रंग रँगीली सरद सुहाति । जगमग रही चाँदनी राति ॥
कुसुमित बृंदावन बहु भाँति । रंग रँगीलौ रँग बरसाति ॥
चाल— बरसत रंग रँगीलौ ललित, जहाँ निरतत राधिका-ब्रजचंद ।
तत्तथेई थेई तत्तथेई, बोलत ब्रज - ललना के वृंद ॥
चोप चटक सों लेत सरस अति । नउतम-नउतम लटकि-लटकि गति ॥
उरप-तिरप लखि रागनि लज्जित । सु लय भेद सों नूपुर बज्जत ॥
चाल— बजत नूपुर अरु झलकत किंकिन, मुरली बरसत रंग ।
तकध्रुमकटि तकध्रुमकटि, बाजत मधुर मृदंग ॥
मृदु कल कंठ जु लय सों गावत । तान - तरंगनि रँग उपजावत ॥
लाग डाट सुरभेद बतावत । हाव-भाव कटि-भृकुटि नँचावत ॥
चाल— भृकुटि नँचावत, करत कटाछै, उघटत सब्द संगीत ।
स रे ग म प ध नि स, नी ध प म ग रे स, रे स प यह रीत ॥
धनि - धनि मंगलनिधि रजनी । जहाँ राधा रंग रच्यौ री सजनी ॥
निरखि होत है अति रति लजनी । यह सुख दुरलभ है अज-अजनी ॥
चाल— दुरलभ अज-सारद-नारद, सिव-कमलादिक वाँछित रहैं ।
बड़भागिन ब्रज - सुंदरि सब, 'किसोरी' अति सुख लहैं ॥ ८ ॥

[राग बसंत]

केसर छींट स्याम तन सोभित, बीच - बीच चोबा लपटायौ ।
मृगमद और अरगजा लै - लै, मोहन अंग छिटकायौ ॥
राधा - मोहन भरि अनुरागनि, अदभुत खेल मचायौ ।
पिचकारी भरि - भरि रंगन सों, अबीर - गुलाल उड़ायौ ॥
खेलत रंग बढ़्यौ है परस्पर, निरखि अनंग लुभायौ ।
'किसोरीदास' ब्रजचंद्र बिहारी, प्यारी छवि निरखत न अघायौ ॥९॥

[राग धनाश्री । आड़ ताला]

होरी के खिलार किन बदी बरजोरी ।
दुर पाछै ह्वै आय अचानक, बरबट बहियाँ मरोरी ॥
डारि गुलाल दृगन में मेरै, मुख लपटावत रोरी ।
भर पिचकारी तकत उरोजन, बोलत हो - हो होरी ॥
करत न कान नैक काहू की, निधरक ह्वै झकझोरी ।
'किसोरीदास' ब्रजचंद फिरत तू, कुल - मरजादा तोरी ॥ १० ॥

३०. गौरगणदास

उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में अभी तक कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं हो सकी है। हिंदी संसार के लिए तो उनका नाम भी नया है । उनकी रचनाओं की एक छोटी पुस्तिका बाबा कृष्णदास ने 'गौरांग भूषण मंजावली' के नाम से प्रकाशित की है। उसके 'प्राक्कथन' में उक्त बाबा जी ने लिखा है—

"आपके विषय में कोई विशेष बात हमें मालूम नहीं है। परंतु इस ग्रंथ से ही पता चलता है कि आप श्री सनातन गोस्वामी के चरणाश्रित प्रिय शिष्य थे।"

गौरगणदास ने अपनी रचनाओं में श्री गौरांग महाप्रभु, श्री रूप-सनातन तथा अन्य गौड़ीय संतों की जो वंदनाएँ की हैं, उससे उनका चैतन्य मतानुयायी भक्त-कवि होना ही सिद्ध होता है; किंतु उन्होने सनातन गोस्वामी का आश्रित शिष्य होना कहीं पर भी नहीं लिखा है। अपनी 'प्रार्थना' नामक रचना में उन्होंने गौड़ीय भक्त जनों को नमस्कार करते हुए रूप-सनातन दोनों गोस्वामी बंधुओं को 'गुरुदेव' अवश्य कहा है[1]; किंतु इसी से उन्हें सनातन गोस्वामी का चरणाश्रित शिष्य नहीं कहा जा सकता है । चैतन्य मतानुयायी भक्तों में रूप-सनातन गोस्वामियों के प्रति इतनी श्रद्धा रही है कि उनके देहावसान के बाद भी उन्हें गुरु रूप में स्मरण किया जाता रहा है।

सनातन गोस्वामी का चरणाश्रित शिष्य मानने से गौरगणदास को १६ वीं शती के उत्तरार्ध का अथवा १७ वीं शती के पूर्वार्ध का भक्त-कवि मानना होगा; किंतु उनकी रचना-शैली तथा अंतःसाक्ष्य से उन्हें उक्त काल का कदापि नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने अन्य आचार्यों के दार्शनिक सिद्धांतों के नामोल्लेख के साथ ही साथ माध्व गौड़ेश्वर सिद्धांत को स्पष्ट रूप से 'अचिन्त्यभेदाभेद' कहा है और चैतन्य मत की शाखा-प्रशाखाओं तथा ६४ महंतों का भी उल्लेख किया है[2]। इससे उनका काल सनातन गोस्वामी के बाद का सिद्ध होता है ।

---

१. **गौर - पारषद नमो, रहें प्रेम बस मत्त सदाई ।**
नमो श्री गुरुदेव, सनातन - रूप दोउ भाई ।।

२. **द्वैताद्वैत विचारिकै, बहुरि विशिष्टाद्वैत ।**
ब्रह्म अद्वैतै सोधिकै, सोधैं शुद्धाद्वैत ।।
भेदाभेद जाकों कहैं, सोई अचिंताभेद ।
गौर रूप निर्देस करि, यहि प्रतिपाद्यौ वेद ।। —गौरांग भूषण विलास

अवधूतादि अद्वैत सुभग स्कंध सोहाये । चौसठ साखा चलीं महंत निर्मल जस छाये।
पुनि साखा दल अमित कोटि सारद मति हारी। रामानंद स्वरूप पुष्प सौरभ विस्तारी।।
—सिद्धांत प्रणाली शाखा

गौरगणदास का महत्त्व उनके द्वारा रचित 'मंज' या 'माँझ' रचनाओं के कारण है । हिंदी साहित्य में इस काव्य-रूप के प्रसिद्ध कवि सीतलदास हुए हैं, जिनकी प्रशंसा मिश्रबंधुओं ने भी की है । 'मंज' या माँझ' २८ मात्रा का छंद है, जिसमें १६ मात्रा पर यति होती है । हिंदी में इसकी एक विशिष्ट परंपरा है । ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली और हिंदी के साथ फारसी शब्दों का अद्भुत मिश्रण इसमें किया जाता है । कभी-कभी इसमें खड़ी बोली की क्रियाओं और फारसी शब्दों का इतना बाहुल्य होता है कि यह उर्दू की सी रचना मालूम होती है । सीतल के काव्य की इस विशिष्टता के कारण मिश्रबंधुओं ने उन्हें खड़ी बोली का प्रथम कवि माना है[1]; किंतु सीतल से पहिले गौरगणदास और बल्लभ रसिक ने इसी प्रकार की रचना की थी । गौरगणदास की प्राचीनता का प्रतिपादन करते हुए कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह ने बाबा कृष्णदास के आधार पर लिखा है—

"गौरगणदास सीतलदास के बहुत पहिले हुए हैं । वह सनातन गोस्वामी जी के शिष्य थे और कबीर के कुछ ही समय बाद हुए थे । इस दृष्टि से उनकी रचना का महत्व बहुत बढ़ जाता है[2] ।"

गौरगणदास निश्चित रूप से सीतलदास से पहिले हुए हैं; किंतु उन्हें 'बहुत पहिले' का अथवा 'सनातन गोस्वामी का शिष्य और कबीर के कुछ ही समय बाद' का बतलाना ठीक नहीं है । वे बल्लभ रसिक के समकालीन और १८ वीं शती के आरंभिक काल में विद्यमान जान पड़ते हैं । उनके बाद इसी शैली के कवि सीतलदास और सहचरिशरण १९ वीं शताब्दी में हुए हैं ।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है । उनकी रचना का अंतिम उल्लेख यदि आत्म-कथन या अंत:साक्ष्य समझा जाय, तो उनके संबंध में कहा जा सकता है कि वे वृंदाबन के एकांत में प्रिया-प्रियतम का ध्यान किया करते थे । उनका जीवन-निर्वाह भिक्षा-वृत्ति से होता था । वे अपने गुरुदेव और वैष्णवों के प्रति अत्यंत श्रद्धावान थे । उनकी विशेष रुचि श्रीमद्भागवत के पठन-पाठन में थी । वे मतवाद के प्रपंच से दूर रह कर चैतन्य महाप्रभु और उनके परिकर में असीम अनुराग रखने वाले महात्मा थे । वह उल्लेख इस प्रकार है—

---

१. मिश्रबंधु विनोद, कवि सं० ६४६, पृ० सं० ६३४

२. त्रिपथगा (सितंबर, १९५६, पृ० १२१) में प्रकाशित 'चैतन्य संप्रदाय की हिंदी कविता' शीर्षक का लेख ।

सदा रहै एकांत, जुगल में ध्यान लगावै ।
गुरु - वैष्णव देखि, भूमि झुकि सीस नवावै ।।
आस - त्रास करि दूर, भागवत हित करि गावै ।
मधुकर - वृत्ति करै, नेम - व्रत रीति निभावै ।। १३ ।।
वृत्ति अकिंचन रहै, धान प्रतिग्रह कों त्यागै ।
बहु सास्त्र मतवाद, बुद्धि नहिं तिन में साधै ।।
लता - सरोवर देखि, प्रेम हिरदै में जागै ।
फिर रूप-सनातन गौर हरी, कहि कहि अनुरागै ।। १४ ।।
—सिद्धांत प्रणाली शाखा

चैतन्य मत का स्वरूप और रूप-सनातन का महत्व बतलाते हुए उन्होंने कहा है—

श्री रूप - सनातन मारग बांकौ, समझि सूर यामैं चरन धरौ ।
कर करुवा, कोपीन गूदरी, तिलक - माल आभरन धरौ ।।
सुंदर बिपिन-पुलिन-गिरि-सर-तरु, बैठि जुगल. उर सरन धरौ ।
नाम - कीरतन, नृत्य - गान, तजि लाज भक्त अनुकरन करौ ।।१५।।

श्री रूप - सनातन सरन बिन, करै स्याम सों हेत ।
बिन तरनी जनु सिंधु में, कूदति अज्ञ अचेत ।। १६ ।।

उनकी रचनाओं में सवैया, दोहा, छप्पय आदि ब्रजभाषा में और माँझ छंद ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली में लिखे गये हैं। काव्य की दृष्टि से ये रचनाएँ उत्तम हैं; किंतु इनमें कहीं-कहीं पर यति-भंग और छंदोभंग दोष भी आ गये हैं। अनेक छंदों में 'गति' को 'गती', 'छवि' को 'छवी', 'रवि' को 'रवी', 'रति' को 'रती' पढ़ना पड़ता है । उन्होंने संस्कृत के कठिन शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, जिससे उनकी रचना कुछ दुर्बोध हो गई है । कुछ छंदों में फारसी के शब्द भी अधिक मिलते हैं। गौरगणदास की रचनाओं को सुसंपादित रूप में कठिन शब्दों के अर्थ सहित प्रकाशित करना उचित है । यहाँ पर उदाहरणार्थ पहिले संस्कृत और फारसी प्रधान उनके कतिपय छंद और फिर अन्य छंद दिये जाते हैं—

संस्कृत प्र०—उरोविपुल विस्तीर्ण उन्नत फल, विल्व सुढार ढराई ।
वृषभ ककुस्थ स्कंध, प्रलंब भुजा लखि परघ पराई ।।
अँगुरी सुंदर जलजात कली, नख मनौ किरन लखि तिमिर नसाई ।
उज्ज्वल रोमावलि अंसु यथा, बालार्क प्रभा जनु सांति बहाई ।।१।।
नीलोत्पलाभ छवि गती, पीत जलज गत अरा हुआ ।
ताही सुवृत्त क्रीड़ा सुनृत्य, वपु भौम कोष्टगत धरा हुआ ।।
पीतोत्पलाभ रति कोष्ट विभव, मकरंद सुवासव भरा हुआ ।
अहि-सुता पुनीत चंचल सुनीति, पुन चंद्र पान रति करा हुआ ।। २ ।।

मथि सिंधुसार प्रेमोर्जिजाल, लावन्य कंबु छवि-वृद्धि करै ।
गत जात छटा, जलजात घटा, मेघ-रस्मि छवि-वृद्धि करै ।।
चंद्रांसु धार, नीलांबु धार, जनु मदन-रती छवि-वृद्धि करै ।
रक्तांसु रेख धनु वक्र रेख, लखि विष्णु-चाप छवि-वृद्धि करै ।। ३ ।।

लाक्षा रस रंजित पीत जलज, विन्यास योग्य विकल्प करें ।
कुनकत मराल स्वर मत्त भरे, रव सारिकादि विकल्प करें ।।
मन्मयःविष्ट नयनयोर्विभ्रमा, देस द्रक्ष विकल्प करें ।
वासाश्चित्र बहु जाल मंडित, पुष्पोदभेद विकल्प करें ।। ४ ।।

फारसी प्र०-वैसा ही रूप सजा दिलबर, हम गाहक हुस्नपरस्ती के ।
देखत ही मुझे नकाब किया, हो इश्क परस्तां मस्ती के ।।
हम भी कदमों के चेरे हैं, तुम हो महरूम इस बस्ती के ।
इस इश्क पेच का भँवर कठिन, तुम हो खेवा इस किस्ती के ।। १ ।।

छवि अदाँदार वर दिलाँदार, मन फिदाँदार क्या नूर सजा ।
दर्द दिलावर सुख सर्द दिलावर, इश्क दिलावर क्या हूर सजा ।।
तिरछी कर स्यानै, नैन-कमानै, भृकुटी धनु तानै क्या सूर सजा ।
कुंजबिहारी संग में प्यारी, सहचरि सारी क्या जीवन-मूरि सजा ।। २।।

बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित 'गौरांग भूषण मंजावली' ३४ पृष्ठों की एक छोटी पुस्तिका है, जिसमें गौरगणदास कृत जिन लघु रचनाओं का संकलन किया गया है, उनके नाम—१. गौरांग भूषण विलास, २. श्रृंगार मंजावली (पूर्व और उत्तर), तथा ३. सिद्धांत प्रणाली शाखा हैं। उनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

[गौरांग भूषण विलास]

किंजल्क कोस चंद्रांसु कोस, कुछ अमी-नीर सा टपक रहा ।
जलजात कोस, रस सार कोस, मधि अरुन सुधा सा लिपट रहा ।।
सोथान रुक्म गत मंद कोष्ट, रस लोभ अली सा झपट रहा ।
तपनीय आभ सुष्टुवु सुभाव, उपमा जुवती गन भटक रहा ।।१४।।

जल जात पीत दल भिन्न रचे, मनि चंद्र कांति गन तेज रचा ।
मधि वीर बहूटी पंक्ति रची, मृदु नील चक्र गन तेज रचा ।।
विस्तृत अरुन रस सुभग रचा, पुनि भौम कवीगन तेज रचा ।
पुनि अरुन भूमि पर रमा रची, स्वस्तिक गन उज्ज्वल तेज रचा ।।२२।।

छीर सिंधु सर रमा रची, परवीन सारदा रंग भरा ।
चंद्र तेज गत मेरु रचा, कुछ भौम मेव का संग धरा ।।
बालार्क मध्य ससि सुवन रचा, विसुद्ध चित्रता अंग करा ।
बिहरत अनंग सर जुवति छटा, गरु मान रती मद भंग भरा ।।३४।।
दो कनक आभ सी जुवति लखी, मन सकुचि रती प्रस्थान किया ।
डगमगत मदन बस रंभ जथा, भुजगेंद्र बसन छवि आन किया ।।
चक्रांग माल पुनि बद्ध करी, गोपेन्द्र भाव जनु भानु किया ।
ललित अंग पर मदन सजा, रसिकेन्द्र मधुर रस पान किया ।।५०।।
पुनि हेम नीर सीतल विसुद्ध, सुचि चपल आभ में बंद किया ।
नव रती रंग में घोल विधी ने, मीनकेतु रस कंद किया ।।
रचि छवि मयूख गन चक्र मध्य, उद्योत प्रेम सर चंद किया ।
मकरंद पान अलि वृंद करै, वासकजा वेष्टित फंद किया ।।५६।।
यह मधुर माधुरी रसिक राज की, रसिकन हृदय पगी है ।
छवि विलास रस-केलि रूप में, नव - नव लगन लगी है ।।
सुख पीयूष जिन पान किया, उर सारद विमल जगी है ।
संचित मूल विनष्ट किये सब, विष रस मीच भगी है ।।८५।।

[शृंगार मंजावली]

पूर्व—उपमा का खोज करें शायर, यह रूप क़हर का फेरा है ।
मृगराज छवी को बंद किया, गजराज गती को हेरा है ।।
क्या सिंधुराज का भ्रमर छीन, रवि-तनया तन को घेरा है ।
हाँ नील कमल सर बीच खिला, रहै काम सुभट का नेरा है ।।१०।।
यह छवी क़हर का दरिया है, को इसके आगे धीर धरे ।
लख मीन केतु रस लहर उठें, पल-पल सीने में पीर करें ।।
क्या नील पदम दल खिले हुए, नोंकों पै किरनें भीर करें ।
है निखल संपती का सुरमा, क्या कामराज के तीर सरें ।।१६।।
जनु मेघ खंड में सेष बाल रबि, तेज अनूप प्रकास करै ।
आनंद सिंधु में उदय हुआ, फिर चंद्र सरूप प्रकास करै ।।
हाँ अमी नीर में चुआ हुआ, छवि तेज रूप प्रकास करै ।
नवनीत छटा भर स्यामघटा, मनसिज का भूप प्रकास करै ।।२१।।
क्या मधुर सुधारस भरा हुआ, अरबिंद अरुन दल भाता है ।
भीतर हीरों की पंक्ति जड़ी, जनु रवी अस्त को जाता है ।।
फिर छटा जुवति गन संग लिएँ, ससि मेरुगहा से आता है ।
उर सिद्धि पीठ लख सरस्वती, तोरन में अरुन समाता है ।।२·।।

उत्तर—उपमा और चली आगे कछु, रती राज का घेरा सा ।
कदली तरु सींच रहे रस में, होय लाल भ्रमर का फेरा सा ।।
ऐसी समझि परै दिल में कहूँ, मदन खजाना हेरा सा ।
यहाँ लालबिहारी रसिकराज का, सदा रहै दिल नेरा सा ।। ६ ।।
फिर हेम चंद सा उदय हुआ, क्या छवी सिंधु में ढाला है ।
यह प्रेम नीर में चूय रहा, मनमथ का मानों प्याला है ।।
इस सरद चंद्र को बंद किया, लखि दोष बंक अरु काला है ।।
सब रूप सील गुन तेज पुंज, यह उज्ज्वलता में आला है ।।१३।।
दो यूथ छवी के झूल रहे, चश्मों में छाया चोंधा सा ।
तेज पुंज रस रूप भरे, लखि दिल में धाया कोंधा सा ।।
विधि का सभी प्रपंच लखा, सब जान परा है ओंधा सा ।
क्या काम सुभट की सैन्य कहूँ, कै पंचबान का फोंदा सा ।।१६।।
स्याम घटा की धार चलीं दो, तेज प्रेम छवि पूरी हैं ।
क्या नागराज की छोहनियाँ, लखि चंद्र प्रभा पर रूरी हैं ।।
मृदुल स्याह मखतूल सकुचि मन, दिल बिच कछु न सबूरी है ।
कुछ जुलम जाल से भरी हुई, मोहन की जीवनमूरी है ।।१७।।
प्रेम-सिंधु मथ काढ़ सुधा-छवि, उज्ज्वल सा रस-रूप रचा ।
तेज पुंज गुन सक्ति भरा सा, मुक्ति मार्ग का भूप रचा ।।
उमा रमापति जो सब नायक, तिनके परें अनूप रचा ।
यह रसिकराज का चमन बगीचा, क्या मीनकेतु का रूप रचा ।।२६।।
निसि-दिन मो मन में बास करै, यह छवी सुधा आनंद भरी ।
तव रूप सील गुन उदय होय, सर प्रेम नीर की पीर भरी ।।
वह छवि शृंगार घटा दामिन सी, बिहँसि मधुर कछु भाव भरी ।
जनु साह चस्म अरबिंद खिले, फिर कर गुलदस्तां फूल छरी ।।२७।।

[सिद्धांत प्रणाली शाखा]

परम अकिंचन वृत्ति, कृष्ण रस में मन पाग्यौ ।
कठिन विरह अनुराग, प्रेम-सर हिय में जाग्यौ ।।
कुंज-कुंज प्रति केलि निरखि, दंपति हित लाग्यौ ।
लता पत्र में झलक, स्याम सेवा पन साध्यौ ।। ७ ।।
गौर रूप बिन भजै, प्रेम रस कहाँ कोई पावै ।
श्री रूप - सनातन बिना, कौन ब्रज कों प्रगटावै ।।
बिना कृपा सुकदेव, भागवत कहाँ तें आवै ।
बिना भागवत, कौन रास - लीला कों गावै ।। ८ ।।

३१. बल्लभ रसिक

व्रजभाषा के भक्त कवियों में बल्लभ रसिक जी अपनी सरस और अलंकृत काव्य-शैली के लिए प्रसिद्ध हैं । फिर भी उनका अस्तित्व-काल और जीवन-वृत्तांत अभी तक अनिश्चित है । बाबा कृष्णदास ने उनकी रचनाओं का एक संकलन 'वाणी श्री बल्लभ रसिक जी की' नाम से प्रकाशित किया है। उसकी संक्षिप्त भूमिका में उन्होंने बल्लभ रसिक जी को गदाधर भट्ट जी का पुत्र और रसिकोत्तंस का भाई बतलाया है । रसिकोत्तंस कृत संस्कृत काव्य 'प्रेमपत्तन' प्रसिद्ध है । इस ग्रंथ के संपादक श्री कृष्णपंत शास्त्री ने रसिकोत्तंस का जन्म-संवत् १६६५ निश्चित किया है[1] । रसिकोत्तंस ने बल्लभ रसिक को अपना छोटा भाई लिखा है[2] । इस प्रकार बल्लभ रसिक का जन्म-काल सं० १७०० के लगभग और रचना-काल सं० १७२५ के बाद का माना जा सकता है। हमने गत पृष्ठों में गदाधर भट्ट जी का जन्म-संवत् १५८० के लगभग अनुमानित किया है। ऐसी दशा में बल्लभ रसिक को गदाधर भट्ट जी का पुत्र नहीं कहा जा सकता है। हमारे मतानुसार बल्लभ रसिक जी और रसिकोत्तंस जी दोनों भाई अवश्य थे; किंतु वे गदाधर भट्ट जी के पुत्र न होकर उनके वंशज हो सकते हैं, जो भट्ट जी से कुछ पीढ़ी बाद में हुए होंगे। बल्लभ रसिक जी के काव्य का अध्ययन करने से भी ज्ञात होता है कि वह गदाधर भट्ट जी के समकालीन भक्त-कवियों की रचनाओं जैसा नहीं है; बल्कि उसकी अलंकृत शैली रीति-कालीन कवियों जैसी है। इससे भी बल्लभ रसिक जी का जन्म-संवत् १७०० के लगभग और रचना-काल सं० १७२५ के बाद का ही सिद्ध होता है।

'मिश्रबंधु विनोद' में कवि सं० ३८४ और ७८० पर बल्लभ रसिक नामक दो कवियों का उल्लेख हुआ है । सं० ३८४ वाले बल्लभ रसिक का जन्म-काल सं० १६८१, रचना-काल सं० १७१० और ग्रंथ 'माँझ' लिखा गया है। सं० ७८० वाले बल्लभ रसिक को गदाधर भट्ट जी के संप्रदाय का तथा स्फुट पद और बानी का रचयिता बतलाया गया है। उसका रचना-काल सं० १८०० लिखा गया है । ये दोनों विवरण वस्तुतः दो कवियों के न होकर एक ही बल्लभ रसिक के हैं; जिनका काल ठीक प्रकार से नहीं लिखा गया है।

---

१. नाम माहात्म्य, वाणी अंक, पृ० ७६

२. बल्लभरसिकोमदनुजः

बल्लभ रसिक जी की रचनाओं से उनके चैतन्य मतानुयायी होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है । गदाधर भट्ट जी के वंशज होने की प्रसिद्धि के कारण ही उन्हें चैतन्य मतानुयायी कवियों में स्थान दिया गया हैं । उनकी रचना उच्च कोटि की है, जिसमें सर्वत्र अनुप्रास और यमक की छटा दिखलाई देती है। उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों में प्रिया-प्रियतम की लीलाओं के विविध उत्सवों का कथन किया है। बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित पुस्तिका में उनके द्वारा कथित हिंडोरा, पवित्रा, वर्षगाँठ, साँझी, दशहरा, दीवाली, वर्षा आदि की माँझ; नित्य गान के पद और 'बारह बाट अठारह पेंड़े' नामक रचनाओं का संकलन हुआ है ।

बल्लभ रसिक की 'माँझ' प्रसिद्ध है। 'मंज' या 'माँझ' नामक रचनाओं में प्रायः खड़ी बोली और फारसी के शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया जाता है; किंतु बल्लभ रसिक जी ने उन्हें ब्रजभाषा में ही लिखा है । उनकी 'सदा की माँझ' नामक रचना की भाषा पंजाबी है । यदि उनकी और रचनाएँ न होकर केवल 'सदा की माँझ' ही होती, तो उन्हें पंजाब प्रांत और पंजाबी भाषा का कवि समझा जाता; जब कि वे दाक्षिणात्य तैलंग और ब्रजभाषा के कवि थे। इस प्रकार की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उन्होंने पंजाब प्रदेश का अच्छा भ्रमण किया था और वे पंजाबी बोली से भली भाँति परिचित थे।

गदाधर भट्ट जी की वंश-परंपरा में संस्कृत भाषा के अनेक पंडित हुए हैं। बल्लभ रसिक भी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, जैसा उनकी रचना से विदित होता है। उन्होंने परिमार्जित और अलंकृत ब्रजभाषा में अपनी रचना की है। उनकी रचना का लालित्य दर्शनीय है। इसे पढ़ते ही गीतगोविंद का स्मरण हो आता है। 'ल'-कार के अत्यधिक प्रयोग और अनुप्रासों की मधुर मंद ध्वनि ने उनके काव्य को सरसता प्रदान की है । उनके काव्य में यमक का विशेष प्रयोग हुआ है। इससे जहाँ उनकी रचना अलंकृत हुई है, वहाँ कुछ कठिन भी हो गई हैं। कलात्मकता उनकी रचना की विशेषता है; किंतु इससे भाव-व्यंजना में कमी नहीं हुई है । इनकी रचना में संयोग श्रृंगार और माधुर्य भक्ति का ही कथन हुआ है । उन्होंने अपनी वाणी को राधा-कृष्ण की सहचरी और उनके प्रेमासव से सनी हुई बतलाया है—

'बल्लभ रसिक' सहचरी बानी । जुगल लगन आसब सों सानी ॥

नस्संदेह उनकी रचना में सात्विक मादकता है, जो भक्त जनों को रस-मत्त बना देती है । उदाहरणार्थ वर्षा ऋतु में झूलनोत्सव के पद देखिये—

आजु दोऊ झूलत रति - रस मानें ।
ठाढ़े मचकें लचकि, तरुनि के गहि फल - फूलन आनें ।।
सूहे पट पहिरें, ह्वै पटुली बैठे साँमल - गोरी ।
अलिन रँगीली तिय पद अँगुली, पिय डोरी सों जोरी ।।
स्याम काम बस झूलि-झूलि पग, मूलनि झुलिनि बढ़ाहीं ।
कामिनि चरन तामरस छुटि, अलि काम लूटि मचि जाहीं ।।
जोबन मधि जोबन मद झूलए, झूलनि फंदनि जानें ।
'बल्लभ रसिक' सखी कै नैना, एही झुलनि झुलानें ।।
ललित कदंब हिंडोरें झूलें ।
रसिक कदंब सिरोमनि दंपति, बन - संपति लखि फूलें ।।
सोहें सूहे बसन सु बनितन, मनि गन भूषन राजें ।
जोबन चैन बढ़े हैं नैन, चल चढ़े हैं मैन के छाजें ।।
रँगी हिंडोरे की डोरी, गोरी गहि उमहि झुलावहि ।
भाव सहित पावस रितु गीतनि, मीत अमी रस प्यावहि ।।
ह्वै आरूढ़ मसृन तृन भू पर बूढ़ प्रौढ़ छबि छाई ।
पावस - रितु झूलनि मंगल में, गिलमैं आनि बिछाई ।।
घन अंबर पर संबरारि, पच्छिन लच्छिन रंग लाए ।
मित्र स्याम घन हित तनु, चित्र बिचित्र बितान तनाए ।।
अधर धरें मुरलीधर मुरली, सधि सूहौ सुर रागें ।
धुर बादर लों जाइ लगै, सुर धुरवा छूटन लागें ।।
इंद्र धनुष आवै बनि-बनि पुनि, छिन-छिन में दुरि जात ।
पचरँग सारी धारी छबि लखि, मन - मन मनों लजात ।।
नव लालित्यनि सों नवला, नव लाल मलारहि गावें ।
घन-दामिनि के भारें मोरहु नाँचें रचि सुर चावें ।।
बैठे आय हिंडोरे, कोकिल कल कंठन कें बोलें ।
निज कुल संभ्रम बोलि-बोलि सुर, रहैं मधुरता तोलें ।।
झूलनि रमकनि दामिनि दमकनि, रिमि-झिमि झमकनि घन में ।
झूलनि दावनि झूलनि लावनि, मिलि झिलमिल अंगनि में ।।
फूलनि लाल गुही सु जुही के, पेचनि मेचक बैनी ।
झूलत पाछै - पाछै लगि, आछै मन बँधी त्रिवैनी ।।
घन अँधियारी लै यारी कीनीं, पिय - प्यारी सों जोर ।
दामिनि उजियारी बिच - बिच न्यारी सखियाँ री-ओर ।।

मोर छलन सो फिरें मोर, फिर जोर छलनि कों ठानें ।
चचल चंचरीक एक आकुल, रंचक हठ क्यों मानें ।।

गहत उर बसी बंद जरकसी, कंचुकी उरज कसी ।
सु पट कसे उकसे छबि ऊपर, छबि तव फबिनि बसी ।।

नेह - मेह सरसें झर सें, बरसें रस टूटें बंद ।
भीजे बसन मन धरनि भरनि, अंकुरित रोम आनंद ।।

इह झूलनि झुलवनि मद छाकी, थाकी मति कत चलई ।
'बल्लभ रसिक' अली अब निस-दिन, झुलवति झूलति रहई ।।

उनकी रचना में 'साँझी' का एक बड़ा पद राग गौरी में कथित हुआ है । उसमे अनुप्रास और यमक की अद्भुत छटा दिखलाई देती है । उदाहरणार्थ उसका कुछ अंश यहाँ दिया जाता है—

करनफूल करनन झूलन, इहिं तूलन भूषन जानि ।
स्याम पननि मिस स्याम पननि सों, बान कान लगे आनि ।।
रूप भूप पकरी सकरी, जकरी निकरी इक जाति ।
बँधी मुक्त गन की बंदी, बंदी बानन की पाँति ।।
झूमि - झूमि रहे झूमक, धूम करत कपोल पर आइ ।
करनफूल बस्यौ स्याम करन, फूल करन फूल दै छाइ ।।
नैन लैन छबि पाइक नाइक, साइक सम चल्यौ है उमंग ।
ता छबि पाइक के पाइक की आँकै, झूमक मिस झमकी है जंग ।
हारे अनियारे विषह्वारे, साननि धारे बान ।
वे अजान लैन ही जानत, चख ले दै जानत प्रान ।।
खंजन मीन प्रबीन लीन, बन हीन लीन उपमान ।
कुँवर कुरंग तुरंग दौर, चख ओर चकोरनु आन ।।
चख उपमा आसन कमलासन, आसन निज तन कीन ।
विमल जु हृदय-कमल कमलज कों, धूलि कमल मुख दीन ।।
मदन सिगारे चख मतवारे, कजरारे कजरा दीन ।
तारे मधि प्यारे कों, भारे कारे कीन ।।
जिनि अँखियाँ में बखियाँ सीं दै, रखियाँ अँखियाँ की दौर ।
तिन सखियाँ ये अँखियाँ लखियाँ, अँखियाँ नहिं और ।।
भौंहें चढ़ीं गढ़ीं धों किहि बिधि, पढ़ीं कुटिलता कोरि ।
गरब अरब छबि बढ़ीं कढ़ीं, मति बढ़ी गढ़ीं लेहि तोरि ।।
सुक नासा खासा सुगंधि, आसा अलि फिरें चहुँ कोद ।
नासा हँसि बैठे नासा, दासायित लहि आमोद ।।

होली की धमारि का एक बड़ा पद उन्होंने राग सारंग में रचा है। इसमें भी उनकी अलंकृत शैली और होली का रसपूर्ण कथन द्रष्टव्य है। उदाहरणार्थ इसका कुछ अंश प्रस्तुत किया जाता है—

होरी खेलत है नव बाल, छैल-छबीले सों आजु ।
बैस किसोरी गोरी-गोरी, चंपे की सी माल ।।
सारी केसरि सों रँगी, घमत लहँगा लाल ।
चोबा बेंदी कंचुकी दिएँ, चोबा बेंदी भाल ।।
ऊँची करि बेनी कसी, तन उकसी भौंह सुभाइ ।
मद छाकीं अँखियाँ लसें, बिहँसें रस के चाइ ।।
लटकत बाजूबंद तर, फोंदा अति अभिराम ।
निकसे भुज मूलनि कसे, चोली मुहरा स्याम ।
हरी चुरीं तर लटपटी, सोहें मुक्ता दाम ।
कर लै निकसें गरब सें, नरगिस डाँडी बाम ।।
नथ के मुक्तन हूँ रँगे, देखि लाल सोहाग ।
नथ के बँधे बसन मनहिं, रँगत रँगीलौ लाग ।
झीनी आँगी अग्र कुच, झाँई यह मति देत ।
हिय की अँखियाँ तीय की, पिय की छिप छबि लेत ।।
तार बँधे, बेंना सँधे, सिर पर राखे बाल ।
मुक्तन हू के होत है, अंगनि परसत हाल ।।
लसी उरबसी तीय उर, धुर कुरसी पर जाय ।
तऊ घरबसी पीय उर, धसी जीय ललचाय ।।
रुकि-रुकि रही जु नवल तिय, घुकि-घुकि पट के माँह ।
लुकि-लुकि देखें लाल कों, झुकि-झुकि झटके बाँह ।।
झमकें झूमक सारियाँ, दमकें दीपति अंग ।
खमकें खाएनि अंगियाँ, रमकें रँगी अनंग ।।
मटकें मोर-मरोर सों, लटकें बैनी चारु ।
पटकें अंतर झलमलें, टटकें फूलन हारु ।।
बनक कनक सी पाग की, मनक गसी चिकनाइ ।
तनक पेच के देत में, मन कुपेंच परि जाइ ।।
लटकत तुर्रा पाग पर, मनसिज कुर्रा भाइ ।
मान चोर फुर्राइ के, जुर्रा लों उड़ि जाइ ।।

निज सूरति की उर बसी, पिय सिर चढ़ी दिखाति ।
त्यों-त्यों तिय इत सिर चढ़ी, सुरति हौंस इतराति ।।
सिर किनहूँ तिय कें सँची, खिरकिन पगिया सेत ।
छिरकि छबीलौ छकि रह्यौ, थिरकि-थिरकि सुख लेत ।।
कटि मन - भावन पै रही, जटि मन - भावन फेर ।
दाबन लागी ही रहै, घेरी दाबन घेर ।।

उनके रचे हुए होली, रास आदि के अन्य सुंदर पद भी देखिये—

श्री नवल बधू रंग - भीनी प्रीतम संग खेलै ।
झूमि - झूमि रस - तानन गावैं रीझई छैल नवेलै ।।
लाल रँगीलौ पिचकनि रंग भरि-भरि उरजनि ऊपर मेलैं ।
मुरि - मुरि बदन दुरावनि में मन - भावन कौ रस झेलैं ।।
मटकति धरति चरन धरनी पर, लटकत हार - हमेलैं ।
प्रफुलित नव बेली सी लहलहैं, झेलीं अलि अलबेलैं ।।
अंचल मधि चंचल चख अंचल, मैन - सैन को पेलैं ।
'बल्लभ रसिक' पिय घुमड़ि गुलाल में, नव घन अंक सकेलैं ।।

अटकी मूरति नागर नट की — एरी ! यह मेरे मन ।
मैन सैन नैंननि हँसि मटकनि, लटकनि मोर-मुकट की ।।
कुंतल कुंडल चिलक तिलक, केसरि बेसरि ढरि लटकी ।
अंग - अंग आभरन हरनि मन, मनमथ गति उदभट की ।।
चटक - चटक पग धरत धरनि पर, छुट चटकीले पट की ।
पान भरे आनन तानन लै, तिय मति - गति अति हटकी ।।
तितहीं चखि चलि जुरति जितै हित, चितवनि चित में खटकी ।
लखि-लखि आनंद चोट सहित मति, 'बल्लभ रसिक' सुभट की ।।

दोऊ मद-माते लगनि लगे, रंगमगे गात ।
बहसि-बहसि अधरासव प्यावत, बिहँसि-बिहँसि अंगनि अरुझावति,
रहसि - रहसि लपटति जात ।।
प्रीतम सुकृत बेलि फूली झूली जु तरुनि चढ़ि,
सुरति - सुरति अरत न अघात ।
यह सुख निरखत हरषत परखत,
'बल्लभ रसिक' सखि नैन सिरात ।।

'बल्लभ रसिक' की 'माँझ' भी बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर उनके कुछ अंश उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

[रास की माँझ]

पूरन ससि - मंडल की किरनें, मनि - मंडल पर छाईं ।
चमकि-चमकि चहुँदिसि-दिसि पुलिननि, बन चाँदनी बिछाईं ।।
अंबर पर सुंदर तारागन, छाति छपाइ तनाई ।
'बल्लभ रसिक' विलास रास, उल्लास गाँस सुधि आई ।।
नव नागर नट चटक - मटक सों, मोर - मुकुट छबि धारी ।
धारी छबि चटकीले दुपटा, लटकत छोर छटा री ।।
किये प्रकास रास मंडल पर, तास काछनी न्यारी ।
'बल्लभ रसिकन' करली मुरली, सिर लिएँ तीय मन हारी ।।
प्यारी पहरि बादली सारी, चहुँ दिसि लाइ किनारी ।
जाली की चोली पर बंद, जरी केही की हारी ।।
अटकनि-लटकनि लालन की लखि, हरषि अंस भुज धारी ।
लटकि चली मंडल पर, 'बल्लभ रसिक' अली बलिहारी ।।
झमकि चली सँग बाल, हाल करतालनि लै-लै गोरी ।
लाई गति मृदंग उपजाई, झाई बन घन घोरी ।।
थेई - थेई तत्तथेई थेई, येई धुनि लै जोरी ।
'बल्लभ रसिक' बिहारी प्यारी, प्यारी तान झकोरी ।।
तान झकोरनि माननि तोरनि, आननि जोरनि ठानी ।
हस्तक भेद कनक कंकन की, बनक ठनक मन मानी ।।
झनक - झनक नूपुर ऊपर, पाइल की बजनि मिलानी ।
'बल्लभ रसिक' लटक बेनी की, जी की अति सुखदानी ।।
भृकुटी नचन नचन बचननि की, कटि की लचनि बनी है ।
तिय तन मोर-मुकट की लटकनि, मटकति मैन सनी है ।।
अंचल पट में चंचल निपट, बनी के नैन अनी है ।
'बल्लभ रसिक' बनी अबनी पर, वृंदाबन अबनी है ।।

[जल-क्रीड़ा की माँझ]

भरि गुलाब-जल बिमल सरोवर, दंपति केलि मचाई ।
स्त्रेनी अमल कमल - नैनी, अलि पंकज पाँति डुलाईं ।।
गहि-गहि कलस तरंगनि, बदलत डूबन उछरनि लाईं ।
'बल्लभ रसिक' अंग-अंगनि तें, निज-निज छबि दरसाईं ।।
करनि चाँपि पिचकें सी छोड़ें, ओढ़ें हलि तरु डारें सी ।
दाबि-दाबि कमलनि तें निकसें, मकरंदनि की धारें सी ।।

नैन उरोजनि जात जानि निज, निज भिजएँ ही डारें सी ।
'बल्लभ रसिक' अली रस डूबीं, जुगल चंद छबि तारें सी ।।
लै - लै चुभकी अंतर सुभ की, लुभकी परसनि भावें ।
लपटनि में कपटनि भजि चोंकनि, नोंकनि नैन चलावें ।।
सरस हँसीं बनसी रस हिलगीं, लगीं मीन जिम आवें ।
'बल्लभ रसिक' रसनि तन-मन सनि, निकसन मनहिं न ल्यावें ।।
ठाढ़ें न्हाइ रतन - चौकी पर, सुंदर दरपन जोहै ।
चंदन खौर लसी उर पर, उर बसी उरबसी मोहै ।।
गोल कपोलनि मोती जोती, को ती देखि न मोहै ।
'बल्लभ रसिक' पियारी ने दी, बेंदी यारी सोहै ।।
पहिरि सुदेस केसरी धोती, मंजुल पिंजुल सोहै ।
'बल्लभ रसिक' मिहीं दुपटा के, छुटे छोर लटकोहैं ।।
माथे जूरा हाथें चूरा, धरें तंबूरा को है ।
गावत आज हौज पर ठाढ़े, मौज भरे तिय सोहै ।।

[वर्षा की माँझ]

दंपति चित हरषावनि, रस बरषावनि बरषा आई ।
हरी - भरी बन - भूमि करी, चलि इंद्रबधू दरसाई ।।
नव घन दामि न संग लसें, हुलसें लखि मति ललचाई ।
'बल्लभ रसिक' लाल बसननि बनि, निकसें अति छवि छाई ।।
घन - घन स्याम संग बहु कामिनि, दामिनि सी दमकी हैं ।
रँग - रँग सारी लगीं किनारी, झूमि - झूमि चमकी हैं ।।
सुबरन बेलि मोल महँगा, अतलस लहँगा झमकी हैं ।
'बल्लभ रसिकन' दीसें कंचुकि, सबनम की सबकी हैं ।।
लै - लै निकरीं चकरी सहचरि, चहचरि जोर मचावें ।
मैन भरी तिय कमल - नैन मुख, सन्मुख आनि फिरावें ।।
पिय गहि पकरी डोरी टूँटन, मिस गोरी ढिग आवें ।
'बल्लभ रसिक' सकुच पकरीं, पकरीं चकरीनि छुटावें ।।
नवल लाल नव बाल संग मिलि, राग मलारहिं रागें ।
धुर बादर तें धुरवा छूटें, मुरवा बोलन लागें ।।
रंग हिंडोरे की डोरी गहि, झूलि फूलि अनुरागें ।
'बल्लभ रसिक' मचकि लचकनि रस, लीने स्याम सभागें ।।

३२. गोपाल भट्ट

ये गोपाल भट्ट वृंदावन के सुप्रसिद्ध गोस्वामी गोपाल भट्ट जी से पृथक भक्त-कवि थे। 'मिश्रबंधु विनोद' में कवि सं० ७५८ और १६६३ पर गोपाल भट्ट नामक दो कवियों का उल्लेख हुआ है। उनमें से प्रथम ओड़छा नरेश पृथ्वीसिंह के आश्रित कवि गोकुल वाले गोपाल भट्ट थे और द्वितीय कोई गोपालराय भट्ट थे। वे दोनों ही इन गोपाल भट्ट से भिन्न कवि थे। ये गोपाल भट्ट श्री नारायण भट्ट जी की चौथी अथवा पाँचवीं पीढ़ी में ब्रजस्थ ऊँचेगाँव की गद्दी के अधिकारी थे। उनका जन्म-संवत् १७०० के लगभग अनुमानित होता है।

गोपाल भट्ट के नाम से ब्रजभाषा में रचे हुए कुछ पद मिलते है। उन्हें भ्रमवश वृंदाबन के सुप्रसिद्ध गोस्वामी गोपाल भट्ट जी की रचना समझा जाता है। उक्त गोस्वामी जी की सभी रचनाएँ संस्कृत भाषा में हुई हैं। उन्होंने ब्रजभाषा में शायद ही कोई रचना की हो। इस नाम से प्राप्त पद-रचनाएँ हमारे मतानुसार नारायण भट्ट जी के वंशज इन गोपाल भट्ट की ही हैं। बंगला 'पद कल्पद्रुम' में ब्रजभाषा के जो तीन पद दिये गये हैं, वे भी इन गोपाल भट्ट के ही रचे हुए ज्ञात होते हैं।

उनकी रचना के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते है—

होरी खेलत श्री सचिनंदन।
अपनी रसिक मंडली के संग, गावत गीत सुछंदन॥
डफ-बीना-मुरली मिल बाजत, नव करताल-मृदंगन।
बीच-बीच पिचकारी छोड़त, बोरत रंगन अंगन॥
अबीर-गुलाल-कुमकुमा भर-भर, चोबा-चंदन बंदन।
एक-एक पर देखि-देखि कर, डारत हैं सुख-कंदन॥
राधा-स्याम नाम धुनि बोलत, और नाँहि अनुसंधन।
सो सुख निरखत 'श्री गोपाल भट्ट', प्रभु कटाक्ष गुन बंदन॥ १॥

एरी सखी, गौरचंद्र नटराज संग लिएँ भक्त समाज री।
एरी सखी, होरी खेलत आज श्री नवद्वीप के माँझ री॥
एरी सखी, रसमय नित्यानंद श्री अद्वैत रसवृंद री।
एरी सखी, गावत गीत सुछंद उपजत आनंदकंद री॥
एरी सखी, ढोल खोल करताल बाजत मुरली रसाल री।
एरी सखी, डफ धुंधकार बिसाल नाँचत दै-दै ताल री॥

एरी सखी, केसर रंग कमोर भरी धरी चहुँ ओर री ।
एरी सखी, पिचकारिन कों छोरि देत हैं तन-मन बोरि री ।।
एरी सखी, झोरिन उड़त गुलाल, भई सकल दिस लाल री ।
एरी सखी, खग-मृग-नर-द्रुम-डार, लाल भुवन गलिग्राल री ।।
एरी सखी, पुनि हरि - हरि धुनि बोलत हैं सब बहुगुनी ।
एरी सखी, मोहे सुर-नर मुनी, और बात नाँहिन सुनी ।।
एरी सखी, उमग्यौ सागर प्रेम, लखि प्रभु तन छबि हेम री ।
एरी सखी, विगलित है सब नेम, याही रस में क्षेम री ।।
एरी सखी, 'श्री गोपाल भट्ट' आय, निज गुन मोहि बुलाय री ।
एरी सखी, दियौ मधुर रस पियाइ, और कछू न भाय री ।। २ ।।

३३. तुलसीदास

'गीता भाषा' की एक हस्त-प्रति तुलसीदास की रची हुई उपलब्ध हुई है । उक्त प्रति में न तो रचयिता का कोई वृत्तांत है और न उसमें रचना-काल का ही उल्लेख है । कुछ समीक्षकों ने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथों में 'गीता भाषा' का भी नाम लिखा है; किंतु अब इसे गोस्वामी जी की प्रामाणिक रचना नहीं माना जाता है । पहिले हमने इस पुस्तिका को गोस्वामी तुलसीदास की रचना ही समझा था; किंतु अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ कि यह चैतन्य मतानुयायी किसी तुलसीदास की कृति है ।

आगामी पृष्ठों में एक जगन्नाथ नामक चैतन्य मतानुयायी भक्त-कवि का उल्लेख किया गया है । उसका रचना-काल सं० १७६० है और उसने स्वामी तुलसीदास को अपना गुरु बतलाया है । हमने उक्त जगन्नाथ का जन्म-संवत् १७३० अनुमानित किया है । उस आधार पर इन स्वामी तुलसीदास का जन्म-संवत् १७०० के लगभग माना जा सकता है । इसके अतिरिक्त उनके संबंध में और कोई बात ज्ञात नहीं हो सकी है ।

'गीता भाषा' श्रीमद्भगवत्गीता का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है । इसकी हस्त-प्रति में १४६ पत्र हैं । इसके अक्षर सुंदर, शुद्ध और स्पष्ट हैं । प्रति की लिपि अधिक पुरानी नहीं मालूम होती है । अनुवाद की भाषा और भावों की अभिव्यक्ति साधारण है । इसका रचना-काल सं० १७४० के लगभग अनुमानित होता है । उदाहरण के लिए इसके आरंभ और अंत का कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है—

॥ अथ श्री भगवद्‌गीता भाषा ॥

धृतराष्ट्र उवाच । दोहा—

आरंभ— धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, मिले जुद्ध के साज ।
संजय ! मो सुत पांडवनि, कीने कैसे काज ॥ १ ॥

संजयोवाच । दोहा—

पांडव सेना व्यूह लखि, दुर्योधन ढिग आइ ।
निज आचारज द्रोण सों, बोल्यौ ऐसे भाइ ॥ २ ॥
पांडव सेना अति बड़ी, आचारज तू देखि ।
धृष्टद्युम्न तव शिष्य नें, व्यूह रच्यौ जु विसेखि ॥ ३ ॥
सूर धनुषधारी बड़े, अर्जुन भीम समान ।
द्रुपद महारथि और पुनि, है विराट जुजुधान ॥ ४ ॥
धृष्टकेतु और कासिपति, चेकितान बलवंत ।
कुंतिभोज अरु सैव्य पुनि, पुरुजित सत्रु - निकंत ॥ ५ ॥

अंत— अदभुत रूप श्री कृष्ण कौ, सुमिरि-सुमिरि हिय माहिं ।
हर्ष होत मोकों बहुत, विस्मय कों निर्वाहि ॥ ७९ ॥
जोगेस्वर श्री कृष्ण जू, अर्जुन हू ता ठौर ।
तहाँ विजय अरु नीति है, अचल संपदा और ॥ ८० ॥
यह गीता अद्‌भुत रतन, श्री मुख करचौ बखान ।
बार - बार निरधार किय, परा भक्ति को ज्ञान ॥ ८१ ॥
भक्ति वस्य श्री कृष्ण जू, यह कीनों निरधार ।
करै भक्ति इच्छा सबै, यहै वेद को सार ॥ ८२ ॥
भगवत् गीता जो पढ़ै, सुनै ताहि चित लाय ।
पावें भक्ति निदान सो, श्री हरि सदा सहाय ॥ ८३ ॥
गीता दिन प्रति उच्चरै, सदा स्वच्छ जग माहिं ।
मनसा - वाचा - कर्मना, तिन सम कोऊ नाहिं ॥ ८४ ॥
जो कोउ चाहै भव तरचौ, कृष्ण - कमल - दल पास ।
और सकल स्रम छाँड़ि कै, करि गीता - अभ्यास ॥ ८५ ॥
जब लगि संपति भानु की, तापत है सब देस ।
दृष्टि परचौ जब लगि नहीं, हरि गीता - राकेस ॥ ८६ ॥
भाषा समझन कों भली, कहें आचार बहु वास ।
यह 'गीता भाषा' करी, जग में 'तुलसीदास' ॥ ८७ ॥

इति श्री भगवद्‌गीता

३४. मनोहरराय

मनोहरराय जी वृंदाबन के सुप्रसिद्ध गोस्वामी गोपाल भट्ट जी की शिष्य-परंपरा में रामचरण चट्टराज जी के शिष्य और ठाकुर श्री राधारमण जी के उपासक थे । उन्होंने अपनी रचना 'श्री राधारमण रस सागर' के आरंभ में अपनी गुरु-परंपरा का परिचय देते हुए बतलाया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के कृपापात्र गोपाल भट्ट जी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य जी थे और उनके शिष्य रामचरण चक्रवर्ती थे। उक्त चक्रवर्ती जी के शिष्य रामशरण चट्टराज जी हुए, जो उनके दीक्षा-गुरु थे[1] । मनोहरराय जी के नाम से प्रसिद्ध अन्य रचना 'संप्रदाय बोधिनी' में भी उनके गुरु का नाम रामशरण चट्टराज ही बतलाया गया है[2] ।

उन्होंने अपने गुरुदेव की वंदना करते हुए उनके गुण, प्रेम-भाव, शील और सदाचार की प्रशंसा करते हुए कहा है कि उन्होंने ही उनको शिक्षा-दीक्षा देकर श्री राधारमण जी के स्वरूप और वृंदाबन-तत्त्व का बोध कराया तथा उन जैसे अनाथ को अपना कर उनका नाम 'मनोहर' रखा[3] । उक्त कथन से

---

१. श्री चैतन्य कृपाल, कृपा करि भट्ट गोपालै ।
तिन श्रीनिवासाचार्य वर्य, करुना कौ आलै ।।
रामचरन तिन कृपा, चक्रवर्ती विख्याता ।
रामसरन चट्टराज कृपा, तिन सारहिं ज्ञाता ।।
सुद्ध भक्ति रस राग तिन, करुना करि दीक्षा दई ।
दास मनोहर नित्य गुरु, पद - धूली सिर पर लई ।।
—राधारमण रस सागर, छप्पय सं० २

२. चट्टराज कुल-कमल रवि, छवि फवि परम उदार ।
रामसरन गुरु चरन वर, मनोहर प्रान - अधार ।। —संप्रदाय बोधिनी

३. प्रथम प्रनाम गुरु श्री रामसरन नाम,
चट्टराज चरन - सरोज मन भायौ है ।
कृपा करि दीनी दिक्षा-सिक्षा परिचर्या निज,
राधिकारमन वृंदाबन दरसायौ है ।।
सदगुन - समुद्र दया - सिंधु प्रेम - पारावार,
सील - सदाचार कौ कवित्त जग छायौ है ।
ता दिन सफल जन्म भयौ है अनाथ बंधु,
'मनोहर' नाम राखि मोहिं अपनायौ है ।।
—राधारमण रस सागर, छप्पय सं० १

ज्ञात होता है कि उनका यह नाम गुरु प्रदत्त था । उनका पूर्व नाम क्या था, वे कहाँ के निवासी थे और उनके माता-पिता कौन थे; इन बातों के जानने का अभी तक कोई साधन प्राप्त नहीं हुआ है । उनके शिष्य प्रियादास जी ने उनका नाम 'मनोहरराय' लिखा है । इससे ज्ञात होता है कि वे मनोहरराय के नाम से ही प्रसिद्ध थे ।

उनके जन्म-काल का अनुमान उनके रचना-काल से हो सकता है । 'श्री राधारमण रस सागर' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि उसकी पूर्ति सं० १७५७ की श्रावण कृष्णा पंचमी को वृंदावन में हुई थी[1] । इससे उनका जन्म-संवत् १७१० के लगभग अनुमानित होता है । ऐसा जान पड़ता है, वे ब्राह्मण वर्ण के थे और वृंदाबन में निवास करते थे।

भक्तमाल के सुप्रसिद्ध टीका-कार प्रियादास जी उनके शिष्य थे । प्रियादास जी ने भक्तमाल-टीका के आरंभ में श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ उनकी भी वंदना की है और अंत में उनकी प्रशस्ति में बतलाया है कि मनोहरराय जी ठाकुर श्री राधारमण के परम भक्त और वृंदाबन के रसिक-समाज में सर्व मान्य थे । उनकी कृपा से साधारण जन भी रसिक भक्त और सुकवि हो जाते थे । उन्होंने अपनी रचना का समस्त श्रेय अपने गुरुदेव को ही दिया है और अपने को उनका दासानुदास बतलाया है[2] । प्रियादास जी जैसे सुप्रसिद्ध भक्त-कवि ने जब मनोहरराय जी का ऐसा गुण-गान किया है, तब उनका महत्त्व स्वयंसिद्ध है ।

---

१. संवत सतरहसै सत्तावन जानिकै । स्रावन बदि पंचमी महोत्सव मानिकै ।।
निरखि श्री राधारमण लड़ैती-लाल कों । 'मनोहर' संपूरन बनराज विचारचौ ख्याल कों ।।

२. रसिकाई - कविताई जाहि दीनी तिन पाई,
भई सरसाई हिये नव - नव चाय हैं ।
उर रंग - भवन में राधिकारमन बसैं,
लसैं ज्यों मुकुर मध्य प्रतिबिंब भाय हैं ।।
रसिक समाज में बिराज रसराज कहैं,
चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं ।
जन मन हरि लाल नाम मनोहर पायौ,
उन हू कौ मन हरि लीनों तातें राय हैं ।।
इनहीं के दास - दास 'प्रियादास' जानौ,
तिन लै बखानौ, मानौ टीका सुखदाई है ।

उनकी एक रचना 'श्री राधारमण रस सागर' है, जिसका प्रकाशन बाबा कृष्णदास ने किया है । जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इसकी रचना-तिथि सं० १७५७ की श्रावण कृ० ५ है। उक्त बाबा जी का मत है कि इस रचना के अतिरिक्त मनोहरराय जी की अन्य कृतियाँ भी हैं, जिनमें 'रसिक जीवनी' और 'संप्रदाय बोधिनी' नामक दो रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'संप्रदाय बोधिनी' का प्रकाशन भी उक्त बाबा जी ने किया है । बाबा जी का अनुमान है, ब्रजभाषा ग्रंथ 'क्षणदा गीति चिंतामणि' भी मनोहरराय जी द्वारा संपादित रचना है, क्यों कि इसमें अधिकांश पद उन्हीं के रचे हुए हैं । बंगला भाषा में इस नाम की प्रसिद्ध रचना विश्वनाथ चक्रवर्ती जी कृत है।

यहाँ पर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

१. श्री राधारमण रस सागर—इसमें विविध ऋतुओं के माध्यम से श्री राधारमण जी की केलि-क्रीड़ाओं का सरस कथन कवित्त छंद में किया गया है। इसके कुछ छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

[शरद विहार वर्णन]

सरद की रैनि उजियारी अभिसार प्रिया,
प्रीतम पै सेत सारी खौर अंग कीने हैं ।
मालती मुकत-मल्ली माला अंग - अंग सोहैं,
आभूषन हीरन जटित रंगभीने हैं ।।
चाँदनी में मिलि चलीं देखन न पावैं अली,
अंग की सुगंधि अनुसार कै हू चीने हैं ।
राधिका-रमन मिले 'मनोहर' भाँति-भाँति,
खिले नैन झिले मानों सोभा जल मीने हैं ।।१६।।

अरस - परस बेष भूषन बसन सजे,
बजे निकसे हैं कुंज-कुंज तें खिलौना से ।
नख-सिख दूनौ रंग राधिकारमन संग,
सोहैं अंग - अंग मनमथ के बिलौना से ।।
निपट सनेह मेह देह की न सुधि जहाँ,
सोभा औ सुठौनता के रोचक सलौना से ।
याही रस 'मनोहर' भीजि रहे रैन - दिन,
ऐसे बिन और स्वाद लाजत अलौना से ।।३०।।

सरद की चाँदनी रही है दसों दिस छाइ,
कुसुमित कुंज अलि-पुंज गुंज माधुरी ।
दोऊ बागे उज्ज्वल सिंगार रचि बैठे सेज,
बिछौना रहे हैं खुलि मानों मन माधुरी ॥
हास - परिहास पगे लाल अति रहस की,
कहे तें चितवें प्यारी नैनन के आघ री ।
राधिकारमन 'मनोहर' उत्तर न देत,
दुहुँन के मन भयौ आनंद अगाध री ॥३१॥

वृंदावन फूले भूले कोइल - भँवर - मोर,
चातक - चकोर कोलाहलनि मचाए हैं ।
राधिकारमन बिहरन मंद - मंद गति,
नख - सिख मिलिवे कूं चाय चरचाए हैं ॥
जाइ देखें सोई 'मनोहर' प्यारी अनुकूल,
बाँधिकै प्रबंध सुख सार रस चाए हैं ।
हँसि - हँसि हाथन सों हाथ जोरें मुख मोरें,
नैन सों जुरत नैन मैनन नचाए हैं ॥४४॥

लाल लै मृदंग रंग भरे रास मंडल में,
लेत हैं दुरूह ताल रिझवत भामिनी ।
नृत्यत लड़ैती गावें ललितादि झूमि - झूमि,
उघटत कोऊ - कोऊ दरसन कामिनी ॥
यंत्रन के सुरन सों सबन मिलाइ सुर,
उठत तरंग तान मन अभिरामिनी ।
राधिकारमन रीझि भूषन उतारि देत,
देत बकसीस रीझि 'मनोहर' स्वामिनी ॥४८॥

[बसंत बिहार वर्णन]

रितुराज आगम सुगम वृक्ष - बेली - फूल,
झूलत मधुप भौंरा सुर सु रसाल हैं ।
मोरे हैं रसाल स्वादी कोकिला कलोल करें,
भरें राग पंचम परमावधि के ख्याल हैं ॥
राधिकारमन बन बिहरन में मत्त सखी,
लै - लै बसंति आगै धारें धरें हाल हैं ।
तैसे धुरपद गावें रीझि अभिनय बनावें,
पावें निरखन 'मनोहर' भाग भाल हैं ॥५६॥

खेलत धमारि वृंदाबन बने पिया - पीउ,
जीउ की छिपाई बातें प्रगट करत हैं ।
बाँटि लीनों सखी सों जगावत अनूठे चोज,
उपज मनोज हासी हिय कों हरत हैं ॥
सैन दै झमकि दौर सबन मचाई रौर,
धूँधरी गुलाल करि सोंधे सों भरत हैं ।
राधिकारमन कितौ जतन बनावें तऊ,
स्यामा भावै करैं 'मनोहर' न टरत हैं ॥६०॥

सबन के हाथ पिचकारी भारी उतावल,
छवि सों सुगंध खेंचि डारैं चहूँ ओर तें ।
भीजे अंग - अंग सोहें मोहन मदन मोहें,
फरकत भौंहें बैन नैनन की कोर तें ॥
बोलनि हँसनि चोज मन के मथन मौज,
कथन न मानें कोऊ दोऊ दिसा रोर तें ।
राधिकारमन चक्राकृति फिरें 'मनोहर',
रंगनि भरन बचावनि ठौर - ठौर तें ॥६१॥

लता सों लपटि कुंज कुसुमनि पुंज-पुंज,
अलि वृंद गुंज पिक पंचम कहत हैं ।
सीतल सुगंध अति दक्खिन पवन मंद,
उपज अनंद जाल रंध्रन बहत हैं ॥
रगमगौ रितुराज फूल सों बिछौना साज,
मत्त भये आज रस - राज कों लहत हैं ।
राधिकारमन रंग 'मनोहर' अंग - अंग,
छवि की तरंग न्याय नैन न गहत हैं ॥६६॥

पंच रंग कोमल सुगंध कुसुमनि गूँथि,
चमकायौ डोल डोरी खंभ रचि पचि कै ।
नख - सिख फूलनि के आभूषन लटकाइ,
राधिकारमन मिल बैठे सोभा सचि कै ॥
झुलावति ललिता विसाखा मंद-मंद सुर,
गावैं सुघराई बीच तानन सों सचि कै ।
'मनोहर' गौर-स्याम कैसी उपकंठ धाम,
आनंद - उदधि संग रंग रह्यौ मचि कै ॥६७॥

[श्रावरण विहार वर्णन]

ऊँचौ अति नीव - साखा, झूलिवे की अभिलाषा,
बाँधी है बिसाखा, डोरी पंच रंग पाट की ।
पटली जटित हीरा, चढ़े दोऊ एक जीरा,
सुनहरी चीरा, सारी सुघराई घाट की ॥
उमँगि - उमँगि झूलैं, उभै अंग - संग फूलैं,
अपनपौ भूलैं, रुचि नई - नई ठाट की ।
राधिकारमन - सोभा, 'मनोहर' औरै ओभा,
हिएँ उठैं गोभा, परिपाटी प्रेम - बाट की ॥१०७॥

२. **संप्रदाय बोधिनी**—यह दोहा छंद में रची हुई छोटी सी रचना है। इसमें सर्व प्रथम गुरु-वंदना, फिर पद्मपुराण के श्लोक, तदुपरांत वैष्णव धर्म के चारों संप्रदायों का नामोल्लेख कर यह बतलाया गया है कि सब संप्रदायों के मूल गुरु श्री नारायण हैं। अतः वे सब एक ही हैं, केवल उनकी पृथक्-पृथक् पद्धतियाँ हैं। इस प्रकार आरंभिक कथन कर चारों संप्रदायों की शिष्य-परंपरा का वर्णन किया गया है।

इसमें कई प्रसंगों पर नाभा जी कृत भक्तमाल के उल्लेख हैं और उसके छप्पयों के उद्धरण हैं। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ की रचना भक्तमाल की प्रसिद्धि के उपरांत हुई है। इसमें चारों संप्रदायों की जो शिष्य-परंपरा बतलाई गई है, वह पूर्णतया प्रामाणिक नहीं है। इसकी रचना-शैली अत्यंत शिथिल है और इसमें आधुनिकता की छाप है[1]; यद्यपि इसे सं० १७०७ की प्रति से लिपिबद्ध होना लिखा गया है[2]।

ऐसा संदेह होता है, यह रचना मनोहरराय जी की न होकर इसी नाम के चैतन्य मतानुयायी किसी अन्य कवि की है। इसका रचना-काल भी प्रामाणिक नहीं जान पड़ता है। जब 'श्री राधारमण रस सागर' की रचना सं० १७५७ में हुई, तब इसकी रचना सं० १७०७ में नहीं हो सकती है।

---

१. अब नवीन आधुनिक मत, सुनियै भक्त समाज ।
द्विविधा मन में मत करो, पूर्वापर मत राज ॥

२. इति श्री रसिक सिरोमनि श्री स्वामी मनोहरदास विरचिता संप्रदाय चतुष्टय वर्णनमयी संप्रदाय बोधिनी संपूर्ण। सं० १७०७ की प्रति से लिखी।

३५. जगन्नाथ

बाबा वंशीदास द्वारा प्रकाशित 'श्री वृंदाबन महिमामृत' में भगवत मुदित जी कृत 'वृंदाबन शतक' अनुवाद के अनंतर 'श्री गुरु महिमा' नामक एक रचना संकलित हुई है। इसके रचयिता कोई जगन्नाथ नामक भक्त-कवि हैं। इसके आरंभ और अंत में श्री चैतन्य महाप्रभु और उनके परिकर की वंदना करने से कवि का चैतन्य मतानुयायी होना सिद्ध होता है। इस रचना का नाम वास्तव में 'गुरु-चरित्र' है। गुरु-महिमा संबंधी कतिपय दोहा छंद इसके अंत में देने से प्रकाशक ने इसका नाम 'गुरु-महिमा' छपवा दिया है। 'गुरु-महिमा' को पृथक् छोटी रचना भी समझा जा सकता है। तब जगन्नाथ जी कृत दो ग्रंथ 'गुरु-चरित्र' और 'गुरु-महिमा' कहे जावेंगे।

जगन्नाथ जी का कोई वृत्तांत उपलब्ध नहीं होता है। 'मिश्रबंधु विनोद' में कवि सं० ६३२ पर जगन्नाथदास के नाम से इस कवि का उल्लेख हुआ है। वहाँ पर भी उनका कोई वृत्तांत न लिख कर उनके दो ग्रंथों के नाम—१. मन बत्तीसी व गुरु-महिमा, और २. गुरु-चरित्र लिखे गये हैं।

'गुरु-चरित्र' की पुष्पिका में इसका रचना-काल सं० १७६० की माघ शु० ८ मंगलवार लिख कर जगन्नाथ जी ने अपने को स्वामी तुलसीदास का सेवक बतलाया है[1]। इससे यह ज्ञात होता है कि उनके गुरु तुलसीदास जी थे, जिनका उल्लेख गत पृष्ठों में किया जा चुका है। रचना-काल के आधार पर उनका जन्म-संवत् १७२० के लगभग अनुमानित होता है। इसके अतिरिक्त उनके जन्म-स्थान, माता-पिता, वर्ण-जाति आदि जानने का कोई साधन प्राप्त नहीं है।

यहाँ पर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

१. **गुरु-चरित्र**—यह दोहा-चौपाई छंदों में रचित एक साधारण सी रचना है। इसके आरंभ में श्री चैतन्य महाप्रभु और उनके परिकर के भक्त-जनों की वंदना की गई है और फिर गुरु के महत्व का वर्णन किया गया है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इसकी रचना सं० १७६० की माघ शु० ८ मंगलवार को हुई है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

---

१. **संवत सत्रहसै और साठै। माघ बदी उजियारी आठै ॥**
भरणी इंद्र अरु मंगलवार। 'गुरु-चरित्र' भाषा विस्तार ॥
स्वामी तुलसीदास के, सेवक अति मति हीन।
'जगन्नाथ' भाषा सरस, 'गुरु-चरित्र' गुन कीन ॥

जप पूजादि योग क्रिया, करै अनिच्छित ज्ञान ।
अफल होय, ऊगे नहीं, बोवौ बीज पखान ।।
कबहुँक गुरु जो झूँठ बखानै । तऊ शिष्य साँचै करि मानै ।।
गुरु सों उलटि जवाब न दीजै । सगति जाय, पुन्य-फल छीजै ।।
जो गुरु होय काम - लवलीना । क्रोधी,कुटिल,जाति-मति हीना ।।
लोभी लंपट कपटी कूरा । तऊ शिष्य जानै गुरु पूरा ।।

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ में गुरु के प्रति अंध-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है।

२. **गुरु-महिमा**—इसमें कतिपय दोहा छंदों में गुरु की महिमा बतलाई गई है। 'मिश्रबंधु विनोद' मे इस रचना का दूसरा नाम 'मन बत्तीसी' भी लिखा गया है; किंतु इसका जितना अंश प्रकाशित हुआ है, उसमें न तो ३२ दोहा है और न मन विषयक कोई बात लिखी हुई है । संभव है, इसका कुछ अंश छपने से रह गया हो। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

श्री गुरु - महिमा कौन सु गावै । गुरु - प्रताप पूरन फल पावै ।।
गुरु - महिमा कहि - कहि सब हारे । जिन कछु गर्व कियौ गये मारे ।।

उपर्युक्त दो छोटी रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने कुछ स्फुट पद भी रचे होंगे। उनका एक पद श्री चैतन्य-वंदना का यहाँ दिया जाता है—

महाप्रभु, तुम परम उदार ।
अदभुत रीति तुम्हारी देखी, पतितन के तुम अति रिझवार ।।
याही आसा लागि रह्यौ हूँ, और न कछू मोर आधार ।
'श्री जगन्नाथ' प्रभु किरपा कीजै, दीजै प्रेम-दान विस्तार ।।

३६. प्रियादास

नाभा जी कृत 'भक्तमाल' के टीकाकार होने से प्रियादास जी का नाम भक्ति-जगत् के साथ ही साथ साहित्य-संसार में भी प्रसिद्ध है। भक्तवर नाभा जी अपनी सुविख्यात 'भक्तमाल' की रचना कर स्वयं अमर हो गये और उन भक्तों को भी अमर कर गये, जिनके पावन चरित्रों का उन्होंने कथन किया है। भक्तों के चरित्र-कथन की यह पद्धति इतनी लोकप्रिय हुई कि नाभा जी के बाद अनेक भक्त-कवियों ने उनका अनुकरण करते हुए अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की है। उनमें से अधिकांश नाभा जी कृत 'भक्तमाल' की टीका-टिप्पणी के रूप में ही कथित हुई है। नाभा जी के बाद 'भक्तमाल' के टीका-टिप्पणीकारों की परंपरा ही चल पड़ी, जो अभी तक चालू है । प्रियादास जी का स्थान उन टीका-टिप्पणीकारों मे निस्संदेह अग्रगण्य है।

यह आश्चर्य की बात है कि ऐसे सुप्रसिद्ध भक्त-कवि के प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत की कोई बात ज्ञात नहीं होती है । उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने गुरु के नाम और रचना-काल के अतिरिक्त अपने संबंध में कोई बात नहीं बतलाई है । गुजराती भक्तमाल के आधार पर उनके जीवन-वृत्तांत से संबंधित एक उल्लेख मिलता है; किंतु वह कहाँ तक प्रामाणिक है, इसे निश्चय पूर्वक कहना कठिन है । वह उल्लेख इस प्रकार है—

सूरत नगर परम सुहावन । रामपुरा इक ग्राम सु पावन ॥
तामैं वामदेव अस नामा । रह्यौ एक द्विजवर मतिधामा ॥
मति अति विमल अमल गति ताकी । निसि-दिन मति हरि-पद रति छाकी ॥
रही तासु तिय गंगाबाई । सो हरि - कृपा भक्ति वर पाई ॥
तासु कुमार भये प्रियादासा । जासु सुजंस जग कियौ प्रकासा[1] ॥

उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार प्रियादास जी का जन्म ब्राह्मण कुल में सूरत के निकटवर्ती रामपुरा ग्राम में हुआ था । उनके [illegible] क्रमशः गंगाबाई और वामदेव थे, जो अत्यंत सदाचारी और भगवद्भक्त थे । बाबा कृष्णदास ने प्रियादास जी कृत छोटी रचनाओं की एक पुस्तिका प्रकाशित की है । उसके आरंभ में उन्होंने प्रियादास जी का जो संक्षिप्त परिचय दिया है, वह प्रायः उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार ही है । केवल इतना अंतर है कि उसमें रामपुरा को राजपुरा और वामदेव को वासुदेव लिखा गया है । बाबा जी का कथन किस आधार पर हुआ है, इसे उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है । इसलिए यह निश्चित नहीं होता है कि उक्त उल्लेख छापे की भूल के कारण है, अथवा उन्हें इसी रूप में प्राप्त हुआ है । इस उल्लेख से इतना तथ्य ग्रहण किया जा सकता है कि प्रियादास जी ब्राह्मण वर्ण के थे और उनका जन्म ब्रज से अन्यत्र किसी स्थान पर हुआ था ।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, प्रियादास जी ने अपनी रचनाओं में श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ अपने गुरु के नाम और रचना-काल का उल्लेख किया है । उससे ज्ञात होता है कि उनके गुरु वृंदाबन के मनोहरराय जी थे[2],

---

१. 'भक्त-भारत' में प्रकाशित लेख—'भक्तमाल' के टीकाकार श्री प्रियादास जी

२ महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मनहरन जू के चरन कौ ध्यान मेरें, नाम मुख गाइयै ।। ×
जन मन हरि लाल मनोहर नाम पायौ, उन हू कौ मन हरि लीनौ, तातें राय हैं । ×
इन हीं के दास-दास प्रियादास जानौ, तिन लै बखानौ मानों टीका सुखदाई है ।
—भक्तमाल-टीका

जो गोपाल भट्ट गोस्वामी की शिष्य-परंपरा में हुए हैं और जिनका वृत्तांत गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है। 'भक्तमाल-टीका की पूर्ति सं० १७६९ में और 'रसिक मोहिनी' की पूर्ति सं० १७९४ में हुई थी । इसका उल्लेख उक्त रचनाओं के अन्त में हुआ है[1] । इस प्रकार उक्त दोनों ग्रंथों के रचना-काल सं० १७६९ और १७९४ से उनके जन्म और देहावसान के काल का अनुमान किया जा सकता है। हमारे मतानुसार उनका जन्म सं० १७३० के लगभग और देहावसान सं० १८०० के लगभग हुआ होगा ।

ऐसा ज्ञात होता है, वे किशोरावस्था में ही अपने जन्म-स्थान से वृंदावन आ गये थे। वहाँ आने पर उन्होंने मनोहरराय जी से चैतन्य मत की दीक्षा ली। इसके बाद वे तीर्थाटन को चल दिये और प्रयाग, चित्रकूट प्रभृत्ति तीर्थ-स्थानों की यात्रा करने के उपरांत जयपुर चले गये। वहाँ पर उन्होंने कुछ समय तक गलताश्रम में निवास किया। गलताश्रम में रहते हुए ही उन्हें भक्त-माल-टीका लिखने की प्रेरणा हुई थी। इसके संबंध में उन्होंने अपनी रचना के आरंभ में ही कहा है—

महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मनहरन जू के, चरन कौ ध्यान मेरें नाम मुख गाइयै ।
ताही समय नाभा जू आज्ञा दई लई धारि, टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइयै ।।
कीजियै कवित्त बंध छंद अति प्यारौ लगै, जगै जग माँहि कहि बानी बिरमाइयै ।
जानौं निज मत, ऐ पै सुन्यौ भागवत, सुक द्रुमनि प्रबेस कियौ ऐसेई कहाइयै ।।

प्रियादास जी के उक्त कथन से कई विद्वानों को भ्रम हो गया है कि नाभा जी ने भौतिक शरीर से उन्हें भक्तमाल-टीका लिखने की आज्ञा दी थी। इससे उक्त विद्वानों ने नाभा जी की विद्यमानता का काल समझने में भूल की है[2]। वास्तव में प्रियादास जी को ध्यानावस्था में नाभा जी की आज्ञा का आभास हुआ था; जैसा उन्होंने स्वयं अपने कथन में बतलाया है। नाभा जी का देहावसान तो प्रियादास जी के गलताश्रम में पहुँचने से पहले ही हो चुका था।

---

१. **संवत प्रसिद्ध दस सात सत उन्ह[illegible] फाल्गुन ही मास बदी सप्तमी बिताय कै ।**
नारायनदास सुख-रास भक्तमाल लै[illegible] प्रियादास दास,उर बसौ रहौ छाय कै ।।६३३।।
—'भक्तमाल'-टीका

संबत दस सै सातसै, न[illegible] औ बढ़ि चार ।
तिथि त्रितिया बैसाख सुदि, प्रगट्यौ सत मनि-हार ।।१०४ ।।
—'रसिक मोहिनी'

२. श्री राधाकृष्णदास द्वारा संपादित 'भक्त-नामावली', पृ० ९२

उनकी मुख्य रचना 'भक्तमाल'-टीका है, जो 'भक्ति रस बोधिनी' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त उनकी चार छोटी रचनाएँ और कही जाती हैं। इनके नाम—१. रसिक मोहिनी, २. अनन्य मोदिनी, ३. चाह बेली और ४. भक्त सुमिरनी हैं। यहाँ पर इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१. भक्ति रस बोधिनी—यह नाभा जी कृत 'भक्तमाल' की ब्रजभाषा पद्य में सुविस्तृत टीका है। इसकी रचना कवित्तों में हुई है, जिनकी संख्या ६३४ है। इसमें कथित भक्तों के ऐतिहासिक वृत्तांत की अपेक्षा उनके चमत्कार पूर्ण माहात्म्य को प्रमुखता दी गई है; फिर भी अनेक ऐतिहासिक बातें भी इसमें मिलती हैं। काव्य की दृष्टि से भी यह सरस और भावपूर्ण रचना है। इसमें पद-लालित्य के साथ अनुप्रास और यमक की छटा सर्वत्र दिखलाई देती है। अनेक स्थानों में उन्होंने भक्ति और उपासना की जटिल बातों को सरलता पूर्वक समझाने की चेष्टा की है। अपनी रचना की इन विशेषताओं के प्रति वे स्वयं भी आश्वस्त थे; किंतु वे इसलिए इसे प्रशंसनीय मानते थे कि स्वयं नाभा जी ने इसको उनसे कहलाया है। इस संबंध में उन्होंने इस रचना के आरंभ में ही कहा है—

रची कविताई सुखदाई, लागै निपट सुहाई, और सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है।
अक्षर मधुरताई, अनुप्रास-जमकाई, अति छवि छाई, मोद झरी सी लगाई है॥
काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होत, नाभाजू कहाई, यातैं प्रौढ़िकै सुनाई है।
हृदै सरसाई, जो पै सुनियै सदाई, यह 'भक्ति रस बोधिनी' सु नाम टीका गाई है॥

इस रचना के अंत में भी उन्होंने इसी प्रकार का कथन किया है और साथ ही इसकी रचना-तिथि सं० १७६९ की फाल्गुन कृ० ७ का भी उल्लेख किया है—

कीनी भक्तमाल सु रसाल नाभा स्वामी जू नें,तरे जीव-जाल, जग-जन मन पोहनी।
'भक्ति रस बोधिनी' सो टीका मति सोधिनी है,बाँचत कहत अर्थ,लागै अति सोहनी॥
जो पै प्रेम-लच्छिना की चाह अवगाहि याहि, मिटै उर दाह नैक नैननि हू जोहनी।
टीका अरु मूल नाम भूल जाते सुनै जब, रसिक अनन्य मुख होत विश्व मोहनी॥

नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौ,
ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाय कैं।
भक्ति-विस्वास जाकें ताही कों प्रकास कीजै,
भीजै रंग हियौ लीजै संतनि लड़ाय कै॥

संबत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर,
फाल्गुन ही मास, बदी सप्तमी बिताय कैं ।
नारायनदास सुख - रास भक्तमाल लै कै,
'प्रियादास' दास उर बसौ, रहौ छाय कैं ।।६३३।।

जिस परिश्रम और मनोयोग पूर्वक यह रचना लिखी गई है, उसके कारण प्रियादास जी का नाम भक्ति और साहित्य के क्षेत्रों में सदा अमर रहेगा । उनके नाम से प्रसिद्ध अन्य चार रचनाएँ बहुत छोटी हैं । काव्य की दृष्टि से भी उनका अधिक महत्व नहीं है । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

२. **अनन्य मोदिनी**—इसमें ६६ दोहा और ६ कवित्त हैं, जिनमें उपासना की अनन्यता का कथन किया गया है । इसके लिए सुप्रसिद्ध भक्त-कवि हरिराम जी व्यास कृत ११ पदों को उद्धृत कर उनके प्रमाण से ही विषय का प्रतिपादन किया है । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

संत हैं अनंत गुन, अंत कौन पावै जाकौ,
जानै रतिवंत कोऊ रीझै पहिचानि कै ।
औगुन न दीठ परै, देखत ही नैन भरै,
ढरै पग और उर प्रेम भरि आनि कै ।।
जो पै घट क्रिया कछु, देखियत इन माँझ,
करि लै विचारि हरि ही की इच्छा मानि कैं ।
बालक सिंगारि कै निहारै नेहवती माता,
देत जो दिठौना कारौ दीठ उर जानि कै ।।

अन्य देव पूजा तजै, भजै युगल दृढ़ हेत ।
भक्ति बढ़ै जनु लाव कै, करत लहलहे खेत ।।
जेतिक करत सराव जग, औ संकल्प अपार ।
सो सब तजि वह संग भजि, तौ पावै रस-सार ।।

३ **चाह-बेली**—इसमें ५० अरिल्ल और १ कवित्त है, जिनमें भक्त-हृदय की उत्कंठा का कथन किया गया है । उदाहरण इस प्रकार है—

हा हा श्री मनहरन महाप्रभु, श्री नित्यानंद गाऊँ ।
अमित प्रेम फल दिए सबन कों, एक बूँद रस पाऊँ ।।
हा हा श्री अद्वैत गदाधर, श्री नरहरि सरकार ।
कीजै कृपा तुच्छ जन हू पै, याही हित अवतार ।।

हा हा श्रीमत रूप-सनातन, अदभुत रस आचारज ।
कृपा रंज रंजित अवलोकनि, दै कीजै मम कारज ।।

हा हा श्रीमत भट्ट गोसाईं, श्री गोपाल जू नाम ।
राधारमन रूप गुन-संपति, बिलसत आठों जाम ।।

४. **भक्त-सुमरिनी**—इसमें 'भक्तमाल' और 'भक्ति रस बोधिनी' टीका में उल्लिखित भक्तों की नामावली है, जिसकी रचना किसी राधारमण पुजारी के आग्रह से हुई है । इसे प्रियादास जी रचित भक्तमाल-टीका की अनुक्रमणिका कहना उचित होगा । इसकी रचना चौपाई छंद में हुई है । प्रियादास जी की अन्य रचनाओं की भाँति इसके आरंभ में भी चैतन्य महाप्रभु और मनोहर जी की वंदना है, तथा अन्त में उनके नाम की छाप है । इससे यह भी उनकी ही रचना कही जाती है; किंतु इसे उनके शिष्य चैनराय की कृति भी बतलाया जाता है[1] । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ— **सुमिरौ श्री मनहरन अनूप । महाप्रभू चैतन्य सरूप ।।**
श्री नारायनदास बखानी । भक्तमाल अति ही रस सानी ।।
आज्ञा दई श्री राधारमन । भक्त जु नाम मात्र रस स्रवन ।।
भक्तमाल रतनन की माल । कंठ करन हित रची रसाल ।।
कंठ किये माला मनहरनी । सुधि आवत यों भक्त सुमरिनी ।।

अंत— **श्रीमत राधारमन पुजारी । आज्ञा दई सो मैं उर धारी ।।**
भक्त नाम सुमरिनी कीनी । पढ़त-सुनत अति ही रस भीनी ।।
प्रात पढ़ै भक्तन के नाम । तौ उर झलकैं स्यामा - स्याम ।।
भक्त सुमरिनी सुपरन करै । 'प्रियादास' तिन पद-रज धरै ।।

५. **रसिकमोहिनी**—इसकी रचना दोहों में हुई है, जिनकी संख्या १११ है । इसमें वृंदाबन से आरंभ कर समस्त ब्रज-मंडल की परिक्रमा का कथन हुआ है । ब्रज की महिमा इसमें गोलोक से भी अधिक बतलाई गई है । इसकी पूर्ति सं० १७९४ की वैशाख शु० ३ को हुई थी, जैसा इसके अंत में कहा गया है—

संवत दससै सातसै, नव्वे औ बढ़ि चार ।
तिथि त्रितिया वैशाख सुदि, प्रगट्यौ सत मनि-हार ।।१०४।।

इस प्रकार इसकी रचना भक्तमाल-टीका से २५ वर्ष बाद में हुई है, अत: यह प्रियादास जी की अंतिम कृति जान पड़ती है । वैसे इसके रचना-काल के कारण, यह प्रियादास जी के किसी शिष्य द्वारा उनके नाम से रची हुई भी हो सकती है । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

---

१. दिग्विजय भूषण, पृ० ३५

आरंभ—महाप्रभू चैतन्य हरि, रसिक मनोहर नाम ।
सुमिरि चरन अरबिंद वर. बरनौं महिमा धाम ।। १ ।।
श्री गुपाल राधारमन, बिपिन बिहारी प्रान ।
ऐसे श्रीजुत रूप जू, दास सनातन दान ।। २ ।।
प्रगट कियौ ब्रजभूमि मधि, श्री वृंदाबन धाम ।
ताकी छवि कवि को कहै, सब जन मन अभिराम ।। ३ ।।

मध्य— बाणी विपिन कहाय कै, और ठौर नहिं जाय ।
हाँसी जग बहु भाँति की, मुख पै कहै बजाय ।। ५१ ।।
सदा सँभारे ही रहै, रसिक धर्म की लाज ।
नैक कहूँ इत - उत डिगें, लहें न आब समाज ।। ५२ ।।
भूख - प्यास सब ही सहै, कहै न कबहूँ भूलि ।
ज्यों-ज्यों तन पर कठिनई, त्यों-त्यों मन में हूलि ।। ५३ ।।

अंत— रसिक इंदु गोविंद श्री, कुंज बास अनयास ।
'प्रियादास' इहि नाम जिन, गुह्यौ चातुरी बास ।। १०७ ।।
पूछौ जग के जौहरी, मनि सुगंध नहिं होय ।
ए अदभुत पहिरत हिए, मन में पैठै सोय ।। १०८ ।।

३७. चैनराय

वे 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी के शिष्य और सं० १७७० के लगभग विद्यमान थे । खोज में मिली हुई उनकी रचना का नाम 'भक्त सुमिरनी' बतलाया गया है[1] । यह रचना प्रियादास जी की कही जाती है । इसके आरंभ में महाप्रभु चैतन्य जी और प्रियादास के गुरु मनोहरराय जी की उसी प्रकार वंदना की गई है, जिस प्रकार उनकी अन्य रचनाओं में है । इसके अंत में भी प्रियादास जी के नाम का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

भक्त सुमिरनी सुमिरन करें । 'प्रियादास' तिन पद रज धरें ।।

फिर न मालूम 'भक्त सुमिरनी' को चैनराय जी की रचना क्यों बतलाया गया है । हमें चैनराय जी की न तो कोई रचना प्राप्त हुई और न उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में ही कुछ ज्ञात हुआ । अनुमान से उनका समय सं० १७४० से १८०० तक जान पड़ता है ।

---

१. दिग्विजय भूषण, पृ० ३५

३८. वृंदाबनचंद्र

चैतन्य मतानुयायी कवियों की ब्रजभाषा रचनाओं के अन्वेषण में हमको मध्यम आकार की एक ऐसी हस्त-प्रति प्राप्त हुई, जिसके आदि और अंत का भाग खंडित है; तथा जिसके छंदों में कवि-छाप का भी स्पष्ट उल्लेख नही मालूम होता है। उसके कतिपय छंदों में 'वृंदाबनचंद श्री गोविंद' का उल्लेख अवश्य मिलता है; किंतु उसे कवि-छाप न समझ कर 'वृंदाबनचंद' को 'श्री गोविंद' का विशेषण ही समझा गया । इस प्रति में लिपिबद्ध छंदों की संख्या आठसौ से भी अधिक है और उनमें राधा-कृष्ण की अष्टकालीन लीलाओं का सरस कथन हुआ है। इतनी अधिक संख्या में रचे हुए इतने सुंदर छंदों की रचना का क्या नाम है और इसका रचयिता कौन सा भक्त-कवि है; इस समस्या का समाधान कई वर्षों से नहीं हो रहा था।

इधर बावा कृष्णदास ने 'अष्टयाम' नामक एक नवीन ग्रंथ प्रकाशित किया, जिसे उन्होंने 'श्री वृंदाबनचंद्रदास जी विरचित' बतलाया है । इस ग्रंथ का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि यह उसी खंडित हस्त-प्रति का मुद्रित संस्करण है। इसके कतिपय छंदों में आये हुए 'वृंदाबन चंद श्री गोविंद' को उक्त बाबा जी ने कवि-छाप समझ कर इसके रचयिता का नाम 'वृंदाबनचंद्र' लिखा है। इस ग्रंथ की पुष्पिका में कवि ने बतलाया है कि इसकी रचना रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल' और कृष्णदास कविराज कृत 'श्री गोविंद लीलामृत' ग्रंथों के आधार पर हुई है—

श्री रूप रस-कूप राग-मार्ग के हैं यूप, 'सुमिरन मंगल' नाम सों रचौ ग्रंथ है ।
जुगल बिलास केली, नित्य महारस बेली, रसिक जनन सुमिरन महा पंथ है ।।
कृष्णदास करुना-वरुनालय रस बस भये, कविराज ख्यात और महा रसवंत हैं ।
'श्री गोविंद लीलामृत' मथि रस के वारिधि,लीला 'अष्टयाम'वरनी जानें भगवंत हैं।।

उनहीं के पद-रज धरि सिर मैं जु आज,
लीला घड़ी - घड़ी वरनूँ ह्वै कै निर्लज्ज है ।
घड़ी - घड़ी रसभीनी लीला जुगल नें कीनीं,
नित्यप्रति राजति जु वह निज ब्रज है ।।
भक्त जन कृपा रस मेरे जो हैं सरबस,
क्षमैं अपराध मेरौ रसिक समज है ।
'वृंदाबनचंद' श्री गोविंद - राधा रस - कंद,
पदारविंद - मकरंद लेत सिव - अज है ।।९२०।।

इस प्रकार पुष्पिका में रचना का नाम, विषय और आधार बतलाया गया है। यदि 'वृंदावनचंद्र' को कवि का नाम समझा जाय, तब भी उनके जीवन-वृत्तांत और रचना-काल का उल्लेख उसमें नहीं किया गया है । 'अष्टयाम' की 'भूमिका' में बतलाया गया है कि इनके रचयिता वृंदाबनचंद्र श्री राधादामोदर के शिष्य एवं 'गोविंद भाष्य'-कार बलदेव विद्याभूषण जी के गुरु-भ्राता थे । इस कथन का आधार 'श्री कृष्णाष्टोत्तर शतनाम' स्तोत्र और 'गोपाल स्तवराज' नामक संस्कृत ग्रंथों के भाष्य हैं, जिनकी पुष्पिकाओं में उनका रचयिता श्री राधा-दामोदर का शिष्य वृंदावन नामक ब्राह्मण बतलाया है[1] । उक्त भूमिका में अनुमान किया गया है कि उन सस्कृत भाष्यों के कर्ता 'वृंदावन' और व्रजभाषा ग्रंथ 'अष्टयाम' के रचयिता 'वृंदावनचंद्र' दोनों एक ही व्यक्ति हैं।

य द यह अनुमान ठीक है, तब वृंदावनचंद्र को बलदेव विद्याभूषण जी का समकालीन मानना होगा । बलदेव जी का अस्तित्व-काल १८ वीं शती का पूर्वार्ध है । उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'गोविंद भाष्य' का रचना-काल गत पृष्ठों में सं० १७७५ से १८०० तक लिखा जा चुका है । यही समय वृंदावन जी का है । इसकी पुष्टि 'अष्टयाम' के अंतःसाक्ष्य से भी होती है । इसके 'प्रथम प्रकाश' में मंगलाचरण और गुरु-संप्रदाय का कथन किया गया है । इसमें भगवान् श्री कृष्ण और चैतन्य महाप्रभु की स्तुति, विख्यात गौड़ीय संतों की वंदना तथा गुरु और संतों की महिमा का वर्णन है । इसी के अंतर्गत दो कवित्तों में प्रियादास जी का भी उल्लेख हुआ है । उससे ऐसी ध्वनि निकलती है कि प्रियादास जी वृंदावनचंद्र जी के समय में विद्यमान थे और वे कवि के आदर-णीय जन थे । प्रियादास जी का काल गत पृष्ठों में सं० १७३० से १८०० तक लिखा जा चुका है । इस प्रकार वृंदाबन जी का काल सं० १७४० से १८१० तक का अनुमानित होता है । उन्होंने लिखा है—

भयौ है प्रकास देस-देसन-बिदेसन में, सूरज सुजस रूप गुनवात बात हैं ।
आवैं वृंदाबन कोऊ, देखैं रसव्रंत होत, हेत सों मिले तें, जोतिवंत होत गात हैं ।।
कहैं कवै बात लै झुलावै सरसात रूप, भावै जूप प्रेम के कलोलनि अमात हैं ।
जहाँ प्रियादास जू की नैक हू चितौन होत पंडित ह्वै कैई कवि-रसिक ह्वै जात हैं ।।

---

१. **श्री राधादामोदर शिष्यो वृंदावनाभिधो विप्रः ।**
अष्टोत्तर शत नाम्नि व्यधात सतां प्रीतये भाष्यम् ।।
—श्री कृष्णाष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र

श्री राधादामोदर शिष्यो वृन्दावनाभिधो विप्रः ।
गोपालस्तवराजे भाष्यं व्यतनोत्सतां प्रीत्यै ।। —श्री गोपाल स्तवराज

घर तें भये उदास, बाहर भये उदास, भयौ है उदास मन कुटुम-समाज तें ।
देह हू न भावै, देह-स्वाद न सुहावै, कुलदेव बिसरावै, परलोक हू से बाज तें ।।
याही लोक वृंदाबन,याही समै,याही बेर, याही छवि पीवें,नैन जीवें दुति साज तें ।
प्रियादास जू के मिलें भावत न आन कछु, भई पहिचान हरि रूप रसराज ते ।।

इस प्रकार वृंदाबनचंद्र जी के जीवन-वृत्तांत की एक अस्पष्ट सी रूप-रेखा बनती है। उसके अनुसार उनका जन्म सं० १७४० के लगभग हुआ होगा। वे श्यामानंद जी की शिष्य-परंपरा में राधादामोदर जी के शिष्य और बलदेव विद्याभूषण के गुरुभाई थे । वे ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न हुए थे। गुरु-परंपरा के कारण उनका जन्म उत्कल अथवा गौड़ प्रदेश में हुआ जान पड़ता है; किंतु अपनी रचना की मँजी हुई ब्रजभाषा से वे ब्रजवासी ज्ञात होते हैं । यदि वे उत्कल अथवा गौड़ प्रदेश में भी जन्मे हों, तब भी इसकी पूरी संभावना है कि उस काल के अन्य गौड़ीय भक्तों की भाँति अपनी भक्ति-भावना की पुष्टि के लिए वे अपने जन्म-स्थान को छोड़ कर ब्रज में आ गये थे और फिर अंत काल तक वहाँ ही रहे थे । इस प्रकार उन्होंने ब्रज की भाषा और संस्कृति को ब्रज-वासियों की भाँति ही अपना लिया था। वे संस्कृत के बड़े विद्वान और ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । उन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों में ही रचनाएँ की हैं। उनकी ब्रजभाषा रचना 'अष्टयाम' की पूर्ति अनुमानत: सं० १७८०–९० के लगभग हुई होगी और उनका देहावसान सं० १८०० में अथवा उसके कुछ बाद हुआ होगा।

उनकी मुख्य रचना 'अष्टयाम' है, जो रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल' और कृष्णदास कविराज कृत 'श्री गोविंद लीलामृत' के आधार पर लिखी गई है। रूप गोस्वामी जी ने पद्मपुराणान्तर्गत पाताल खंड–वृंदाबन माहात्म्य के १४ वें अध्याय के प्रमाण से 'स्मरण मंगल' नामक एक स्तोत्र ग्रंथ की रचना की है । इसमें सूत्र रूप से श्री राधा-कृष्ण की. दैनंदिनी लीलाओं का कथन किया है। इसी के भाष्य रूप में कृष्णदास जी कविराज ने अपने विशाल ग्रंथ 'श्री गोविंद लीलामृत' की रचना की है, जिसमें श्री राधा-गोविंद की दैनंदिनी अष्टकालीन लीलाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । ये दोनों ग्रंथ चैतन्य-मतावलंबी भक्त जनों को अत्यंत प्रिय रहे हैं। संस्कृत भाषा से अपरिचित भक्तों के लिए इनके आधार पर ब्रजभाषा में कई भक्त-कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । यहाँ पर वृंदाबनचंद्र की मुख्य रचना 'अष्टयाम' का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

अष्टयाम—यह आकार में कुछ बड़ा ग्रंथ है, जिसकी रचना रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल' और कृष्णदास कविराज कृत 'श्री गोविंद लीलामृत' के आधार पर हुई है। इसमें कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि छंद हैं, जिनकी संख्या ६२० है। यह ग्रंथ बड़ा अशुद्ध छपा है। इसका कुछ कारण तो अशुद्ध हस्त-प्रति है और बड़ा कारण संपादन की त्रुटि है। इससे काव्य के रसास्वादन में कमी आती है; वैसे काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह साधारणतया अच्छी रचना है।

यह ग्रंथ 'प्रकाश' नामक विविध परिच्छेदों में लिखा गया है। 'प्रथम प्रकाश' में मंगलाचरण तथा गुरु और संतों की वंदना है। संतों के प्रति उनका कथन है—

संतन कों मैं करौं परनाम, न जानूँ कछू कर बुद्धि विसेखौ ।
वे तौ दयाल हृदै हैं रसाल, बसै नंदलाल सबै सुख देखौ ।।
रंचक ही जो करेंगे चितौन, तो पावैगौ गौर अरु स्याम सुरेखौ ।
देह अरु गेह अरु मोह-उछोह, सुकर्म अकर्म कौ जायगौ लेखौ ।। १६ ।।

'द्वितीय प्रकाश' में व्रज की महिमा और उसके विविध लीला-स्थलों का महत्व वर्णित है। इसमें सर्व प्रथम बरसाना का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

बरसानौ वर भूमि है, कीरति कंचन मान ।
नर नरेन्द्र बृषभान नग, राधा कांति समान ।। २४ ।।

बरसानौ महा वर राजश्री, जहाँ राधिका सी प्रगटी सुखदानी ।
जाकी बिलोकनि के रस-डोरि, बँध्यौ फिरै गोविंद रूप गुमानी ।।
पाँय धरैं जित प्रीतम के, लपटे फिरैं नैन लिएँ पटु बानी ।
नेह सु जंत्रन मंत्र की रोपन, रूप लड़ैती कौ प्रेम - निसानी ।।२५।।

इसके बाद ब्रज के अन्य लीला-स्थल, बन, उपबन, लता, कुंज, कुंड, सरोवर आदि का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है। इन स्थलों, बन-उपबनों और लता-कुंजों में भगवान श्री कृष्ण की जो-जो लीलाएँ हुई हैं, उनका यथावत वर्णन किया गया है। लीला-स्थलों के वर्णन में 'साँकरी खोर' की दान-लीला का कथन इस प्रकार हुआ है—

खोर साँकरी आ करी, मुहर रूप की पेंठ ।
पारस नेह सरूप कों, परस इहै दृग ऐंठ ।। २७ ।।

रू कौ पियासौ मिस गोरस के दान माँगै,
खोर साँकरी में भोर रूप चोंप हेरे सों ।
राध अति रूप भरी छवि की मरोर आगै,
सँभर सक्यौ न उठ्यौ चाह के उजेरे सों ।।

प्यारी पग धरै जितै, तितै लकुटी लै अरै,
भौंहन सों भौंहें भिरें, नेह तेह घेरे सों ।
तिरछे चितै कै नैन, तीर से चलाय गई,
दान यों चुकायौ हँसि प्रेम पन फेरे सों ॥२९॥
रूप कौ जगाती आनि बैठचौ खोर साँकरी में,
राधा मति रूप भूप आई भोर हेरी हैं ।
माँगत जगात कहा लोंग हम लादी,
यामें लोंग की कहा है, बड़ी आँखें बस तेरी हैं ॥
तैसेई कपोलन की सोहन हसन, तापै—
मोती की हलन सों अधर रस सेरी हैं ।
कौन - कौन अंग कौ चुकैगौ दान, देखत ही—
एक ही कटाच्छ लैकै मन होत चेरी है ॥३०॥

वृंदाबन का प्राकृतिक सौन्दर्य और प्रिया-प्रियतम की केलि-क्रीड़ा की एक झाँकी देखिये—

अब श्री वृंदा बिपिन की, स्वच्छ सुभगता देखि ।
कित हू देख्यौ रूप वह, दीखै दरपन लेखि ॥

कुंदन मृदुल सु फैन, जटित नग धरन परस्पर ।
प्रतिबिंबै जुत माल, लता प्रति कुंज सघन वर ॥
फूलन संकुल ललित, जहाँ भरि रहत एक रस ।
खग कुहकत कल बोल, केलि के मंत्र बैंस बस ॥
त्रिविध समीर बहै जहाँ, वृंदाबिपिन सुछंद ।
विहरत लाड़िली - लाल जहाँ, बँधे प्रेम रस कंद ॥

कैसे तमाल सु स्याम ही स्याम हैं, देखें बनै घनस्याम जू आये ।
मानों घटा अवनी उतरी है, व फूले मनों चपला चमकाये ॥
गंध उड़ै मानों पौन चलै, भये बावरे भौंर फिरें भरमाये ।
दंपति दौरि धसें बन में, मानों राधिका के मुख चंद सुहाये ॥

इसके बाद वृंदाबन के चार दिव्य सरोवरों का वर्णन किया गया है—

वृंदाबन के चार दिसि, चार सरोवर दिव्य ।
जिनके दरसन परस तें, मज्जन तें ह्वै भव्य ॥

उक्त चारों सरोवरों के नाम—१. रूप सरोवर, २. ज्ञान सरोवर, ३. प्रेम सरोवर तथा ४. मानसरोवर बतलाये गये हैं और उनका सरस कथन किया गया है। फिर राधिका जी की सखियों का वर्णन हुआ है।

इसके बाद अष्टकालीन लीलाओं का विस्तार पूर्वक कथन हुआ है। इनके कुछ छंद उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

जसुधा निजु कर लाल कों, करवावत असनान।
रोम - रोम जाके लखै, अपने नैनरु प्रान॥
चौकी रतननि जटित, ललित वर कलित प्रकासै।
पंक तरंग अनेक, एक तें एक अभासै॥
तापै श्री ब्रजचंद, चंद मंजन मंजुल के।
दृग चकोर माधुर्य, भरत जननी हित चित के॥
स्याम सजल घन अंग पर, ढरकत उज्जल नीर।
चंदकला - किरनावली, ढरकत छवि लगि हीर॥
मंजन करत स्याम अंजन से अंग पर, जल ढरकत हरषत मानौं चार है।
किधौं जौहरी सिंगार मोतिन की लरें चारु,चहुँ ओर देखे किधौं आनँद अपार है॥
महमही स्यामता सु उज्जलता एंतता न, आखै लपटाएँ लेत सब की उदार है।
जगमग - जगमग अंग पर होय रही, भोय रही स्वच्छता में सुंदरता हार है॥
अंग अँगोछि, मुख पौंछिकै, चिकुर सुखावत चारु।
आँखिन ह्वै हिय में धँसे, फँसे लसे सुढसारु॥
बन - बिहरन प्रीतम - मिलन, सूरज - पूजा ब्याज।
किये सिंगार सु प्रेम सों, रिझवन मोहन आज॥
सूरज - पूजा कौ साज कियौ, सखी लीनी हैं एक तें एक सबाई।
कोऊ लै चंदन, कोऊ लै बंदन, कोऊ लै थार सबै छवि छाई॥
मध्य प्रिया सब ऐसी लगैं, मानौं ज्योतिष-चक्र मैं चंद कहाई।
दरपन - मंदिर माँझ धँसी, मानौं ओढ़ि नीलांबर दामिनी आई॥
ठुमक धरत पग, नूपुर झमक बजें, झमक तें रूप आयौ बाहर प्रकास है।
जैसै-जैसें आवें पग धरत-धरत द्वार, द्वार लिएँ आवै मानौं रूप ही की रास है॥
जहाँ-जहाँ खरी होत, सोई द्वार चित्र सोत, मनिन-कपाट प्रतिबिंबन-विलास है।
बड़े-बड़े दृगन सनेह भरी देखन सौं, प्रीतम - मिलन के हुलास भरी हास है॥
चाह बढ़ी पिय के जिय मैं, वह प्यारी के रूप की जोति जगी है।
जाकी चितौन के डोरें बँधे, दृग खैचे गये, मति रंग रँगी है॥
पूछत जात तमालन सों, वह प्यारी कहो किहि ओर खगी है।
ऐसे सनेह - विलास रँगे पिय, नैनन की पुतरी लै रँगी है॥
छाँड़े सखा वे चरावत गोधन, नैन - चरावन आपु चले हैं।
ह्वै भुकराय के रूप की झाईं, उन्हें उरझाय वे प्रान पले हैं॥

धेनु सबै पसु - पंछी उहाँ के, सु व्याकुल देखि वियोग दले हैं ।
बाँसुरी - सौरभ कान भरे, भरे नैनन मैं हँसि रूप रले हैं ॥
चरन चापत नाना चाह सों रसमंजरी, जुग सोभा देखि गुनमंजरी लोभात है ।
उत्सवमंजरी बीन बजावत सरसात, रतिमंजरी जु बलि-बलैया कों जात है ॥
लवगमंजरी प्रिया-प्रियतम के अंग परि, चंदन चर्चात मीठी-मीठी कहि बात है ।
काव्य कला में निपुन श्री रूपमंजरी जू हैं, कला बरसावैं सोभा कहि नहिं जात है ॥

इहि विधि सब सेवा करें, अपनी स्वामिनि जानि ।
ललितादिक सब सखिन सँग, निज-निज भाग्य जु मानि ॥

इस रचना की प्रांजल ब्रजभाषा और कवित्त-सवैया छंदों में अलंकारपूर्ण सरस कथन इसे रीति-कालीन गौरव प्रदान करता है ।

अपनी ब्रजभाषा रचना 'अष्टयाम' के अतिरिक्त उनकी संस्कृत रचना 'श्री कृष्णाष्टोत्तर शतनाम' और 'श्री गोपाल स्तवराज' के भाष्य भी है । 'श्री गोपाल स्तवराज' का उन्होंने ब्रजभाषा में भी अनुवाद किया है । इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

नव नीरद घनस्याम, धाम अभिराम बिहारी ।
नीलेन्दीवर नैन, बैन रस - ऐन जु भारी ॥
गोपी सुत जुत ललित लील, जग प्रगट अघट जस ।
वर अनूप रस भूपन महँ, गोपाल रूप अस ॥
रुचिर रचित सुचि चिकुर, सीस घुँघरारे कारे ।
मोरपच्छ की स्वच्छ लसन, कवि बरनत हारे ॥
सुसुम कुसुम वर नीप जुक्त, बनमाल बिराजै ।
कुंडल लोल अमोल, कपोलनि अति छवि छाजै ॥ × ×
इहि विधि सो चितवनि करत, भरि भक्ति देव वर ।
नित प्रति स्तुति करत, दिवस निसि चाय-भाय भर ॥
तिनकों नव गोविंदचंद, रस कंद सुनहु भल ।
लेत तुरत अपनाय, देत पुन वर वांछित फल ॥
मानि मान - सनमान, तिन्हें नित राजसभा माँहि ।
जग जन के प्रिय जानि, होय अपमान कबहुँ नहिं ।
तिन भक्तनि में बसै चंचला, लसै अचल अति ।
बवादूक रसवंत, अंत पुन लहै परम गति ॥
गोपाल स्तवराज करी भाषा जु जथा मति ।
'श्री वृंदाबनचंद' दास लै रचो रुचिर अति ॥

३६. दामोदरदास

दामोदरदास के नाम से 'स्मरण मंगल' नामक एक साधारण सी रचना उपलब्ध है, जो रूप गोस्वामी जी कृत 'स्मरण मंगल' स्तोत्र के आधार पर लिखी गई है। इसमें 'प्रकाश' नामक ८ परिच्छेद हैं, जिनमें श्री राधा-कृष्ण की अष्टकालीन दैनंदिनी लीलाओं का कथन किया गया है। ग्रंथ से उसके रचना-काल तथा रचयिता का कोई वृत्तांत ज्ञात नहीं होता है। इसके प्रकाशक बाबा कृष्णदास का अनुमान है कि दामोदरदास जी अब से प्राय: २५०–३०० वर्ष पहिले हुए होंगे। इस प्रकार उनका समय १८ वीं शती का पूर्वार्ध कहा जा सकता है। 'मिश्रबंधु विनोद' में दामोदर नामक कई कवियों का उल्लेख मिलता है; किंतु वे इन दामोदरदास जी से पृथक् हैं।

'स्मरण मंगल' के प्रत्येक 'प्रकाश' के अंत में निम्न लिखित कथन के साथ उक्त प्रकाश का नामोल्लेख किया गया है—

श्री गदाधर चैतन्य पद, सरन दामोदरदास।
'सुमिरन मंगल' कौ कियौ, सूक्षम प्रथम प्रकास॥

इससे ज्ञात होता है कि दामोदरदास जी गदाधर पंडित गोस्वामी की शिष्य-परंपरा में हुए थे। यहाँ पर उनकी रचना का कुछ अंश उदाहरणार्थ उद्धृत किया जाता है—

आरंभ— **श्री गुरु प्रथम सु वंदियैं, मन में धरि विस्वास।**
ज्ञान-दीप हिय बारि कै, अज्ञानहिं करै नास॥
नमो कृष्ण चैतन्य वर, जगत हेत अवतार।
श्री नित्यानंद जू वंदियै, तीन भुवन मनोहार॥
श्री अद्वैत सु वंदियै, पतितन पावन जान।
बंद जू राधा गदाधर, रसिकन के तन-प्रान॥
श्री प्रभु भक्तनि वंदियै, त्रिभुवन कों सुख रूप।
प्रेम भक्ति कों प्रगट करि, रच्छित कीने भूप॥
सुमरन कों सुमरन मंगल, मन में होत उत्साह।
कृपा बीज हिय रोपियैं, जासों होय निवाह॥
यह आसा धरि चित्त में, कहत जथा मति मोर।
ब्रज की लीला कौ कहूँ, पायौ ओर न छोर॥

मध्य— **वृंदा दुहुँ कों सखिन संग, बड़ी छतरी में ल्याय।**
मन भायें भूषन-बसन, दीनें सबनि बनाय॥

माला - बंदन पान पुनि, खाये सबनि सुख पाय ।
लाल - लाड़िली संग पुनि, बैठे जमुन - तट आय ॥
मंडल पुलिन रुचादि सब, देखि दुहूँ हुलसात ।
खग नग विपिन सु देखि कै, रोम - रोम पुलकात ॥
मन में रास - बिलास सों, बंसी में कही बात ।
गरबाहीं फिरें सखिन संग, देखत द्रुम फल - पात ॥
क्यारी तखता रौस करि, सोभित फूल अपार ।
खग मृग भ्रमर सु मत्त हैं, करत मधुर झनकार ॥
हरि पूछी सब की कुसल, करि सब कौ सनमान ।
बन देखत आये दोऊ, बंसीबट - तट जान ॥

अंत— पाठ करै हित सों सदा, होय सिद्ध सब काम ।
लाल - लाड़िली कृपा सों, पावै वृंदा धाम ॥
धर्म मोक्ष पुनि भोग जे, और जिते सुख आहि ।
पाठ मनोहर के करैं, मिलै तिहीं छिन ताहि ॥
श्री गदाधर चैतन्य पद, सरन 'दामोदरदास' ।
सुमिरन मंगल के किये, सूछम अष्ट प्रकास ॥

'दामोदर' की छाप के कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं, जो संभवतः इन्हीं दामोदरदास के हैं। यहाँ ऐसा एक पद दिया जाता है—

खेलत बसंत श्री गौर चंद । प्रिय संग गदाधर प्रेम कंद ।
नाँचत नित्यानंद प्रभु रसाल । प्रभु श्री अद्वैत देत ताल ॥
गावत हैं दामोदर स्वरूप । रामानंद सुर सों मिलि अनूप ॥
झेलत अनुरागी रसिक वृंद । तन मन बाढ़्यौ है अति आनंद ॥
बाजत करताल मृदंग बीन । मुरली ढप सुर मंजीर लीन ॥
सोहत हैं बसन बसंती अंग । तिन ऊपर सोहित बिबिध रंग ॥
श्री राधे-राधे ध्वनि गुलाल । कुम-कुम भर-भर भई हैं उछाल ॥
गुनमंजरि श्री गोपाल भट्ट । यह लिखि दीनों है भाल पट्ट ॥
जै जै श्री कृष्ण चैतन्य चंद । मूरति बसंत प्रीति रस कंद ॥
विकसित तन बन मानों अरबिंद । भाव कुसुम सोभा हाँसि मकरंद ॥
नव पल्लव अनुराग अमंद । विलसें कोकिल कुल सहचरि वृंद ॥
करुना मलयानिल सीतल सुगंध । जगत सुबासित प्रेम प्रबंध ॥
अंग संग लसै सहचरि वृंद । श्री रूप - सनातन प्रबोधानंद ॥
त्रिभुवन प्रकासित पद-नख-चंद । देहु दरसन दीन 'दामोदर' मंद ॥

४० सुवलश्याम

सुवलश्याम कृत 'श्री चैतन्य चरितामृत' का व्रजभाषा अनुवाद उपलब्ध है। इसके आरंभिक कथन में उन्होंने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है । उससे ज्ञात होता है कि नारायण भट्ट जी की वंश-परंपरा के यदुपति भट्ट जी उनके दीक्षा-गुरु थे[1] और वे वृंदावन में निवास करते थे । उनके उपास्य देव वृंदावन के ठाकुर श्री गोपीनाथ जी थे[2] । उन्होंने चैतन्य मत के प्राचीन महात्माओं के प्रति श्रद्धांजलि प्रगट करने के उपरांत कतिपय भक्त जनों के प्रति भी आदर-भाव व्यक्त किया है । उनमें जगन्नाथ जी और श्यामचरण जी नामक दो भक्त जनों का इस प्रकार उल्लेख किया गया है कि वे सुवलश्याम जी के समकालीन ज्ञात होते हैं[3] । यद्यपि उनके ग्रंथ में रचना-काल नहीं दिया गया है, तथापि उनके दीक्षा-गुरु और समकालीन भक्त जनों के कारण उनके अस्तित्व-काल और रचना-काल का अनुमान किया जा सकता है ।

यदुपति भट्ट जी को अपना गुरु बतलाते हुए उन्होंने उनसे लेकर नारायण भट्ट जी तक की गुरु-परंपरा का नामोल्लेख किया है[4] । उससे ज्ञात होता है

---

१. जिन्हौं निज मंत्र दियौ, तुच्छ जीव स्वच्छ कियौ,
लियौ अपनाय तेई चाहौं सो गहाय हैं ।
जिनकी कृपा तें गौर कृष्ण - गन नातौ भयौ,
वेई कृष्ण महाप्रभु चरित कहाय हैं ।।
जिनकी कृपा तें धाम वृंदाबन वास लह्यौ,
वेई निज सक्ति - बल पंगु कों नचाय हैं ।
मन हू कों दुरलभ जे, सुलभ करी ते जिन्हौं,
तेई श्री यदुपति जू सिर पं सहाय हैं ।।

२. बंसीवट-तट मदमत्त गोपी गन साथ, सोई गोपीनाथ प्यारौ संपदा हमारी है ।।

३. तिनही कौ रूप आप श्री गुसाईं जगन्नाथ, प्रगट बिराजमान जग हितकारी है ।
गोपीनाथ प्यारे न्यारे नैक हू न होत, जिहिं देखें दुख नसें, महारस कौ भरन है ।
भयौ श्री स्यामचरन नाम अभिराम, यातें आठ जाम हिए रहें स्याम के चरन हैं ।।

४. मोहिं बल बड़ौ श्री गुसाईं ब्रजपति जू कौ, ब्रज में विराजमान सदा अधिकार है ।
श्री गोपाल भट्ट जू के पद सिर छत्र मेरें, तातें ही संताप भजि गयौ निरधार है ।।
बालमुकुंद भट्ट जू के पद हिए में धारि, श्रीजुत दामोदर जू देहु रस-सार है ।
भट्ट श्री नारायन जू ब्रज के उपासी एक, तिन पद-धूरि मेरी जीवन-आधार है ।।

और रचना-शैली में भी अद्भुत साम्य है । तीनों ने ही अन्य भाषाओं के महान् ग्रंथों को लोकोपकार के लिए सरल भाषा में अनुवादित किया था। उनकी यह विचित्र समानता साहित्य-शोधकों में कौतुहल के साथ ही साथ भ्रम भी पैदा कर सकती है; किंतु उनसे संबंधित तथ्य इतने स्पष्ट हो गये हैं कि भ्रम के लिए अब कोई स्थान नहीं रहा है।

यहाँ पर सबलश्याम कृत ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

श्री चैतन्य चरितामृत—श्री कृष्णदास कविराज ने बंगला भाषा के पयार छंद में इस नाम के सुप्रसिद्ध ग्रंथ द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की जीवन-लीला का अत्यंत विद्वत्तापूर्ण और मार्मिक कथन किया है। बंगला भाषा-भाषी चैतन्य-भक्तों में इस अपूर्व ग्रंथ का बड़ा आदर और प्रचार हुआ। इससे बंगला से अपरिचित भक्त जनों को भी इसका रसास्वादन कराने की आवश्यकता सभी चैतन्य-भक्तों को प्रतीत होने लगी। इस महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए सुबलश्याम अति विनीत भाव से कटिबद्ध हुए और उन्होंने सरल ब्रजभाषा छंदों में उक्त ग्रंथ का अनुवाद कर डाला। अपनी महत्वपूर्ण रचना का उपक्रम करते हुए उन्होंने कहा है—

गौर - लीला बिना कैसे कृष्ण कौ सरूप जानें,
भक्तिहीन दीन जीव चिंता चित्त धारी है ॥×
बारुनी दिसा के जीव कैसे भान उदौ जानें,
हिए उनमानें प्रभु - गुन सुखकारी है ।
महाप्रभु लीला ब्रजभाषा के प्रगट होय,
जानें जन सबै मिटै हिए अँधियारी है ॥६॥

वृंदाबन वासी गौर-कृष्ण के उपासी भक्त,
सब सुखरासी तिन सिर पद नाय कै ।
कृष्ण - रसमाते देह - नाते ह्याँ ते किये जिन्हौं,
दोस हू में लेत गुन अपने सुभाय कै ॥
नैक संग किए हिए डारें रस भँभरि क्यों,
कृष्ण - भक्ति प्रेम रूप देंहि दरसाय कै ।
तिनहीं कौ बल पाय, लाज ही बहाय,
महाप्रभु - गुन कहौं ब्रजभाषा में बनाय कै ॥ १५ ॥

कृष्णदास कविराज के मूल ग्रंथ में आदि लीला, मध्य लीला और अंत लीला नामक तीन खंड हैं; किंतु सुबलश्याम कृत पहिले दो खंड ही उपलब्ध हुए हैं। इन्हें बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है। सुबलश्याम ने अंतिम खंड लिखा या नहीं, इसके विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है।

इस रचना में अधिकतर दोहा छंद का प्रयोग हुआ है; किंतु कहीं-कहीं पर कवित्तादि छंद और कुछ पद भी लिखे गये हैं । रचना की भाषा सरल ब्रज-भाषा है । मूल ग्रंथ के भावों को सफलता पूर्वक व्यक्त करने से कवि का बंगला और ब्रजभाषा दोनों पर समान अधिकार ज्ञात होता है । यहाँ पर इस रचना का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया गया है—

आदि लीला-(आ०)-जय-जय श्री चैतन्य जू, जय श्री नित्यानंद ।
जय अद्वैत हिमांसु जय, दासवर्ग सुखकंद ॥
ग्रंथ आदि मंगल करें, यहै सिष्ट आचार ।
गुरु-हरि-हरिजन सुमिरियै, ताकौ इहै प्रकार ॥
इन तीनों सुमिरें सकल, होय सु विघ्न बिनास ।
अनायास पूरन सबै, होय हिए की आस ॥
सो वह मंगल त्रिविध है, एक वस्तु निर्देस ।
इक आसिस इक प्रनति है, कहैं जु करि उद्देस ॥

(म०)-काम - प्रेम इन दुहुन के, न्यारे लच्छन जान ।
ज्यों सुबर्न अरु लोह कों, रूप विलच्छन भान ॥
जो निज इंद्रिय-प्रीति की चाह, कहै तिहिं काम ।
कृष्ण प्रीति अभिलाष कों, धरै प्रेम तिहिं नाम ॥

काम तात्पर्य कहैं केवल संभोग निज, कृष्ण सुख तात्पर्य प्रेम बल यही है ।
वेद-धर्म, लोक-धर्म, देह-धर्म, कर्म लज्जा, धैर्य आत्मदेह सुख जोई प्रिय सही है ॥
दुस्त्यज जो आर्य पथ परिजन स्वजनकों, ताडन और भर्त्सन सोऊ सुख नहीं है ।
सबै त्यागि कृष्ण भजै, तत्सुख ही हेत सजै, करै प्रेम सेवा भाँति प्रिय रुचि लही है ॥

याही तें श्री कृष्ण कौ, कहियै दृढ़ अनुराग ।
जैसे उज्ज्वल बसन में, नाहिंन कोऊ दाग ॥
याही तें अंतर बड़ौ, काम प्रेम में जान ।
काम अंधतम महा है, प्रेम अमल है भान ॥
जहाँ भान तहाँ मन नहीं, जहँ तम नहिं रविधाम ।
जहाँ काम तहँ प्रेम नहिं, जहाँ प्रेम नहिं काम ॥
यातें गोपी गन विषै, नहीं काम कौ गंध ।
तिनके तत्सुख मात्र हित, है तिनसों सबंध ॥

(अंत)-लीला श्री चैतन्य की, अदभुत है जु अनंत ।
ब्रह्मा सिव औ सेस हू, जाकौ लहै न अंत ॥

जो - जो अंस कहैं सुनैं, सोई - सोई धन्य।
निस्चै ताकों बेगि ही, मिलि हैं श्री चैतन्य॥
श्री अद्वैताचार्य जू, श्री नित्यानंद चैतन्य।
श्रीनिवास श्री गदाधर, प्रभृति भक्त गन धन्य॥
श्री स्वरूप श्री रूप जू, श्री सु सनातन नाम।
श्री जीव सु रघुनाथ जुग, उनके पद अभिराम॥
भक्त वृंद जितने बसें, वृंदा बिपिन मँझार।
नम्र होय हौं सिर धरौं, सब के पद निरधार॥
सिर धरि कै वंदन करौं, नित्य करौं तिन आस।
चरितामृत चैतन्य कों, कहत कृष्ण को दास॥
रूप-सनातन जगत हित, 'सुबलस्याम' पद आस।
प्रभु चरितामृत कों कहैं, ब्रजभाषाहिं प्रकास॥

मध्य लीला-(आ०)-माथें धरि अति भक्ति करि, चरन-कमल जुग ताहि।
बरनन करियें सूत्रगन, लीला सेसहिं आहि॥
रहे बरस चौबीस लौं, प्रभु जू अपने धाम।
तहाँ जु लीला करी तिहिं, लीला आद्य जु नाम॥
तहाँ वर्ष चौबीस कें, सेस माघ है मास।
सुक्ल पक्ष नव महाप्रभु, तब कीनो संन्यास॥
रहे बरष चौबीस लौं, प्रभु जू करि संन्यास।
नाम सेस लीला जु तिहिं, तहाँ जु करी प्रकास॥
द्वै हैं लीला सेस के, मध्य अंत है नाम।
लीला भेदहिं जन करें, नाम भेद अभिराम॥
ताही मधि षट बरष लों, गमनागमनहिं जोइ।
वृंदाबन नीलाचलहिं, गौड़ सेतबँध सोइ॥
तहाँ जु लीला करी प्रभु, मध्य नाम है ताहि।
ता पाछें लीला जु तिहि, अंत नाम है आहि॥
केवल अष्टादस बरष, प्रभु नीलाचल बास।
सिखई करि आचरन निज, प्रेम-भक्ति रस-रास॥
आदि, मध्य अरु अंत में, है लीला रस-सार।
अब कछु लीला मध्य कों, करियत हैं विस्तार॥

(म०)-वृंदाबन के तरु-लता गन, प्रभु कों लखि आहि।
मधु मिस बरसें अश्रु-जल, पुलक सु अंकुर ताहि॥

फल-फूलनि के भार भरि, परें डार प्रभु पाय ।
बंधु भेंट लै आवहीं, बंधुहि लखि जिहि भाय ।।
थावर जंगम बिपिन के, प्रभु जू कों लखि जोइ ।
देखि बंधु गन बंधु कों, ज्यों आनंदित होइ ।।
तिन सब की प्रभु प्रीति लखि, भावावेसित होइ ।
सब के संग क्रीड़ा करें, ह्वै तिनके बस सोइ ।।
आलिंगन प्रभु जू करें, प्रति तरु-लता सु जान ।
करें समरपन कृष्ण कों, सुमनादिक करि ध्यान ।।
अश्रु कंप औ पुलक प्रभु, प्रेम अधीर सरीर ।
'कृष्ण-कृष्ण बोलौ' कहैं, ऊँचे सुर गंभीर ।।
सुक - सारी तरु - डार पर, बैठे दरसन दीय ।
तिनकों लखि प्रभु कौ भयौ, कछु सुनिवे कौ हीय ।।
सुक-सारी प्रभु हाथ पर, उड़ि कै बैठे आय ।
स्लोक पढ़ें सुक कृष्ण गुन, प्रभु जू कों जु सुनाय ।।
(अंत)-यहै कह्यौ संछेप करि, मधि लीला कौ सार ।
बरनन कोटिक ग्रंथ करि, जाय न यह विस्तार ।।
देस - देस मधि प्रभु भ्रमे, हेतु जीव निस्तार ।
आप भक्ति आस्वाद करि, ताकौ कियौ प्रचार ।।
कृष्ण तत्व हरि-भक्त कौ, तत्व जु प्रेम विचार ।
भाव-तत्व रस-तत्व पुनि, लीला-तत्व सु सार ।।
विस्तारे निज वदन करि, भक्त हेतु प्रभु जोइ ।
कहूँ कहा जे भक्त मुख, सुने आप प्रभु सोइ ।।
दाता बड़े कृपालु अति, वत्सल जन दुख जान ।
तीन लोक में और नहिं, श्री चैतन्य समान ।।
स्रद्धा करि लीला यहै, सुनें भक्त गन आहि ।
पैहौ श्री चैतन्य पद, कृपा जु हरि कै पाहि ।।
पैहौ इहीं प्रसाद करि, कृष्ण-तत्व कौ सार ।
सबै सास्त्र सिद्धांत के, पैयै यातें पार ।।

'श्री चैतन्य चरितामृत' के इन दो खंडों के अनुवाद के अतिरिक्त सुबलश्याम की कोई अन्य रचना प्राप्त नहीं हुई है । ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भागवत का भी ब्रजभाषा अनुवाद किया था; किंतु यह बात ठीक नही जान पड़ती है । ऐसा मालूम होता है, इस नाम के अन्य कवि सबलश्याम कृत भागवत अनुवाद को ही कदाचित इनकी रचना समझा गया है ।

जो - जो अंस कहैं सुनैं, सोई - सोई धन्य ।
निस्चै ताकों बेगि ही, मिलि हैं श्री चैतन्य ।।
श्री अद्वैताचार्य जू, श्री नित्यानंद चैतन्य ।
श्रीनिवास श्री गदाधर, प्रभृति भक्त गन धन्य ।।
श्री स्वरूप श्री रूप जू, श्री सु सनातन नाम ।
श्री जीव सु रघुनाथ जुग, उनके पद अभिराम ।।
भक्त वृंद जितने बसें, वृंदा बिपिन मँझार ।
नम्र होय हौं सिर धरौं, सब के पद निरधार ।।
सिर धरि कै बंदन करौं, नित्य करौं तिन आस ।
चरितामृत चैतन्य कों, कहत कृष्ण कौ दास ।।
रूप-सनातन जगत हित, 'सुबलस्याम' पद आस ।
प्रभु चरितामृत कों कहैं, ब्रजभाषाहिं प्रकास ।।
मध्य लीला-(आ०)—माथें धरि अति भक्ति करि, चरन-कमल जुग ताहि ।
बरनन करियै सूत्रगन, लीला सेसहिं आहि ।।
रहे बरस चौबीस लौं, प्रभु जू अपने धाम ।
तहाँ जु लीला करी तिहिं, लीला आद्य जु नाम ।।
तहाँ वर्ष चौबीस कें, सेस माघ हैं मास ।
सुक्ल पक्ष नव महाप्रभु, तब कीनौ संन्यास ।।
रहे बरष चौबीस लौं, प्रभु जू करि संन्यास ।
नाम सेस लीला जु तिहिं, तहाँ जु करी प्रकास ।।
द्वै हैं लीला सेस के, मध्य अंत है नाम ।
लीला भेदहिं जन करें, नाम भेद अभिराम ।।
ताही मधि षट बरष लौं, गमनागमनहिं जोइ ।
वृंदाबन नीलाचलहिं, गौड़ सेतबँध सोइ ।।
तहाँ जु लीला करी प्रभु, मध्य नाम है ताहि ।
ता पाछें लीला जु तिहिं, अंत नाम है आहि ।।
केवल अष्टादस बरष, प्रभु नीलाचल बास ।
सिखई करि आचरन निज, प्रेम-भक्ति रस-रास ।।
आदि, मध्य अरु अंत में, हैं लीला रस-सार ।
अब कछु लीला मध्य कों, करियत हैं बिस्तार ।।
(म०)-वृंदाबन के तरु-लता गन, प्रभु कों लखि आहि ।
मधु मिस बरसें अश्रु-जल, पुलक सु अंकुर ताहि ।।

फल-फूलनि के भार भरि, परें डार प्रभु पाय ।
बंधु भेंट लै आवहीं, बंधुहि लखि जिहि भाय ।।
थावर जंगम बिपिन के, प्रभु जू कों लखि जोइ ।
देखि बंधु गन बंधु कों, ज्यों आनंदित होइ ।।
तिन सब की प्रभु प्रीति लखि, भावावेसित होइ ।
सब के संग क्रीड़ा करें, ह्वै तिनके बस सोइ ।।
आलिंगन प्रभु जू करै, प्रति तरु-लता सु जान ।
करें समरपन कृष्ण कों, सुमनादिक करि ध्यान ।।
अश्रु कंप औ पुलक प्रभु, प्रेम अधीर सरीर ।
'कृष्ण-कृष्ण बोलौ' कहैं, ऊँचे सुर गंभीर ।।
सुक - सारी तरु - डार पर, बैठे दरसन दीय ।
तिनकों लखि प्रभु कौ भयौ, कछु सुनिवे कौ हीय ।।
सुक-सारी प्रभु हाथ पर, उड़ि कै बैठे आय ।
स्लोक पढ़ैं सुक कृष्ण गुन, प्रभु जू कों जु सुनाय ।।
(अंत)-यहै कह्यौ संछेप करि, मधि लीला कौ सार ।
बरनन कोटिक ग्रंथ करि, जाय न यह विस्तार ।।
देस - देस मधि प्रभु भ्रमे, हेतु जीव निस्तार ।
आप भक्ति आस्वाद करि, ताकौ कियौ प्रचार ।।
कृष्ण तत्व हरि-भक्त कौ, तत्व जु प्रेम विचार ।
भाव-तत्व रस-तत्व पुनि, लीला-तत्व सु सार ।।
विस्तारे निज वदन करि, भक्त हेतु प्रभु जोइ ।
कहूँ कहा जे भक्त मुख, सुने आप प्रभु सोइ ।।
दाता बड़े कृपालु अति, वत्सल जन दुख जान ।
तीन लोक में और नहिं, श्री चैतन्य समान ।।
स्त्रद्धा करि लीला यहै, सुनें भक्त गन आहि ।
पैहौ श्री चैतन्य पद, कृपा जु हरि कै पाहि ।।
पैहौ इहीं प्रसाद करि, कृष्ण-तत्व कौ सार ।
सबै सास्त्र सिद्धांत के, पैयै यातें पार ।।

'श्री चैतन्य चरितामृत' के इन दो खंडों के अनुवाद के अतिरिक्त सुबलश्याम की कोई अन्य रचना प्राप्त नहीं हुई है । ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भागवत का भी ब्रजभाषा अनुवाद किया था; किंतु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती है । ऐसा मालूम होता है, इस नाम के अन्य कवि सबलश्याम कृत भागवत अनुवाद को ही कदाचित इनकी रचना समझा गया है ।

४१. साधुचरण

साधुचरण जी का रचा हुआ 'रसिक विलास' नामक ग्रंथ प्राप्त हुआ है। इसका रचना-काल सं० १७९८ है। इससे अनुमानित होता है कि उनका जन्म सं० १७५० के लगभग और देहावसान सं० १८२० के लगभग हुआ होगा। उक्त ग्रंथ से अथवा किसी अन्य साधन से उनके जीवन का कोई वृत्तांत ज्ञात नहीं होता है। अपने ग्रंथ में उन्होंने उत्कलप्रदेशीय महात्मा श्यामानंद जी तथा उनके शिष्यों का वर्णन किया है और श्यामाँनंद जी के प्रति उन्होंने अपार श्रद्धा व्यक्त की है। इससे अनुमान होता है कि वे श्यामानंद जी की शिष्य-परंपरा में हुए होंगे।

'रसिक विलास' ग्रंथ की रचना कवित्त, छप्पय आदि छंदों में हुई है, जिनकी संख्या २८० है। इसकी पूर्ति सं० १७९८ की बसंत पंचमी, शनिवार को हुई थी, जैसा उन्होंने उक्त ग्रंथ के अंत में लिखा है—

संबत सत्रासैं अठानवौ पायौ इन, माह सुदी सुक्ल पक्ष पंचमी सुभाई है।
सनिस्चर बार रितुराज हू कौ आगम हौ, ताही दिन ग्रंथ इहि पूरन सुहाई है॥
'रसिकबिलास' नाम ग्रंथ अभिराम अहो,सुनै नित स्याम आय अति सुखदाई है।
आज्ञा मन भाई 'साधुचरन' बनाई, पोथी अति सुखदाई,जमकाई छबि छाई है॥

इस ग्रंथ में श्यामानंद जी तथा उनके शिष्य, विशेष कर रसिकमुरारी–रसिकानंद आदि का वर्णन किया गया है। उन भक्त जनों ने उत्कल प्रदेश में किस प्रकार चैतन्य मत का प्रचार किया और अपनी भक्ति-भावना के प्रभाव से कैसे-कैसे चमत्कारपूर्ण कार्य किये, इन सब का विस्तार पूर्वक कथन इस ग्रंथ में हुआ है। यद्यपि इसका नाम 'रसिक विलास' है, तथापि कहीं-कहीं पर 'रसिक मंगल' नाम भी लिखा मिलता है। इसके उदाहरण स्वरूप कुछ छंद यहाँ पर दिये जाते हैं—

जै-जै श्री स्यामानंद, विमल जस जगत-उजागर।
विघन हरन, मंगल करन, मनों द्वितीय दिवाकर॥
पगटे उत्कल देस, तिमिर अज्ञानहिं सोख्यौ।
कृपा दृष्टि रस-वृष्टि करी, निसि-दिन जन पोष्यौ॥
जुलग प्रेम सों छके रहत, ज्यों मद मतवारे।
रँगे रहत अनुराग रंग, चख घूम घुमारे॥

श्री स्यामानंद के सिष्य, सबै भौ-भार पार कर ।
रसिकमुरारि - किसोर, भए दोउ चंद-दिवाकर ।।
जै जै दरिया - दामोदर, जगमगात भू पर सु यों ।
चिंतामनि - बलभद्र, जगत हित मनु जहाज ज्यों ।।
उद्धव - मधुवन - जगतेस्वरपति, दामोदर सुद्ध मति ।
पुरुषोत्तम, आनंद अरु, राधानंद सु जग विदित ।।
स्यामानंद सु कल्पतरु, द्वादस साखाएँ भए ।
और सिष्य पल्लव-पता, सुखद सुजस छाया छए ।।
रसिकमुरारि फल रूप विदित, जस जगत उजागर ।
स्रवत अहर्निस मधु रस, रस-रस कृष्ण रसाकर ।।
जिते रसिकमुरारि के, सिष्य चरन तर सिर धरौं ।
रसिक सुमंगल कवित वर, ब्रजभाषा मैं बर्नन करौं ।।

महातीव्र वैराग्य गोसाईं स्यामानंद जू कौ, बरनौ न जाय, अति जस छाई है ।
रसिकमंगल ग्रंथ है अति विस्तार जामैं, धरचौ है चरित्र सब अति सुखदाई है ।।
देखिकै गई है मेरी मति ललचाय, तामैं अति सु रसाई, जासों परिचै लै गाई है ।
दोस मति दीजै, छिमा कीजै गुरुभाई सब, आज्ञा तुम दई तातैं पोथी लै बनाई है ।।

श्यामानंद जी के वृंदावन में निवास करते समय उनकी रहन-सहन का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

स्यामानंद देव आइ छाइ रहे वृंदावन,जाकी कथा सुनों भक्ति जात रीति-भाँति कों।
कभूं ध्यान धरैं, कभूँ करैं नाम-संकीर्तन, कभौ जाप करैं निद्रा नहीं कहूँ बात कों ।।
भूख और प्यास कर जोर दूर ठाढ़े रहें, झाड़ू लै बुहारें निज कर सेस रात कों ।
माथै धरि डला, नट-कला हू कों मात करें,लै-लै ढेरी दूर डारि आवें सब पात कों।।

काव्य की दृष्टि से यह साधारण सी रचना है, किंतु भक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । कवि ने इसके महत्व के विषय में स्वयं लिखा है—

'रसिकबिलास' नाम ग्रंथ अभिराम, किधौं–
रस कौ है धाम, ताकौ उपमा बिचारचौ है ।
किधौं भक्ति अंग देखिवे कौ इहै आरसी है,
किधौं साधिवे कों पाटी बिधि नें सुधारचौ है ।।
किधौं जंत्रसाला मन मोहिवे को मोहन कौ,
किधौं चटसाला भक्ति-तत्व लै उचारचौ है ।
अज्ञान - अंधकार फारिवे कों मेरे जान,
भक्ति महारानी प्रेम - दीपक लै बारचौ है ।।

४२. वैष्णवदास 'रसजानि'

वैष्णवदास जी ने अपनी रचनाओं में अपना परिचय देते हुए बतलाया है कि वे 'भक्तमाल' के सुप्रसिद्ध टीकाकार प्रियादास जी के पौत्र और हरिजीवन जी नामक किसी भक्त जन के शिष्य थे[1]। वे ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न हुए थे और वृंदाबन में निवास करते थे। श्री उदयशंकर जी शास्त्री ने लिखा है कि वैष्णवदास जी मथुरा में किसी सरकारी पद पर नियुक्त थे[2]। इस कथन का क्या आधार है, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका है।

बाबा कृष्णदास ने वैष्णवदास कृत 'गीतगोविंद भाषा' और 'भागवत भाषा' नामक रचनाओं का प्रकाशन किया है। 'गीतगोविंद भाषा' के अंत में "सं० १७७७ पौष बदी २ लिखितं" का उल्लेख मिलता है। इसे उक्त बाबा जी ने 'गीतगोविंद भाषा' का रचना-काल बतलाया है। यदि बाबा जी के कथन को ठीक माना जाय, तब यह कहा जावेगा कि यह रचना प्रियादास जी कृत 'रसिकमोहिनी' से प्राय: १७ वर्ष पूर्व और 'भक्तमाल-टीका' से ८ वर्ष पश्चात् लिखी गई थी। पौत्र का रचना-काल [illegible] पितामह के रचना-काल से प्राय: ४०-५० वर्ष बाद का होना चाहिए; किंतु पूर्वोक्त उल्लेख के अनुसार पितामह प्रियादास जी और पौत्र वैष्णवदास जी पर्याप्त समय तक साथ-साथ

---

१. **श्री प्रियादास रस-रासि कौ, पौत्र वैष्णवदास ।**
ताही कौ 'रसजानि' कै, कीनौं नाम प्रकास ॥ २ ॥
श्री हरिजीवन गुरु - कृपा, पाय सोई 'रसजानि' ।
श्री भागवत महात्म्य की, भाषा करी बखानि ॥ ३ ॥

—'भागवत माहात्म्य भाषा'

श्री प्रियादास अति ही सुखकारी । भक्तमाल - टीका विस्तारी ॥
तिनकौ पौत्र परम रंगभीनौ । नाम वैष्णवदास सु कीनौ ॥५७॥

—'भक्तमाल माहात्म्य'

श्री हरिजीवन नाम, मेरे गुरु सु महा ।
तिनकौ कर अभिराम, नित मम सीस अहा ॥
दास वैष्णवदास, भाषा तिहि सु करी ।
श्री वृंदाबन बास, निसि-दिन मनहिं धरी ॥

—'गीतगोविंद भाषा', पृ० ३८-३९

२. **श्री भक्तमाल (वृंदाबन), पृष्ठ 'बीस'**

रचना करते हुए दिखलाई देते हैं ! इससे जान पड़ता है कि 'गीतगोविंद भाषा' के अंत में लिखा हुआ संवत् उसका रचना-काल नहीं है । वह उसका लिपि-काल है और वह भी किसी तरह १८७७ के बजाय १७७७ हो गया है । यह भी संभव हो सकता है कि वैष्णवदास जी प्रियादास जी के खास पौत्र न होकर कुटुंब-परिवार के नाते ही पौत्र रहे हों ।

हम गत पृष्ठों में प्रियादास जी का जन्म-काल सं० १७३० के लगभग लिख चुके हैं । यदि वैष्णवदास जी प्रियादास जी के खास पौत्र थे, तब उनका जन्म-काल सं० १७७० के लगभग होना चाहिए । उनकी 'भागवत भाषा' नामक रचना की पूर्ति सं० १८०७ में हुई थी[1]; जो पूर्वोक्त जन्म-काल के अनुसार उनकी ३७ वर्ष की आयु में रची हुई कही जावेगी । वैसे 'भागवत भाषा' जैसे विशाल ग्रंथ की रचना ३७ वर्ष की आयु में होना असंभव तो नहीं है; फिर भी संदेहास्पद अवश्य है । इससे उनका जन्म-काल सं० १७७० से कुछ पूर्व का अनुमानित होता है और इससे उस अनुमान की पुष्टि होती है कि वैष्णवदास जी कदाचित प्रियादास जी के खास पौत्र नहीं थे ।

वे चाहें प्रियादास जी के खास पौत्र न हों, किंतु उनके निकट आत्मीय और परम कृपापात्र अवश्य थे । उनके सत्संग में रहते हुए ही वैष्णवदास जी को काव्य-तत्व और भक्ति-रस का बोध हुआ था । उनका 'रसजानि' नाम भी प्रियादास जी ने ही रखा था[2] । उनकी इस कृपा का उल्लेख वैष्णवदास जी ने भागवत भाषा के प्रत्येक स्कंध के अंत में तथा अन्यत्र भी किया है[3] ।

'मिश्रबंधु विनोद' में ३ वैष्णवदास और २ रसजानि नामक कवियों का उल्लेख मिलता है; जब कि वैष्णवदास रसजानि एक ही भक्त-कवि थे । उक्त ग्रंथ में उनकी रचनाओं को इस नाम के भिन्न-भिन्न कवियों की कृतियाँ मान

---

१. संवत अष्टादस सत सात । जेठ बदी छठ मंगल गात ।।

२. श्री प्रियादास रस-रासि को, पौत्र वैष्णवदास ।
ताही कौ 'रसजानि' कै, कीनौं नाम प्रकास ।।
—'भागवत माहात्म्य भाषा'

३. श्री प्रियादास रस-रासि की, पाय कृपा रसजानि ।
अगम कियौ निपटै सुगम, प्रथम स्कंध बखानि ।।
रसिक बरनि मनहरन के, श्री प्रियादास जस बास ।
तासु हिए रस-रासि कौ, कृपा विलास प्रकास ।।
—'भागवत भाषा'

कर उन्हें पृथक्-पृथक् कवि संख्याओं पर लिख दिया गया है। कवि सं० ३७२ पर कवि और ग्रंथ का नाम ठीक है; किंतु रचना-काल सं० १८०७ के बजाय सं० १७०७ लिखा गया है। उसके विवरण में कवि को नरहरिदास का शिष्य लिखा है, जब कि उनके गुरु का नाम हरिजीवन था।

वैष्णवदास जी के जन्म-काल की तरह उनके देहावसान का यथार्थ काल भी अज्ञात है। सं० १८३३ तक उनकी विद्यमानता का उल्लेख रामहरि नामक भक्त-कवि की उक्त संवत् में कथित 'सतहंसी' नामक रचना में हुआ है[1]। इससे उनका अस्तित्व-काल सं० १८३३ के पश्चात् तक माना जा सकता है। हम उनका जन्म-संवत् १७७० के लगभग अनुमानित कर चुके हैं और 'भागवत भाषा' की रचना के कारण उससे कुछ पूर्व का होना भी संभावित मान चुके हैं। इस प्रकार उनका जन्म सं० १७६० से १७७० तक और देहावसान सं० १८३५ से १८४० तक होना अनुमानित होता है।

वैष्णवदास जी के नाम से प्रचलित रचनाएँ—१. भक्तमाल माहात्म्य, २. भक्तमाल प्रसंग, ३. भक्तमाल रसबोधिनी टीका, ४. भक्तमाल टिप्पणी, ५. भक्तमाल की उरवसी टीका, ६. भागवत भाषा, ७. भागवत माहात्म्य भाषा, ८. गीतगोविंद भाषा और ९. भक्तिरत्नावली भाषा हैं। इनमें से भक्त-माल प्रसंग, भक्तमाल रसबोधिनी टीका और भक्तमाल टिप्पणी एक ही रचना के कई नाम हैं, जो इन वैष्णवदास से पृथक निंबार्क संप्रदायी वैष्णवदास की कृति है। इसका रचना-काल श्री रूपकला जी के मतानुसार सं० १८०० है[2]। श्री उदयशंकर जी शास्त्री ने उनका समय 'मिश्रबंधु विनोद' के अनुसार सं० १७८२ से १८८४ तक बतलाया है[3]। 'भागवत माहात्म्य-भाषा' कोई पृथक् ग्रंथ नहीं है; बल्कि 'भागवत भाषा' का ही अंश है। 'भागवत भाषा' और 'गीतगोविंद भाषा' वैष्णवदास जी की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, जो बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ पर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१. भक्तमाल-माहात्म्य—इसमें रचना-काल का उल्लेख नहीं है; किंतु यह वैष्णवदास जी की कदाचित आरंभिक कृति है। प्रियादास जी कृत भक्त-

---

१. **सची - सुन की कृपा बल, 'सतहंसी' बल नाम।**
करी वैष्णवदास बल, बल वृंदाबन धाम ॥ ९८ ॥

२. **श्री रूपकला कृत भक्तमाल टीका (तो० सं० लखनऊ), पृ० ३५**

३. **श्री भक्तमाल (वृंदाबन), पृष्ठ 'बीस'**

माल-टीका बन जाने के बाद सं० १८०० के लगभग इसकी रचना हुई होगी। यह रूपकला जी कृत भक्तमाल-टीका के अंत में मुद्रित हुई है। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

आरंभ— **बंदौं भक्त-सु माल भल, भक्तन जस मुद मूल ।**
जो अति प्रिय भगवंत कों, हरन घोर त्रय सूल ।।
रसिक रूप हरि रूप पुनि, श्री चैतन्य स्वरूप ।
हृदय कूप अनुरूप रस, उभल्यौ उहै अनूप ।।
श्री नारायनदास जी, कीन्हीं भक्त - सु माल ।
पुनि ताकी टीका करी, प्रियादास सु रसाल ।।
ताकौ साधुन के कहे, करों महात्म्य बखान ।
लै ग्रंथन मत साधुनक, परचै रस की खान ।।

अंत—**प्रियादास अति ही सुखकारी । भक्तमाल टीका विस्तारी ।।**
तिनकौ पौत्र परम रँगभीनौ । वक्तन हित महात्म यह कीनौ ।।
भक्तमाल के गंध कों, लेत भक्त अलि आय ।
भेक विमुख ढिग ही बसे, रहें कीच लपटाय ।।

२. **भक्त उरवसी**—यह नाभा जी कृत भक्तमाल और प्रियादास जी कृत भक्तमाल-टीका पर वैष्णवदास जी कृत टिप्पणी के रूप में रची हुई कही जाती है। इसी नाम की एक भक्तमाल-टीका के रचयिता लालचंद्रदास भी हैं, जिसका रचना-काल सं० १८०० बतलाया है[1]। यह रचना हमने नहीं देखी है।

३. **भागवत भाषा** यह संपूर्ण भागवत का सरल ब्रजभाषा अनुवाद है। इसके आरंभ में 'भागवत-माहात्म्य' का ब्रजभाषा अनुवाद भी लगा हुआ है, जिसे कुछ लेखकों ने वैष्णवदास जी की पृथक रचना बतलाया है। 'भागवत भाषा' ग्रंथ दोहा-चौपाई छंदों में रचा गया है। कुल छंदों की संख्या १५ हजार के लगभग है, जो इस ग्रंथ की विशालता का द्योतक है। इसकी कई हस्त-प्रतियाँ मिलती है। इस ग्रंथ की पूर्ति सं० १८०७ की ज्येष्ठ कृ० ६ मंगलवार को हुई, जैसा इसके अंत में उल्लेख मिलता है—

संवत अष्टादस सत सात । जेठ बदी छठ मंगल गात ।।

बाबा कृष्णदास ने इसे दो खंडों में प्रकाशित करने की योजना बनाई थी। प्रथम खंड में एक से नवें स्कंध तक तथा दूसरे में दस से बारहवें स्कंध तक वे छापना चाहते थे। पहिले उन्होंने दूसरा खंड प्रकाशित किया; जिसमें दशम,

१. **श्री रूपकला कृत भक्तमाल टीका (ती० सं० लखनऊ), पृ० ३५**

एकादश तथा द्वादश स्कंध छापे गये हैं । फिर पहिले खंड में वे केवल प्रथम और द्वितीय स्कंध ही छाप सके; अन्य स्कंधों को अर्थाभाव से नहीं छापा जा सका । प्रथम खंड की 'भूमिका' में बाबा जी ने लिखा है—"भाषा भागवत रचे जाने का समय १८२२ से १८३१ संवत् पर्यंत है । प्रायः समस्त स्कंधों की पुष्पिका में इसी समय का निर्देश किया गया है । गीत गोविंद की रचना के पश्चात ही भाषा भागवत की रचना सिद्ध होती है ।"

इस ग्रंथ के जितने स्कंध प्रकाशित हुए है, उनमें किसी में भी बाबा जी का बतलाया हुआ रचना-काल नहीं है । केवल १२ वें स्कंध के अंत में सं० १८०७ का उल्लेख है, जैसा पहिले लिखा जा चुका है । फिर न मालूम बाबा जी ने इसके रचना-काल के संबंध में इस प्रकार का कथन क्यों किया है !

'भागवत भाषा' वैष्णवदास जी की प्रशंसनीय रचना है । भागवत जैसे विद्वत्तापूर्ण विशद ग्रंथ का सरल ब्रजभाषा में संपूर्ण रूप में अनुवाद करने का प्रयास वास्तव में सराहनीय है । इसकी रचना चौपाई छंद में हुई है । प्रत्येक अध्याय के आरंभ में एक दोहा है, जिसमें उक्त अध्याय में वर्णित विषय की सूचना है । इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ उपस्थित किया गया है—

प्र० स्कंध (आ०)—**रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्री चैतन्य सरूप ।**
हृदै कूप अनुरूप रस, उभझ्यौ उहै अनूप ।।

राधा - चरन अरुन मन ध्याऊँ । सीस नाय इक बात सुनाऊँ ।।
हे राधे ! सुन बिनती मेरी । कृपा कटाच्छ जु चाहौं तेरी ।।
तिह कटाच्छ जल सींचों ताहि । बीज रूप हिय बानी आहि ।।
सब अंग सुंदर मेरी कविता । सुंदर करो प्रेम-रस सबिता ।।
सब कवि कहत बदन छबि ससि सम । अपने मुख सम करौ काव्य मम ।।
ससि समान जिन करिहौ सजनी । प्रगट कलंक होत जिहिं रजनी ।।
अर्थ गंभीर करो पुनि ऐसी । नाभि गंभीर बिराजत जैसी ।।
दुरजन जन मन छेदहु ऐसें । प्रीतम हिय द्रिग भेदत जैसें ।।
भाव बढ़ावत दरसन ऐसें । मम कबिता में गुन होय तैसें ।।
तुव वियोग मन धर्म मिटावै । ऐसें काव्य न दोष रहावै ।।
अहो कृष्न ! गोबिंद बिहारी । बिनती सुनो हमारी प्यारी ।।
तुमें त्रिभंग कहत जन सबै । मत मम काव्य बिगारौ अबै ।।
जो पै करो चिकुर सम करो । जिन कर सब जन के मन हरो ।।
ब्यास-चरन हे मन सुमरन करि । बिघन बिनासन दुख-नासन हरि ।।
त्रिविध ताप जन जरत बचाए । सक्ति सहित भगवत गुन गाए ।।

(अंत)-सुंदर बानी सों यों राजा । पूछी श्री सुक कों सुख काजा ॥
व्यास-पुत्र तब बोलत भए । अति धर्मग्य महा छबि छए ॥
श्री प्रियादास रस-रासि की, पाय कृपा 'रसजानि' ।
अगम कियौ निपटै सुगम, प्रथम स्कंध बखानि ॥

द्वि० स्कंध (आ०)-स्रवन-कीर्तनादिकनि करि, स्थूल रूप भगवान ।
तामें मन ठहरात है, प्रथम ध्याय यह जान ॥
हे नृप ! प्रश्न श्रेष्ठ है भारी । सकल लोक कौ मंगलकारी ॥
ग्यानवान के संमत है पुनि । सुनिवे के लायक तातें सुनि ॥
जो नर आत्म तत्व नहिं जानैं । घर में अति आसक्तिहि ठानैं ॥
हे नृप ! तिनै हजारनि बात । सुनिवे जोग आहि बिख्यात ॥
नींद रात की आयुहि हरै । कछु आयु छै तिय संग करै ॥
दिन की आयु उदिम नें जाय । कुटुम भरन तें कछू नसाय ॥
तन सुत तिय परिकर हैं जितौ । यह नर नष्ट लहत है तितौ ॥
तऊ मन नैकु न आवत यातें । अति आसक्त ह्वै रह्यौ जातें ॥
सर्वातम ईस्वर जो आहि । हे नृप ! जो नर चाहै ताहि ॥
सो नर हरि सुमिरन मन लावे । हरि कों सुनै रु हरि कों गावै ॥
निज सुधर्म की निष्ठा करि जो । सांख्य जोग करि कै दूजै हो ॥
अंत काल में हरि कौ ध्यान । नर कौ जनम लाभ सोई जान ॥

(अंत)-महाभागवत बिदुर है जोई । दुस्तज बंधुनि तजि करि सोई ॥
जाय तीरथनि माँझि अन्हायौ । सूत जू यह तुम हमें सुनायौ ॥
तत्व बिचारि बिदुर मैत्रे मुनि । जहाँ कियौ सो हमें कहौ पुनि ॥
पूछें पीछे मैत्रे मुनि ज्यों । कह्यौ बिदुर सो हमें कहौ त्यों ॥
अहो सूत जू ! बिदुर चरित सब । तुम नीकें बरनौ हम सों अब ॥
बिदुर नें बंधु त्याग क्यों करे । फिर कहौ कैसें घर में बरे ॥
तुम हम सों पूछौ है जोई । श्री सुक सों नृप पूछ्यौ सोई ॥
श्री सुक नृप सों कह्यौ पुनि जैसें । मो सों सुनौ अहो मुनि तैसें ॥

दशम स्कंध (आ०)-कंस कृष्न तें मीच सुनि, हते तासु छै भ्रात ।
ध्याय प्रथम ही दसम के, यही कथा विख्यात ॥
चंद - सूर कौ बंस हौ जितौ । हे मुनि ! तुमने बरन्यौ तितौ ॥
उभै बंस के राजा जे पुनि । तिनके अदभुत चरित कहे मुनि ॥
यदु धर्मग्य बंस में श्री हरि । प्रगट भए सबही अंसनि करि ॥
तिन मन-भावनि किये चरित जे । करि बिस्तार कहौ सब ही ते ॥

इक पसुघाती बिना अहो मुनि । ऐसौ कौन सुनै नहिं हरि-गुन ॥
मनरु कान जिन तें सुख पावै । मुक्त हु बार-बार जे गावै ॥
भव रोगहिं औषद एई पुनि । तातें सब कौ सुनिवे हरि-गुन ॥
रन में कौरव सेना जोई । हे मुनि ! महा समुद्र है सोई ॥
सूरनि दुर्जय भीष्मादि जे । ताही के सु तमिंगिल हे ते ॥
अर्जुन आदि पितामह मेरे । ता समुद्र में तिन जब घेरे ॥
हरि भए नाव तरे ताहिं ऐसें । हे मुनि ! गोखुर कौ जल जैसें ॥
अस्त्र चलायौ अस्थामा जब । यह मेरौ तन दग्ध भयौ तब ॥
मात गई हरि सरन हमारी । चक्र लै पैठे उदर मुरारी ॥
कुरु-पांडुनि कौ बीज हौ मैं मुनि । जरत बचायौ मोहि तिहीं पुनि ॥
जिनन कृपा करि नर बपु धारचौ । भक्तन कौ अति सुख बिस्तारचौ ॥
दुष्ट सबै जिन मारि पछारे । तिनके चरित कहो मुनि सारे ॥
पहले तुमनि सकर्षन जोई । कहे रोहनी के सुत सोई ॥
कह्यौ देवकी हू कौ सुत पुनि । और जन्म बिन यह न बने मुनि ॥
पित घर तें हरि ब्रज क्यों गए । जाति समेत बसत कहाँ भए ॥
ब्रज में बसि हरि कियौ कहा मुनि ! जाय मधुपुरी कहा कियौ पुनि ॥
अरु साच्छात मात कौ भ्रात । सो वह कंस हत्यौ किहिं बात ॥
द्वारापुरी जादवनि संग । कहौ कितक दिन कीनों संग ॥
तिनकी तिया बिबाही हैं पुनि । यह सब हम सों कहियै हे मुनि ॥
और हू कृष्न चरित कहियै सब । हमरे सुनिवे चाह बढ़ी अब ॥
तव मुख कमल अमृत से हरिगुन । बार-बार पीवत हों हे मुनि ॥
तातें दुसह भूख-प्यास जे । तब कहूँ मोहि सतावत नहिं ते ॥
यह सुनि महाभागवत सुक मुनि । नृप की बहुत सराह करी पुनि ॥
पुनि हरि चरित कियौ आरंभ । जो धोवै कलियुग के दंभ ॥

(मध्य)— उनतीसे अध्याय में, कठिन कहे हरि बैन ।
अन्तर्हित भए रास में, बहुरि कमल-दल नैन ॥

फूली सरद मल्लिका चहुँ दिसि । हरिहू हरषि निरखि कें सो निसि ॥
रमन करन कों मन पुनि कीनों । सरन योगमाया कौ लीनों ॥
तब ह पूर्न उदै भयौ चंदा । सब ही कों दीनों आनंदा ॥
सुंदर पूर्व दिसा कौ मुख जो । किरन करन करि अरुन कियौ सो ॥
जैसें बिरही जन निज तिय मुख । केसरि मंडित करि पावै सुख ॥
रमा बदन सौ ससि सों नीकौ । नव कुंकुम हू कौ रंग फीकौ ॥

किरननि करि बन रँग्यौ गयौ सब । सुंदर बैन बजायौ हरि तब ॥
रस छाके बाँके दृग जिनके । सुनते ही मन मोहे तिनके ॥
वेणु-गान ब्रज-तियनि सुन्यौ जब । अंगन छाय अनंग गयौ तब ॥
हरि जू ने मन पकर्‌यौ जिनकौ । सबही काज बिसरि गयौ तिनकौ ॥
बेगि चलीं निज प्रीतम पासा । कुंडल लोल कपोल प्रकासा ॥
कोऊ गाय दुहावत धाई । कोऊ पटकि दोहनी आई ॥
कोऊ औंटत पय तजि भागी । चूल्हे ही पर थूली त्यागी ॥
कोऊ परोसत ही तजि आई । कोऊ दूध पियावति धाई ॥
तिनहूँ टहल पतिन की त्यागी । कोऊ भोजन करत सु भागी ॥
कोऊ लीपति उबटति कोऊ । कोऊ आँजति ही दृग दोऊ ॥
उलट पलट पट भूषन जिनके । आईं उत्कंठित चित तिनके ॥
तात-भ्रात-पति-बंधुनि बरजीं । हरि चित रहे सु नैक न लरजीं ॥
कोई घरनि में रोकि जु लईं । बाहिर तें नहिं निकसति भईं ॥
तिन दृग मूँदि भावना धरीं । ध्यान माँहि लै कीनें हरी ॥
दुःसह प्रीतम विरह ताप सों । पाप सबै मिटि गये आप सों ॥
ध्यान में पिय सों मिलि सुख पायौ । ताही करि सब पुन्य बिलायौ ॥
जो हरि परमातम करि गायौ । जार बुद्धि हू करि तिहि पायौ ॥
गुन मय देह तजि दई तबै । छीन भए पुनि बंधन सबै ॥
(अंत)-जाकौ नाम सुनै कै कहै । तौ नर कौ सब पाप सु दहै ॥
सब ठाँ धर्म चलायौ जाकौ । काल चक्र ही आयुध ताकौ ॥
धर कौ भार दूरि करिवे जो । ताकों कहौ कौन अचिरज सो ॥
जै जे जननि वास सुखकारी । जन्म बाद देवकी मँझारी ॥
जदुवर जाके सेवक प्यारे । निज भुजानि करि पाप निवारे ॥
पुनि जड़ जंगम के दुखहारी । ब्रज पुर-बनितनि के सुखकारी ॥
प्रेम रूप हिय काम बढ़ावत । जब सुंदर मुख करि मुसिक्यावत ॥
सब तें परे सु रमा - निकेत । निज धर्मनि की रच्छा हेत ॥
प्रगट करी श्री मूरति जानें । नासन-कर्म कर्म किये तानें ॥
जदुनंदन - पद सेवा चाहें । सो नर इनहीं कों अवगाहें ॥
हरि कौ स्रवन-कीर्तन-ध्यान । हे नृप ! है श्रीमान महान ॥
ताही करि हरि धामहिं पावै । दुस्तर काल न तहाँ सतावै ॥
जो धामहिं पावन के हेत । बन गमने नृप त्यागि निकेत ॥
याही तें हरि चरित हैं जिते । नहिं अचिरज पवित्र हैं तिते ॥
पहलें सब ही पापहिं हरें । पुनि या जनहिं मुक्ति लै करें ॥

एकादश स्कंध (आ०)-कही इकादस में यही, कथा पहिल के ध्याय ।
स्वकुल हरन मुनि द्वार हरि, लियौ मुसल उपजाय ।।
भ्रातरु बंधुनि जुति जदुराय । धर भर हरचौ कलह उपजाय ।।
दुष्ट सुजोधनादि जे गाए । तिननि पांडवनि कों सु सताए ।।
कपट सों जीति द्रोपती गही । ते तब कुपित भए अति सही ।।
तेइ हेत करि हरि नृप मारे । यों पृथ्वी के भार उतारे ।।
अप्रमेय हरि जदुकुल द्वार । हर धर भारहिं कियौ विचार ।।
अब ही भार गयौ है नाँहीं । जदुकुल दुसह आहि धर माँहीं ।।
इन्हैं और को जीतन हारे । मेरे आस्रय बढ़े सु भारे ।।
इनमें रिस उपजैयै ऐसें । बाँसनि माँहि अगिन कों जैसें ।।
ये सब अंतर्ध्यान होय जब । हम हूँ अपने धाम जाँय तब ।।
ईस सत्य संकल्प जु हरी । ऐसें अपने मन में करी ।।
पुनि करि मिस विप्रनि कौ साप । निज कुल संहारयौ प्रभु आप ।।
(अंत)-सुंदर बचन कृष्ण उर ल्याय । कछू अपनपौ लियौ सिराय ।।
नष्ट बंधु जे संतति हीन । तिनकी क्रिया सु अर्जुन कीन ।।
सुंदर श्री हरि मंदिर आहि । हे महाभाग ! त्याग कै ताहि ।। ×
हरि कौ जन्म - कर्म जो गावै । स्रद्धा करि सो पाप मिटावै ।।
या विधि हरि अवतार चरित्र । बहुरों बालचरित्र पवित्र ।।
इहाँ कहे रु पुराननि माँहीं । तिनैं गाय जो भूलै नाँहीं ।।
तौ नर प्रेम - भक्ति कों लहै । परमहंस गति हरि कों गहै ।।
द्वादश स्कंध (आ०)-मगध बंस के नृप कहे, द्वादस पहिलें ध्याय ।
भए बरन संकर सु ते, कलि प्रभाव कों पाय ।।
जदुकुल भूषन कृष्न जु आहि । अपने धाम गए ते ताहि ।।
कौन कौ बंस भयौ धर में पुनि । यह हमसों सब कहौ अहो मुनि ।।
(अंत)— तुक अमिलनि मात्रा अधिक, अर्थ बनावनि हेत ।
तुक मिलवन संछेप हित, कहूँ अर्थ सकेत ।।
तुक अमिलन में दोष नहिं, कवि प्रयोग कों देख ।
घटि बढ़ि मात्रा कों, निपुन पढ़ि लैहैं सु विसेष ।।
कहूँ और कौ और पुनि, जो अर्थहिं लखि लेहु ।
पाठ-भेद सो जानियौ, मोय दोष निज देहु ।।
भोट - ढेड़ - पसु हू रस पागै । जो रस पगै न स्रोता आगै ।।
संबत अष्टादस सत सात । जेठ बदी छठ मंगल गात ।।

४. गीतगोविंद भाषा—श्री जयदेव कृत संस्कृत गीति-काव्य का यह सरस व्रजभाषा अनुवाद है, जो विविध छंदों में रचा गया है । इसकी पूर्ति सं० १८१४ की मार्गशीर्ष कृ० ८ रविवार को हुई, जैसा खोज में प्राप्त इसकी हस्त-प्रतियों में उल्लेख मिलता है—

अष्टादस सत जान, चौदह अधिक यही । संवत सरस प्रमान, मगसिर मास सही ।।
जयति गीत गोबिंद, गावहु रसिक अहो[1] ।।

इस पुस्तक का प्रकाशन बाबा कृष्णदास ने किया है, जिसके अंत में "संवत् १७७७ पौष वदी २ लिखितं ।" उल्लेख मिलता है । इस उल्लेख के कारण उक्त बाबा जी ने इसका रचना-काल सं० १७७७ बतलाया है[2] । बाबाजी का यह कथन ठीक नहीं है । इसका रचना-काल वास्तव में सं० १८१४ है, जो बाबा जी द्वारा प्रकाशित पुस्तक में किसी प्रकार नहीं छप सका है । उक्त मुद्रित प्रति के अंत का उल्लेख उसका लिपि-काल है, जो १८७७ के बजाय १७७७ छप गया है । इसके कतिपय छंद उदाहरणार्थ यहाँ दिये जाते हैं—

ऐसे बसंत में काम की पीर सों, व्याकुल बीर अहीर की बेटी ।
माधवी फूल तें कोमल पाँय, फिरै बन ही बन लाज लपेटी ।।
ढूँढ़त प्रान - पियारे दुखारे कों, चाह सगी उत्साह चपेटी ।
ओठनि पापरी आ परी यों, यह ताहि कही इक बापुरी चेटी ।।

ललित लोंग की लतनि लपटि करि, कोमल मलय समीरे ।
मधुकर निकर मिले कोकिल सुर, झंकृत कुंज कुटीरे ।।
विहरत हरि सखि या रितु माँहीं ।
नाँचत युवतिन के संग राधे, विरही कों सुख नाँहीं ।।
काम मनोरथ करि-करि, पथिक बधूजन करत विलापैं ।
जुत अलि कुलनि कुसुम सुषमा सों, सघन सु बकुल कलापैं ।।
मृगमद हूँ तें सरस सुगंधित, नव दल जुक्त तमालैं ।
तरुनिन के मन छेदन मनसिज, नख से किंसुक जालैं ।।
मदन नृपति के कनक दंड जनु, केसर कुसुम प्रकासे ।
पाडर के झोंरा भौंरागन, स्मर तरकस से भासें ।।
लज्जा हीन जननि जनु देखत, हँसि करुना तरु राजै ।
बिरही के चीरन कों मानों, केतिक आरा साजै ।।

---

१. 'परिषद पत्रिका' में प्रकाशित श्री वेदप्रकाश गर्ग का लेख-'रसजानि वैष्णवदास'
२. 'गीतगोविंद भाषा' में मुद्रित आरंभिक 'दो शब्द', पृ० ४

बासंती की सुललित अति, नव मालती सुधौ ।
मुनिजन हू के मन कों मोहन, जुवा अकारन बंधौ ।।
फूली लता मोतिया सों मिलि, फूले चूत यहाँ हैं ।
वृंदाबन धोयौ यमुना जल, सब दिसि फैल प्रवाहैं ।।
श्री जयदेव कथन यह नीकौ, हरिपद सुमिरन सारं ।
सरस बसंत समय बन बरन्यौ, अनुगत मदन विकारं ।।

जमुना के तीर धीर मलय समीर जहाँ
रच्यौ बलवीर वीर रास ही बनाय कै ।
गोपिन के संग सो अनंग की उमंग छयौ,
कानन में तानन कौ रंग घुमड़ाय कै ।।
ए री चलि, मेरी अलि, चेरी बलि मेरी सौंह,
तोहि-मोहि देखत ही रहि हैं लजाय कै ।
बंसी गिरि जैहै, काँपि पसीननि छैहै,
दीठि सब लें उठै है, हँसि दैहैं खिसयाय कै ।।

रति सुखसार कुंज अभिसार, सु तहाँ मदन मनमोहन ।
न करि विलब तितंबिनि राधे, चल प्रीतम ढिग सोहन ।।
धीर समीरे यमुना तीरे, बसत बने बनमाली ।। ध्रु० ।।
कर संकेत नाम लै तेरे, मुरली मधुर बजावत ।
तुव तन परसि पवन रज आवत, ताहू उठि लपटावत ।।×
श्री हरिदेव सेव पारायन, कवि जयदेव सु गायौ ।
प्रमुदित हृदय सदय माधव कौं, नवहु सुकृत फल पायौ ।।

५. भक्ति रत्नावली भाषा—यह विष्णुपुरी जी द्वारा संकलित सुप्रसिद्ध ग्रंथ का ब्रजभाषा अनुवाद है। इसकी हस्त-प्रति छतरपुर राजकीय पुस्तकालय में कही जाती है। इस ग्रंथ को हमने नहीं देखा है।

६. स्फुट पद—वैष्णवदास जी कृत कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं। उनमें से वंदना का एक पद यहाँ दिया जाता है—

मन श्री जीव प्रभु करि ध्यान ।
श्री महाप्रभु श्री सनातन - रूप हृदय सुजान ।।
वेद त्रिपदी अथ श्री भागवत व्यास बखान ।
संदर्भ करि तत्सुतत्व कृष्ण जु भक्ति प्रीति-प्रधान ।।
हरति संसै नृपति राउ जु पंडितनि दै मान ।
श्री राधिका कृष्णार्च्चनदीपिका करि जु प्रमान ।।
सेव्य श्री राधिका दामोदर जु प्रीति निधान ।
'दास वैष्णव' प्रभु ललित ब्रजबास नित देउ दान ।।

४३. राधिकादास

राधिकादास जी श्री रामराय जी के अनुज चंद्रगोपाल जी के वंश में ब्रजेन्द्र जी के पुत्र थे । उनका जन्म वृंदावन में सं० १७७० में हुआ माना जाता है । उन्होंने ब्रजभाषा पदों में 'भावसिंधु' नामक एक छोटे से ग्रंथ की रचना की थी । उसका रचना-काल सं० १८१२ उक्त ग्रंथ की पुष्पिका में इस प्रकार दिया गया है—

> **श्री ब्रजेन्द्र गोस्वामि प्रभु, पिता कृतारथ कीन ।**
> **'भावसिंधु' रचना भई, अष्टादस सत मीन ॥**

राधिकादास जी की इस रचना में अधिकतर श्री जयदेव जी की वंदना के पद हैं । उदाहरणार्थ कुछ पद यहाँ दिये जाते हैं—

> **त्रिभुवन कौ गुरु, श्री जयदेव भोजदेव कौ ।**
> **दरसन के हेत ही समेंट लेत माया भ्रम,**
> **ऐसौ को पुनीत प्रीति राखै निज सेव कौ ॥**
> **साधन बल धोय हिये, सेवा सुख साध्य किये,**
> **करिकै बताई भेद सोही सेवा सेव कौ ।**
> **आदि हू अनादि वारिद, बारद सरद सम,**
> **जाहि देखि भए कहा कहूँ देव देव कौ ॥**
> **श्रीमद वृंदाबन गावन कों धावन कों,**
> **भावन कों भाव - चाव दिये देव-देव कौ ।**
> **'राधिकादास' सब आस खास पूरी करी,**
> **रसिक - सिरोमनि की धन्य ऐसी टेव कौ ॥**

> **हरि कौ आरोप, कहा करूँ जयदेव में ॥**
> **स्वयं जो दया के सिंधु, बंधु दीन - हीनन के,**
> **प्रकटे कृपालु जगदीस भूमि देव में ।**
> **कौन सो है बाकी बचौ, जासें मैं रचना रचौं,**
> **पचौं बेकारन प्रयास अन्य देव में ॥**
> **बनि कै चैतन्य कभू, कभू राधा-माधव बनि,**
> **कमती करवाई आसक्ति देव - देव में ।**
> **'राधिका कौ दास' एक आस, विस्वास एक,**
> **हरि कौ आरोप कहा करूँ जयदेव में ॥**

४४. गुणमंजरी

गुणमंजरी जी के जीवन-वृत्तांत से संबंधित कोई बात ज्ञात नहीं हुई है। 'गुणमंजरी' उनका नाम था, अथवा उपनाम; यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। ऐसा अनुमान होता है कि यह उनका भक्तिपरक उपनाम था। उनका मूल नाम क्या था, इसे जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है।

खोज में उनकी एक छोटी सी रचना 'स्मरन मंगल भाषा' प्राप्त हुई है, जो रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल' के आधार पर रची गई है। इसके आरभ में उन्होंने चैतन्य मत के आरंभिक भक्तों की वंदना की है। इससे ही यह निश्चित हुआ है कि वे चैतन्य मतानुयायी भक्त-कवि थे।

उनकी कृति के रचना-काल और उनके अस्तित्व-काल के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नही होती है। आगामी पृष्ठों में दक्ष सखी नामक एक भक्त-कवि का उल्लेख हुआ है। उनकी रचना से ऐसा संकेत मिलता है कि गुणमंजरी जी उनके गुरु थे। दक्ष सखी की दो रचनाएँ सं० १८३५ और १८३६ की उपलब्ध हैं। उनसे उनका जन्म-संवत् १८०० के लगभग अनुमानित किया गया है। उसके आधार पर यह समझा जा सकता है कि गुणमंजरी जी का जन्म सं० १७७५ के लगभग हुआ होगा। दक्षसखी के उक्त संबंध के कारण ही यह भी ज्ञात हुआ है कि गुणमंजरी जी वृंदाबन के सुप्रसिद्ध गोस्वामी गोपाल भट्ट जी की शिष्य-परंपरा में हुए थे।

रूप गोस्वामी जी कृत 'स्मरण मंगल' एक छोटा सा सुप्रसिद्ध स्तोत्र काव्य है। इसके १२ श्लोकों में श्री राधा-कृष्ण की अष्टकालिक दैनंदिनी लीलाओं का संक्षिप्त कथन किया गया है। इसी के आधार पर चैतन्य मतानुयायी परवर्ती भक्त कवियों ने अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें उक्त अष्टकालीन लीलाओं का विविध भाँति से वर्णन किया गया है। गुणमंजरी जी ने भी इसी के आधार पर अपनी 'स्मरण मंगल भाषा' नामक रचना की है। यह रचना चौपाई छंद में लिखी गई है और इसकी भाषा सरल ब्रजभाषा है।

इसके आरंभ में मंगलाचरण और चैतन्य मतानुयायी भक्तों की वंदना है। इसके उपरांत उसका आरंभिक अंश इस प्रकार है—

अष्ट काल लीला मन भाई। श्रीमत रूप गुसाईं गाई॥
मंगल रूप ते ग्यारा श्लोक। सुमिरत हरत भक्त के सोक॥

सुमिरन मंगल याहि तें कहियै । ताकी भाषा हित दै लहियै ।।
भक्ति हेत यह कीनी भाषा । जो जन जानें सो उर राखा ।।

इसके बाद मूल श्लोकों का चौपाई छंद में ब्रजभाषा पद्यानुवाद किया गया है। बीच-बीच में कुछ अंश गद्य में भी है । प्रत्येक काल की लीला के पश्चात् रूपमंजरी के नाम से रूप गोस्वामी जी की वंदना करते हुए उक्त काल के आख्यान की पूर्ति का उल्लेख किया गया है ।

इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है—

अब पूर्व काल बारह घरी दिन चढ़े तारे हैं, ताकौ बरनन करत हैं ।

सृंगी - बेनु बजन लगे तब । ब्रजबासी देखन आये सब ।।
त्रिभुवन विजयी बेस बनायौ । मोर-पच्छ गुंजन करि छायौ ।।
तन-द्युति कर मनि-भूषन राजै । कटि किंकिनि, पद नूपुर बाजै ।।
पीत बसन तन चंदन छायौ । सकल सखन अस बेस बनायौ ।।
तब जसुमति अति व्याकुल भई । सुत मुख चूमि सुमिरि कर दई ।।
पुनि बलदेवहिं हाथ गहायौ । सृंगि-बेनु तब सखन बजायौ ।।
राम-कृष्ण बन गमन कियौ तब । ब्रज मन व्याकुल अतिहिं भयौ सब ।।
होय अचेत रहे सब ही जब । बोध परस्पर पुन बगदे सब ।।
आय घरन द्विज सबन बुलाये । सुत-मंगल हित दान कराये ।।

इसका अंतिम अंश इस प्रकार है—

वृंदाबन जन कुंज कुटीर । बिलसत दोऊ रति - रनधीर ।।
नित-नित इहि विधि करत विलास । सहचरि बिन नहीं जानत दास ।।
अमृत-सिंधु - यह जुगल बिहार । अस को कहै जु याकौ पार ।।
अमृत ब्रजबिहार रस गायौ । ताकौ द्रिग दरसन करवायौ ।।

रूपमंजरी पद कमल, तिनकौ करिकै ध्यान ।
करि संछेपहि बरनियौ, काल अष्टमाख्यान ।।

इति श्री स्मरण मंगल भाषा संपूर्ण

अष्ट काल साधन करै, प्रेम - भक्ति यह पाय ।
पढ़ै-गुनै मन - भ्रम मिटै, जुगल रूप दरसाय ।।
साधु-सिद्ध कौ यह मतौ, जामैं तत्व-विचार ।
'गुनमंजरी' गूढ़हिं लही, पावै सब गुन-सार ।।

४५. वृंदाबनदास

वृंदाबनदास जी श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख सहकारी अद्वैताचार्य जी की शिष्य-परंपरा में हुए हैं। उनके उपास्य देव श्री राधा-गोविंद जी थे और वे वृंदाबन में यमुना-तटवर्ती भ्रमर कुंज नामक स्थल पर निवास करते थे। उक्त भ्रमर कुंज वर्तमान 'भ्रमरघाट' हो सकता है। उनका यह संक्षिप्त परिचय उनकी रचना 'प्रेमभक्ति चंद्रिका भाषा' के आदि और अंत के निम्न लिखित उल्लेख से ज्ञात होता है—

कलि प्रगटायौ कृष्ण जिन, सीतापति मम ईस।
जयति-जयति अद्वैत प्रभु, दें पद-रज मम सीस ॥ ४ ॥
भ्रमरकुंज रस-पुंज मधि, भानु-सुता के कूल।
नव राधागोविंद जहँ, जुग-जुग जीवनि-मूल ॥ २५७ ॥

उनका जन्म-स्थान क्या था, यह ज्ञात नहीं होता है। उन्होंने ब्रजभाषा में रची हुई 'प्रेमभक्ति चंद्रिका' की भाषा को 'निज भाषा' कहा है[1]। इससे जान पड़ता है, वे ब्रजभाषा-भाषी थे और ब्रज के किसी स्थान में उत्पन्न हुए थे। उनके माता-पिता, वर्ण-जाति आदि के विषय में भी कुछ पता नहीं चलता है। वे गृहस्थ थे अथवा विरक्त, यह भी अज्ञात है। उनके जन्म और देहावसान के निश्चित संवत् अविदित हैं; किंतु उनके रचना-काल से उनका अनुमान किया जा सकता है। उनकी दो रचनाओं का काल सं० १८१३ और १८१४ है। इससे अनुमान होता है कि उनका जन्म सं० १७७५ के लगभग और निधन सं० १८४० के लगभग हुआ होगा।

उनकी रची हुई तीन छोटी रचनाएँ—१. भक्त-नामावली, २. प्रेमभक्ति चंद्रिका भाषा और ३. विलाप कुसुमांजलि भाषा उपलब्ध हैं। इन्हें बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है। इनके अतिरिक्त उनके कुछ स्फुट पद भी मिलते हैं। यहाँ पर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१. भक्त-नामावली—यह देवकीनंदनदास कृत बंगला पुस्तिका 'वैष्णव वंदना' का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है। चैतन्य मतानुयायी भक्त जनों में 'वैष्णव वंदना' का प्रति दिन पाठ होता है। उसे ब्रजभाषा-भाषी भक्तों के हितार्थ

---

१. **प्रेम चंद्रिका भारी। ग्रंथ जु मंगलकारी ॥ २३ ॥**
बढ़ी अमित अभिलाषा। ए पै सुगम न भाषा ॥
तव निदेस सुखकारी। 'निज भाषा' हित भारी ॥ २४ ॥

वृंदावनदास जी ने ब्रजभाषा में 'भक्त-नामावली' के नाम से प्रस्तुत किया है। इसमें चैतन्य मत के आरंभिक भक्तों का नामोल्लेख करते हुए उनकी वंदना की गई है। इसके रचना-काल का उल्लेख पुस्तक में नहीं है। यहाँ पर इसके कुछ दोहे उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

नित्यानंद चैतन्य के, भ्राजहिं अनगन संत ।
अनुरागी सुठि अमल मति, बड़भागी रसवंत ।। ७ ।।
एक-एक के चरित जिमि, सुर-सरिता सत धार ।
कन परसत जाके नसैं, कलि-कलमस निरधार ।। ८ ।।
ताहू में पुन देखियत, कछु परगट कछु गूढ़ ।
जिहिं बरनत में होय अति, सुरगुरु की मति मूढ़ ।। ९ ।।
हरि-बल्लभ परसाद बल, सुखद देवकीनंद ।
रची सु 'वैष्णन-वंदना', सरस सुरस सुखकंद ।। १५ ।।
ताकों संत-निदेस पुन, संतनि हित बिन खेद ।
रचति 'भक्त-नामावली', ग्रंथ जु भाषा भेद ।। १६ ।।

२. **प्रेमभक्ति चंद्रिका**—यह सुप्रसिद्ध गौड़ीय भक्त नरोत्तमदास ठाकुर कृत इसी नाम की बंगला पुस्तक का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है। नरोत्तमदास जी श्री चैतन्य महाप्रभु के कृपापात्र लोकनाथ गोस्वामी जी के शिष्य थे। उन्होंने चैतन्य मत के भक्ति-ग्रंथों का सार-तत्त्व अपनी इस संक्षिप्त रचना में संचित कर दिया है। यह पुस्तिका गौड़ीय भक्तों को अत्यंत प्रिय रही है। वे प्रति दिन इसका पाठ करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझते हैं। बंगला भाषा से अपरिचित ब्रजभाषा भाषी भक्तों के लाभार्थ वृंदाबनदास जी ने इसका पद्यानुवाद किया है। यह अनुवाद मूल ग्रंथ के भावों की रक्षा करते हुए सरल भाषा और सुबोध शैली में किया गया है। इसकी पूर्ति सं० १८१३ की पौष शु० ५ को हुई थी। इसका उल्लेख इस पुस्तक के अंत में इस प्रकार हुआ है—

अधिक त्रयोदस जानि, संवत सतदस आठ महिं ।
पूरन ग्रंथ सु मानि, बिदित पूस सित पंचमी ।।

यहाँ पर इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया है—

जब लखि हैं लखि अलिनि में, मोह मया अति मोय ।
तब पूजैं अभिलाष मम, लाख-लाख बिधि जोय ।।१३२।।
अमल जुगल पद-कमल बिराजैं । परमानंद कंद सुख साजैं ।।
है मेरें जिमि जीवनि जी के । रति प्रेमा तहँ होहुँ जु नीके ।।
स्यामा-स्याम नाम अभिरामा । है जु उपासक कों रसधामा ।।

नाइ सीस जुग चरनन माहीं । उमँगि-उमँगि रटि हौं हरषाहीं ॥
जुगल ललित रस-केलि सु जो है । मधुर-मधुर हूँ ते अति सोहै ॥
ताकौं पुनि सुमिरन जु सदाई । मन स्रवन रु प्राननि सुखदाई ॥
साधन साध इहै अब जानहु । जान मान हिय आन न आनहु ॥
इहै तत्व पुनि है निरधारा । सकल सिद्धि माँहि सुठि सारा ॥
नव अंबुद सुंदर दुति राजै । मधुर-मधुर हूँ ते जु बिराजै ॥
जगर - मगर मनि-भूषन राजै । मोर-मुकट पुनि सीस बिराजै ॥
मलयज अरु कुमकुम पुन मृगमद । अंग-अंग रचना जु रचित हद ॥
मनमोहन मूरति अति रंगी । नटनागर वर ललित त्रिभंगी ॥
नव पुहुपनि की माल सुहानी । मनमानी अति ही जु निमानी ॥
राजत उर माहीं सुठि सोमित । मत्त जहाँ मधुकर मधु लोभित ॥

जल बिन मीन, दीन जलद बिन चातक,
औ जैसे मधु बिन मधुप लै ठानियै ।
चंद बिन चकोर और पति बिन सती जैसे,
ज्योंही रंक चित्त पुनि वित्त हित मानियै ॥
छिन - छिन छीन अरु दीन दुख लीन तौऊ,
एक प्रीति - रीति, नीति एक ही बखानियै ।
तैसी रति-मति टेब - भेव चाव - भाव तैसी,
ऐसी गति प्रेमी की सु प्रेम बिन जानियै ॥

३. **विलाप कुसुमांजलि**—यह वृंदाबन के सुप्रसिद्ध गोस्वामी रघुनाथदास जी कृत इसी नाम की संस्कृत रचना का सुललित ब्रजभाषा अनुवाद है । रघुनाथदास जी गोस्वामी विरह की साक्षात् मूर्ति थे । उनकी मान्यता थी कि विरह से ही इष्ट को प्रात करने की तीव्र लालसा उत्पन्न होती है; अतः जहाँ विरह नहीं है, वहाँ इष्ट की प्राप्ति भी संभव नहीं है । इसीलिए उन्होंने अपने उपास्य के विरह में संतप्त होकर जो विलाप किया है, उसे पद्य-प्रसूनों द्वारा 'विलाप कुसुमांजलि' के रूप में उनके चरण-कमलों में अर्पित कर दिया है । मूल रचना जितनी भावपूर्ण, सरस और सरल है; वृंदाबनदास जी का यह अनुवाद भी प्रायः उसी के अनुरूप है । इसकी पूर्ति सं० १८१४ की पौष शुक्ला पंचमी को हुई थी । इसका उल्लेख पुष्पिका में इस प्रकार हुआ है—

श्री विलाप कुसमांजलि, सुर - बानी परकास ।
नर-बानी में ताहि पुनि, रचि वृंदाबनदास ॥ ९९ ॥
संबत सतदस आठ अरु, बरस चतुर्दस जानि ।
पूस सरस सित पंचमी, पूरन ग्रंथ बखानि ॥ १०१ ॥

इसे बाबा कृष्णदास ने मूल संस्कृत रचना के साथ प्रकाशित किया है। वृंदावनदास जी की इस रचना के उदाहरण स्वरूप कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—

किधौं स्वप्न में हूँ सुमुखि, तुव पद-पद्म-पराग ।
राग-गंध-भूषन अहो, धरिहौं मैं सिर-भाग ।।
सोभा परिमिति खान जो, सिर निज ऊपर राखि ।
नाम सार्थक करहिगौ, उत्तमांग अस भाखि ।। ११ ।।

तुव नूपुर की रुनझुन लहरी । अमृत - रस - सागर सम गहरी ।।
मम बधिरत्व दूर कब करिहै । हा कल्यानि ! विकल चित भरिहै ।।१२।।

रोला— सरस भृंग उल्लसित मंजु कंजन की पाँती ।
सुठि सोभित जा चारु, वारि मधि अनुपम भाँती ।।
बहै मधुर जल सधर, भरयौ तुमरौ सर जोई ।
मम नैननि-तट सुमुखि, अघट प्रगटयौ जब सोई ।।
हे फूले दल-कमल-लोचनी ! तुव ही मन में ।
भई अमित अभिलाष, लाख तुव दासा तन में ।। १५ ।।

वृंदावनदास जी कृत उपर्युक्त अनुवादित रचनाओं के अतिरिक्त उनकी नाम-छाप से श्री चैतन्य महाप्रभु की बधाई के कुछ पद भी उपलब्ध हुए हैं ये पद वृंदावनदास के रचे हुए माने जाते हैं। यहाँ एक पद दिया जाता है

आजु बधायौ नदिया नगर में । आनंद छायौ बगर-बगर में ।।
श्री सची देवी सुंदर सुत जायौ । त्रिभुवन-मोहन परम सुहायौ ।।
पुरबासिन मिलि मंगल गाये । आँगन मोतिन चौक पुराये ।।
रुचिर साथियै द्वार धराये । फूलन बंदन माल बँधाये ।।
पूरन घट रंभा तरु सोहै । चित्रित मदन महा मन मोहै ।।
ध्वजा-पताका अति छवि छाये । नाना भाँति बितान तनाये ।।
विविध जंत्र - बाजंत्र बजाये । मुनिजन गान करत हर्षाये ।।
जगन्नाथ पितु फूले तन - मन । सुत अवलोकि परम सुख सूचन ।।
सुभ पूनों सुभ फागुन मास । गौर चंद्र प्रभु भये परकास ।।
प्रगट भये अकलंकी प्रभु । अब कौन काम सकलंकी विधु ।।
तुव पति केतु ग्रस्यौ है आय । तन-मन महा क्रोध कर छाय ।।
नर-नारी सब प्रफुलित गात । आनंद-निधि हिय अति उफनात ।।
ब्रह्मादिक सुर पार न पावैं । नित-नित नव-नव गुनगन गावैं ।।
रहसि बधाई कौ सुख जितनौ । एक रसना कहा बरनैं तितनौ ।।
श्री चैतन्य-चरन चित लावै । 'वृंदावन' जस कछु एक गावै ।।

४६. नीलसखी

नीलसखी जी बुंदेलखंड में उत्पन्न चैतन्य-मतानुयायी भक्त-कवि थे। वे अधिकतर वृंदाबन में निवास करते थे। उनके द्वारा रचित ११० पदों की 'बानी' कही जाती है[1]। इस संक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त उनके संबंध में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो रही थी। इधर श्री वासुदेव गोस्वामी ने चरखारी निवासी श्री कुंजबिहारीलाल गोस्वामी से प्राप्त सनदों के आधार पर नीलसखी संबंधी एक लेख प्रकाशित किया है[2]। उससे ज्ञात होता है, नीलसखी जी सुप्रसिद्ध भक्त-कवि हरिराम जी व्यास की वंश-परंपरा में गोस्वामी आनंदकर जी के पुत्र थे। उनका जन्म बुंदेलखंड के सतारी ग्राम में सं० १७८१ को हुआ था। यह ग्राम उनके पूर्वजों को महाराज छत्रसाल द्वारा सं० १७६४ की माघ बदी १ को जागीर के रूप में प्राप्त हुआ था। 'बुंदेल वैभव' में नीलसखी जी का जन्म ओरछा में सं० १८०० को होना लिखा गया है, जो प्रस्तुत प्रमाण से उपयुक्त ज्ञात नहीं होता है।

श्री वासुदेव गोस्वामी के लेख से यह भी मालूम हुआ है कि नीलसखी जी का मूल नाम अमर जू था। उन्होंने अपनी आरंभिक रचनाएँ 'अमरेश' की छाप से की हैं। उनके रचे हुए ऋतु वर्णन के कवित्तों में 'अमरेश' की नाम-छाप ही मिलती है। बाद में वे भक्ति-भाव के आवेश में घर-बार छोड़ कर सतारी से वृंदाबन चले गये थे। वहाँ पर चैतन्य मतानुयायी भक्तों के सत्संग में वे सखी भाव से रहते थे। तब उनका नाम 'नीलसखी' प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने भक्ति विषयक पद-रचना 'नीलसखी' के नाम से ही की है।

उनकी आरंभिक रचनाएँ षट ऋतु विषयक हैं, जो 'अमरेश' की नाम-छाप से मिलती हैं। उनमें से एक कवित्त यहाँ दिया जाता है—

धवल अबीर सत्त्व गुन सो तनक,
तातें बढ़ती रजोगुन की परखी गुलाल में।
कारी कीच नीच सो तमोगुन अधिक,
ताके बीच खुलि खलक भरी है वह बाल में॥
भनें 'अमरेस', सुनौ सुकवि सुरेस,
यहाँ रचना विचारौ गूढ़ फागुन विसाल में।
जथा रूप जितने प्रमान तीन गुन ये,
सु होरी में प्रगट कर दीने कलि-काल में॥

१. बुंदेल वैभव, दूसरा भाग, पृ० ४६१

२. ब्रजभारती, वर्ष १६ अंक १०–१२

उनकी भक्ति विषयक 'बानी' के ११० पदों में से थोड़े ही उपलब्ध हुए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

हरि, तुम दासन की प्रति पाली ।
सर्व रूप सब ठौर सर्वदा, तजी न बान कृपाली ।।
सुनत पुकार दुखित दीनन की, उठि दौरे बनमाली ।
अति आतुर आवत मन भावत, ज्यों घन सूखत साली ।।
ललित स्याम घन सुंदर की, आवन की अधिक उताली ।
बरनत कछु अनुभव कैं संमत, वह छवि छलक उछाली ।।
मुकट इंद्र, घन हृदय, माल मुक्ता, बग-पाँति बिसाली ।
अंबर की फहरान तड़ित, धुरवा अलकावलि आली ।।
जनु रबि चक्र किरन मिल मुख पर, रिस बस रोचक लाली ।
स्रम-कन बुंद प्रेम बरषत, हरषत दुति निरखि कपाली ।।
सिंजित धुन घहरान मृदुल सुन, स्रवनन होत बहाली ।
उच्च नाद खल-दलन बचन पवि-पात कठोर कराली ।।
जीवन दान त्रिषित जीवन के, सर्वोपरि सब काली ।
'नीलसखी' घन सुंदर की, निबहै यह सदा प्रनाली ।। १ ।।
अब कहूँ कहिवे की कछु नाँहीं ।
पावै कौन सहायक अपनौ, ऐसे या दुख माँहीं ।।
हितू न और हमारौ हरि सम, जिन रस-रीति निबाहीं ।
तेई स्याम 'नीलसजनी' कौ, हित करिहै गहि बाँहीं ।। २ ।।

विख्यात भक्त-कवि हरिराम जी व्यास कृत 'वाणी' की प्रशंसा में लिखा हुआ उनका एक प्रसिद्ध पद मिलता है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

जय जय बिसद व्यास की बानी ।
मूलाधार इष्ट रसमय, उत्कर्ष भक्ति रस सानी ।।
लोक बेद भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी ।
स्वादित सुचि रुचि उपजै, पावत मृदु मनसा न अघानी ।।
सक्ति अमोघ विमुख-भंजन की, प्रगट प्रभाव बखानी ।
मत्त मधुप रसिकन के मन की, रस रंजित रजधानी ।।×
दधि माधुर्य, माठ बृंदाबन, भरौ अमोघ अमानी ।
सहज सतोगुन बँधौ जासु में, गोपी सुमति सयानी ।।
सखी रूप नवनीत उपासक, अमृत निकस्यौ आनी ।
'नीलसखी' प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथन सयानी ।। ३ ।।

४७. रामहरि

रामहरि जी का मूल नाम हरिराम था और उनका उपनाम 'रामहरि'। उनकी रचनाओं में अधिकतर 'रामहरी' की छाप मिलती है; केवल दो-एक प्रसंगों पर उनके मूल नाम का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

ह हा हरत हिय प्रीतम-प्रिया, 'हरीराम' मुसकाय ।
हेरत है आली तिन्हैं, हरै - हरै ठहराय ।। ३४ ।।
अखर बतीसन में कियौ, प्रिय - प्यारी अनुराग ।
बाँचि बिचारें तिनन कौ, 'हरीराम' बड़ भाग ।। ३५ ।।

—ध्यान रहसि

'हरीराम' हैं जौहरी, जौहर परख प्रबीन ।
तिहिं प्रेरे जो हरि करी, जौहर भरी नवीन ।। ६९ ।।

—सतहंसी

उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं में ठाकुर श्री राधारमण जी और श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना की है। इससे ज्ञात होता है कि उनके उपास्य तथा इष्टदेव श्री राधारमण जी थे और वे गोपाल भट्ट गोस्वामी जी की शिष्य-परंपरा में हुए थे। उनका निवास-स्थान वृंदाबन था और उनको वैष्णवदास जी का सत्संग प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने गुरु का नामोल्लेख नहीं किया है; किंतु उनकी 'सतहंसी' नामक रचना में वैष्णवदास जी का जिस प्रकार नाम आया है, उसके कारण वे ही उनके गुरु जान पड़ते हैं। वह उल्लेख इस प्रकार है—

सची - सून की कृपा बल, 'सतहंसी' बल नाम ।
करी वैष्णवदास बल, बल वृंदाबन धाम ।। ९८ ।।

उनकी रचनाएँ सं० १८२० से १८३६ तक की रची हुई उपलब्ध हुई हैं। इनसे अनुमान होता है कि उनका जन्म सं० १७९० के लगभग और देहावसान सं० १८४० के लगभग हुआ होगा। उन्होंने कदाचित दीर्घायु प्राप्त नहीं की थी। उनकी रचनाओं के प्रकाशक बाबा कृष्णदास ने लिखा है–"श्री रामहरी के विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है।" निश्चय ही उनके जीवन-वृत्तांत की कोई बात ज्ञात नहीं होती है। उनकी रचनाओं से विदित होता है कि वे संस्कृत और ब्रजभाषा के विद्वान तथा विरक्त स्वभाव के भक्त जन थे।

उनकी कई छोटी-छोटी रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिन्हें बाबा कृष्णदास ने 'श्री रामहरि ग्रंथावली' के नाम से एक छोटी जिल्द में प्रकाशित किया है। इन रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

१. बुद्धि विलास, २. सतहंसी, ३. बोध बावनी, ४. रस पचीसी, ५. लघुनामावली, ६. लघु शब्दावली, ७. प्रेम पत्री, ८. ध्यान रहसि

जैसा कहा जा चुका है, ये रचनाएँ आकार में छोटी हैं । 'प्रेमपत्री' में तो केवल १० दोहे मात्र हैं । कुछ रचनाओं में अन्य कवियों के छंद भी सम्मिलित हुए हैं । उनका रामहरि जी को संपादक समझना चाहिए । सभी रचनाएँ साधारणतया अच्छी हैं; किंतु वे अत्यंत अशुद्ध रूप में छापी गई हैं । यहाँ पर रचना-काल के अनुसार उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

१. **ध्यान रहसि**—यह बारहखड़ी के रूप में रची हुई ३७ छंदों की एक छोटी सी रचना है । इसकी पूर्ति सं० १८२० की श्रावण कृष्णा सप्तमी मंगलवार को हुई थी । इसका उल्लेख रचना के अंत में इस प्रकार हुआ है—

संबत अष्टदस बीस है, सावन भावन मान ।
कृष्ण पक्ष दिन सप्तमी, मंगल संगल जान ।।

यह उनकी आरंभिक रचना जान पड़ती है । इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

क का कुँवर किसोरी कमल पद, करुनानिधि सुकुमार ।
कर मन तिनकौ आश्रय, कौन विलंब विचार ।। १ ।।
ख खा खोर साँकरी, खरी छबीली बाल ।
खौर सीस कर केसरी, खरे छरे हैं लाल ।। २ ।।
ग गा गोरी भोरी राधिके, गौरांगी सहचारि ।
गुन गोबिंदहिं गावती, गमनी गोकुल नारि ।। ३ ।।

२. **बुद्धि विलास**—यह रामहरि जी की उपलब्ध रचनाओं में सब से बड़ी है । इसमें २५५ दोहे हैं, जिनमें अनेक कवियों के छंद प्रचुर संख्या में सम्मिलित हैं । उनके साथ-साथ उन्होंने अपने दोहे देकर उनकी क्रमानुसार संगति मिलाने की चेष्टा की है । जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—

लघु दोहा सब कविन के, 'रामहरी' लिख लीन ।
हित रस नेह समुद्र में, पैरि न पाऊँ दीन ।। ३ ।।
फुटकर दोहा जुदे - जुदे, नहीं अनुक्रम जान ।
'रामहरी' संगति करी, अपनी बुद्धि प्रमान ।। २५३ ।।

इसमें भक्ति, प्रेम, उपदेश, नीति आदि विविध विषयों के दोहाओं का संकलन है । इसे संत कवियों की 'साखी' शैली की रचना समझनी चाहिए । इसकी पूर्ति सं० १८३२की ज्येष्ठ शु० ३ रविवार को हुई थी,जैसा निम्न उल्लेख है

अब्द आठ दस तीस द्वै, जेठ सुदी रवि तीज ।
मनरोचक यहि ग्रंथ पढ़ि, प्रेम-भक्ति रस भीज ।।

इस रचना के उदाहरण स्वरूप स्वयं रामहरि रचित कुछ दोहे यहाँ दिये जाते हैं—

लगी चटपटी तन सदा, सोवत जाग पुकार ।
'रामहरी' प्रेमीन की, बात न पारावार ।।
'रामहरी' सतसंग तें, मिटै सबै उतपात ।
खोटे नर के संग तें, भली न आवै बात ।।
काल ब्याल ह्वै जग ग्रसै, करि हरि-चरन सहाइ ।
'रामहरी' नर दुष्ट तजि, तिरिया बुरी बलाइ ।।
संपति, विद्या, ज्ञान, गुन, प्रभुता नृप सुख पूर ।
'रामहरी' चीन्हे नहीं, दया न मन सब धूर ।।
'रामहरी' बिनती सुनो, नागर नंदकिसोर ।
हम से अज्ञ अधीर की, देख न करनी ओर ।।

३. **सतहंसी**—यह १०२ दोहों की चमत्करपूर्ण रचना है । इसमें वर्णित राधा, कृष्ण और सखियों के संवाद में यमकालंकार द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की सप्रयास चेष्टा की गई है । यमक के प्रचुर प्रयोग से रचना दुर्बोध हो गई है । इसकी पूर्ति सं० १८३३ की माघ शु० ५ मंगलवार को वृंदाबन में हुई थी; जैसा इस रचना के अंतिम दोहा में उल्लेख है—

राम ताप बसु विधु अबद, माघ सुक्ल मधु बान ।
कुज दिन वृंदावन प्रगटि, धारहु कंठ सुजान ।।

इसके उदाहरण स्वरूप कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

सरवर सरवरि जाव ही, सर वर सरवर सात ।
सर वर सरि वर सात ही, सरवर सरवर जात ।।
सावन में घन सार है, जेठ माँहि घन सार ।
भूठहि हू घनसार है, बन हू कौ घनसार ।।
देहरि कर मो बात सुनि, देहरि अति थहराय ।
देहरि घसि गुरुजन रुकी, दे हरि मोहि दिखाय ।।
हरिनी कैसी भाँति है, हरिनी के से नैन ।
हरि नीके मन जात ह्वै, हरि नीके सुनि बैन ।।
ऊधौ ! ते सु पुरान है, सुनत सु नाँहि पुरान ।
भई पुरा न सु करत हैं, दीन्हीं त्यागि पुरान ।।

४. लघु नामावली—यह धनंजयकोश, अमरकोश और नंददास जी कृत नाममाला के आधार पर रची हुई १०२ दोहों की रचना है । इसमें कोश की भाँति अनेक समानार्थी शब्दों का संकलन किया गया है । इसकी पूर्ति की तिथि सं० १८३४ की श्रावण शु० तीज का इस प्रकार उल्लेख है—

अब्द खंड जुग च्यार तिस, सावन सुक्ला तीज ।
'रामहरी' ब्रजबास करि, सदा कृष्ण रँग भीज ॥

इसके उदाहरण स्वरूप कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

(श्री कृष्ण)—**गोकुलचंद, मुकुंद, हरि, मोहन, माखन - चोर ।**
बनमाली, गोबिंद, विधु, गिरधर, स्यामकिसोर ॥
केसव, माधव, मुरलीधर, दामोदर, गोपाल ।
कुंजबिहारी, चिकनियाँ, पुरुषोत्तम, नंदलाल ॥

(चंद्रमा)— **ग्लौ, मृगांक, आत्रेय, हरि, जीव, उडप, उडुराज ।**
चंद्र, चंद्रमा, निसाकर, तारापति, द्विजराज ॥
औषधीस, सुरपेय, खग, रोहिणिधव, श्रीबंधु ।
ससधर, मयंक रु सिंधु-सुत, सारंग, कुमुद जु बंधु ॥

५. लघु शब्दावली—यह भी 'लघु नामावली' की भाँति कोशात्मक रचना है । इसमें १०० दोहे हैं । इसकी रचना का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया है—

अनेकार्थ नंददास की, एक सब्द बहु अर्थ ।
अधिक सब्द लै कोस तें, दोहा किए समर्थ ॥

इसकी रचना-तिथि सं० १८३४ की आश्विन शुक्ला पूर्णमासी (शरद पूनौ) गुरुवार का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

बेद राम बसु कलानिधि, संबत मास जु क्वार ।
सुक्ल पक्ष पून्यौ सरद, वृंदाबन गुरुवार ॥

इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(हरि)— **हरि, चंदन, चातग, किरन, सुक्र, सत्य, सुक, कील ।**
दादुर, तरु, जय, भय मिटै, हरि भज गहि मन सील ॥

(गो)— **गो, दिव, रवि, मृत, सत, दया, अग्नि, प्रसू, चख, बाल ।**
जग्य, निगम, सर, चिह्न, गिर, गो सुख भजि गोपाल ॥

(रस)— **हर्ष, तिक्त, सिंगार-रस, द्रव्य, सुगंध रु राग ।**
पारद, बीरज, कोकनद, ए रस हरि - रस पाग ॥

(धर्म)— **धर्म, अहिंसा, धनुष, नभ, उपमा, जज्ञ, सुभाव ।**
धर्म बेद पुन्यहिं करैं, हरि भज बहुरि न दाव ॥

६. **बोध बावनी**—यह ५४ दोहों की उपदेशात्मक छोटी रचना है। इसमें अन्य कवियों के भावों का समावेश है; जैसा कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

बानी नाना कविन की, बोध बावनी धार।
'रामहरी' पढ़ि अर्थ लहि, हरि भजि उतरौ पार॥

इसकी पूर्ति सं० १८३५ की अगहन शुक्ला पूर्णमासी (बलदेव पून्यौ) को वृंदाबन में हुई थी। इसका उल्लेख इस रचना के अंत में इस प्रकार हुआ है—

अगहन पून्यौ संवत है, अष्टादस पैंतीस।
बरसोत्सव बलदेव कौ, वृंदाबन रजनीस॥

इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

झूठौ जग सों राम को साँचे कृष्णहिं कीन्ह।
'रामहरी' साँचौ लगत, माया भ्रम आधीन॥
रे मन! साँचे कृष्ण भजि, माया-भ्रम दै त्यागि।
खेल खिलारी ने किया, मन धरि लेवें राग॥
मिथ्या नस्वर जगत-सुख, सबै दुःख कौ धाम।
इक रसना आनंदमय, एक कृष्ण कौ नाम॥
प्रेम सु खाँड़े धार, ऐसा कौन सु चलि सकै।
जिन सिर धरचौ उतारि, तिन ही ता मग पग धरचा॥
ब्रज लीला जाने बिना, प्रेम-भक्ति है दूर।
जो चाहै श्री कृष्ण कों, बसि ब्रज, जग तज सूर॥

७. **प्रेमपत्री**—गोपियों के पत्र रूप में लिखी हुई इस रचना की पूर्ति सं० १८३६ की वैशाख शु० ३ रविवार को हुई थी। इसका उल्लेख इस प्रकार है—

संबत रस त्रय बसु उड़प, माधव सुदि रवि राम।
'रामहरी' लै पत्रिका, पहुँचे तुम्हरे ग्राम॥

इस रचना में कुल १० दोहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

सिद्ध श्री सर्वोपरहि, श्री मथुरा सुभ धाम।
उपमापर अद्भुत लला, नंद कुँवर वर नाम॥ १॥
करैं सबै ब्रज की बधू, सासटांग परनाम।
इतैं कुसल आनंद उत, चाहत आठौं जाम॥ २॥
जब तें हम तें बीछरे, तब तें बिसरे काम।
तुव चरनन में मन रहै, दरसन आसा ग्राम॥ ३॥
चलते तुम हम सों कह्यौ, पत्र भेज हैं खाम।
फिरि क्यों भूले जाइ कें, चतुर चित्त अभिराम॥ ४॥

भाग पाय हम कूँ मिले, ज्यों मोतिन के दाम ।
अब मन अकुलायौ उठ्यौ, जेठ तपन ज्यों घाम ॥ ५ ॥
विरह - ताप गिरिधरन हे, दुःख सह्यौ सब वाम ।
मिलन - लालसा तें रह्यौ, नातरु जरतौ चाम ॥ ६ ॥
सर्वोपरि वृंदाबिपिन, आनंद ठामहि ठाम ।
हमकूँ आनँद होइ जब, आइ करौ विस्राम ॥ ७ ॥
पहिलें तौ हम हे सुखी, भजन करत हे स्याम ।
अब मन गति औरें भई, बिरह बहत लै थाम ॥ ८ ॥
भाग तिहारे ऊबरी, रचे कूबरी वाम ।
करि पुनीत जदुकुल सबै, बिसरे सब ब्रज भाम ॥ ९ ॥
संवत रस त्रय वसु उड़प, माधव सुदि रवि राम ।
'रामहरी' लै पत्रिका, पहुँचे तुमरे ग्राम ॥ १० ॥

८. **रस पचीसी**--इसमें केवल २७ दोहे-चौपाई हैं। यह शृंगार रस की रचना है, जिसमें नायिका के कुछ गुणों का वर्णन है। इसमें रचना-काल नहीं दिया गया है।

इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

इष्ट सु राधारमन हैं, सची सून संकेत ।
राधाकुंड नदीस्वरै, वृंदाबन रस खेत ॥ १ ॥
जीभ कसौटी स्वाद की, स्रवन कसौटी बैंन ।
बास कसौटी नासिका, रूप कसौटी नैंन ॥ २ ॥
जोबन आगम सिसु गमन, कटि-पटि कसति कुमार ।
मनहु छीन छति छीज कें, द्वै नृप बीज उजार ॥ ३ ॥
यह कटि परती टूटिकै, गुर उरोज के भार ।
जो नहिं होतौ त्रिबलि कौ, दृढ़ बंधन आधार ॥ ४ ॥
मृग मराल कोकिल मयंक, वारिज केहरि मीन ।
कदली दाड़्यौ कीर छवि, लई राधिके छीन ॥ ५ ॥
सिंघ कमल कोकिल उरग, गति मलाल गज चाल ।
कीर कुरंगनि मीन-छबि, अधर पवाली लाल ॥ ६ ॥
बाल दयाल बिसाल छवि, तिलक पोल परताप ।
जगत करन जनु कर दई, जगत बिजै की छाप ॥ ७ ॥
अलक लटकि लगि कुचन पर, उपमा ऐसी देत ।
सिब तजि कै नागिन चढ़ी, ससि मुख अमृत लेत ॥ ८ ॥

४८. रामकृपा

चैतन्य मत के आकर ग्रंथों में 'ब्रह्मसंहिता' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस कठिन ग्रंथ को बोधगम्य बनाने के लिए जीव गोस्वामी जी ने इस पर 'दिग्दर्शिनी' नामक टीका लिखी थी। उस टीका की संस्कृत भाषा भी इतनी कठिन हुई कि ब्रजभाषा-भाषी भक्त जनों के लिए उसकी सरल ब्रजभाषा टीका की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। यह कार्य रामकृपा जी ने किया और इसका आदेश उन्हें रामकृष्ण नामक किसी महानुभाव से प्राप्त हुआ था। रामकृपा जी ने अपनी रचना के अंत में उक्त आदेश और रचना-काल का इस प्रकार उल्लेख किया है—

है यह सब सुख - सार, कंज - सुवन की संहिता।
पुनि न लहै संसार, जो याकौ रस हिय चुभै॥
कठिन संस्कृत जानि, टीका यह 'दिगदरसनी'।
रामकृष्ण सन आनि, भाषा याकी होइ भली॥
तासु हेतु पहिचानि, 'रामकृपा' भाषा रची।
हे सज्जन सुखदानि, मोहि न दीजों दोष कछु॥
भनित मोरि नहिं आहि, सब्द अनादिक स्रुति कहै।
मनन करौ चित चाहि, 'ब्रह्मसंहिता' विसद रस॥
सुरवैद्य अरु युग्म बसु, इंदु सु वत्सर जानि।
आस्विन कृष्णा भानु तिथि, ससि-सुत बार प्रमान॥

रामकृपा जी के जीवन-वृत्तांत के संबंध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। उनके जन्म और देहावसान के यथार्थ संवत् भी अज्ञात हैं; किंतु उनके रचना-काल और रचना के प्रेरक रामकृष्ण जी के अस्तित्व-काल से उनका अनुमान किया जा सकता है। उनकी यह रचना बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित की है, जिसके आरंभ में गो० दामोदराचार्य जी ने 'नम्र निवेदन' लिखा है। रामकृपा जी की रचना के अंत में जिस प्रकार इसके रचना-काल का उल्लेख हुआ है, उससे उक्त दामोदराचार्य जी का मत है कि वह सं० १८२२ में पूर्ण हुई और इस रचना के प्रेरक रामकृष्ण जी रामकृपा जी के गुरुदेव थे, जो गोस्वामी गोपाल भट्ट जी की 'षष्ट पीढ़ी' में हुए थे। रचना-काल की संकेत-वाची शब्दावली—'सुरवैद्य अरु युग्म वसु इंदु'—से १८२२ और १८८२ दोनों ही संवत् निकाले जा सकते हैं; किंतु गोपाल भट्ट जी की छठी पीढ़ी में होने वाले रामकृष्ण जी का समय १९ वीं शताब्दी के अंत तक पहुँचना असंभव है।

इसलिए हम उनकी कृति का रचना-काल सं० १८२२ की आश्विन कृ० १२, बुधवार मानना ही उचित समझते हैं। इसके आधार पर रामकृपा जी का जन्म सं० १७८० के लगभग और देहावसान सं० १८४० के लगभग अनुमानित होता है। यहाँ पर हम रामकृपा जी की इस रचना 'श्री ब्रह्मसंहिता दिग्दर्शिनी टीका की भाषा' का कुछ अंश उदाहरणार्थ उपस्थित करते हैं—

आरंभ— बंदौं श्री ब्रजनाथ, कृपासिंधु राधारमन।
तारे अमित अनाथ, निगम साखि जग जस प्रगट॥
पुनि बंदौं पद-कंज, जासु प्रान वृषभानुजा।
नासहिं जन-अघ-पुंज, जिन जब जहँ सुमिरचौ सकृत॥
बंदौ बिवि कर जोरि, महाप्रभू पद-कंज वर।
बहु विधि ताहि निहोरि, जिन तारचौ बहु अधम नर॥×

जद्यपि सत अध्याय सुहावन। अहै संहिता विदित सु पावन॥
तद्यपि यह अध्याय अनूपा। कृष्ण रसासव बहु सुख रूपा॥
है सूत्राख्य नाम एहि केरौ। परम पवित्र अर्थ द्रग हेरौ॥
सो एक बार निरखि मन बानी। एहि सम अपर न जग में जानी॥
ता पर टीका अहै घनेरा। सो तौ हम नहिं निज द्रग हेरा॥
इह दिगदरसनी नाम पुनीता। रच्यौ गोसांई जीव सुभ रीता॥
सो निरख्यौ मन दै एक बारा। देव गिरा अति कठिन विचारा॥
अमित कर्म के प्रेरक ईसा। अपर न कोउ, मम मन अस दीसा॥
राम-कृष्ण एक सम सुखारी। प्रेरचौ मो कहँ हृदय विचारी॥
सुर-बानी यह कठिन अनूपा। समुझि परै सब कहँ सुख रूपा॥
तासु हेतु लखि मैं सुख पावा। 'राम कृपा' भाषा करि गावा॥

मध्य— दरसायौ निज लोक प्रभु, गोपन कहँ सत भाय।
नंदादिक तेहि देखिकै, रहे चक्रित चित चाय॥
तहाँ निगम सख्यात, धरे रूप अति सोहनौ।
निरखि स्याम कौ गात, अस्तुति करत प्रकार बहु॥

एहि विधि सुक मुनि की वर बानी। बरन्यौ कृष्ण कथा रसखानी॥
तहँ कोउ सुनि बोल्यौ एहि रीती। कहन लागि मन गुनि विपरीती॥
अहो ईस के तुल्य न कोई। इमि तुम कह्यौ सिद्धि का होई॥
अरु समता कहूँ भई न कैसे। देत दास कहँ निज वपु वैसे॥
दियौ दास कहँ निज वपु जो पै। रह्यौ कहा अवसेष जु तो पै॥
इमि विपरीति कही जन बानी। तेहि सनमानि कहत सुभ बानी॥

देत भक्त निज कहँ समरूपा। तद्यपि चुत नहिं रूप अनूपा ॥
तौ तुम नारायन कहँ गायौ। यह सब गुन तौ तहाँ लगायौ ॥
उनहू में अच्युत गुन आहीं। अरु अनादि पद तिनहुँ लहाहीं ॥
तासु उतर सुनियौ मन लाई। ऐसें नहिं जे तव उर आई ॥
कृष्ण अनादि आदि नहिं जाकी। करी सबै नुनि एहि विधि ताकी ॥
अथवा जहँ लगि जग व्यवहारू। कारन परम कृष्ण सुख सारू ॥
आपु सदा हरि स्वयं प्रकासू। कारन रहित आपु सुखरासू ॥
अहो कृष्ण इकले केहि भाँती। पालहिं अखिल जगत बहु जाती ॥

तहँ समुझौ एहि भाँति तुम, कृष्ण स्वरूप अनंत ।
एहि विधि पालै जगत सब, करुना कर भगवंत ॥ ×

कृष्ण एक परब्रह्म बखाना। इनतें अपर न कोऊ श्रुति गाना ॥
लक्षन तासु कहत अब गाई। सुनहु चित्त दै हे सुखदाई ॥
जासु एक स्वासा करि कालू। तेहि अवलंबि सकल जग-जालू ॥
जगत अंड नायक जे कोई। विष्णु आदि जगपति है जोई ॥
तेहि आस्रित सब रहैं सदा ही। जहाँ जासु अधिकार लहाँही ॥
सावधान संतत सब ठामू। आज्ञा पालि करै सब कामू ॥
सो गोबिंद आदि परधामा। जाके यह लक्षन सुखधामा ॥
बंदौ तासु चरन वर कंजू। जन मन-रंजन भव-रुज-भंजू ॥

अंत—अपर धर्म कहँ त्यागि, मोहि भजौ विस्वास जुत ।
जेहि जस स्रद्धा जानि, लहै सिद्धि तेहि ताहि सम ॥

द्वितीय भागवत महँ एहि रीती। कही मुनीस हिए अति प्रीती ॥
काम सहित कै कोउ गत कामा। मोक्ष काम कोउ हे सुखधामा ॥
जे उदार बुद्धी नर कोऊ। उत्तम भगति जोग करि सोऊ ॥
भजहिं कृष्ण पद-पंकज रूरा। परम पुरुष हरि सब गुन पूरा ॥
अब हरि अपर कहत कछु बैना। जानी कंज-सुअन हिय चैना ॥
सुनि हे विधि मम वचन अनूपा। सृष्टि तोरि फल लह सुखरूपा ॥
तासु हेतु सुनु तैं चितलाई। तू मम किंकर है सुखदाई ॥
जग चर-अचर जहाँ लगि जेतौ। मम आधीन जानु सब तेतौ ॥
सब कौ बीज श्रेष्ठ मैं अहऊ। अपर न मो बिनु सत इमि कहऊ ॥
प्रकृति पुरुष युत जगत अनेका। सृष्टा तासु अहो मैं एका ॥
कहँ लौ कहौं तोहि ते आदी। सब प्रपंच अरु वस्तु सुखादी ॥
मूल सकल कौ मैं अखिलेसा। अब सुनु तो कहँ करौं निदेसा ॥

४६. दक्षसखी

दक्षसखी जी गोस्वामी गोपाल भट्ट जी की शिष्य-परंपरा में हुए थे। उनके इष्टदेव ठाकुर श्री राधारमण जी और उनके गुरु संभवतः गुणमंजरी जी थे। उनका यह संक्षिप्त परिचय उनकी रचनाओं के निम्न उल्लेख से ज्ञात होता है—

जयति - जयति राधारमन, श्री चैतन्य कृपाल ।
जयति सखी गन वृंद श्री, जयति भट्ट गोपाल ।।
श्री राधारमन चरन उर लहौं । अष्ट काल की लीला कहौं ।।

—अष्टकाल लीला

रमन कृपा अति सुगम नाहि, ताकौ कोऊ उपाव ।
कृपा करै गुनमंजरी, सहजहि बनै बनाव ।।
श्री गुनमंजरी पालु जू, यह माँगत है भृत्य ।
अपनौ मोकों जानिकै, कृपा करौगे नित्य ।।

—बनबिहार लीला

उपर्युक्त सामान्य परिचय के अतिरिक्त उनके संबंध में कोई विशेष बात ज्ञात नहीं होती है। उनके जन्म-स्थान और जन्म-संवत् भी अज्ञात है। उनकी दो रचनाएँ 'बनविहार लीला' और 'अष्टकाल लीला' की पूर्ति क्रमशः सं० १८३५ और १८३६ में हुई थी। इससे उनका जन्म-संवत् १८०० के लगभग अनुमानित होता है।

खोज में उनकी चार छोटी-छोटी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। उनके नाम— १. मंगल आरती, २. व्यंजनावली, ३. बनबिहार लीला और ४. अष्टकाल लीला हैं। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. मंगल आरती—यह छोटी सी स्तुतिपरक रचना है। इसमें कुल १७ चौपाई हैं। इसका रचना-काल नहीं लिखा गया है। काव्य की दृष्टि से इस रचना का कोई महत्व नहीं है। इसके उदाहरण स्वरूप कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—

आ०-**मंगल आरती कीजे प्रात । मंगल सखी गन अँग न समात ।। १ ।।**
मंगल राधारमन सु चंद । मंगल वृंदाबन सुख - कंद ।। २ ।।
मंगल नंद - जसोदा रानी । मंगल सब सहचरि सुखदानी ।। ३ ।।
मंगल कीरत अरु वृषभान । मंगल राधा परम सुजान ।। ४ ।।

अंत–**मंगल राधारमन सुहाए । 'दक्षसखी' चरनन चित लाए ।।१६।।**
जे नित गावै मंगल नाम । तिन उर झलकै स्यामा-स्याम ।।१७।।

२. **व्यंजनावली**—यह श्री राधा-कृष्ण की भोजन-लीला संबंधी रचना है। इसमें कुल ३५ चौपाई हैं, जिनमें भोजन के विविध पदार्थों और साग-भाजियों के नाम गिनाये गये हैं। इसमें भी रचना-काल का उल्लेख नहीं है। इसकी कुछ चौपाई इस प्रकार हैं—

आ०-**ललितादिक सहचरिन बुलाए। भोजन कुंज कुँवर दोउ आए ॥ १ ॥**
अंत-**आरती करत प्रेम सों भीने। 'दक्षसखी' चरनन चित दीने ॥३४॥**
कुंज भवन में सेज बिछाई। दंपति तहाँ पौढ़े सखदाई ॥३५॥

३. **बनविहार लीला**—यह शृंगार-भक्ति की छोटी सी रचना है। इसमें प्रिया-प्रियतम के वन-विहार का कथन किया गया हैं। इसमें कुल ७२ चौपाई हैं। इस रचना की पूर्ति संवत् १८३५ में हुई थी। इसका उल्लेख रचना के अंत में इस प्रकार हुआ है—

संबत दस और आठ सै, वर्ष पैंतीसौ जान ॥

इसके उदाहरण स्वरूप कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

आरंभ— **श्री गुनमंजरी कृपाल जू, यह माँगत हैं भृत्य ।**
अपनौ मोकों जानिकैं, कृपा करौगे नित्य ॥
श्री राधारमन - चरन सिर नाऊँ। बन-बिहार की लीला गाऊँ ॥
कंचन मय जहाँ अवनि जु सोहै। सुर-नर-मुनि सबकौ मन मोहै ॥
सुंदर बिटप रहे झुक न्यारे। कोटि कल्पतरु तिन पर बारे ॥
फूले फूल सकल द्रुम जहाँ। छै रितु सेवत हैं नित तहाँ ॥
गुंजत भ्रमर कोकिला बोलें। नृत्तत मोर प्रेम बस डोलें ॥
कीर कुतूहल करत जो न्यारे। सारी सुंदर बचन उचारे ॥
मनिन जटित कंचन की पैंरी। कोटि भान समुदित दमकै री ॥
पुहुपन कुंज बन रही जहाँ। बिबिध बिछौना बिछ रहे तहाँ ॥
जहाँ राजत वृषभान - किसोरी। नंद कुँवर दोऊ सम जोरी ॥
नील बसन तन राजत ऐसें। मानों घन-बिजुरी दुति जैसें ॥
छूटी अलक जो मुख पर आईं। मानों ससि पर घन की झाईं ॥
बेंदी भाल बिराजत ऐसें। मनु ससि चंदन चर्चित जैसें ॥
भृकुटी बंक चपल दृग सोहै। राधारमन लाल मन मोहै ॥

अंत— **जो गायेंगे प्रेम सों, बनबिहार सुख कंद ।**
तेई निस्चय पाय हैं, श्री बृंदाबन चंद ॥७१॥
'दक्षसखी' सुखधाम की, लीला कही सुनाय ।
जिनके पूरन भाग हैं, तेई सुनि हैं ताय ॥७२॥

४. **अष्टकाल लीला**—इसमें श्री रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल स्तोत्र' के आधार पर श्री राधा-गोविंद जी की अष्टकालिक लीलाओं का सरस वर्णन है। इसकी रचना दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया आदि छंदों में हुई है, जिनकी संख्या २०५ है। दक्षसखी जी की उपलब्ध रचनाओं में यह सबसे बड़ी और उत्तम है। इसकी पूर्ति सं० १८३६ की श्रावण कृ० १२ को हुई थी, जिसका उल्लेख रचना के अंत में इस प्रकार हुआ है—

भई पूर्ण लीला अति सुंदर, संबत दस सै आठ ठयौ है।
वर्ष तीस षट, मास जु साबन, कृष्ण द्वादसी ग्रंथ कह्यौ है।।

इसके कुछ आरंभिक और अंतिम अंश उदाहरण स्वरूप यहाँ दिये जाते हैं

जयति - जयति राधारमन, श्री चैतन्य कृपाल।
जयति सखी गन वृंद श्री जयति भट्ट गोपाल।।
जै वृंदाबनचंद, जयति जमुना पटरानी।
जयति - जयति गुरुदेव, मंत्र - पद्धति के दानी।।
जै - जै ब्रज की रेनु, जाहि सिव - नारद जाँचें।
जयति रास रस कुंज, जहाँ राधा-वर नाँचें।।

श्री राधारमन चरन उर लहौं। अष्टकाल की लीला कहौं।।
अष्टकाल लीला - स्थान। प्रथमहि ताकौ करियै ध्यान।।
वृंदाबन यह नाम सघन बन। ताहि सुमिरि संसयै छेद कन।।

रतन खचित सब भूमि है, चिंतामन की रास।
नैन अछत देखत नहीं, यह माया परगास।।
नाम नीर अति मिष्ट, सो रुचि सों पीजियै।
श्री राधा - वर कों देखि - देखि, नित जीजियै।।
जै श्री रमनलाल कौ धाम, सुखद वृंदाटवी।
हरि सों सब दुति घर कौ ईस, देख ताकी छवी।।

मनिन जटित सब भूमि सुहाई। कोटि रमा लखि ताहि लजाई।।
छैओ रितु के फूल जो फूले। देखत प्रभा उमापति भूले।।
मुक्ता नवल द्रुमन लपटाहीं। रत्न फूल फूले तिहि माँहीं।।
सब फल जुक्त चोप अति सरसै। कबहूँ दंपति निज कर परसै।।
सब बन फूल रह्यौ जु सुहायौ। मानों यह पविता नत नायौ।।
सीतल मंद सुगंध समीर। बहत जु सदा भानुजा-तीर।।
फूले कमल सुबासन देहीं। गुंजत भ्रमर परम रस लेहीं।।
नृत्तत मोर - मराल सुहाए। गुंजत अलि-कुल तहाँ हुँ आए।।

५०. ललितसखी

ललितसखी जी श्री नारायण भट्ट जी की नवम पीढ़ी में होने वाले मुरलीधर भट्ट जी के शिष्य थे। 'ललितसखी' उनका भक्ति परक उपनाम था। उनका मूल नाम क्या था, वे कहाँ के निवासी थे और उनका यथार्थ जन्म-संवत् क्या है—ये सब बातें अज्ञात हैं। उनकी एक रचना 'कुँवरि केलि' की पूर्ति सं० १८३६ में हुई थी। इससे उनका जन्म-संवत् १८०० के लगभग अनुमानित होता है।

अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने उपनाम के साथ अपने गुरु का भी नाम दिया है। इससे उनकी रचनाओं में ललितसखी, ललितसखी-मुरलीधर और कहीं-कहीं पर मुरलीधर की छाप मिलती है। कुछ पद 'ललित प्रिया' की छाप के भी खोज में प्राप्त हुए हैं; किंतु वे ललितसखी जी से भिन्न किसी अन्य कवि के जान पड़ते हैं।

उनकी दो छोटी रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनके नाम 'कहानी-रहसि' और 'कुँवर-केलि' हैं। इन्हें बाबा कृष्णदास ने एक पुस्तिका में प्रकाशित किया है। यहाँ पर उनका संक्षिप्त परिचय और कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं।

१. **कहानी-रहसि**—यह ५३ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमें बालिका लाड़िली जी के कहने से उनकी माता द्वारा उन्हें कहानी सुनाने का कथन हुआ है। इस प्रकार यह रागानुगा वात्सल्य की रचना है। रागानुगा भक्ति में वात्सल्य भाव का अद्भुत समावेश होने से भक्ति-क्षेत्र में इसका महत्त्व है; वैसे काव्य की दृष्टि से यह साधारण रचना है। इसमें रचना-काल का उल्लेख नहीं है। इसके आरंभ में गुरु-वंदना स्वरूप श्री नारायण भट्ट जी और मुरलीधर भट्ट जी के नाम दिये गये हैं तथा अंत में 'ललितसखी मुरलीधर' की छाप है। इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ उपस्थित किया जाता है—

आरंभ— **श्री नारायण भट्ट कृपा करि कहौ जी।**
रहसि - कहानी रीझि हिये नित रहौ जी॥
रहौ हियरा बैठि मेरैं, कहौ जस विस्तारि कै।
प्रभु तुम हौ रिझवार सुंदर, लीला कहौ विचारि कै॥
श्री गुरु मुरलीधर दया करिकैं, देहु मोहि उपदेस।
गुन है अगम अपार तुम्हरौ, कैसें होहुँ प्रवेस॥
मैया चतुर सिरोमनी, रहसि कहानी गाय।
तू मो सूं कहि री अरी, मंगल सुजस सुनाय॥

कहूँगी कहानी कुँवरि मंगल सुजस की नीकी,
सुपने में मोकूँ भयौ आगम सुहायौ है ।
बाजै सहनाई, निसान घुरैं रंग भरे,
गोप आये लै-लै भेंट, बुध गावति बधायौ है ।।
बहु धाम नाँचें ढाढ़ी-ढाढ़िनि बजावैं झाँझ,
वे कूख कूँ मल्हाय कहैं छंद मन भायौ है ।
'ललितसखी मुरलीधर' हित मैया कहै,
स्रवन सुनत बेटी सबनु सुख पायौ है ।।

अंत— रहसि कहानी गाय हैं, स्रवन करें जो प्रीति सूँ ।
कुँवरि जाहि अपनाय हैं, बास देहि वृषभानपुर ।। ५२ ।।

रीझि कुँवरि बास देहि वृषभानपुर तोकूँ,
गावै क्यों न प्रीति करि 'रहसि कहानी' रे ।
स्रवन करैगौ सोई हिए में विचारि नीकै,
लली सूँ कही है जोई कीरति सुभरानी रे ।।
निसि-दिना जप्यौ करैं सनकादिक इहै कथा,
सिव हू समाधि धरी बेदन की बानी रे ।
'ललितसखी मुरलीधर' हित ऐसैं कहैं,
सुफल होहि जन्म, बिरंचि हू बखानी रे ।। ५३ ।।

२, **कुँवरि-केलि**—इसमें दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पयादि ११६ छंद हैं । इस प्रकार यह कुछ बड़ी रचना है । काव्य की दृष्टि से भी यह उत्तम है । इसके आरंभ में गुरु-वंदना के रूप में श्री नारायण भट्ट जी और मुरलीधर जी का नामोल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त कवि ने किसी धरणीधर जी के प्रति भी आदर व्यक्त किया है । इस रचना की पूर्ति सं० १८३६, द्वितीय श्रावण कृ० ६ मंगलवार को हुई थी । इसका उल्लेख रचना के अंत में इस प्रकार हुआ है—

संवत दससै आठसै, और छत्तीस बिचारि ।
यह प्रबंध पूरन भयौ, रतनागर की पारि ।। ११७ ।।
सावन पिछलौ जानियै, कृष्ण पक्ष सुभ बार ।
मंगल मोद वढ़ावनौ, कुँवरि-केलि सुख-सार ।। ११८ ।।
पूरन षष्टी तिथि कूँ भई । हिय आनंद सुजस सूँ छई ।।
'ललितसखी' हिय सुख सरसानो । कुँवरि-केलि यह गाई बानो ।।११६।।

इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ यहाँ दिया जाता है—

आरंभ— श्री नारायण भट्ट मो तिमिर हियरा कौ हरौ ।
उर में बैठौ आय, कुँवरि - केलि बरनन करौ ।। १ ।।
श्री गुरु मुरलीधर दया तें, रीझि दियौ धरनीधरनि ।
केलि लाड़िली कुँवरि की, भव-सागर के दुखहरनि ।। २ ।।
दया करी मोपै जब धरनीधरन लाल प्यारे,
रीझि यह दीयौ धन आपुनौ बताय कै ।
जानि अब 'ललितसखी' मेरौ निज सर्वस है,
हियरा में बैठि तेरौ सुजस कहूँ गाय कै ।।
कथन करौं विचार केलि कुँवरि लाड़िली की,
पुरानन के छंद सुनाऊँ समुझाय कै ।
कृपादिष्टि हेरी तब हेत मुरलीधरन जू के,
गहि लई बाँह रहसि कही मुसिक्याय कै ।। ३ ।।

मध्य-सब बैठिकै गावति गीत, जबै ललितादिक मोद बढ़ावन कूँ ।
एक आई सखी धरि रूप जहाँ, मुरलीधर हित सुर गावन कूँ ।।
मुसिकाय नवेली नें बात कही, समुझाय कै हियौ सिरावन कूँ ।
यह कौन सहेली, हौं जानौं अरी, याहि चौंप भरी ढिंग लावन कूँ ।।३९।।
ललिता सूँ कहैं सुकुँवारी जबै, तू लाउ भेटू याहि नेह भरी ।
मेरौ देखत ही मन मोहि लियौ, बैठार अबै ढिंग मेरें अरी ।।
भौंह चढ़ाय कै नैन नँचावति, यानैं कछू चतुराई करी ।
'मुरलीधर' रूप धरयौ है त्रिया, ऐसैं जानि सखी नें कह्यौ जब री ।।४०।।
गहि कै ललिता बाँह, जबै वह ढिंग बैठारी ।
कुँवरि लड़ैती तबै, कहति नीकै सुकुमारी ।।
बेटी हौ तुम कौन की, रहौ गाँव तुम कौन ।
अब बोलै ना ए भटू, काहि गहि रही मौन ।।
काहि गहि रही मौन, बचन कह्यौ ऐसैं बानी ।
नंदगाम हम बसैं, कहा तुम तैं है छानी ।। ४१ ।।

अंत— कुँवरि केलि सों प्रीति करैं, स्रवन करैं अरु गावहीं ।
रीझि लड़ैती भान की, बरसाने जु बसावहीं ।।११४।।
नित-प्रति गाओ केलि यह, मन में दिढ़ कर लेहु ।
मेंटैगी दुख - द्वंद सब, जो उपजै हिय नेहु ।।११५।।
बहु विधि आसा पुजवैं तेरी । रीझि लड़ैती करैं जु चेरी ।।
जो या केलियै छिन-छिन गावैं । जबै बासु बरसाने पावैं ।।११६।।

५१. गोकुलदास

खोज में 'भजन पद्धति' नामक एक ग्रंथ की हस्त-प्रति उपलब्ध हुई है। इसमें छोटी साँची के ७० पृष्ठ हैं । इसका रचना-काल सं० १८४० और लिपि-काल सं० १८५० है। इसमें रचयिता के नाम का स्पष्टतया उल्लेख नहीं है । ग्रंथ के अंत में लिपि-काल और लिपिक गोकुलदास का नाम इस प्रकार दिया गया है—

"इति श्री भजन ग्रंथे रात्रि विहार लीला वर्णनं नाम सप्तम विभाग सं० १८५० स्व अक्षर मिदं गोकुलदासस्य ।। शुभमस्तु ।।"

उक्त उल्लेख से ऐसा जान पड़ता है कि इस ग्रंथ का लिपिक गोकुलदास ही इसका रचयिता भी है। स्वयं ग्रंथकार ने स्व अक्षरों में इसे सं० १८५० में लिखा था; जब कि इसकी रचना उसने सं० १८४० में की थी। इस रचना-काल के कारण रचयिता का जन्म-काल सं० १८०० के लगभग अनुमानित होता है। ग्रंथ के आरंभ में की गई श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना से उसका चैतन्य मतानुयायी भक्त-कवि होना सिद्ध है । इसके अतिरिक्त गोकुलदास के संबंध में और कोई बात ज्ञात नहीं होती है ।

'भजन पद्धति' ग्रंथ के आरंभ में गुरु-वंदना है । इसके अनंतर भजन की पद्धति का विस्तृत वर्णन करने के लिए उसके निम्न लिखित सात विभाग किये गये हैं—

१. चौसठ अंग भक्ति वर्णन, २. साधन भक्ति वर्णन, ३. वृंदाबन महिमा वर्णन, ४ सखी नाम वर्णन, ५. प्रात लीला वर्णन, ६. उत्तर गोष्ठ वर्णन और ७. रात्रि विहार लीला वर्णन।

ग्रंथ के आरंभ में श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना के बाद सर्व श्री अद्वैताचार्य, सनातन, रूप, गोपाल भट्ट, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, जीव गोस्वामी आदि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है। फिर गोसाई गोपीरमण, व्रजलाल जी, नवललाल जी तथा गोविंदलाल जी के प्रति आदर भाव प्रकट किया गया है । उक्त गोसाई गण में से कुछ रचयिता के समकालीन हो सकते हैं, जिनके कारण उसके जीवन-वृत्तांत पर भी प्रकाश पड़ सकता है।

इस ग्रंथ में श्री रूप गोस्वामी आदि विख्यात गौड़ीय भक्तों द्वारा प्रवर्तित भक्ति-तत्व और भजन-विधि के अनुसार विस्तृत वर्णन किया गया है ।

यहाँ पर 'भजन पद्धति' ग्रंथ के कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये हैं

आरंभ— सुमिरौं श्री कृष्ण चैतन्य, जय - जय जुगल प्रकास ।
कृपा - दृष्टि मो पर करौ, लहौं वृंदाबन बास ।।
जा कारन हरि गौर भये, कहत जथा मति मोर ।
चैतन्य - चरित अगाध है, काहु न पायौ ओर ।।
एक समय बैठे हरि, सीस - महल के माँहि ।
निज तन देखि विस्मय भये, भाव कुँवरि के चाहि ।।
एहि चाह मन में भई, कियौ प्यारी कौ रूप ।
निज रस आस्वादन करैं, लहैं जुगल स्वरूप ।।
अंतर में तौ स्यामता, बाहिर हेम प्रकास ।
प्रेम पदारथ देत सबै, धरचौ जु अपनौ पास ।।
यह आसा धरि चित्त में, बरनौं श्री चैतन्य स्वरूप ।
स्यामा - स्याम दोऊ मिलि, भये गौर अनूप सरूप ।।
महाप्रभु जू कौ प्रेम कछु, मोपै कह्यौ नहिं जाय ।
सागर कौ वारि सब, गागर में न समाय ।।
श्री नित्यानंद बंदौं सदा, देखि सब ग्रंथन कौ सार ।
रोहिनी - नंदन प्रगट भए, सेस जाकौ अवतार ।।

मध्य— चित में विचार करौ, अब सुनौ राग सरूप ।
स्वाभाविक लगन गोविंद में, यहै राग कौ रूप ।
उह राग तें कृष्ण में, करौ जो गाढ़ी प्रीति ।
रागात्मिका भक्ति की, बरनी है यह रीति ।।
इह रागात्मिका भक्ति, और कोइ नहिं पाय ।
इहि नंदादिक परिकर में, नित्त रह्यौ छाय ।।
इहि रागात्मिका विविध प्रकार करि जानि ।
प्रथम काम रूपा, दूजौ संबंध रूपा लेहु पहिचानि ।।
सो काम रूपा है जानौ मन जु माँहि ।
श्री कृष्ण सुख मानि कैं, करैं भोग की चाहि ।।
इहि काम रूपा प्रेम है, श्री सुकदेव प्रमान ।
ब्रज-देविन में बसै सदा, मन में निस्चै जान ।।
श्री कृष्ण परिकर अनुगत होय जो भजै अविराम ।
रागानुगा भक्ति, कहियै ताकौ नाम ।।

अंत— संबत अठारा सौ चालीसा, पूरन फागुन मास ।
इहि पद्धति पूरन भई, पूजी मन की आस ।।

५२. ब्रह्मगोपाल

ब्रह्मगोपाल जी श्री रामराय जी के अनुज चंद्रगोपाल जी के वंश में बड़े प्रतापी महानुभाव हुए हैं। उनकी एक ब्रजभाषा काव्य-रचना 'श्री हरि लीला' का प्रकाशन बाबा कृष्णदास ने किया है। ब्रह्मगोपाल जी के वंशज वृंदाबन निवासी यमुनावल्लभ जी शास्त्री ने इस रचना का संशोधन किया है और इसके आरंभ में 'ग्रंथकार का परिचय' लिखा है।

उक्त 'परिचय' में उन्होंने बतलाया है कि ब्रह्मगोपाल जी का जन्म वृंदाबन में बंशीवट के निकटवर्ती अपने पैतृक भवन में हुआ था। उनका विवाह आगरा निवासी सारस्वत ब्राह्मण मोहनलाल भोजपत्रे की पुत्री रासेश्वरी के साथ हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् उनके पिता का देहावसान हो गया और उनका पैतृक भवन यमुना नदी की भीषण बाढ़ में बह गया। इससे वे वृंदाबन छोड़ कर आगरा-स्थित अपने श्वसुरालय में जाकर रहने को बाध्य हुए। वृंदावन के दृढ़ अनुरागी होने के कारण उनका मन आगरा में नहीं लगा और वे पुनः वृंदाबन में रहने का विचार करने लगे।

उस काल में वृंदाबन ग्वालियर के सिंधिया राजा के प्रभाव-क्षेत्र में था। ब्रह्मगोपाल जी सिंधिया नरेश से मिले। वे ब्रह्मगोपाल जी के पांडित्य और भक्ति-भाव से अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने वृंदाबन के किसी भी स्थान में ब्रह्मगोपाल जी को अपना निवास-स्थान बनाने की आज्ञा प्रदान की। इसके फलस्वरूप ब्रह्मगोपाल जी ने श्री बिहारी जी के मंदिर के पास वाली भूमि पर अपना मकान बनाया और अपने सजातीय सारस्वत ब्राह्मणों के ३२ परिवारों को भी वहाँ बसा लिया। वहीं पर कालांतर में उनके उपास्य श्री राधा-माधव जी का मंदिर भी बनवाया गया, जिसके कारण उस बस्ती का नाम 'श्री राधा-माधव जी का घेरा' प्रसिद्ध हुआ। वह बस्ती ब्रह्मगोपाल जी के नाम पर 'ब्रह्मपुरी' भी कहलाती है।

यमुनाबल्लभ जी ने ब्रह्मगोपाल जी का उक्त परिचय देते हुए उनका अस्तित्व-काल विक्रम की १६ वीं शताब्दी लिखा है और उन्हें चंद्रगोपाल जी का पौत्र बतलाया है। १६ वीं शताब्दी में सिंधिया राजाओं का अस्तित्व ही नहीं था; अतः उनकी आज्ञा से वृंदाबन में बस्ती बसाये जाने की बात असंगत होती है। इसके समाधान के लिए यमुनाबल्लभ जी ने अपने पितामह वासुदेव जी गोस्वामी कृत 'प्रणालिका' नामक रचना के प्रमाण से बतलाया है कि चंद्रगोपाल जी के वंश में जिस प्रकार दो राधिकानाथ जी हुए, उसी प्रकार दो ब्रह्मगोपाल जी भी हुए हैं। प्रथम राधिकानाथ जी चंद्रगोपाल जी के पुत्र और

रामराय जी के शिष्य थे । उनका वर्णन गत पृष्ठों में कवि सं० ११ पर किया जा चुका है। द्वितीय राधिकानाथ जी ब्रजेन्द्र जी के पुत्र थे। उनका वर्णन गत पृष्ठों में राधिकादास जी के नाम से कवि सं० ४३ पर किया गया है। चंद्रगोपाल के पौत्र और प्रथम राधिकानाथ जी के पुत्र जो ब्रह्मगोपाल जी थे, उनका जन्म १६ वीं शताब्दी में हुआ था। वे 'श्री हरि लीला' ग्रंथ के रचयिता तो थे; किंतु 'ब्रह्मपुरी' के निर्माता नहीं थे । राधिकादास जी के पुत्र द्वितीय ब्रह्मगोपाल जी १९ वीं शताब्दी में हुए थे । उन्होंने 'ब्रह्मपुरी' का निर्माण कराया था । वासुदेव जी कृत 'प्रणालिका' में दोनों राधिकानाथ और दोनों ब्रह्मगोपाल के जन्म-काल का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

पंद्रहसौ सत्तर (१५७०) समै, बड़े राधिकानाथ ।
भए प्रगट राधाष्टमी, अंतरंग जिन गाथ ॥

पंद्रहसौ बानवे (१५९२), बड़े ब्रह्मगोपाल ।
पौष मास सुदि अष्टमी, आनंद के प्रतिपाल ॥

सत्रहसौ सत्तर (१७७०) समै,द्वितीय राधिकानाथ ।
जेठ मास दसमी सुदी, किये अनाथ सनाथ ॥

छोटे ब्रह्मगोपाल प्रभु, ब्रह्मपुरी के नाथ ।
अष्टादस सत एक (१८०१) में, गावत गोकुलनाथ ॥

इस प्रकार जिन ब्रह्मगोपाल जी का यहाँ उल्लेख किया गया है, वे इस नाम के द्वितीय भक्त-कवि छोटे ब्रह्मगोपाल जी थे । उनका जन्म सं० १८०१ माना गया है। हम यहाँ पर दोनों की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उनके कतिपय उदाहरण उपस्थित करते हैं।

बड़े ब्रह्मगोपाल जी—उन्होंने ब्रह्मसूत्र के आरंभिक ४ सूत्रों पर संस्कृत भाषा में 'वस्तुबोधिनी टिप्पणी' लिखी है और ब्रजभाषा में पद-रचना की है। उनकी ब्रजभाषा-रचनाओं के नाम 'अष्टयाम' और 'श्री हरि लीला' हैं। 'श्री हरि-लीला' में दोहा और पद हैं, जिन्हें 'श्री प्रियासखी' के उपनाम से लिखा गया है। यह रचना अत्यंत सरस और भावपूर्ण है। इसके कुछ उदाहरण इन प्रकार हैं—

रसिक रसीले लाड़िली - लाल छबीले नैन ।
अधर सुधा रस पान मद, गरबीले पिक बैन ॥

रसिक रसीले लाड़िली - लाल ॥
छैल-छबीले गुन-गरबीले, भावत पटु पिक-बैन रसाल ।
रंग - रँगीले अति चटकीले, पीवत अधर - सुधा - रस पाल ॥
मदनमत्त मद मुदित न जानत, बीतत किंत सरबरि अनुकाल ।
'प्रिआसखी' हिय चाव चौगुनौ, छिन-छिन होत बिसुद्ध बिसाल ॥ १ ॥

श्री राधा - माधव रँगे, सुरति रंग रस लीन ।
प्यारी पिय के प्रेम-बस, पिय प्यारी-आधीन ।।

करत बिहार श्री राधा - माधव रंग - रँगे ।
प्यारी पिय - प्रेम, पिय प्यारी - बस उमँगे ।।
सुरति रस - सिंधु, बिधु तर तम तरंगे ।
भीजत आधीन मीन, मोहन मन मतंगे ।।
बढ़त अनुराग जागि, जागि अंग - अंगे ।
'प्रियासखि' हिय हुलास, बढ़त बिबि अभंगे ।। २ ।।

रस रसाल रस माधुरी, सहज रसीले लाल ।
प्रीति-बेलि प्यारी परम, प्रियतम प्रेम तमाल ।।

जुगल वर सहज रसीले लाल ।
मधुर माधुरी प्रीतम प्रेमी, रसिक रसील रसाल ।।
ललिता कुंज ललित लीलाधर, ललित लाड़िली बाल ।
लिपटी प्रीति - बेल पुलकित अति, सुंदर प्रेम तमाल ।।
बीती सकल सर्वरी प्यारी, मुख अंबुज धरि जाल ।
चौंद चौगुनी बढ़त परस्पर, सुभ सर कोटि विहाल ।।
प्यारी पीतम कंठ मालिका, पीतम प्यारी माल ।
'प्रियासखी' लखि ललिता सहचरि, निज रस कुंज निहाल ।। ३ ।।

हंस-हंसिनी ललित सर, सोहत अधिक बिराज ।
मिलि सहचरि वर रसिक सखि, लाई आरति साज ।।

विलसत हंस - हंसिनी प्यारे । ललिता कुंज प्रेम-रस गारे ।।
सोहत सौन मुक्त - सर साजे । सिंहासन सुख अधिक बिराजे ।।
सहचरि मंगल - वाद्य बजाये । मंगल-गान विविध विधि गाये ।।
आरति मंगल रसिक रसीली । बारति मंगल मोद नसीली ।।
नाना भेद रंग उपजाये । मंगल ताल मृदंग सुभाये ।।
मंगल परम नवेली जोरी । मंगल कृष्ण राधिका गोरी ।।
मंगल सकल मनोरथ पाये । मंगल 'प्रियासखी' अति भाये ।।४।।

भई मंगला आरती, ललिता मंगल मंज ।
गलबाहीं दै जुगल मिल, चले बिसाखा - कुंज ।।

चले मिलि जुगल बिसाखा - कुंज ।
बिनय पाय गलबाहीं दै सँग, सकल सहेली पुंज ।।
बरसत पुहुप ढुरत चाँवर वर, सरसत मधुकर गुंज ।
हरषत 'प्रियासखी' जै-जै धुनि, करसत मुनि-मन-कंज ।। ५ ।।

छोटे ब्रह्मगोपाल जी–उन्होंने ब्रजभाषा गद्य में 'बारह वैष्णवन की वार्ता' लिखी, जिसमें उनके पूर्वज श्री रामरायजी के द्वादश शिष्यों का वर्णन किया गया है। यह उनकी आरंभिक कृति जान पडती है। इसका रचना-काल सं० १८२७ के लगभग है। उनकी ब्रजभाषा पद्य रचनाएँ दो हैं, उनके नाम 'श्री यमुनाष्ट-पदी' और 'श्री वृंदाबन विलास' हैं। इनमें 'ब्रह्म' की नाम-छाप मिलती है। यहाँ पर 'श्री वृंदाबन विलास' के कुछ पद उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

वृंदाबन में रस रह्यौ, मेरौ मन दिन-रैन।
देस-बिदेस न भावते, जहाँ परै कछु चैन॥
जहाँ परै कछु चैन, नैन खीझत बाहिर में।
अंतरंग नहिं कहूँ, प्रगट परखत जाहिर में॥
स्यामा - स्याम बिलास, हास - परिहास निहारौं।
बन - बिहार तज बास, अबै बंसीबट पारौं॥
रामराय प्रभु कृपा जहाँ, लीलामय कन - कन।
'ब्रह्म' अखंड प्रतक्ष, लक्ष करि श्री वृंदाबन॥ १॥
प्रिया जू की श्री वृंदाबन रजधानी।
माधव-लाल बने बनमाली, आली सब सुख-खानी॥
चौदह लोक सोक हरिवे कों, जहाँ रसामृत बानी।
इंद्र - चंद्र - ब्रह्मादिक सेवत, आज्ञा मन में मानी॥
लक्षलक्ष - उपलक्ष सख्य के, सेस न जात बखानी।
'ब्रह्म' रह्यौ जहाँ दीन चरन धर, का की कहौं कहानी॥ २॥
हमारौ श्री वृंदाबन गुन-रासी।
आदि अनादि परात्पर मोहनि, रज के सुर अभिलासी॥
मिलत भाग अनुराग भरे सखि, सुख की निधि जमुना सी।
बंसीबट-तट रास रचत है, रसिक किसोर सुधा सी॥
रमा - उमा - इंद्रानी लै - लै, करत सोहनी खासी।
'ब्रह्म' बिराजत श्री राधा-माधव, सघन घटा चपला सी॥ ३॥
हमारे प्रान बिहारी प्यारे।
राधा-माधव रसिक सेव्य-निधि, मेरे नैनन तारे॥
राधागोविंद मदनमोहन जू, गोपीनाथ सुखारे।
राधारमन राधा-दामोदर, स्यामसुंदर मतवारे॥
राधाबल्लभ राधामोहन, जुगलकिसोर सुधारे।
'ब्रह्म' बिलोकत इनकी छाईं, वृंदाबिपिन-बिहारे॥ ४॥

५३. सदानंद

सदानंद जी कृत कुछ स्फुट पद मिलते हैं; किंतु न तो उनका कोई ग्रंथ मिला है और उनके जीवन-वृत्तांत के संबंध में कोई बात ही ज्ञात हो सकी है। मिश्रबंधुओं ने एक 'सदानंददास' का उल्लेख कवि सं० ३८८ पर किया है। उन्होंने उनका जन्म-संवत् १६८०, रचना-काल सं० १७१० और उनके ग्रंथ का नाम 'नंद जी की वंशावली' लिखा है[1]। पता नहीं इन स्फुट पदों के रचयिता उक्त सदानंददास ही हैं, अथवा कोई अन्य सदानंद। सदानंद जी के ३ पद 'क्षणदा गीति चिंतामणि' में मिलते हैं। इस ब्रजभाषा रचना के संकलयिता प्रियादास जी के गुरु मनोहरदास जी कहे जाते हैं। इस प्रकार रचना-काल की संगति से उक्त सदानंददास और सदानंद एक ही भक्त-कवि जान पड़ते हैं। उनके कतिपय पद यहाँ दिये जाते हैं—

बंदे श्री चैतन्य - नित्यानंद।
घोर कलि-तिमिर अति, देखि सब जीव प्रति, प्रगट भये दोऊ चंद ॥
नाम लंपट दोऊ, प्रेम दिये सब कोऊ, आनंद-धाम, हरति दुख-द्वंद।
'सदानंद' प्रभु प्रेम-रस सरबस, सरन जाचत मतिमंद[2] ॥ १ ॥

(अरी) इन बोलनि पर हौं बारी।
हाथ गहैं बतरात परस्पर, रूप छके पिय - प्यारी ॥
कोउ-कोउ बात न मानत भामिनि, लाल करत मनुहारी।
'सदानंद' प्रभु बात बनावत, सुनि बिहँसी सुकुमारी ॥ २ ॥

हौं तौ भई बावरी, मनमोहन बेगि मिलाव री,
भूल्यौ सब सुख चाव री, बन बाजै बंसी बोलत मदनगोपाल।
सजनी देखें कुंजबिहारी कों, नव नागरवर गिरधारी कों,
सुखसागर पिय बनवारी संग खेलें आली, ह्वै बिहरें बनमाल ॥×
द्रुमबेली दरसें सरसें, देव-बधू सुख कों तरसें,
सब ब्रह्मादिक फूलनि बरसें, गुन भेद न गावें रस बाढ़चौ तिहिं काल।
चकचौंधी दृग लागहीं, वे मुरछि मनमथ जागहीं,
लखि 'सदाननंद' रस पागहीं, थिर-चर गति पलटी नाँहिन होत सँभाल[3] ॥३॥

---

१. मिश्रबंधु विनोद, दूसरा भाग, पृ० ५०५
२. श्री गौरांग पदावली, पद सं० ११४
३. पद सं० २–३ 'क्षणदा गीति चिंतामणि' से लिये गये हैं।

५४. हरिबल्लभ

गौड़ीय साहित्य और भक्ति-तत्त्व के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती का वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। साथ ही यह भी लिखा जा चुका है कि उनका काव्योपनाम 'हरिबल्लभ' था। उन्होंने अपनी समस्त रचनाएँ संस्कृत भाषा में की थीं। इधर ब्रजभाषा के अनेक पद भी 'हरिबल्लभ' की छाप के मिले हैं। इनके संबंध में बाबा कृष्णदास का मत है कि ये पद भी उक्त चक्रवर्ती जी के रचे हुए ही हैं।

मिश्रबंधुओं ने कवि सं० ११३६ पर एक हरिबल्लभ कवि का वृत्तांत लिखते हुए उनके द्वारा रचित गीता भाषानुवाद और एक संगीत ग्रंथ का उल्लेख किया है। उन्होंने उक्त हरिबल्लभ का न तो कोई वृत्तांत लिखा और न उनका रचना-काल ही बतलाया है। उनके गीता अनुवाद का लिपि-काल सं० १८७५ लिखा गया है[1]। यह हरिबल्लभ श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती से भिन्न कवि ज्ञात होता है। यह कहना कठिन है कि ब्रजभाषा पदों का रचयिता यही हरिबल्लभ है, अथवा उक्त चक्रवर्ती महोदय। हम यहाँ पर 'हरिबल्लभ' की छाप के कुछ पद उद्धृत करते हैं—

हरि - हरि कौन कृपा - रस एह।
धन्य गौड़ धरनी, जहँ लोकन अवलोकत हरि गौर देह ॥
बिनहिं जतन नव प्रेम रतन सों, सबहिंन के यहाँ भरयौ गेह।
सबहि रसिक सब ही 'हरिबल्लभ', राजत यहाँ परस्पर नेह ॥ १ ॥

आजु अति स्रमित बिहारिन जानी।
तांडव नृत्य रास मंडल तें, उर धरि प्यारी आनी ॥
स्रम-जल पोंछत कर पंकज सों, बीजत अंचल पानी।
बीरी देत बनाय बदनबिधु, प्रेम चतुर अभिमानी ॥
पौढ़त किसलय - तल पै राधे, निज उर ऊपर आनी।
'हरिबल्लभ' बीजत पद सेवत, आलिन सहित सयानी ॥ २ ॥

कुसुमसर आज नव राज पाये।
सुनत नूपुर सरस, रसिकमनि भए बिबस, निकसि नव कुंज तें निकट आये ॥
नैन नैनहिं मिलत, झुकि रमनि कछु फिरति, बाम कर अंचलनि मुख दुराये।
खोलि घूंघट बलनि, बदनबिधु झलमलनि, मगन 'हरिबल्लभ' प्रमद पाये ॥३॥

---

१. मिश्रबंधु विनोद, भाग २, पृ० ६३४

राधिका अभिसरति विपिन कुंजे ।
बहु कुसुम वेस बनि, कुटिल घन केस गनि, लसत सीमंत अति किरन पुंजे ।।
सतत गुरुलोक डर, चकित आकों भरत, पथ-विपथ देखत न सखिन संगे ।
मदन-मद नृत्य रस, मगन चित्तवित्त बस, रभस 'हरिबल्लभ' प्रनय रंगे ।।४।।

बिहरत मंजुल जमुना तीरे ।
रति-रस कुसल जुगल अति लंपट, प्रविसत कुंज कुटीरे ।।
नख - सिख अंग परस्पर सुबरन, कुसुमन वेस बनाये ।
दोऊ परस्पर बारत तन - मन, मनहीं रीझि रिझाये ।।
हँसि-हंसि मिलत, कतहिं कत चुंवत, नैननि आनँद धार ।
कत कत सरस सिंगार होत, यामें मिटत सबहिं सिंगार ।।
बाजत किंकिनि नांचत कुंडल, मदन महोधि हिलोर ।
डोलत अरुझत हार परस्पर, हँसन चितै चित चोर ।।
मरगज कुसुम सयन अति सौरभ, मुदित मधुप कल गान ।
'हरिबल्लभ' आलीहु रस निरवधि, रूप - सुधारस पान ।। ५ ।।

५५. चतुर शिरोमणि

चतुर शिरोमणि जी वृंदावन भट्टाचार्य जी के शिष्य थे । उन्होंने 'चतुर अलि' के उपनाम से रचना की है । उनका रचना-काल सं० १८५६ है । इसके आधार पर उनका जन्म-संवत् १८२० के लगभग अनुमानित होता है । उनकी रचनाएँ—१. गोदुहावन, २. बंशी प्रशंसा और ३. ब्रजलालसा कही जाती हैं ।

५६. जनदयाल

जनदयाल जी का समय १९ वीं शती का मध्य काल है । उनकी एक रचना 'प्रेम-लीला' कही जाती है ।

५७. श्रीलाल

गो० श्रीलाल जी श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के परिकर में थे, जो १९ वी शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे । वे लखनऊ के प्रसिद्ध रईस शाह बिहारीलाल जी के गुरु थे । उन्हीं की प्रेरणा से उक्त शाह जी ने सं० १८८३ में ठाकुर श्री राधारमण जी का वर्तमान मंदिर बनवाया था । उनकी एक रचना 'अष्टयाम' कही जाती है ।

५८. लाड़िलीदास

लाड़िलीदास जी श्री नारायण भट्ट की शिष्य-परंपरा में बरसाने के गो० नारायणदास जी श्रोत्रिय के वंशज थे । वे बरसाने में रहते थे । उनका जन्म संवत् १८०५ के लगभग अनुमानित होता है । उनके रचे हुए कुछ पद श्री लाड़िली जी के मंदिर बरसाने में उत्सवादि के अवसर पर गाये जाते हैं ।

उनका एक मंगलवाची पद यहाँ पर दिया जाता है । यह पद गो० हरिफूल जी कुंज वालों के गुटका में है । इस गुटका के पदों का लिपि-काल सं० १८६५ है ।

जै-जै श्री नारायन प्रभु भट्ट, प्रगट जग में भये ।
फूले नर और नारि, मोद उपजत नये ।।
सुभ दिन, सुभ इहिं रात, मंगल इहिं सुभ घरी ।
मंगल गावत बाम, लगी आनँद - झरी ।।
आनंद - झरी लगाय, सखियन साथियें कौरें धरे ।
चहुँ ओर बजत मृदंग, नाँचत कहत जै धुनि रँग भरे ।।
भवन भंडारे खोल गुनिन कों, वारि धन बहु देत हैं ।
भट्ट वारि-वारि निहार, श्री मुख रीझि बलैया लेत हैं ।।
मुनि नारद कौ अवतार, देह इहिं नर धरी ।
मथुरा मंडल गुप्त भूमि परघट करी ।।
जुगल भजन सों हेत, वास ब्रज भूमि कियौ ।
रास-विलास सुख लियौ, और सबहिन दियौ ।।
दियौ सुख बहु भाँति सबहिंन, बिमुख सब सन्मुख करे ।
तिलक छाप बँधाय कठी, कहत जय धुनि रंग भरे ।।
महा कठिन कलिकाल, तामें द्वापर रीति जनाइयौ ।
पतित पावन किये सब हो, रसिक जन मन भाइयौ ।। ×
इहिं मंगल निसि-भोर, जु जो नर गाय हैं ।
रहै परम निरसंक, परम पद पाय हैं ।।
रसिकन की रस-रीति, हिये तें ना टरै ।
जनम-करम मिटि जाय, भव सागर तिरै ।।
तिरै भव सागर जु बिन स्रम, होय सहचरि महल की ।
कुंज-केलि विलास लखि अभिलास, छिन-छिन टहल की ।।
लीला अपार, अल्प बुद्धि मेरी, यथामति बरनन कियौ ।
'लाड़िलीदास' कों जानि आपुनौ, बास बरसाने दियौ ।।

५९. कल्याणराय

कल्याणराय जी चंद्रगोपाल जी के वंश में ब्रह्मगोपाल जी के पुत्र थे। उनका जन्म-संवत् १८३० माना जाता है। उन्होंने 'संकल्प कल्पद्रुम' और 'ब्रजमाधुरी' नामक दो ब्रजभाषा काव्य ग्रंथों की रचना की थी। उनकी रचना के कतिपय छंद यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

प्रात रविजात हृदभात सुखबात लखि, राधिका प्रान धन चित्त में बसाऊँ।
मोर की चंद्रिका सीसफूल झूल रहे, मंगला आरती के समय आऊँ॥
कुंज की केलि सुन बेखि नित चाव भरी, सकल सखीन संग रंग सों गाऊँ।
'दास कल्यान' कौ ध्यान धर बास ब्रज, रसिकनिधि राधिका-माधौ लड़ाऊँ॥१॥

दच्छिन भाग बिराजत ललिता, बाम बिराजत कीर्ति-दुलारी।
सन्मुख गादी पै बंसी स्वरूप, सुसोभित श्री जयदेव मुरारी॥
पाछें जसोदा की गोद सी पीठक, दोऊ दिसा में लसै छवि भारी।
ऐसे हैं 'दास कल्यान' के ठाकुर, राधिका-माधव की बलिहारी॥२॥
मंगल भोग सिंगार कौ भोग, मध्याह्न विषै प्रभु राज के भोगी।
भोग अनोसर राज के पाछै, उत्थापन भोग औ साँझ के भोगी॥
सैन के भोग के पाछे हू राखै है नाम, जु सो अभिसारिका भोगी।
'दास कल्यान' के जा विधि सोहत, आठ हैं अंग-अष्टांग के भोगी॥३॥
मंगल आर्ति सवारै करी, पुनि दूजी करी सिंगार के कीयें।
तीजी है राजन भोग की आरति, चौथी सो संध्या की आरति लीयें।
पाँचवीं सैन सजो सो सजी, जहँ आरती पाँचहु तत्वन छीयें।
भूतल तेज औ वायु आकास, क्रमागत तासु विचार कहीयें॥४॥
पृथ्वी तौ घीय कपास औ धूप, लियौ जल लोटी सो बारत बारी।
तेज प्रकास जो बाती सों होय, औ वायु ढुरावत चौंर सुखारी॥
सब्द जो घंटा औ झालर कौ, जहँ भेंट आकास की सब्द के द्वारी।
'दास कल्यान' जिही उपलक्ष है, आरति पाँच प्रकार उचारी॥५॥
धाम वृंदाबन कोस में पाँच, औ पाँच हैं काम के बान महा री।
पाँचों ही तत्व औ पाँच ही पंच, जो धर्म-अधर्म की बात विचारी॥
राम के राय सो आठ कही, जो हैं आठौ सखीन की आठ प्रकारी।
सो तिनके पद में भजियै, लखि आदि सु दानी 'कल्यान' निहारी॥६॥

सेवा क्रम अति कठिन है, ध्यान धरें जयदेव।
स्वयं प्रकासें निज कृपा, रामराय निज टेव॥
अष्टादस सत के समै, सेवा ब्रह्मगोपाल।
जो गाई 'कल्यान' सो, लीनी पूर्वज चाल॥

९०. गोविंदचरण

गोविंदचरण जी कृत 'रास पंचाध्यायी भाषा' बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित हुई है। यह रचना संस्कृत-बंगला मिश्रित ब्रजभाषा में है और अत्यंत अशुद्ध रूप में छापी गई है। इससे मालूम होता है, गोविंदचरण जी कोई बंगाली महात्मा थे, जिनको ब्रजभाषा का अत्यल्प ज्ञान था। इस ग्रंथ की रचना सं० १८८९ की कार्तिक शु० १२, रविवार को वृंदाबनस्थ योगपीठ में हुई थी। इस रचना-काल से गोविंदचरण जी का जन्म-संवत् १८४० के लगभग अनुमानित होता है। इसके अतिरिक्त उनके संबंध में और कोई बात ज्ञात नहीं हुई है। यहाँ पर उनकी रचना का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

आरंभ—तस्मै श्री गुरु चरन नमौं, जो ज्ञान-अंजन नेत्रहि देयी।
अज्ञान अंधतम प्रकासहिं, परम परतत्व दरसायी॥
बंदौ श्रीकृष्ण चैतन्य-नित्यानंद, द्वौ जगत कृपालु होई।
गौड़ उदयाचल एक समै, दोउ चंद्र-सूर्य जैसे उदिताई॥
सकल जन हृदै अज्ञानतम, त्रिविध ताप सब नासहिं।
परम मंगल सुखद भक्ति, सद्म पुस्पाकर विस्तारहिं॥
न अर्पित कहूँ स्वभक्ति उज्ज्वल रस समर्पहेतु सो वपु धरि।
कांचन कांति सुंदर दीप्ति कलौ करुना अवतीर्न करि॥
सो सचीनंदन हरि सिंह हूँ प्रबल हुंकार दर्प भरि।
बसैं सदा हृदि कंदरा तुमरे सो कल्मष द्विरद नास करि॥

अंत-- ब्रजबधू सह रास-लीला, कीन वृंदाबन कृष्णहिं।
श्रद्धायुक्त होइ सुनत जोहि, अथवा इह कोई वर्नतहिं॥
श्री कृष्ण की श्रेष्ठ भक्तिहु, निश्चय ताकों इह मिलतहिं।
हृद काम-रुजहु नास जातहिं, सो सर्व ज्ञाता तत्व कि होहि॥
रास पंचाध्यायी श्री भागवत, सुकदेव जू यह विस्तारहिं।
'गोबिंदचरन' दास दीनहु, भाषा पद करि गावहिं॥

९१. गौरकृष्ण

गो० गौरकृष्ण जी श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के परिकर में हुए थे। उनका जन्म सं० १८६० के लगभग और देहावसान सं० १९०० के लगभग अनुमानित होता है। उन्होंने संस्कृत के साथ ब्रजभाषा में भी काव्य-रचना की थी। उनके कुछ स्फुट पद मिलते हैं।

६२. गोपालदास

गोपालदास उपनाम 'गुपाल कवि' वृंदावन के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। उनके पिता का नाम खड्गराय था। वे चैतन्य मतानुयायी रामवक्स भट्ट के शिष्य थे। उनके प्रधान आश्रयदाता पटियाला महाराज कर्मसिंह के छोटे भाई अजीतसिंह थे[1]। उनके जन्म और देहावसान के ठीक-ठीक संवत् अज्ञात हैं; किंतु उनके रचना-काल से उनका अनुमान किया जा सकता है। उनकी एक रचना 'श्री वृंदाबन धामानुरागावली' की पूर्ति सं० १९०० में हुई थी। इससे उनका जन्म सं० १८६० के लगभग और देहावसान सं० १९३० के लगभग अनुमानित होता है।

उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी, जिनके नाम इस प्रकार कहे जाते हैं–

१. दंपति काव्य विलास, २. दूषण विलास, ३. ध्वनि विलास, ४. भाव विलास, ५. भूषण विलास, ६. मान पचीसी, ७ रस सागर, ८. रास पंचाध्यायी, ९. ब्रज यात्रा, १०. बन यात्रा, ११. वृंदावन माहात्म्य, १२. श्री वृंदाबन धामानुरागावली, १३. बंगी लीला, १४. वर्षोत्सव, १५. गोपाल भट्ट चरित, १६. वृंदावनवासिन के कवित्त और १७. भक्तमाल टीका।

गोपाल नाम के कई कवि हुए हैं। संभव है, उपर्युक्त ग्रंथों में से कुछ किसी दूसरे गोपाल के रचे हुए हों; फिर भी यह निश्चित है कि उन्होंने विभिन्न विषयों की पर्याप्त रचनाएँ की थीं। वे काव्य-शास्त्र के अच्छे विद्वान और ब्रज-वृंदाबन के अनुपम अनुरागी थे। उन्होंने जहाँ काव्य के विविध अंगों का विस्तृत विवेचन किया है, वहाँ ब्रज-भक्ति और ब्रज-महत्व पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। ब्रज-वर्णन की दृष्टि से उनकी 'श्री वृंदाबन धामानुरागावली' महत्वपूर्ण रचना है। इसकी कई प्रतियाँ वृंदावन के ग्रंथ-भंडारों में मिलती हैं। यहाँ पर इसका संक्षिप्त परिचय और उदाहरणार्थ कुछ अंश दिया है।

श्री वृंदाबन धामानुरागावली—इस ग्रंथ की एक पूर्ण प्रति शुद्ध और स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई वृंदावनस्थ गो० राधाचरण जी के पुस्तकालय में है। यह प्रति स्वयं कवि के हाथ की लिखी हुई है, इसलिए इसका अधिक महत्व है। इसमें छोटी साँची के ३०४ पृष्ठ हैं। पुस्तक ४० अध्यायों में पूर्ण हुई है। इसका पूर्ति-काल सं० १९०० है, जैसा इसके अंत में उल्लेख हुआ है—

'इति श्री वृंदाबन धामानुरागावली, बन के ठाकुर वर्णनं नाम चालीसोऽध्याय समाप्त सं० १९०० मिती पूस बदी १० शनिवार। लिखी गुपालदास।।'

---

१. दिग्विजय भूषण, पृ० २७

इस ग्रंथ में कवि ने वृंदाबन की चक्रवेधी परिक्रमा का वर्णन करते हुए उसमें स्थित समस्त दर्शनीय स्थलों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। कवि के समय में वृंदाबन में जो मंदिर, मठ, देवालय, देव-विग्रह, संत-महंतादि थे, उन सबका विस्तृत वर्णन विश्वसनीय व्यक्तियों से सुना हुआ और स्वयं देखा हुआ इस ग्रंथ में लिखा गया है। इससे सं० १६०० के वृंदाबन की पूरी जानकारी मिलती है। इस प्रकार यह ग्रंथ वृंदाबन का तत्कालीन इतिहास लिखने में सहायक हो सकता है। इसके आरंभ, मध्य और अंत के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

श्री गणेशायनमः। अथ चक्रबेधी परिक्रमा लिख्यते ॥ छंद ॥

आरंभ—**भगति - भगत - भगवंत - गुरुहिं के चरनन में सिर नाऊँ।**
वृंदाबन बासिन की पुनि-पुनि, कृपा-कटाक्षहिं पाऊँ॥
बरन्यौ चहत चक्रबेधी परिकरमा प्रथम सुहाई।
निज जन जानि 'गुपाल' कविहिं पै,करहु कृपा सब आई॥
जैसे जनमि चरित जिमि कीने, हरि-हरिजनन सुहाये।
ब्यास समाज सहित बरनत कछु, जो मैने सुनि पाये॥
वेद-पुरान-स्मृति मत,मत जिमि रसिक जनन मिलि गायौ।
पुनि नैननि देख्यौ चरित्र सो, सनहु संत मन भायौ॥

मध्य— **मदनमोहन की जोगपीठ, द्वादसादित्य ढिग जानों।**
तहाँ तें मदनमोहन अद्वैत प्रभु हित प्रगटे मानों॥
सूरदास जो मदनमोहन भए भगत, छोड़ि पतिसाही।
तिनकौ दरवाजौ समाधि इक, राजत है तरु ठाँही॥
सूरज चंद्र सीतला देवी, मदनेस्वर सिव सोहें।
तहाँ सनातन की समाधि ढिग, बहु समाधि मन मोहें॥

अंत— **भगतमाल है मूल मूल सम, टीका ब्याजहिं जाकौ।**
मूलहिं तें प्यारी सु ब्याज यह, कहत सकल जग ताकौ॥
याहीं तें टीका अनुसारहिं संतन कौ जस गायौ।
चढ़ै ब्याज पै ब्याज, सुजस नित अरु विस्तार बढ़ायौ॥
मूल ब्याज निज ब्याज, ब्याज अरु ब्याज ब्याज पै लीजै।
मैं रिनिया तुम धनी संत, कछु छूट बाठ महिं दीजै॥
भगतिमाल कौ पास तुम्हारें, बढ़चौ भगति-धन भारी।
तामें तें कछु 'दास गुपाल' हिं देउ संत सुखकारी॥
यह वृंदाबन-धामानुरागावली, 'गुपाल' बनाई।
सुजन सभा के बीच, सुजन सब करहु प्रचुर अब जाई॥

६३. हरिदेव

हरिदेव जी वृंदाबन के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे। उनका जन्म सं० १८६२ में और देहावसान सं० १९१९ की ज्येष्ठ शु० ११ को हुआ था। मिश्रबंधुओं ने उनका जन्म-काल सं० १८३० और कविता-काल सं० १८५७ लिखा है[1], जो ठीक नहीं है।

हरिदेव जी के पिता का नाम रतिराम जी था, और वे वृंदाबन में परचूनी की दूकान करते थे। वे कवि तो शायद नहीं थे; किंतु काव्य-प्रेमी अवश्य थे। उन्होंने अपने पुत्र को विधि पूर्वक काव्य की शिक्षा दिलवाई थी। हरिदेव जी अपने समय के प्रतिभाशाली कवि और काव्य शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हुए हैं। उन्होंने जो ग्रंथ रचे हैं, उनसे उनकी काव्य-प्रतिभा और विद्वत्ता प्रकट होती है।

ब्रज के विख्यात कवि ग्वाल जी हरिदेव जी के समकालीन ही नहीं, सहपाठी भी थे। उन दोनों ने वृंदाबन के गो० दयानिधि जी से काव्य की आरंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। ऐसी प्रसिद्धि है, हरिदेव जी अपनी बाल्यावस्था में ग्वाल से अधिक प्रतिभाशाली और कुशाग्र बुद्धि थे। इसलिए उनके गुरु दयानिधि जी ग्वाल की अपेक्षा हरिदेव के प्रति अधिक स्नेह रखते थे। वे अपने शिष्यों में हरिदेव को विशेष उत्साह और मनोयोग पूर्वक काव्य की शिक्षा दिया करते थे।

ग्वाल कवि के जीवन-वृत्तांत से प्रकट होता है कि एक बार दयानिधि जी ने एक दोहा पढ़कर ग्वाल और हरिदेव दोनों से उसका अर्थ करने को कहा। ग्वाल उसका अर्थ नहीं कर सके, किंतु हरिदेव ने तत्काल उसका ठीक-ठीक अर्थ कर दिया। इससे दयानिधि जी हरिदेव पर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने समस्त शिष्यों के सन्मुख हरिदेव की प्रशंसा और ग्वाल की प्रतारणा की। इससे ग्वाल अत्यंत दुखी होकर दयानिधि जी के पास से चले गये और फिर उनके पास काव्य-शिक्षा के लिए नहीं आये। उन्होंने बाद में काशी आदि अन्य स्थानों में काव्य की शिक्षा प्राप्त की थी। अपने काव्य-गुरु के रूप में ग्वाल कवि ने दयानिधि जी के स्थान पर खुशहाल कवि का नामोल्लेख किया है[2]। बाद में ग्वाल कवि हरिदेव जी की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हुए। उनके रचे हुए ग्रंथ हरिदेव जी के ग्रंथों से संख्या और काव्य-प्रतिभा दोनों में बढ़कर हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हरिदेव जी की काव्य-रचना कदाचित उनके व्यक्तिगत मनोविनोद तक ही थी, जब कि वह ग्वाल की जीविका का साधन थी।

---

१. मिश्रबंधु विनोद, कवि सं० ११४८, पृष्ठ सं० ६३६

२. ब्रज-भारती, वर्ष ६, अंक ३ में मेरा लेख-"ग्वाल के जीवन-वृत्तांत की समीक्षा"

जहाँ तक हमको ज्ञात हुआ है, हरिदेव जी ने काव्य-रचना को अपनी जीविका का साधन नहीं बनाया था । 'मिश्रबंधु विनोद' में लिखा गया है कि वे नागपुर के अप्पा साहब के यहाँ थे। मिश्रबंधुओं का यह कथन कहाँ तक प्रामाणिक है, इसका निश्चय नहीं हो सका है । मिश्रबंधु विनोद में उनके रचे हुए दो ग्रंथ लिखे गये हैं—१. छंद पयोनिधि और २. नायिका लक्षण । छंद पयोनिधि उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है, जो मुद्रित हो चुका है । हमने नायिकाभेद पर उनकी एक रचना 'रस चंद्रिका' देखी है। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि 'नायिका लक्षण' उनका पृथक् ग्रंथ है, अथवा 'रस चंद्रिका' को ही मिश्रबंधुओं ने इस नाम से लिखा है। यहाँ पर उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय और उनके कतिपय उदाहरण दिये हैं ।

१. **रस चंद्रिका**—यह नायिका-भेद और रस-भेद का सुंदर ग्रंथ है। इसकी एक प्रति वृंदाबन के नंदकिशोर जी मुकुट वालों के पास है । इस प्रति में पुस्तका का आरंभ तो है, परंतु अंत का कुछ भाग नहीं है। ग्रंथ का आरंभ इस प्रकार किया गया है—

अमल कमल के हैं बिमल अनूप पद, सजल जलज की सी कांति दरसत हैं ।
जन-मन मलिंद रहें मोद मदमाते तहाँ, आनंद अछेद दिन-रैन सरसत हैं ।।
कवि 'हरिदेव' उघरे हिय के कपाट, कोटि काके दृग ताके छवि छाँह परसत हैं ।
सुंदरी सिवाजू के मंगल करनहार, मोद भरे गोद में गनेस दरसत हैं ।।१।।
मृदुल अनूप अरुनाई भरे राजें चारु, अमल अमोल नख-पाँति दरसाती है ।
किसलय-मजीठ अरु इंदु नख तारागन, जलज जलूसन की ओप दर जाती है ।।
कहै 'हरिदेव' अरबिंदन के वृंद कहा, कोटि-कोटि इंदुन की आब गरकाती है ।
राधा ठकुरायन के पांयन विलोक, मेरी उक्ति अनूठी ऊठी-झूठी पर जाती है ।।२।।

इस ग्रंथ के कुछ उदाहरण यहाँ पर दिये जाते हैं—

रूप लक्षण—**देखत ही मन कों हरै, वुह सुषमा पावै नैन ।**
होय जगत आधीन जहि, रूप बखानहुँ ऐन ।।

रंभा सी सची सी उरबसी सी न तूल होत, देख छवि भूल होत बधू मैन केरी सी ।
समता न पावै एक तिल हू तिलोत्तमा सी, रूप-रूप कामिनीन होत नैक नेरी सी ।।
एरी 'हरिदेव' की सौं तेरे अंग-अंगनि की सुषमा विलोक लोक हारी मति मेरी सी ।
दीन भयौ चंपा बन, कंचन कमीन भयौ, चंद भयौ चाकर, चिराग भई चेरी सी ।।

स्वाधीनपतिका लक्षण—**जाके जोबन रूप गुन, नायक होय अधीन ।**
स्वाधीनपतिका नायिका, तासों कहें प्रबीन ।।

उदाहरण—**दीन किये 'हरिदेव' के प्रान, सुजान बिलोकि कें सूधे सुभायन ।**
सौतन के गरके री गरूर, भरे गुन-जोबन-रूप के चायन ।।

या ब्रज में ब्रज की बनितान में, कौन सी जो मन तोय सराह न ।
ता पर और सिंगार सिंगारि, करयौ कहा चाहतु है ठकुरायन ! १ ।।
बीरी बनाय दई सु दई, मन हू ने लई चित चौगुने चायनु ।
बैनी गुही वर फूलन सों, चन चूनरी चारु उढ़ाई सुभायनु ।।
चंदन चारु उरोजन सों, मल कें सराबोर करी सुखदायनु ।
मानियै एक इती बिनती, पिय जावक रंग भरौ जिन पायनु ।।२।।
तारिका तू ब्रजलोचन की, चिर होहु सदा तुव हात कौ चूरौ ।
प्रीतम के अनुराग की मूरत, राजत भाग सुहाग कौ जूरौ ।।
देखि परै 'हरिदेव' की सौं, यह तेरौ भटू अधरामृत रूरौ ।
बंधु सो बंधु के जीवन कौ, पर पी मन कौ भयौ बंधन पूरौ ।। ३ ।।
गुरु लोग कलंक लगायौ चहै, सिर नैक हू नीचे तें ऊँचौ जो कीजै ।
चोंच वसायन में बसिवौ, इन सोचन देह खिनौ खिन छीजै ।।
हा हा हितू 'हरिदेव' हमारी, इती बिनती चित दै सुनि लीजै ।
घात परै मिलि जैयै कितै, पर लाल इतै नित ऐबौ न कीजै ।।४।।
जैहै न रावरी बान सुजान, तौ कान्ह कहाँ लगि को समुझैहै ।
जैहै झवान सौ पाय झवावन, कै फिरि कुंज कौ आवन जैहै ।
जैहै चबाव अबै चल यों कोऊ, नैक हू दीठ दुरै लखि जैहै ।
जैहै न रावरौ लाल कछू, पर हाल कलंक हमैं लगि जैहै ।।५।।

इस ग्रंथ में प्रत्येक प्रसंग की समाप्ति पर पुष्पिका दी गई है। शृंगार-रस वर्णन की पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री राधिकारमन पदारविंद मकरंद पानानिंदित
अलिंद श्री रतिराम आत्मज कवि हरिदेव बिरचितायां
रस चंद्रिकायां शृंगार रस वर्नंनं नाम त्रयोदस प्रभा ।

२. **छंद पयोनिधि**—यह सुप्रसिद्ध पिंगल ग्रंथ है । इसकी रचना सं० १८९२, माघ शु० ५ शनिवार को हुई थी । इसका उल्लेख ग्रंथ के अंतिम दोहा में इस प्रकार हुआ है—

धरौ नैन निधि सिद्धि ससि, सबत सुखद उदार ।
माघ सुक्ल तिथि पंचमी, रविनंदन सुभ वार ।।

इस ग्रंथ में आठ 'तरंग' हैं, जिनमें छंद शास्त्र के विभिन्न अंगों का विशद वर्णन हुआ है । प्रथम तरंग में छंद लक्षण, द्वितीय में लघु-गुरु लक्षण, तृतीय में गण निरूपण, चतुर्थ और पंचम में प्रस्तारादि अष्टांग वर्णन, षष्ठ में गणों और वर्णों के फलाफल तथा सप्तम और अष्टम तरंगों में क्रमशः मात्रा छंदों

एवं वर्ण छंदों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। इसकी टीका पथरपुरा वृंदाबन निवासी महंत कन्हैयालाल ने की है। इसका यह सटीक संस्करण श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से चैत्र सं० १९६३ में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ के अध्ययन से छंद शास्त्र का अच्छा ज्ञान होता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

रोलावत्थू लक्षण—उपदोहा के चरण सम, चार चरण कवि आन।
क्षण में मत्ता लाइ सब, 'रोलावत्थू' जान ॥१९३॥

(उदाहरण)—अति सुंदर सुकुमार, तुही त्रिभुवन में तोसी।
द्वैकुल निर्मल रूप, रसिक पिय कौ मन मोसी॥
गुरुजन सकल प्रसन्न, असीसत तोंहि सिरावें।
रंभा रति रमनीय, तिलोतम ना छबि पावें॥

रोलाबत्थू छंद के ४५ भेद होते हैं। उनके नाम इस प्रकार बतलाये गये हैं—

मोहन, माधव, मंजु, कृष्ण, केवल, गिरिधारी।
वामन, विधु, वैकुंठ, विष्णु, बाराह, बिहारी॥
कुंज, गुंज, कल्यान, कमल, कलधूत, विधाता।
मधुर, मुकुंद, मुरारि, मान, मानद, निधिदाता॥
श्याम, राम, कमनीय, देव, दूलह, दृग, खंजन।
रूप, रंग, रस, रसिक, सिद्ध, साधक, मनरंजन॥
शिव, रवि, ब्रह्मा, वेद, ब्रह्मव्यापी, जग कहियै।
रोलाबत्थू नाम, सुकवि ऐसैं गिन लहियै॥

माधवी और किरीटी—आठ सगण की माधवी, मगण किरीटी आठ।
गंगा जल सौं जानियै, आठ रगण कर पाठ ॥५२२॥

(माधवी उदाहरण)-कटि पीतपटी फहरात मनोहर, औ लकुटी कर चारु लिये।
सिर मोरपंखा मुरली धुन बाजत, राजत है बनमाल हिये॥
'हरिदेव' मनोज तरंगन सों, तन चंदन चित्र विचित्र दिये।
यमुना-तट श्री वृषभानुसुता, बिहरै मनमोहन रूप किये॥

किरीटी उदा०-छांड़ सु गोकुल गामहिं कों बलि, जा दिन तें मथुरा कों गये हरि।
सूख गयौ तनु तूल समान, सु सुक्ख समूल हिये तें गये टरि॥
है 'हरिदेव' बिना न कहूँ कल, या विरहाग विसालहिं के भरि।
देखहु बेग हवाल भटू, ब्रजबाल के नैन रहे झरना झरि॥

रसचंद्रिका और छंदोपयोनिधि के अतिरिक्त उनके तीन ग्रंथ और भी कहे जाते हैं, जिनके नाम—१. काव्य कुतूहल (अलंकार), २. रामाश्वमेध और ३. वैद्य सुधानिधि हैं। अंतिम ग्रंथ वैद्यक का है। इसकी हस्त-प्रति रास मंडल, वृंदाबन के बाबा काशीदास के संग्रह में है।

६४. नंदकिशोर

नंदकिशोर जी श्री रामराय–चंद्रगोपाल जी के वंश में बड़े विद्वान पुरुष हुए हैं। उनके पिता का नाम चुन्नीलाल जी और माता का नाम यशोदा जी था। उनका जन्म सं० १८७० में और देहावसान सं० १९१२ की भाद्रपद कृ० १० को हुआ था। इस प्रकार उन्होंने केवल ३२ वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की; किंतु इसी अवधि में वे अपनी विद्वत्ता के कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हो गये थे। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान और भागवत के विख्यात वक्ता थे। उनके संबंध मे गो० राधाचरण जी ने लिखा है—

श्री कालियह्रद निकट,व्यास-सुत दरसन दीनौ ।
भाव - अर्थ गंभीर, प्रेम परिपूरन कीनौ ॥
करि प्रबंध कल्पना, कथा की प्रथा चलाई ।
बसीकरन सम कियौ, चित्त स्रोता समुदाई ॥
भयौ न कोई होयगौ, वक्ता त्रिभुवन रंध्र मा ।
श्री नंदकिसोर पूरन कला, भए भागवत-चंद्रमा ॥

उन्होंने अपने पितामह ब्रह्मगोपाल जी द्वारा बसाई हुई 'ब्रह्मपुरी' में श्री राधा-माधव जी का मंदिर बनवाया था और संस्कृत तथा ब्रजभाषा में अनेक काव्य-रचनाएँ की थीं। उनकी संस्कृत रचनाओं में 'शुकदूत' महाकाव्य है। इसे बाबा कृष्णदास ने भाषा-टीका सहित प्रकाशित किया है। उनकी अन्य संस्कृत रचनाएँ—श्री गौर प्रेमोल्लास, श्री गोविंद गुणार्णव नाटक, श्री राधा विहार चम्पू, भागवत दर्पण, रास पंचाध्यायी, यमुनाष्टक, राधा-रमणाष्टक,गोविंदाष्टक, द्वादश मास प्रबंध कहे जाते हैं। उन्होंने ब्रजभाषा गद्य में भागवत पर एक सरल टीका भी लिखी थी। ब्रजभाषा पद्य में उनके कुछ स्फुट पद हैं और एक छोटी रचना 'बारहखड़ी महिमा' है। उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

धनि - धनि श्री भागवत कथा ।
स्रवन परत ही हरत जगत की, कठिन कठोर व्यथा ॥
सब इतिहास - हास संग्रह कर, व्यासदेव मुनि गाई ।
तिनतें परमहंस चूड़ामनि, श्री सुक मुनि नें पाई ॥
श्री सुकदेव परीच्छित नृप तें, कही कछू समुझाई ।
तातें प्रगट भई या जग में, संत सभा में आई ॥
हरि भक्तन कौ परम धर्म यह, श्री हरि केलि विलास ।
कह्यौ 'किसोर' प्रभू सों भक्तन, जानि आपनौ दास ॥ १ ॥

अरे मन ! मान लै मेरी ।
आनंदकंद मुकुंद - पाद तजि, तैं कहा कुमति गही ।।
बिसरी बहुत आयु ऐसें ही, थोड़ी और रही ।
सो हू फूटे घट के जल लों, छिन-छिन जात बही ।।
यह संपति कछु काम न आवै, जो निज मान लही ।
भजन 'किसोर' प्रभू कौ कर लै, जब लग जनम मही ।। २ ।।
अब प्रभु सुनिये मेरी टेर ।
चहूँ ओर तें कठिन व्यथा नें, मैं लीनों हूँ घेर ।।
सुर-नर-किन्नर और मुनीस्वर, सिव-विधि-बरुन-कुबेर ।
सब ही भ्रमत फिरत हैं निसि-दिन, तव माया के फेर ।।
जब गजराज पुकारचौ जल में, नैक न लागी देर ।
कैसें कियौ 'किसोर' कठिन मन, मो गरीब की बेर ।। ३ ।।
श्री सुकदेव के हम दास ।।
श्री सुकदेव चरन - रज तजिकै, करें न दूजी आस ।
व्यासदेव-सुत की करुना तें, पायौ श्री बन-वास ।।
श्री राधा - माधव नव सेवा, नित्य नवीन हुलास ।
वाधित चोर 'किसोर' प्रभू कों, निरखत रास विलास ।। ४ ।।
जो पैं मो हितवायौ चाओ ।
तौ वह सुंदर साँमरी सूरत, मेरे आगें लाओ ।।
नाहक वैद - सयाने औषध, मोकों देउ - दिवाओ ।
वा मोहन बिन मैं न जिऊँगी, कोटि उपाय कराओ ।।
बन बिहार वृंदावन विहरत, सोई रूप दिखाओ ।
'श्री किसोर' के राधा-माधव, रंचक पास बुलाओ ।। ५ ।।
धनि - धनि श्री भागवत सुनें ।
भू परमानु व्यौम तारागन, वर्षा बिंदु गिनें ।।
तहूँ न तिनकौ पुन्य पुंज अति, बरनन करत बनें ।
तिन भक्तन की अद्भुत लीला, 'नंदकिसोर' भनें ।। ६ ।।

'बारहखड़ी महिमा' का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

(आ०)—कका-कलियुग आयौ जानिकै, श्री नवद्वीप निज धाम ।
प्रगटे धरि गौरांग बपु, सुंदर श्री घनस्याम ।।
खखा-खान-पान और विषय प्रिय, देखि सकल संसार ।
करुनासिंधु महाप्रभु, कीनौ भक्ति प्रचार ।।

गगा-गौड़ देस पावन कियौ, धरि गौरांग स्वरूप ।
उद्धारे हरि नें पतित, परे हते भव - कूप ॥
घघा-घर-घर कीर्तन कृष्ण कौ, करि-करि पावन कीन ।
बाल - वृद्ध - बनिता सबै, करे प्रेम - रस लीन ॥
नना-नाहक जन्म गमाउ मति, करि लै हरि सों नेह ।
बार - बार नहिं बावरे, पावैगौ नर - देह ॥
चचा-चरन भजौ चैतन्य के, जो सुख चाहौ चित्त ।
रसिकन के जीवन वही, प्रान बरोबर बित्त ॥
छछा-छाँड़ि सकल दुर्वासना, भजि लीजै चैतन्य ।
ज्ञान - जोग सब भोग तजि, कीजै भक्ति अनन्य ॥
जजा-जो हरि वृंदाबिपिन में, नाँचे गोपिन संग ।
सोई अब संन्यास धरि, सिखवत हैं सतसंग ॥
झझा-झाँझ - मृदंग बजावहीं, भक्त - जूथ चहुँ ओर ।
'हरे कृष्ण गोविंद' कहि, निर्तत गौर किसोर ॥
ञञा-नित नवीन यह माधुरी, मगन रहो मन मोर ।
पड़त रहै इन कान में, गौर नाम कौ सोर ॥
टटा-टूक - टूक की गूदड़ी, गौर - चरन अनुराग ।
बड़े भाग्य तें पाइयें, विषयन सों वैराग ॥
ठठा-ठाकुर नाहिन दूसरौ, श्री चैतन्य समान ।
जो निज भक्तन देत हैं, प्रेम - भक्ति कौ दान ॥
डडा-डारि भार संसार कों, धरि सन्यासी भेष ।
उद्धारौ हरि नाम तें, सब बंगालौ देस ॥
ढढा-ढाइ दिये नाना कुमति, करि हरि नाम प्रहार ।
नवद्वीप निज धाम में, कीनों नित्य बिहार ॥
णणा-निंदक पापी पतित अति, दुष्टन के सिरमौर ।
ते गौरांग प्रताप तें, भये और से और ॥ ×

(अंत)—हहा-हरी - हरी हरि कौ यही, घरी - घरी नित खेल ।
हरी करी पाषान तें, जरी भक्ति की बेल ॥
प्रेम भरी हरि नें करी, कृपा - दृष्टि की कोर ।
हरी खरी बाराखड़ी, रसनिधि 'नंदकिसोर' ॥
लीला यह चैतन्य की, गावैगो जो कोइ ।
रूप - प्रेम रस - माधुरी, हृदै प्रकासित होइ ॥

६५. ब्रजकिशोर

ब्रजकिशोर जी श्री रामराय—चंद्रगोपाल जी के वंश में चुन्नीलाल जी के द्वितीय पुत्र थे । उनका जन्म सं० १८७५ की श्रावण शु० ८ को वृंदाबन में हुआ था। उनके ज्येष्ठ भ्राता नंदकिशोर जी थे, जिनका वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। उनकी एक छोटी रचना 'सेवा प्रकाश' है। इसमें श्री राधा-माधव जी के सेवा विषयक १०१ दोहे हैं। उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत हैं—

आद्य रसिक आचार्य वर, श्री जयदेव दयाल ।
रस लीला अदभुत प्रकट, करी भक्त - प्रतिपाल ॥ १ ॥
बंशी के अवतार हैं, बंशी रूप अनूप ।
श्री जयदेव महाप्रभु, रसिक संप्रदा भूप ॥ २ ॥
जो चाहत वृंदाविपिन, रस कौ पान अपार ।
तौ श्री गीतगोबिंद कों, करि लै गल कौ हार ॥ ३ ॥
श्री वृंदाबन माधुरी, प्रथम कही जयदेव ।
जगन्नाथ स्वामी स्वयं, प्रगट सुधा - रस सेव ॥ ४ ॥
पीवत तृपित न होत है, पीवन की अति चाह ।
श्री राधा - माधव सु रस, गीत गोबिंद प्रवाह ॥ ५ ॥
श्री वृंदाबन नित्य है, विलसत धीर - समीर ।
श्री राधा-माधव माधुरी, सोभा जमुना तीर ॥ ६ ॥
कालीदह के निकट में, दिव्य पुरातन धाम ।
विलसत श्री जयदेव के, राधा-माधव स्याम ॥ ७ ॥
नित्य नवल सुख कौ मरम, सेवत सखी समाज ।
श्री राधा - माधव सहित, श्री जयदेव बिराज ॥ ८ ॥
आठ सखिन के आठ हैं, भारे सुख - सिंगार ।
चंद्र स्वेत मंगल सु रंग, बुध कछु हरित विचार ॥ ९ ॥
गुरु कों पीरे, सुक्र कों स्वेत, कोई नव रंग ।
सनि कों स्याम धराइयै, वस्त्र अलौकिक अंग ॥ १० ॥
रवि कों हू पीरे धरै, मावस्या कों स्याम ।
पूनम कों पीतांबरी, अथवा स्वेत ललाम ॥ ११ ॥
भोग सिंगार सु थार में, मठरी - लडुआ - सेव ।
जल - लोटी संग में धरै, आरोगत जयदेव ॥ १२ ॥×
यह उत्सव अरु नित्य की सेवा सेवा धाम ।
'ब्रजकिसोर' बरनन करी, कुल की रीति ललाम ॥ १०१ ॥

६६. कृष्णचैतन्य

गो० कृष्णचैतन्य जी श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के परिकर में हुए हैं। वे काशी में निवास करते थे और उनका काव्योपनाम 'निज' कवि था। उनकी एक छोटी सी रचना 'श्री राधारमण श्रृंगाराष्टक' उपलब्ध है, जिसकी पूर्ति सं० १९२२ में हुई थी। इस रचना के आधार पर उनका जन्म-कल सं० १८८० के लगभग अनुमानित होता है। यहाँ पर उनकी रचना के कुछ छंद उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

द्वै ससि दोय चकोर, द्वै बपु एकै तन धरचौ।
जै-जै जुगल किसोर, विदित नाम राधारमन॥ १॥

सुंदर सुचिक्कन सुढार स्याम सोहै बपु,
महा लावन्य धाम लटक निज अंग की।
कोमल चरन-कौल नटवर ढोर मोर,
पोर-पोर छोर छवि कोटिन अनंग को॥
बंक गति लंक लै सु अंग लौं तिरीछे ठाढ़े,
मृदु कर कीन्हे मुद्रा बेनु के प्रसंग की।
कुंडल स्त्रवन, सीस चंद्रिका नमन,
जै-जै राधिकारमन,लाल ललित त्रिभंग की॥ २॥

जै-जै-जै राधारमन, जुगल वेष बपु एक।
देहुँ लड़ैती स्याम घन, चित चातिक लौं टेक॥
जै-जै-जै राधारमन, विवि तन एकै देहु।
चारु चरन नख-चंद्र कौ, निज चकोर करि लेहु॥ ३॥

हम अति घोर पापी लंपट कुटिल बुद्धि,
कुमति सुभाव रचि हा-हा मति खोजियो।
आप ही हौ कारन मम कृत निरधारन के,
एहो सर्वज्ञ जगदीस सुनि लीजियो॥
'निज' तो मनुज कीट दुरतर तिहारी माया,
निग्रह-अनुग्रह रुचै सो न्याव कीजियो।
सरन तिहारी प्रनतारति-हरन नाथ,
राधिकारमन जू चरन-रति दीजियो॥ ४॥

श्री गुरु भट्ट गुपाल के, परम लड़ैते लाल।
वंदौं श्री राधारमन, सरनागत प्रतिपाल॥ ५॥

६७. ललितकिशोरी

ललितकिशोरी जी चैतन्य मतानुयायी पिछले भक्त कवियों बहुत प्रसिद्ध हुए है। उनका मूल नाम शाह कुंदनलाल था। वे संवत् १८८२ की कार्तिक कृ० २ को लखनऊ में उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह शाह बिहारीलाल जी नवाब के जौहरी और लखनऊ के सर्वाधिक धनाढच रईसों में से थे। उनके पिता का नाम शाह गोविंदलाल था। वे अग्रवाल वैश्य थे।

उनके छोटे भाई शाह फुंदनलाल थे। उनका काव्योपनाम 'ललित माधुरी' था। बाल्य-काल से ही दोनों भाइयों में बड़ा स्नेह था, जो अंत तक उसी प्रकार बना रहा। आरंभ में दोनों भाइयों को फारसी पढ़ाई गई। ललितकिशोरी जी की इच्छा संस्कृत पढ़ने की थी, किंतु उस समय के पंडित गण वैश्यों को संस्कृत पढाना उचित नही समझते थे। इससे उनको बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने 'चातुर्वर्ण्य विवेक' नामक एक पुस्तिका लिख डाली। उन्होंने अध्यवसाय पूर्वक कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। वे गान, वाद्य, नृत्य, नाट्य आदि कई कलाओं के उत्कृष्ट ज्ञाता और रत्नों के अच्छे पारखी थे। वे बचपन से ही उत्तम काव्य-रचना करने लगे थे। उन्होंने ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू में बहुत सी कविताएँ तथा ग़ज़ल-शैर आदि लिखे हैं। इससे उनकी जन्मजात काव्य-प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। उनमें बचपन से ही भक्ति-भावना का भी अंकुर विद्यमान था, जो कालांतर में विकसित होकर वृंदावन में सुदृढ़ और परिपुष्ट हुआ था।

सं० १९०६ में जब ललितकिशोरी जी २४ वर्ष के युवक थे, तब उन्हें प्रथम बार ब्रज में आने का सुयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने वहाँ के अनेक लीला-स्थलों का दर्शन किया। तभी से उनका मन वृंदाबन की रस-माधुरी में रम गया। वे वहाँ से वापिस जाना नहीं चाहते थे, किंतु उनका वहाँ स्थायी रूप से रहना भी उस समय संभव नहीं था। वे मन मार कर लखनऊ वापिस गये; किंतु उनकी इच्छा वृंदाबन में निवास करने की बनी रही। वे भगवद्भक्ति और भक्ति-काव्य की रचना करते हुए वृंदाबन जाने के सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

आखिर सं० १९१२ के अंतिम दिनों में उन्होंने लखनऊ छोड़ कर वृंदाबन में निवास करने का निश्चय कर लिया। तब तक उनके पितामह और माता-पिता का स्वर्गवास हो चुका था तथा वे अपनी पारिवारिक सम्पत्ति का बटवारा करा चुके थे। इस प्रकार निश्चित होकर वे सं० १९१३ की वैशाख शु० १३ को सपरिवार वृंदाबन आ गये। उनके साथ उनके छोटे भाई ललित-माधुरी जी भी अपने परिवार और निजी सेवकों सहित आये थे।

उनके गुरु वृंदावन के श्री राधारमण जी के गोस्वामी राधागोविंद जी थे। उन्होंने वृंदावन में संगमरमर का एक विशाल मंदिर सं० १९२५ में बनवाया, जिसका नाम उन्होंने 'ललित निकुंज' रखा था। यह मंदिर आजकल 'शाह जी के मंदिर' के नाम से प्रसिद्ध है और वृंदावन के सर्वोत्तम मंदिरों में गिना जाता है। वे अपने अनुज ललित माधुरी सहित अपने उपास्य श्री राधारमण जी की अनन्य भाव से सेवा में दत्तचित्त होकर भक्तिपूर्ण काव्य-रचना करने लगे।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है—

प्रथम लखनऊ बसि, श्री बन सों नेह बढ़ायौ।
तहँ श्री जुगल-स्वरूप थापि, मंदिर बनवायौ॥
द्वापर कौ सुखरास, रास कलियुग में कीनौ।
सोई भजन-आनंद-भाव, सहचरि रंग भीनौ॥
लखन पद ललित किसोरिका, नाम प्रगटि बिरचे नये।
कुल अग्रवाल पावन करन, कुंदनलाल प्रगट भये॥

राधाचरण जी गोस्वामी ने भी उनके प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करते हुए कहा है—

छाँड़ि बादसाही बैभव, लक्ष्मनपुर त्याग्यौ।
श्री वृंदावन वास दृढ़ व्रत, अति अनुराग्यौ॥
'ललित निकुंज' बनाय, राधिकारमन बिराजे।
रास-बिलास-प्रकास, लच्छ पद रचना भ्राजे॥
ब्रजराज मध्य समाधि लिय, जुगल भ्रात निर्भय निपुन।
श्री ललितकिसोरी, ललितमाधुरी, प्रेममूर्ति वृंदाबिपिन॥

उनकी वृंदावन-निष्ठा बड़ी विलक्षण और अपूर्व थी। वे जूता-चट्टी पहन कर वहाँ कभी नहीं घूमते थे। उन्होंने ब्रज-रज में मल-मूत्र का परित्याग तक नहीं किया। इसके लिए आगरा से मिट्टी के पात्र मँगाये जाते थे और उन्हें ब्रज की सीमा के बाहर फिकवाया जाता था! वे लखनऊ में हुक्का पिया करते थे; किंतु ब्रज की सीमा में घुसते ही उन्होंने उसे लात मार कर तोड़ दिया और फिर उसे कभी नहीं छुआ। वे वृंदावन आने के पश्चात् मृत्यु पर्यंत ब्रज की सीमा से बाहर नहीं गये। सं० १९१४ के विप्लव में उन्होंने युक्तिपूर्वक ब्रज को बचा लिया। शांति हो जाने पर अंगरेजी सरकार ने उन पर मुकदमा चलाया और उन्हें फांसी की सजा दिये जाने की आशंका होने लगी। उन्होंने कहा कि यदि उन्हें फांसी हो, तो वृंदावन में ही हो और उनके आस-पास हरिनाम-कीर्तन होता रहे! भगवत्कृपा से ऐसा अवसर नहीं आया और वे बेलाग छूट गये।

ब्रजभक्ति की इतनी तन्मयता और तीव्रता अन्य व्यक्ति में मिलना कठिन है। उनका देहावसान सं० १९३० की कार्तिक शु० २ गुरुवार को हुआ था।

वे एकांत-प्रिय महात्मा, साधक भक्त, रसिक कवि और प्रगाढ़ विद्वान थे। उनकी रसात्मकता और विद्वत्ता के कारण उनकी कविता का निराला ही रंग है। उन्होंने जहाँ ब्रजभाषा में उत्कृष्ट पदों की सरस रचना की है, वहाँ उर्दू-फारसी में कमाल की शायरी भी की है।

उनकी रचनाओं का संकलन उनके अनुज ललित माधुरी जी ने कराया था। उनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं और अप्रकाशित रचनाओं में एक बड़ा ग्रंथ 'रस-कलिका' है। प्रकाशित रचनाओं में 'अभिलाष माधुरी' मुख्य है। इसमें ललितकिशोरी जी की रचनाओं के साथ ललित माधुरी जी की रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। इसमें 'विनय-शृंगार शतक', 'जुगल विहार शतक', बाराखड़ी, बारामासी आदि रचनाएँ हैं तथा सिद्धांत के कुछ स्फुट पद भी हैं। उनकी मुकुरी, जमकजंत्री और ग़ज़लें भी भगवद्भक्ति के रस में रँगी हुई है। उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

मोहन के अति नैन नुकीले।
निकसे जात पार हियरा के, निरखत निपट गसीले॥
ना जानौं बेधुन अँनियनि की, तीन लोक तें न्यारी।
ज्यों-ज्यों छिदत मिठास हिये में, सुख लागत सुकुमारी॥
जब सों जमुना-कूल विलोक्यौ, सब निसि नींद न आवै।
उठत मरोर बंक चितवनियाँ, उर उतपात मचावै॥
'ललितकिसोरी' आज मिलै जहँ, ना कुल-कान विचारौं।
आग लगै यह लाज निगोड़ी, दृग भरि स्याम निहारौं॥ १॥

नूतन छवि वृषभान-दुलारी॥
अनु अबीर अलकन दुति झलकत, मनहुँ उदित उडुगन उजियारी।
केसर लहर कपोलन उरझी, इंद्र-धनुष सोभा विस्तारी॥
चिबुक-कुंड तिल रँग-कन-मंडित, अनुपम उपमा आज निहारी।
'ललितकिसोरी' रूप-सरोवर, खेलत होरी स्यामबिहारी॥ २॥

कमल-मुख खोलो आजु पियारे!
विकसित कमल, कुमोदिनि मुकुलित, अलि-गन मंत्र गुँजारे।
प्राची दिसि रवि-थार आरती, लिये ठनी निवछारे॥
'ललितकिसोरी' सुनि यह बानी, कुरकुट बिसद पुकारे।
रजनी राज बिदा माँगै, बलि निरखौ पलक उघारे॥ ३॥

मुरकि - मुरकि चितवनि चित चोरै ।
ठुमकि चलन हेरी दै बोलनि, पुलकनि नंदकिसोरै ।।
सहरावनि गैयान चौंकनी, थपकन कर बनमाली ।
गुहरावनि लै नाम सबन कौ, धौरी-धूमर श्राली ।।
चुचकारनि चट झपटि बिचकनी, हूँ-हूँ रहौ रंगीली ।
नियरावनि चोंखनि मग ही में झुकि बछियान छबीली ।।
फिरकैयाँ लै निरत अलापन, बिच-बिच तान रसीली ।
चितवनि ठिठुकि उढकि गैया सों, सीटी भरनि रमीली ।।
चाँपन अधर सैन दै चंचल, नैनन मेलि कटारी ।
जोरनि कर हा हा करि मोदन, मुसकन ऐंड़ि बिहारी ।।
बाँह उठाय उचकि पग टेरनि, इतै कितै हौ स्यामा ।
निकसी नई आज तैं बनरिहु, मोरे ढिग अभिरामा ।।
हरुवे खोर साँकरी जुबतिन, कहत गुलाम तिहारौ ।
मिलियौ रैन मालती कुंजे, तहँ पिक अरुन निहारौ ।।
काहू झटक चीर लकुटी तें, काहू पगै दबावै ।
काहू अंग परसि काहू तन, नैनन कोर नचावै ।।
उरझत पट नूपुर सों पाछै, झुकि-झुकि कै सुरझावै ।
'ललितकिसोरी' ललित लाड़िली, दृग संकेत बतावै ।। ४ ।।

द्रुम-बेलि लबंगलता सघनो, रही फूलि सुरंग सु मंजु तहीं ।
तनया रवि ओर किसोर दोऊ, रस-रंग भरे बिहरैं तितहीं ।।
दृग जोर मरोर की कोर अनी, अधरामृत पान करैंहि तहीं ।
तिनकी छबि हेरि हिए हुलसौं, जुग चंद्र-चकोर रहौं नित हीं ।। ५ ।।

साँचहु मान भई ये अँखियाँ, निज उपमा कवि वृथा कहीं ।
बिन अवलोकें गौर-स्याम छबि, अँसुवन-जल उतराय रहीं ।।
लाज-जाल नहिं फँसत अरबरी, छबि-निधि प्रेम-प्रवाह बहीं ।
'ललितकिसोरी' इहै अचंभौ, जल भीतर अकुलाय रहीं ।। ६ ।।

औघट आनि परी अनजानें, फँसी फंद सुर मंद बसुरिया ।
कहा करौं कित जाऊँ दई री, अलि जन खेलत दूरि निबरिया ।।
इत जमुना उत गाय मरखनी, घैला सिर सूझै न डगरिया ।
इश्क चमन मोहन तकि मारत, चितवन-सर दृग-कोर कटरिया ।। ७ ।।

जुगल वर अफ़ीक़ी लवाँ कैसे-कैसे । फबे नीले-पीले पटाँ कैसे-कैसे ।।
खुमारी न समझो हैं बीमार चश्में । झुके पड़ते हैं नातवाँ कैसे-कैसे ।।
पलक अबरुओं से ही करते हैं घायल । बनाये हैं तीरो-कमाँ कैसे-कैसे ।।८।।

६८. गल्लू जी

गल्लू जी श्री गोपाल भट्ट जी के परिकर में वृंदाबनस्थ माध्व गौड़ेश्वराचार्य और श्री राधारमण जी के गोस्वामी थे। उनका उपनाम 'गुणमंजरीदास' था। उनका जन्म सं० १८८४ की ज्येष्ठ कृष्णा ८ को वृंदाबन में हुआ था। उनके पिता का नाम रमणदयालु गोस्वामी और माता का नाम सखी देवी था। प्रथम पत्नी का असामयिक निधन हो जाने पर गल्लू जी का विवाह वृंदाबन के पं० जगन्नाथ मिश्र की कन्या सूर्यदेवी के साथ हुआ, जिनसे सं० १९१५ में सुप्रसिद्ध हिंदी-सेवी राधाचरण जी गोस्वामी का जन्म हुआ।

गल्लू जी पुराने विचारों के कट्टर वैष्णव और निष्ठावान भक्त थे। वे वैष्णव भक्ति-सिद्धांत के प्रतिकूल आचार-विचार के बिरोधी थे। उन्हें अंगरेजी-फारसी आदि अभारतीय भाषाओं का पठन-पाठन अरुचिकर था! वे धर्म-ग्रंथों के ज्ञाता और मार्मिक वक्ता थे। उन्होंने फर्रुखाबाद, लखनऊ, भरतपुर, शाहजहाँपुर, काशी आदि विविध स्थानों में कथा-वार्ता कर अनेक शिष्य बनाये और विपुल संपत्ति उपार्जित की। उन्होंने कई स्थानों में अपने इष्टदेव श्री राधा-रमण जी के मंदिर बनवाये और चैतन्य मत का व्यापक प्रचार किया। सं० १९३२ में उन्होंने वृंदाबन में श्री षड्भुज महाप्रभु जी के मंदिर की स्थापना की और सं० १९३७ से वे अखंड रूप से वृंदाबन-वास करने लगे। उनका अंतिम जीवन विरक्तावस्था में व्यतीत हुआ था। उस समय वे सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर केवल भगवद्भक्ति, कथा-कीर्तन, श्री राधारमण जी की सेवा-पूजा और दर्शन-झांकी में अपने समय का सदुपयोग करते थे। उनका देहावसान सं० १९४७ की मार्गशीर्ष कृ० १ को ६३ वर्ष की आयु में हुआ था।

ललितकिशोरी जी जैसे विख्यात भक्त-कवि ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है--

पग अरबिंदन श्री गल्लू जी गोस्वामी नित उर में धारौं।
जिन अधिकार निकुंज-गवन कों दीनों मुहिं, छिन नाँहि बिसारौं।।
'ललितकिसोरी' रंक के धन ज्यौं, पल-पल अंतस माँहि सँभारौं।
मन-चकोर ह्वै अनमिष आली, पुनि-पुनि पद-नख-चंद निहारौं।।

राधाचरण जी गोस्वामी ने उनके स्वरूप का परिचय देते हुए लिखा है—

जुगल प्रेम सर्वस्व, भजन-भावन गत अहनिस।
ब्रजवासिन कों करन, सरन भक्तन कों सब दिस।।

राधारमन लड़ाय, रहत ताही रँग - राते ।
श्री भागौत - स्वरूप, इष्ट ग्रंथन रस - माते ।।
पद - रचना पावन किये, देस - देस भव - भंजरी ।
श्री गल्लू जी गुणमंजरीदास, अपर गुणमंजरी ।।

उन्होंने 'गुणमंजरी' के उपनाम से ब्रजभाषा-पदों में उत्तम काव्य-रचना की है । उनके पदों के कई संकलन हैं । श्री राधारमण जी के नित्य कीर्तन और वर्षोत्सव कीर्तन का संकलन 'श्री राधारमण पद मंजरी' के नाम से प्रकाशित हो चुका है । उनकी अन्य रचना 'युगल छद्म' भी प्रकाशित है । इनके अतिरिक्त रहस्यपद,पदावशेष,भागवत पद मुक्तावली,उराहनौ लीला, गोपाल भट्ट शतक और प्रार्थना नामक उनकी रचनाएँ हैं । कुछ पद उदाहरणार्थ दिये हैं—

श्री राधारमन छबीले छैल ।
अंग - अनंग - तरंग भरे हैं, प्रगटत जोबन फैल ।
नवल किसोरी रूप-बाग में, निरखत नई - नई सैल ।
'गुनमंजरी' गुमानो दानी, रोकत नागरी गैल ।। १ ।।
श्री राधारमन मुरलिया बजावै ।
कर-कमलन धर अधर परसि कै, अदभुत छवि सरसावै ।।
एक - एक रंध्रन में न्यारे - न्यारे सुर दरसावै ।
'गुनमंजरी' गोपाल रूप हरि, राधे - राधे गावै ।। २ ।।
श्री राधारमन जी प्रगट भये, सब दुख दूर गये ।
श्री वृंदाबन बजत बधाई, रसिकन मोद छये ।।
श्री गोपाल भट्ट करुनाकर, यह सुख सबन दये ।
'गुनमंजरी' छवि बरनी न जाय, नित अनुराग नये ।। ३ ।।
श्री राधारमन - चरन - तल मेंहदी ।
कैसी रची खची मो हिय में, निरखौ जाय अलहदी ।।
बसी नैन मेरे री सजनी, कैसी बनी जु कह दी ।
'गुनमंजरी' लखें या ही कों, और कछू नहिं चहेंदी ।। ४ ।।

जै - जै श्री गोपाल भट्ट रसिकन-मनी ।
अंग छवि लज्जित हेम, प्रेम-रत्नन खनी ।।
श्रीयुत रूप-सनातन भ्रातन जीवनि, प्रीति रीति संदर्भ गर्भ बानी भनी ।
भनी बानी प्रेम - सानी, जुगल सुख - दानी घनी ।।
गौर - कीर्तन मधुर निर्तन, राधिका-रमनी धनी ।
करुना-सिंधु अनाथ-बंधु, कहि परत नहिं गुन-गनी ।। ५ ।।

६९. ललितमाधुरी

ललितमाधुरी जी सुप्रसिद्ध शाह कुंदनलाल उपनाम 'ललितकिशोरी' जी के छोटे भाई थे। उनका मूल नाम शाह फुंदनलाल और उपनाम 'ललितमाधुरी' था। उनका जन्म लखनऊ के विख्यात धनाढ्य शाह परिवार में सं० १८८५ की माघ शु० १४ को हुआ था। उनके पितामह का नाम शाह बिहारीलाल और पिता का नाम शाह गोविंदलाल था।

वे अपने बड़े भ्राता शाह कुंदनलाल के प्रति आरंभ से ही अत्यंत स्नेह और आदर रखते थे। भगवद्भक्ति, काव्य-रचना और विरक्ति-भाव आदि सभी बातों में उनकी प्रकृति अपने अग्रज के अनुकूल थी। सं० १९१३ में जब शाह कुंदनलाल लखनऊ छोड़ कर वृंदाबन आये, तब वे भी अपने परिवार सहित उनके साथ थे। फिर जीवन पर्यंत वे अपने अग्रज के प्रत्येक कार्य में सहयोगी और आज्ञाकारी बने रहे। उन्होंने अपनी भातृ-भक्ति से इस कलि-काल में त्रेता के लक्ष्मण जी का उदाहरण उपस्थित किया था। श्री भारतेन्दु जी ने उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए ठीक ही लिखा है—

अग्रज कुंदनलाल, सदा दैवत सम मान्यौ।
परम गुप्त हरि-विरह, अमृत सों हियरौ सान्यौ।।
अंतरंग सखि-भाव, कबहुँ काहू न लखायौ।
करम-जाल विध्वंसि, प्रेम-पथ सुदृढ़ चलायौ।।
श्री फुंदनलाल उदार मति, बंधु - भगति अति धारि हिय।
त्रेता में जो लछिमन करी, सो इन कलियुग माँहि किय।।

ललितमाधुरी जी उत्तम काव्य-रचना करते थे। उनकी रचनाओं की कोई पृथक् पुस्तक उपलब्ध नहीं है। ललितकिशोरी जी की रचनाओं के संकलन में उनकी रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। उन्होंने कुछ रचनाओं में अपने नाम की छाप न रख कर उन्हें अपने अग्रज ललितकिशोरी जी की कृति के रूप में भी प्रसिद्ध किया है। ऐसा कहा जाता है कि ललितकिशोरी जी के देहावसान के पश्चात् उन्होंने जितनी रचनाएँ कीं, उनमें अपना नाम न रख कर ललितकिशोरी जी का ही नाम रखा था।

उन्होंने अपने अग्रज की समस्त रचनाओं को संकलित कर उनमें से कुछ को प्रकाशित भी कराया था। 'अभिलाष-माधुरी' में ललितकिशोरी जी की रचनाओं के साथ उनके भी कुछ पद संगृहीत हैं। यह ग्रंथ वृंदाबन से प्रकाशित हो चुका है। उनका देहावसान सं० १९४२ की ज्येष्ठ शु० ५ को वृंदाबन में हुआ था।

जिन रचनाओं में उनके नाम की छाप मिलती है, उनमें से कुछ यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जाती हैं—

हाय ! कहा बिपरीति भई ।
जुगल चद मुख-चंद विलोकन, डसीं भुजंगिनि बिन रदई ।।
'ललित माधुरी' बिरह-बिथित अति,कढ़त न प्रानहुँ कठिन दई ।
मो अभाग के उदय भयौ कोऊ, दंपति प्रीति की रीति नई ।। १ ।।
मोहन चोर पकरि कैसे पाऊँ ।
देखति हौं दृग भरि-भरि सजनी, परसन कों रहि-रहि ललचाऊँ ।।
दुरयौ निकुंज-लता बन-बीथिन, निपट निकट मैं तोहि बताऊँ ।
'ललितमाधुरी' ही में जी सँग, चित-चोरै हौं आनि मिलाऊँ ।। २ ।।
क्यों जी, कुल-कानि तजैई बनेगी !
कुल-कलंक ब्रजचंद स्याम कों, अब का बीर भजैई बनैगी ।।
अवलोकत मुख 'ललितमाधुरी', हियौ मसोसि लजैई बनैगी ।
कैगरु जन गुरु त्रास तोरि कैं, साज सनेह सजैई बनेगी ।। ३ ।।
मोर-मुकुट झलमलै सीस पर, कलगी सुघर सँवारी है ।
कटि काछिन रौरी बपु नटवर, पग नूपुर-धुनि प्यारी है ।।
सहज लगी उर नवल किसोरी, निरख जहाँ फुलवारी है ।
क्यों बरनों छबि 'ललितमाधुरी', राधारमन बिहारी है ।। ४ ।।
मोहन रूप - अनूप किसोरी ।
मुख-लावन्य बिलोक लजाहीं, इंदु अनेकन काम करोरी ।।
घुँघरारी अलकावलि माथें, नील कमल पर भ्रमर उड़ें री ।
दीरघ नैन सैन मदमाते, स्रवन लागि कछु कह्यौ चहैं री ।।
भृकुटी बंक इद्र-धनु निंदक, अधर बिंब अपकर्ष कियें री ।
अदभुत चिबुक चारु दसनावलि, मृदु मुसक्यान-मिठान हिये री ।।
बोलनि चलनि बंक चितवनियाँ, अनुपम बँसुरी बिसद बजावै ।
'ललितमाधुरी' छैल-चिकनियाँ, देखत बनै कहत नहिं आवै ।। ५ ।।
कहौ चंद, दंपति-कुसलात ।
मम जीवन-धन प्रान-पियारे, दंपति कौन कुंज बिलसात ।।
तू छिन भले निहारे नख-सिख, लली-लाल सुकुमारे गात ।
तो तन-दुति अति बदन विफुलता, कहै देति छबि निरखत बात ।।
धन्य-धन्य तू, धनि तो जीवन, कछु तौ करि बचनामृत- पात ।
'ललितमाधुरी' अरे निरदई, कत अबोल द्रुम-ओटनि जात ।। ६ ।।

७०. ललितलड़ैती

ललितलड़ैती जी का मूल नाम इंद्रभान था। उनके पिता मुंशी टिक्कनलाल थे। वे पंजाब में डेरा गाजीखाँ नगर के निवासी थे; किंतु ब्रज-वृंदाबन से उनका निकट संपर्क ज्ञात होता है। उन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा में 'दंपति विलास' नामक वृहत् काव्य-ग्रंथ की रचना की है। इसकी प्रेरणा उन्हें चैतन्य मतानुयायी गो० श्यामदास के परिवार के गो० बालमुकुंद जी से मिली थी। उक्त गोस्वामी जी ही ललितलड़ैती जी के गुरु थे। अपने ग्रंथ के अंत में उन्होंने सुप्रसिद्ध पंजाबी भक्त-कवि नारायणस्वामी जी के प्रति भी अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की है।

उनके जन्म, देहावसान और ग्रंथ-रचना के यथार्थ काल का उल्लेख नहीं मिलता है। 'दंपति विलास' ग्रंथ के पूर्ण होने की तिथि तो माघ शु० १५ बतलाई गई है[1]; किंतु उसका संवत् नहीं लिखा गया है। ग्रंथ के आरंभिक वक्तव्य से विदित होता है कि वह प्रथम बार मथुरा के लीथो प्रेस में सं० १९५१ में मुद्रित हुआ था। इससे उसका रचना-काल सं० १९४५ के लगभग जान पड़ता है। इसी आधार पर ललितलड़ैती जी का जन्म-काल सं० १९०० के लगभग अनुमानित होता है।

उन्होंने ब्रज के प्राचीन महात्माओं की वाणी के आधार पर अपनी काव्य-रचना की है। उनकी रचना सरस है; किंतु उसमें प्राचीन भक्त कवियों की छाया मिलती है। काव्य-रचना के बीच-बीच में 'वार्तिक' के रूप में कुछ गद्य भी लिखा गया है। यहाँ पर उनके ग्रंथ का परिचय और उनकी रचना के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

दंपति विलास—यह विविध राग-रागनियों में रचा हुआ वृहत् काव्य-ग्रंथ है, जो पाँच भागों में पूर्ण हुआ है। इसके प्रथम भाग में विनय और सिद्धांत के पद तथा प्रिया-प्रियतम की ब्रज-लीलाओं का सरस वर्णन है। दूसरे भाग में बसंत, होली, हिंडोरा, सांझी और रास विषयक ऋतुओं की लीलाएँ लिखी गई हैं। तीसरे भाग में छद्म लीलाएँ और चौथे में शयन लीलाएँ हैं तथा पाँचवें में चेतावनी विषयक पद हैं। यह ग्रंथ दो बार लीथों में छप चुका है। प्रथम बार सं० १९५१ में मथुरा में और दूसरी बार सं० १९५९ में डेरा गाजीखां में छपा था। इसके कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

---

१. **माघी शुक्ला पूर्णिमा, मंगल ऋतू बसंत।**
'ललितलड़ैती' कृपा तें, भयौ समाप्त यह ग्रंथ॥

जै - जै - जै श्री सखी - किसोर ।
बंदौं बारंबार ध्यान धर, परम कृपा पद सावन मोर ।।
तुव चरनन-नखचंद्र-छटा बिन, त्रिभुवन माँझ तिमिर तम घोर ।
'ललितलड़ैती' बेग बोलियै, श्री वृंदाबन मान निहोर ।। १ ।।
धनि सतगुरु श्री बालमुकुंद ।
परम उदार दीन दुख हरता, प्रगट भए निज कुल में इंदु ।।
खल-कामी-पतितन में नामी, मो सम कौन कुटिल मतिमंद ।
'ललितलड़ैती' बिना निहोरें, दरसायौ वृंदावन - चंद ।। २ ।।
बंदौं श्री ब्रजनिधि सुखदाई ।
सीस मुकुट चीरा जरतारी, कुंडल स्रवन सुहाई ।।
बेजंती माला उर राजै, कटि किंकिनि छबि छाई ।
नूपुर मधुर - मधुर बाजैं पग, गति लखि हंस लजाई ।।
नख - सिख लौं सिंगार मनोहर, अधरन पान - ललाई ।
'ललितलड़ैती' या छबि ऊपर, सरबस देंय लुटाई ।। ३ ।।
श्री बन धाम सबन तें नीकौ ।
जाकी रज दुर्लभ ब्रह्मादिक, सुर - नर - मुनि - किन्नर कों ।।
केलि - बिहार परस्पर होवत, स्याम - भानुनंदिनि कौ ।
जो रस निरखि देव-बधु गन कों, सुरपुर लागत फीकौ ।।
जहँ दुख - द्वंद रहत नहिं कोऊ, सुख उपजत है जी कों ।
'ललितलड़ैती' होय बास किम, बिन सेवै प्रिया-प्रिय कों ।। ४ ।।
धनि - धनि श्री वृंदाबिपिन, जुगल बिहार स्थान ।
बिहरत रसिक किसोर जहाँ, सदा अधिक सुख मान ।। ५ ।।
चले करन माखन की चोरी ।
अचक-अचक पग धरत द्वार पै, नूपुर-धुनि कहुँ नेंक न हो री ।।
उझकि-उझकि इत-उत में झाँकत, पाई छींके धरी कमोरी ।
माखन खाय सखन संग मोहन, आँगन माँहि मटुकिया फोरी ।।
धूम मचावत देखि सबन कों, चकित होय उठि बैठी गोरी ।
'ललितलड़ैती' उत नँदनंदन, भाजि चले करिवे बरजोरी ।। ६ ।।
प्यारी पनियाँ भरन आज हौं निकसी, मिल्यौ छैल नंद कौ री ।
आय अचानक कोमल बैयाँ, दोऊ कर पकरि मरोरी ।।
तकि - तकि कुंकुम घाल कुचन पर, सारी रंग में बोरी ।
'ललितलड़ैती' निठुर नंद के, करी बहुत बरजोरी ।। ७ ।।

गैयन रखवारे मतवारे दधि - माखन के,
नंद के दुलारे प्यारे मेरी कुंज आउ रे ।
रूप के निधान सील-गुनन की खान कान्ह,
गोरस - मलाई जेती रुचि आवै पाउ रे ।।
मीठी-मीठी तान गान करके सुनावौ मोहि,
नैक तौ अधर धर बाँसुरी बजाउ रे ।
तोरूँ तृन तेरी या अनूप छबि बदन पै,
'ललितलड़ैती' मेरे हिय में समाउ रे ।। ८ ।।

वार्तिक–श्री जी कही, चल बीर ! वाकी मैया पै सब वृत्तांत कहि आवें। सखी बोली–जब तक वा ढीठ कों पकरिकै संग लिवाय न लै चलें, जसोदा कों कैसें साँच आवै । आप बोलीं–हे सखी ! याको तौ यही उपाय है, मैं प्रीतम कौ भेष धरूँ, तू मोहिं संग लै चल । सखी नें कही, हंबै प्यारी ! यही ठीक है। श्री जी प्यारे कौ भेष धरि सखी के संग होय नंद-भवन कों पधारीं ।।९।।

स्याम रूप धरि लीनों प्यारी ।
मोर-मुकुट कटि सोहै काछिनी, पीतांबर की दमकन न्यारी ।।
नख - सिख कियौ सिंगार मनोहर,जाहि देखि हुलसत हिय नारी ।
'ललितलड़ैती' वाही भेष सों, संग सखी नँद-भवन सिधारी ।।१०।।

७१. हरिचरण

हरिचरण जी मथुरा में निवास करने वाले भार्गव थे, जिनके गुरु गो० राधारमणदास थे। उन्होंने सं० १९४३ में 'श्री गोपाल भट्ट चरित' नामक एक ब्रजभाषा काव्य ग्रंथ की रचना कर उसे प्रकाशित किया था।

७२. राधाचरण

राधाचरण जी कृत एक ब्रजभाषा गद्य ग्रंथ 'चैतन्य चरित' उपलब्ध है। इसकी रचना सं० १९४५ की वैशाख कृ० १ शुक्रवार को हुई थी। रचयिता ने अपने पिता का नाम लाड़िलीलाल बतलाया है । इसका उल्लेख ग्रंथ के अंत में इस प्रकार किया गया है—

श्रील लाड़िलीलाल के सुत, राधाचरन सु धार ।
बिरचौ श्री चैतन्य कौ चरित, परम सुख-सार ।।

उपर्युक्त रचना-काल के आधार पर राधाचरण जी का जन्म-संवत् १९०० के लगभग अनुमानित होता है।

७३. छीतरमल

छीतरमल जी शर्मा मथुरा जिला की छाता तहसील के एक ग्राम अकबरपुर के निवासी थे । उनका जन्म सं० १६०३ में और देहावसान सं० १६५७ में हुआ था। वे गृहस्थ होते हुए भी गार्हस्थिक झंझटों मे मुक्त एक भजनानंदी व्यक्ति थे । उनके उपास्य श्री ठाकुर राधारमण जी थे । वे वृंदावनस्थ गो० गल्लू जी उपनाम 'गुणमंजरीदास' के कृपा-पात्र थे । उनके गुरु श्री गदाधर पंडित गोस्वामी के परिकर के तपाजी थे। हमने उनकी एक छोटी सी काव्य-रचना 'श्री हरिनाम माला' देखी है, जिसे उनके पुत्र ने प्रकाशित कराया था। इस रचना का कुछ अंश यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

सची - तनय पद - कमल में, प्रथमहिं करों प्रनाम ।
जिनकी कृपा - कटाक्ष तें, पूरें सब मन - काम ।।
गौड़ देस नदिया नगर, प्रगटे हरिजन हेत ।
महाप्रभू बंदन करूँ, जे प्रभु कृपा - निकेत ।।
श्री गुपाल भट आदि दै, श्रील सनातन - रूप ।
गोस्वामी गुनमंजरी, बंदौं चरन अनूप ।।
श्रील गदाधर पंडित, श्री राधा - अवतार ।
तिनके ही परिवार में, भयौ जु अंगीकार ।।
श्रील तपाजी गाइये, श्री गोबरधन दास ।
सिद्ध भये ब्रज गाँव में, तिनही कौ मैं दास ।।
लई चरन की सरन मैं, करि ऊँचे निज हाथ ।
सो गुरु जी वर दीजिये, सुनूँ सदा तव गाथ ।।
'हरीनाम माला' रचन, भई हृदय अभिलाष ।
सो गुरु जी पूरन करौ, 'छीतरमल' तव दास ।।
नव जल धर आभास तन, स्याम-राम सुख-दैन ।
मोर - मुकुट कटि - काछनी, धारत कहत सु बैन ।।
भक्त हितैषी कृष्ण कुमारा । नंदनंदन यसुदा कौ वारा ।।
माखन चोर मटुकिया फोरा । इंद्रादिक पति नंदकिसोरा ।।
नंदलाल ब्रजराज कुमारा । ब्रज-युवतिन कहँ प्रान-अधारा ।।
सेवा सुकृत सुभग फलदाता । ब्रजपति ब्रजपालक सुर त्राता ।।
श्री गुनमंजरि की कृपा, सहित राधिकानाथ ।
'छीतरमल' वर्णन करी, हरीनाम गुन-गाथ ।।

७४. राधालाल

गो० राधालाल जी श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी के परिकर में थे। वे बिहार राज्य के पटना नगर में निवास करते थे। उनका जन्म सं० १९१० की मार्ग-शीर्ष कृ० ७ को हुआ था। वे आरंभ से ही ब्रजभाषा काव्य और हिंदी-प्रचार के प्रेमी थे। उन्होंने केवल १७ वर्ष की आयु में पटना में 'श्री चैतन्य पुस्तकालय' की स्थापना सं० १९२७ में की थी। इसके द्वारा बिहार राज्य में हिंदी-प्रचार का महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। इस पुस्तकालय में संस्कृत और ब्रजभाषा के हस्त-लिखित अनेक प्राचीन ग्रंथ संगृहीत हैं। राधालाल जी ने ब्रजभाषा काव्य के कुछ स्फुट छंदों की रचना भी की थी। उनका देहावसान सं० १९६८ की फाल्गुन शु० १ को हुआ था।

७५. वासुदेव

वासुदेव जी श्री रामराय-चंद्रगोपाल जी के वंश में ब्रजकिशोर जी के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १९१० की श्रावण शु० ३ को वृंदाबन में हुआ था। वे संस्कृत और ब्रजभाषा के विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत में 'श्री राधा-माधव उत्सव प्रणालिका' तथा ब्रजभाषा में 'प्रणालिका' नामक रचनाएँ की हैं। उनका मुख्य कार्य अपने पूर्वजों की क्रमबद्ध नामावली प्रस्तुत करना है। प्राचीन उल्लेख, अनुश्रुति और अन्वेषण के आधार पर उन्होंने श्री जयदेव जी के पिता भोजदेव जी से श्री रामराय जी तक और फिर रामराय जी से अपने पुत्र प्रियतमलाल जी तक समस्त आचार्यों की जन्म-तिथि और जन्म-संवत् का उल्लेख करते हुए कहा है—

गादी श्री जयदेव की, गृह - परंपरा जान।
आचारज नामावली, पाठ परम रस - खान॥
विक्रम संवत् जन्म कौ, जाकौ जा विधि सोय।
'वासुदेव' देखी-लिखी, खोज करी सब होय॥

इस प्रकार सं० ११०१ की चैत्र प्रतिपदा से सं० १९३२ की भाद्रपद शु० अष्टमी तक होने वाले अनेक आचार्यों की ८३१ वर्ष व्यापी सुदीर्घ परंपरा के क्रमवद्ध संवत् ही नहीं, बल्कि तिथियों में कितनी प्रामाणिकता है, इसे परमात्मा ही जानें! फिर भी इस संबंध में किये गये उनके परिश्रमपूर्ण प्रयत्न के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। हम यहाँ पर श्री रामराय जी से प्रियतमलाल जी तक के उल्लेख उपस्थित करते हैं—

पंद्रहसौ चालीस (१५४०) में, रामराय गुरुदेव।
कलि के जीव उधार हित, प्रगट भये जयदेव॥

रामराय प्रभु के अनुज, राम - जन्म सु रसाल ।
पंद्रहसौ बावन (१५५२) विषै, श्री प्रभु चंद्रगोपाल ॥
पंद्रहसौ सत्तर (१५७०) समै, बड़े राधिकानाथ ।
भये प्रगट राधाष्टमी, अंतरंग जिन गाथ ॥
पंद्रहसौ बानवे (१५९२) समै, बड़े ब्रह्मगोपाल ।
पौस मास सुदि अष्टमी, आनंद के प्रतिपाल ॥
सोलहसौ सोलह (१६१६) समै, प्रभु वर गोपीलाल ।
कार्तिक कृष्णा तीज तिथि, सेव्य राधिकालाल ॥
सौलह पैंतालीस (१६४५) में, मगसिर सुक्ला पाँच ।
गोस्वामी यदुनाथ प्रभु, प्रगट भये मुद-माँच ॥
सोलहसौ नब्बै (१६९०) समै, यदु-सुत श्री ब्रजराय ।
श्रावन सुक्ला द्वादसी, महामहोत्सव पाय ॥
सत्रहसौ बीसा (१७२०) समै, श्री वृंदाबन-चंद ।
कातिक सुक्ला अष्टमी, कुल - कीरति स्वच्छंद ॥
सत्रह पैंतालीस (१७४५) में, श्री ब्रजेन्द्र कुल-चंद ।
प्रगट भये अगहन सुदी, तेरस परम अमंद ॥
सत्रहसौ सत्तर (१७७०) समै, द्वितीय राधिकानाथ ।
जेठ मास दसमी सुदी, किये अनाथ सनाथ ॥
छोटे ब्रह्मगोपाल प्रभु, ब्रह्मपुरी के नाथ ।
अष्टादस सत एक (१८०१) में, गावत गोकुल-गाथ ॥
अष्टादस सत तीस (१८३०) में, गोस्वामी कल्यान ।
प्रगट भये आषाढ़ छठ, सुक्ल पक्ष सु प्रमान ॥
अष्टादस चालीस (१८४०) में, श्री प्रभु चुन्नीलाल ।
प्रगट भये श्रावन सुदी, तीज महोत्सव माल ॥
अष्टादस सत्तर (१८७०) समै, मार्गशीर्ष सुभ पाँच ।
श्री प्रभु नंदकिसोर जू, गावत गुनिजन नाँच ॥
अष्टादस सत पिचत्तर(१८७५), ब्रजकिसोर महाराज ।
श्री प्रभु चुन्नीलाल के, छोटे सुत रथ साज ॥
विक्रम दस उन्नीससौ (१९१०), सोभित श्रावन मास ।
सुक्ल तीज भीजे सभी, वासुदेव उल्लास ॥
उन्निससौ बत्तीस (१९३०) में, भाद सुक्ल तिथि आठ ।
गोस्वामी प्रियतम प्रभु, प्रगट भये सब ठाठ ॥
या विधि का बालक कोऊ, का कोऊ बूढ़ौ होय ।
'वासुदेव' जयदेव कुल - कमल अलौकिक जोय ॥

७६. शोभनलाल

शोभनलाल जी वृंदावनस्थ ठाकुर श्री राधारमण जी के गोस्वामी थे। उनका जन्म सं० १९११ में हुआ था । उन्होंने अपनी काव्य-रचना ब्रजभाषा के कवित्तों में की है । उनकी एक छोटी रचना 'राधा पद अष्टक' की पूर्ति सं० १९३४ की अगहन शु० ५ रविवार (शाके १७९९) में हुई थी । इससे ज्ञात होता है कि वे युवावस्था में ही अच्छी काव्य-रचना करने लगे थे । 'राधा पद अष्टक' के रचना-काल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

सुंदर सरस अति सरल सुरख पद,
'राधा पद अष्टक' बनाय सुखमा के हैं ।
संवत निगम राम अंक चंद (१९३४) मित,
नंद निधि मुनि वसुधा (१७९९) विदित सुभ साके हैं ।।
'सोभन' भनत मार्गशीर्ष सौ सु मास,
पक्ष सित तिथि पंचमी सु बार रवि ताके हैं ।
कोमल कमल - दल हू तें निर्मल भल,
उज्ज्वल अमल पद - पल्लव प्रिया के हैं ।।

उनकी रचना के उदाहरणार्थ कुछ कवित्त यहाँ दिये हैं—

चंदन की चौकी पर चपला सी चंदमुखी,
बैठी अन्हवान कों कमला छवि लूट-लूट ।
दासी जन अंगन में मज्जन मुदित देत,
कंज से कपोलन पै अलकावलि छूट-छूट ।।
कंचन के कुंभन में भरे धरे स्वच्छ नीर,
'सोभन जू' डारत सरीर-गंध घूट-घूट ।
पौंछति सहेली स्वेत बसन दसन कांति,
सुंदर सरूप साटिका से परै फूट-फूट ।। १ ।।

चंद तें अमंद मुख कंज मंजु रच्यौ विधि,
दाडिम अधर औ उज्ज्वल हँसी सी है ।
अलक भुजंग कारे नैन अनियारे बान,
भ्रकुटी कमान में गुमान से गसी सी है ।।
कंबु कंठ, कंचन के कलस समान कुच,
सुंदर उदर नाभि-बापी ज्यों बसी सी है
रंभा सम जंघा जुग पाद पद्म मृदु अति,
गति है प्रसंस राजहंस सी लसी सी है ।। २ ।।

७७. बलवंतराव सिंधे

बलवंतराव भैयासाहब सिंधे ग्वालियर के महाराज जयाजीराव सिंधे के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १९११ की आषाढ़ कृ० ११ को लश्कर में हुआ था। बचपन से ही उनकी शिक्षा का यथोचित प्रबंध किया गया था; जिससे वे हिंदी, अंगरेजी, मराठी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता; संगीतादि कई कलाओं के मर्मज्ञ और सुयोग्य प्रशासक हुए। वे ग्वालियर कौंसिल के वरिष्ठ सदस्य और राज्य में प्रथम श्रेणी के सरदार थे।

राजकीय पुरुष होते हुए भी उनकी वृत्ति आरंभ से ही भक्ति और वैराग्य की ओर थी। इसलिए शासन-कार्य की अपेक्षा उनका मन सत्संग, शास्त्रानुशीलन, भगद्भजन, गायन-वादन और साहित्य-निर्माण में अधिक रमता था। वे व्रज के परमोपासक थे और गोबर्धन, वृंदावन आदि लीलास्थलों में जाकर वहाँ भक्ति पूर्वक निवास किया करते थे। उन्होंने महात्मा हरिचरणदास जी से चैतन्य मत की दीक्षा ली थी। उनका हरि-कीर्तन अत्यंत हृदयग्राही होता था।

वे अत्यंत धर्मनिष्ठ, साधुसेवी और उदारचेता महापुरुष थे। उन्होंने व्रज में लाखों रुपये धर्मार्थ लगा कर अपनी दानशीलता का परिचय दिया था। उनके धर्मार्थ कार्यों में मथुरा का 'श्री राधा-माधव भंडार ट्रस्ट' और गोवर्धन का 'श्री कृष्णचैतन्यालय ट्रस्ट' उल्लेखनीय है। मथुरा ट्रस्ट द्वारा १३५ भजनानंदी साधुओं को स्थायी मासिक वृत्ति देने की व्यवस्था है। गोबर्धन ट्रस्ट के अंतर्गत कुसुम सरोवर के मंदिर का प्रबंध है। यह भव्य देवालय गोबर्धन और राधाकुंड के मध्य में स्थित है और 'ग्वालियर वाला मंदिर' कहलाता है। चैतन्य संप्रदायी ग्रंथों के विख्यात प्रकाशक बाबा कृष्णदास आजकल इसी मंदिर के महंत हैं।

बलवंतराव जी का देहावसान सं० १९८१ की पौष कृ० ११ को ७० वर्ष की आयु में हुआ था। उन्होंने अंगरेजी, मराठी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी कई ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों के नाम—१. दशमस्कंध भाषा, २. पद-माला और ३. स्मरण मंगल भाषा हैं। इनके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रंथ—१. मुक्तिद्वार दर्शन, २. भजन-भूमिका, ३. धर्म संदर्भ, ४. ऊषा नाटक आदि हैं। यहाँ पर उनकी प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और कतिपय उदाहरण दिये गये हैं।

१. दशमस्कंध भाषा—यह तुलसी कृत रामचरित मानस की भाँति श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध का दोहा-चौपाई छंदों में अनुवाद है। इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ दिया जाता है—

मुख सों बेनु सुधाधर धारी । बीज मंत्र पढ़ि फूँक उचारी ॥
जहँ लौं घोर गई मुरली की । सुध-बुध बिसर गई सब ही की ॥
गेह - नेह गोपी तजि सारा । मात-तात-सुत-पति-परिवारा ॥
जो जैसेंहि तैसेंहि उठि धाईं । पराधीन जीवनि की नाईं ॥
चलीं सकल मुरली धुनि धारा । जिमि जोगी अनहद चित धारा ॥
उलटि कंचुकी कोउ कर धारें । कोउ नकबेसरि कान सँवारें ॥
नूपुर भुज भूषित कृत कोऊ । कंठाभरन पहिर पद दोऊ ॥
अंजन आँजि एक दृग काऊ । खंजन गंजन सहज सुभाऊ ॥
कर्नफूल कबरी कोऊ साजै । तिमिर तोम जिमि नखत बिराजै॥
लिपटे पट अटपटे सुहावत । उलटे भूषन तन अति भावत ॥
सघन केस बिथुरे मुख गोरे । जनु निसि-दिवस भये इक ठौरे ॥
केस - पास बाँधे कोऊ आछै । रजनी गाँठ दई रवि पाछै ॥

बिगरत में ऐसी बनी, बनत नहीं बन आय ।
उलटौ मारग प्रीति कौ, बिगरत में बनि जाय ॥
धुनि धारा आधार धरि, फिरत सघन बन पंथ ।
ढूँढ़त ब्रजबाला सकल, आईं जहँ श्री कंत ॥

२. **पद-माला**—इसमें विविध राग-रागनियों के अनेक पदों का संकलन हुआ है। इसके कुछ पद इस प्रकार हैं—

जै प्रभु चैतन्यचंद, जै - जै नित्यानंद ।
कल्पतरु दया - वारिनिधि, भक्ति - दानि सुख-कंद ॥
प्रेम-पंथ जिन अवनि प्रचारचौ, हरे सकल दुख-द्वंद ।
नाम प्रताप प्रबल प्रगटाई, काटे साधन फंद ॥
जब तें प्रगट भये करुनाकर, किये द्वार जम बंद ।
जिहिं प्रभाव 'बलवंत' बदत भे, जड़-चैतन नँदनंद ॥

जै - जै वृषभानु-सुता भक्त-त्रातु मातु तुही,
त्रिभुवन-विख्यात, जगत पाप-ताप हारी ।
धेनु-द्विजन दुःख-हरन, अखिल विश्व श्रेय करन,
तरुन तरनि तेज बरन, किरन वर पसारी ॥
ब्रह्मादिक वंद्य चरन, सकल विश्व पोष करनि,
हरनि अघ अनंत संत, मुनि बरन विचारी ।
माँगत 'बलवंतराव', कृष्ण-चरन-कमल-चाव,
बाढ़े नव नित प्रभाव, कीर्ति कुँवरि प्यारी ॥

३. **स्मरण मंगल भाषा**—श्री रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल' और कृष्णदास कविराज कृत 'गोविंद लीलामृत' के आधार पर इसकी रचना हुई है। इसका कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

(आरंभ)—**निसि कर विविध विलास, रास-परिहास स्रमन कर ।**
सोये श्री दंपती, सुमन सुंदर सैया पर ।।
उषा काल कौ समय साधि, सुक-पिक-वंदीजन ।
मधुर-मधुर धुनि स्तवन गान, करि लगे जगावन ।।
चतुर सहचरी सकुचि, लखत जालिन-मग माँहीं ।
अरुन उदय भौ, तदपि दंपती उठे कि नाँहीं ।।
रहीं चित्रवत चकित, निरखि दंपति-मुख-सोभा ।
रंध्र-जाल मधि नैन-मीन, उलझे द्युति-लोभा ।।
अंग-अंग पर कोटि अनंगन की द्युति सानी ।
रोम-रोम सों उमँगि रही, सुषमा छवि-छानी ।।
सुनि धुनि विमल विहंग, गीत निज दासी गन वर ।
जागे जुगल स्वरूप, रूप अनुपम के सागर ।।
अति सुकुमार कुमार, अमित नाना रस-केली ।
पुनि अलसाने सोय रहे, गलबाहीं मेली ।।
खरिक दुहावन चले, उदय रवि होत सुहावन ।
धेनु-वत्स भे मुदित, निरखि मुख विस्व-विमोहन ।।
पुच्छन वत्स उठाय, आय प्रभु-पद लिपटाने ।
धेनु धाय हुंकार, चरन चाटत सुख माने ।।
गो गन के मुख-सीस-पृष्ठ पर निज कर फेरै ।
तरनक-डोर तुराय, धाय तिन कहँ प्रभु घेरें ।।
(अंत)— **यह लीला जुगल किसोर, महा भक्ती पद दानी ।**
निज मति के अनुसार, दास 'बलबंत' बखानी ।।

७८. पन्नालाल

पन्नालाल जी गर्ग गोत्रीय अग्रवाल वैश्य थे । उनका जन्म सं० १९१२ में मथुरा जिला के कस्वा फरह में हुआ था। उनके पिता का नाम ला० मुकुंदराम था। जिस समय पन्नालाल जी की आयु केवल १४ वर्ष की थी, तभी उनके पिता का देहांत हो गया था । उन्होंने अत्यंत परिश्रम पूर्वक विद्याध्ययन किया और एतमादपुर जिला आगरा के एक स्कूल में प्रधानाध्यापक हो गये ।

वे काव्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता और ब्रजभाषा के सुकवि थे। उनका काव्योप-नाम 'प्रेमपुंज' था। उन्होंने समस्या-पूर्ति के स्फुट छंदों के अतिरिक्त दो काव्य ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनके नाम १. स्वतंत्र वनिता विनाश और २. हंसदूत टीका हैं। दूसरा ग्रंथ श्री रूपगोस्वामी कृत सुप्रसिद्ध दूत-काव्य का पद्यानुवाद है, जिसकी पूर्ति सं० १९७८ की श्रावण शु० १२ चंद्रवार को हुई थी। इसकी प्रेरणा उन्हें राधाकुंड निवासी गो० मोहनलाल से मिली थी। इस ग्रंथ को बाबा कृष्णदास ने मूल रचना और संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित किया है। पन्नालाल जी का देहावसान सं० १९८१ को हुआ था। यहाँ 'हंसदूत' के कुछ छंद दिये है—

अखिल लोक आधार जो, पूरन परमानंद ।
मम उर तिन श्री कृष्ण कौ, होहु प्रकास अमंद ।।

धारत पीतपटा छवि तासु, दली हरिताल की कांति दुराई ।
पाँति प्रसून जपा जनु सोहति, जासु पदांबुज की अरुनाई ।।
स्याम तमाल सौ अंग लसै, मुसकानि भरी मुख की जु लुनाई
सो परमानँद पूरन रूप, प्रकासहु मो उर अंतर आई ।।

तनु तमाल सम स्याम, ता पर पीतांबर रुचिर ।
मंद हँसनि अभिराम, दिव्य रूप यह उर बसै ।।
गये संग अक्रूर के, मथुरा कृष्ण मुरारि ।
दुखित भये ता विरह में, ब्रजवासी नर-नारि ।।

गोपी जन मन मदन प्रकासक, भक्तन सुभ गति कारी ।
संग अक्रूर नंद घर तें मथुरा कों गये मुरारी ।।
तब ही तें बिपत्ति जल पूरी, चिंता सरित अगाधा ।
भ्रम बहु भँवर परैं तहँ बूड़ी, कृष्ण-बिरह-दुख राधा ।।

ललिता-राधा की दसा, कहन कृष्ण ढिंग जाय ।
दूतहिं खोजन कों चली, ता छन अवसर पाय ।।

कमल - दलन की सय्या रचि कें, राधा तहाँ सुवाई ।
धरे चरन जमना जल मग पुनि, दूतहिं खोजन आई ।।
ललिता जमुना पुलिन माँहि, इक देख्यौ हंस अगारी ।
मधुर बोल क्रीड़ायुत ताकी, मंद चाल अति प्यारी ।।

मान्यौ दूत मराल, ललिता चित्त प्रसन्न ह्वै ।
यह संदेस तत्काल, जाय कहैगौ कृष्ण सों ।।
कहत हंस सों मधुर स्वर, सविनय करुना ऐन ।
दूत बनन उत्साह हित, ललिता मीठे बैन ।।

७६. मधुसूदन गोस्वामी

गो० मधुसूदन जी सार्वभौम वृंदावनस्थ माध्व गौड़ेश्वराचार्य और श्री राधारमरण जी के गोस्वामी थे । उनका जन्म सं० १६१३ में हुआ था। वे बड़े विद्वान और वैष्णव धर्म के प्रवल प्रचारक थे । उन्होंने व्रजभाषा काव्य के प्रोत्साहन के लिए अपने मित्र गोस्वामी राधाचरण जी और शोभन जी के सहयोग से सं० १६३२ में 'कविकुल कौमुदी' और धर्म-प्रचार के लिए सं० १६३६ में 'वैष्णव धर्म प्रचारिणी' नामक संस्थाएँ वृंदावन में स्थापित की थीं। वे व्रजभाषा के कवि भी थे । उनकी रचनाएँ—१. श्री राधारमरण प्राकट्य और २. स्मरण मंगल भाषा हैं। पिछली रचना श्री रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल स्तोत्र' का व्रजभाषा चौपाइयों में अनुवाद है । इसका कुछ अंश यहाँ पर उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

आ०-बदौं गौरचंद्र पद पंकज । जिहि वांछत नित कमला-भव-अज ।।
राधारमन चरन - रज आस । जिहि परसै पूरन मन-आस ।।
श्री गुरु चरन रेनु सिर लाऊँ । पिय - प्यारी सेवा रस पाऊँ ।।
करत बंदना रूप - सनातन । जुग रघुनाथ जीव मन भावन ।।
श्री गोपाल भट्ट जग पावन । बंदौं भव अज्ञान नसावन ।।
जिन करुना वृंदाबन पायौ । राधारमन मोहि अपनायौ ।।

मध्य—बारह घड़ी तें अठारह घड़ी दिन चढ़े तक मध्याह्न काल है। ता मध्याह्न काल की लीला बरनन करै हैं—

दुहुन दरस दोऊ अनुरागे । आलिगन चुंबन रस पागे ।।
सोभित दोऊ करत रस-केलि । जिमि तमाल तरु चंपक-बेलि ।।
जुगल सरस रस-वेदी आये । वृंदा - सेवन में मन लाये ।।
करत बिसाखा रस - परिहास । ललिता रस-बतियन उल्लास ।।
कोउ छिन बन-बिहार रस लियौ । सखियन सुमन-बिछौना कियौ ।।
श्री राधा दक्षिन कर धार । कुंज-कुंज मधि कियौ बिहार ।।
फेर तरुन-तनया-तट आये । नृत्य विविध कीये सुख पाये ।।
कबहूँक आप नँचत गिरिधारी । बैंनु बजाय रिझावत प्यारी ।।

अंत— श्री पितु तोताराम के, चरन-कमल करि ध्यान ।
'मधुसूदन' बरनन कियो, अष्टकाल आख्यान ।।
'मधुसूदन' भाषा करी, 'सुमरन मंगल' ग्रंथ ।
सहजहिं मिलि है प्रेमरस, भजन राग के पंथ ।।

८०. राधाचरण गोस्वामी

राधाचरण जी गोस्वामी भारतेन्दु मंडल के एक उज्ज्वल नक्षत्र और वर्तमान हिंदी के उन्नायकों में से थे । उनका जन्म सं० १९१५ की फाल्गुन कृ० ५ दिनांक २५ फरवरी १८५९ को वृंदावन में हुआ था। उनके पिता वृंदाबन के माध्व-गौड़ेश्वराचार्य और भक्त-कवि गल्लू जी गोस्वामी उपनाम 'गुणमंजरी-दास' थे। उनकी माता श्रीमती सूर्यदेवी थीं।

अपनी कुल-परंपरा के अनुसार राधाचरण जी को आरंभ में संस्कृत भाषा की शिक्षा दी गई थी । वे व्याकरण, काव्य और वैष्णव सिद्धांत ग्रंथों का अनुशीलन करने लगे; किंतु उनका मन अंगरेजी भाषा के अध्ययन की ओर लालायित था। उनके पिता पुराने विचारों के रूढ़िवादी वैष्णव थे। वे अंगरेजी भाषा का अध्ययन करना-कराना तो दूर, उसका एक शब्द भी मुँह से निकालना पाप समझते थे ! इसलिए उन्होंने अपने पुत्र को अंगरेजी पढ़ाने का सर्वथा निषेध किया था। राधाचरणजी उस काल की नव चेतना के प्रति जागरूक और नई विचार-धारा के प्रति आकृष्ट थे । फलतः वे अपने पिता जी से छिपा कर गुप्त रीति से अंगरेजी की शिक्षा प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे । इस खींचा-तानी का यह परिणाम हुआ कि वे न तो अपने पिता की इच्छानुसार संस्कृत के प्रकांड पंडित बन सके और न अपनी रुचि के अनुसार अंगरेजी के प्रमुख विद्वान हो सके । वैसे वे संस्कृत, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बंगला आदि कई भाषाओं के साथ अंगरेजी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे।

उनकी युवावस्था के काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी हिंदी-प्रचार का व्यापक आंदोलन चला रहे थे। उनकी पत्रिका 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' में साहित्यिक, राष्ट्रीय और सामाजिक लेखों तथा कविताओं का प्रचुरता से प्रकाशन होता था। उनसे हिंदी पाठकों में साहित्य-साधना, देश-सेवा और समाज-सुधार की भावना का संचार हो रहा था । युवक राधाचरण जी श्री भारतेन्दु जी के लेखों को बड़े चाव से पढ़ा करते थे। इससे उनकी रुचि देश-सेवा और समाज-सुधार के कार्यों में बढ़ने लगी। वे भारतेन्दु जी के परम भक्त बन गये और उनके आदर्श पर चलते हुए स्वयं भी उसी शैली के लेख लिखने लगे । इस प्रकार वे अपने पिता जी की रूढ़िवादी परंपरा के विरुद्ध भारतेन्दु के प्रकाश में प्रगतिशीलता के प्रशस्त पथ के पथिक बन गये । उस समय की अपनी मनोवृत्ति और भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के प्रति अपनी भावना का परिचय उन्होंने अपनी संक्षिप्त जीवनी में इस प्रकार दिया है--

"नई रोशनी तो अपनी ओर खींचती थी और पुराने गुरु जन पुरानी लकीर पर चलाने की चिंता में थे !······हिंदी के लेख लिखने से बाबू हरिश्चंद्र से बड़ा प्रेम बढ़ गया । उनके लेख, ग्रंथ हमको वेद-वाक्यवत् प्रमाण और मान्य थे । उनको मानों ईश्वर का एकादश अवतार मानते थे । हमारे सब कामों में वह आदर्श थे । उनकी एक-एक बात हमारे लिए उदाहरण थी ।"

राधाचरण जी के धार्मिक विचार स्वतंत्र और उदार थे; जो उनके घर की सांप्रदायिक रूढ़िवादिता के सर्वथा विरुद्ध थे । पहिले तो उनके धार्मिक विचारों में इतनी क्रांति उत्पन्न हुई कि वे ब्रह्म समाज और आर्य समाज की ओर झुकने लगे; किंतु बाद में वे प्रगतिशील रहते हुए भी अपने पूर्वजों के मत पर स्थिर हो गये । फिर भी सांप्रदायिक संकीर्णता के वे सदा विरोधी रहे थे । उन दिनों आस्तिक हिंदू के लिए विदेश-यात्रा करना निषिद्ध कर्म समझा जाता था । यदि किसी को विवशता से विदेश जाना भी पड़ता, तो उससे प्रायश्चित्त कराया जाता था ! राधाचरण जी गोस्वामी ने उस दकियानूसी विचार-धारा के विरुद्ध आवाज उठाई और विदेश-यात्रा को शास्त्र संमत सिद्ध किया । बाल विधवाओं की करुणापूर्ण दुरवस्था से दुखी होकर उन्होंने 'विधवा-विवाह' को युक्ति, शास्त्र और कानून की कसौटी पर कस कर उसे वर्तमान स्थिति में आवश्यक बतलाया । उन क्रांतिकारी विचारों को उन्होंने अपनी 'विदेश-यात्रा विचार' और 'विधवा विवाह विवरण' नामक पुस्तकों में प्रकट किया था । ये दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । वे कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता, वृंदावन नगर-पालिका के उत्साही सदस्य, वैष्णव धर्म प्रचारिणी सभा के प्रमुख पदाधिकारी और अपने समय के विख्यात जन-सेवी थे ।

इस प्रकार विविध भाँति के जनोपयोगी कार्यों में संलग्न होते हुए भी उनका मुख्य कार्यक्षेत्र साहित्यिक था । उसमें वे भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी को अपना मार्गदर्शक मानते थे । उनके लेखों को पढ़ कर वे भारतेन्दु जी के परम भक्त तो बन गये, किंतु बहुत दिनों तक उनके साक्षात्कार से वंचित रहे आये । यहाँ तक कि एक बार अपने पिता के साथ काशी जाने पर भी उन्हें हरिश्चंद्र जी से नहीं मिलने दिया गया । उनके पिता भारतेन्दु जी के समाज-सुधार संबंधी विचारों के कारण उन्हें नास्तिक मानते थे । फिर पुराने विचारों के आस्तिक पिता के लिए अपने पुत्र को एक नास्तिक से मिलने देना असहनीय था ! राधाचरण जी उस अवसर पर भारतेन्दु जी से मिलने का सुयोग छोड़ना नहीं चाहते थे; अत: वे अपने निवास-स्थान के पहरेदार को घूस देकर उनसे मिलने गये थे ! उसके बाद वे भारतेन्दु जी के इतने निकट संपर्क में आये कि वे

उनके सहकारियों में अन्यतम समझे जाने लगे। उन जैसे कतिपय कर्मठ हिंदी-सेवियों के सहयोग से ही भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी हिंदी की नवीन धारा को प्रवाहित करने का महान् कार्य कर सके थे।

साहित्य-सृजन और काव्य-रचना के अंकुर उनमें आरंभ से ही विद्यमान थे। उन्होंने १६ वर्ष की अल्पायु में वृंदाबन निवासी अपने अभिन्न मित्र मधुसूदन गोस्वामी और शोभन गोस्वामी के सहयोग से "कवि कुल कौमुदी" नामक एक सभा की स्थापना की थी। उसका उद्देश्य कविता, लेख, व्याख्यादि को प्रोत्साहन देना था। उन्होंने सं० १९४० में 'भारतेन्दु' नामक एक मासिक पत्र भी वृंदाबन से निकाला था, जिसे प्राय: ३॥ वर्ष चला कर अर्थाभाव के कारण बंद कर देना पडा था।

उन्होंने अपने निवास-स्थान में एक वृहत् पुस्तकालय स्थापित किया था। उसमें संस्कृत, हिंदी, बंगला, अंगरेजी आदि कई भाषाओं की हस्त-लिखित और मुद्रित प्राय: ५ हजार पुस्तकें थीं। उनके समय में जो सामयिक पत्र प्रकाशित होते थे, उनकी फाइलें उन्होंने संगृहीत की थीं। उनके अतिरिक्त उन्होंने जो लेख लिखे थे, तथा अपने सहित्यिक मित्रों से जो पत्र प्राप्त किये थे, उन्हें भी क्रमानुसार संकलित किया था। उस बहुमूल्य साहित्यिक निधि को वे सार्वजनिक पुस्तकालय का रूप देना चाहते थे; किंतु नहीं दे सके। इस समय वह सामग्री बहुत-कुछ नष्ट हो गई है और शेष अस्त-व्यस्त है। उनके योग्य पौत्र अद्वैतचरण गोस्वामी चाहें तो इसकी सुव्यवस्था कर अपने पितामह की इच्छा-पूर्ति और उनकी स्मृति को चिरस्थायी कर सकते हैं। राधाचरण जी का देहावसान सं० १९८२ में ६७ वर्ष की आयु में हुआ था।

उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास के अतिरिक्त समाज-सुधार, देशोपकार, व्यंग और हास्य विषयक अनेक छोटी-बड़ी रचनाएँ की हैं। उनके नाम विषयानुक्रम से इस प्रकार हैं—

काव्य—**१. दामिनी दूतिका, २. गोपिका गीत, ३. ब्रजेन्द्र विजय, ४. नव भक्तमाल, ५. श्री चैतन्य चरितामृत (आदि खंड)।**

नाटक—**१. तप्ता संवरण, २. सती चंद्रावली, ३. अमरसिंह राठौड़।**

उपन्यास—**१. जावित्री, २. विधवा विपत्ति, ३. विरजा, ४. सौदामिनी।**

समाज-सुधार और देशोपकार संबंधी—**१. विदेश-यात्रा विचार, २. विधवा विवाह विवरण, ३. आर्य शब्द का उपादान, ४. देशोपकारी पुस्तक, ५. शिक्षा-सार।**

व्यंग और हास्य विषयक—१. भंग तरंग, २. तन-मन-धन श्री गुसाईंजी के अर्पन, ३ बूढ़े मुँह मुँहासे, ४. यमलोक की यात्रा, ५. नापित स्तोत्र, ६. रेलवे स्तोत्र, ७. मूषक स्तोत्र, ८. महतर स्तोत्र, ९. वैद्यराज स्तवराज।

उन्होंने 'मंजु कवि' के उपनाम से व्रजभाषा में अनेक कवित्त भी लिखे थे। नाभा जी कृत 'भक्तमाल' के परिशिष्ट रूप में उन्होंने व्रजभाषा छप्पयों में 'नव भक्तमाल' की रचना की थी। यहाँ पर 'नव भक्तमाल' के कुछ छप्पय उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

(भारतेन्दु)— बनिक - बंस - अवतंस, सत्य - धीरज - बपुधारी।
चौंसठ कला प्रबीन, प्रेम - मारग - प्रतिपारी॥
विद्या-बिनय-विसिस्ट, सिस्ट समुदाय सभाजित।
कविता कल कमनीय, कृष्ण-लीला जग प्लावित॥
कई लच्छ बानी भगतमाल - उत्तरारध करन।
आदि - अंत सोभित भये, 'हरिश्चंद्र' प्रातःस्मरन॥

(रसखान)— दिल्ली नगर निवास, बादसा-बंस-विभाकर।
चित्र देखि मन हरौ, भरौ पन-प्रेम-सुधाकर॥
श्री गोबर्धन आय, जबै दरसन नहिं पाये।
टेढ़े - मेढ़े बचन - रचन, निर्भय ह्वै गाये॥
तब आप आय सु मनाय करि, सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ साथ 'रसखान' की॥

(बिहारीलाल)-रस सिंगार-आगार, अलंकारनि - सु अलंकृत।
धुनि व्यंजना अनूप, लच्छना-लच्छन-लच्छित॥
एक-एक पर बहुर, महुर जयसिंह नृप दीनी।
कृष्ण-केलि-रस सरस, बढ़त हिय भाव नवीनी॥
सोइ दिव्य सु दोहा 'सतसई', भई न ऐसी होय अनु।
भाषा कबि नृप-चक्रराट्, 'बिहारीलाल' जयदेव मनु॥

(नारायण स्वामी)-अच्छर अरथ अनूप, अलंकारन सु अलंकृत।
भाव हृदय गंभीर, अनुप्रासन गुन-गुंफित॥
राग नवीन-नवीन प्रवीनन को मन मोहै।
नृत्य करत,गति भरत, रास मंडल अति सोहै॥
करि देस - बिदेस प्रचार, श्री वृंदाबन बिसराम।
'श्री नारायण स्वामी' नवल, पद-रचना ललित ललाम॥

८१. लाल बलवीर

लाल बलवीर जी का मूल नाम बदरीदास था। वे अग्रवाल वैश्य थे और वृंदाबन के बनखंडी मुहल्ला व्यासघेरा में निवास करते थे। उनका घराना राधारमणीय गोस्वामियों की शिष्य-परंपरा में चैतन्य मतानुयायी था और वे राधा जी के अनन्य भक्त थे। उनका काव्योपनाम 'लाल बलवीर' था और वे उसी नाम से प्रसिद्ध थे; जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—

बाबा बनखंडी महादेव जग जाहिर है, व्यास जू कौ घेरौ सो अनूप छवि छायौ है।
चारों ओर सदन बने हैं लाल-लाड़िली के, चंद से दुचंद तेज दिव्य दरसायौ है॥
सदा ब्रजबासी, रूप-माधुरी निहारौ करें, और सों न काम, स्यामा-स्याम गुन गायौ है।
'लाल बलवीर' नाम लै-लै सब टेरत हैं, राधिका-कृपा सों बास वृंदाबन पायौ है॥

उनकी तमाकू की दूकान थी और उन्हें पहलवानी तथा काव्य-रचना का शौक था। वे पढ़े-लिखे तो कम थे; किंतु उनमें ईश्वरदत्त अपूर्व काव्य-प्रतिभा थी। इससे कवि-समाज और पढ़ंत-गोष्ठियों में उनकी बड़ी धाक थी। उन्होंने ब्रजभाषा कवित्तों की रचना अत्यधिक संख्या में की थी। उनकी रचनाओं का एक वृहत् संकलन 'ब्रज विनोद हजारा' तथा एक छोटी रचना 'राधाष्टक' प्रकाशित हुए है; किंतु वे अब दुष्प्राप्य हैं। उनकी एक अन्य रचना 'बाल विनोद पचीसिका' भी कही जाती है। उनका जन्म सं० १९१५ में अथवा उससे कुछ पूर्व, तथा देहावसान दीर्घायु में हुआ था।

उनकी रचनाएँ कवित्त–सवैया छंदों में रीतिकालीन शैली और मज़लिसी ढंग की हैं; जो विभिन्न विषयों पर अत्यधिक संख्या में रची गई हैं। एक कम पढ़े-लिखे दूकानदार वैश्य द्वारा इस प्रकार की रचना होना निस्संदेह बड़े आश्चर्य की बात जान पड़ती है। उनके वृहत् ग्रंथ 'ब्रजविनोद हजारा' में से कुछ छंद यहाँ पर उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

परम दयाल दूजी आपसी न दीसै और, एहो सिरमौर पाद-पद्म सिर नाऊँ मैं।
लाड़िली लाल की मन-भावनी रिझावनी हौ, गुनन अथाह सिंधु थाह किम पाऊँ मैं॥
अति मतिहीन दीन बावरी हौं, स्वामिनीजू! ऐहो कृष्ण अली चेरी रावरी कहाऊँ मैं।
श्रीबन निकुंज में दीजियै निवास सदा, 'लाल बलवीर' राधा-राधा गुन गाऊँ मैं॥१

इंदु से बदन पर, मीन से दृगन पर, बिज्जु से दसन छवि दृगन खगी रहै।
मंद मुसक्यान पर, बाँसुरी की तान पर, पट फहरान पर मो मति ठगी रहै॥
अधरन लाल पर, कंठ बनमाल पर, 'लाल बलवीर' उर जोति सीं जगी रहै।
मुक्त से नखन पर, कंज से चरन पर, साँमरे ललन! मोरी लगन लगी रहै॥२

प्रेम भरे प्रीति भरे नीति भरे रीति भरे, जीत भरे भौंरन तें देखियत कारे हैं ।
रस भरे जस भरे नेह भरे तेह भरे, नोंक भरे झोंक भरे काम-सर वारे हैं ।।
मैन भरे सैन भरे चैन बिन बैन भरे, 'लाल बलवीर' मधु भरे मतवारे हैं ।
सान भरे ज्ञान भरे आन-बान-मान भरे, लोभ भरे लाग भरे लोचन तिहारे हैं ।।३
ठाड़ी फुलवारी सुकुमारी रूप उजियारी, गहें द्रुम डारी नैन प्रेम-मधु भीने हैं ।
मंद मुस्कावै नाँच बाँसुरी बजावै, और भावन बतावै राग गावत रँगीने हैं ।।
'लाल बलवीर' छवि कहत बनै न आली, चिबुक गहत ललचात परवीने हैं ।
रीझि कै किसोरी चित चोरी गोरी भोरीजू नें, गहक सुजान कान कंठ लाय लीने हैं।।४
केसरिया हौजन में मौज सों मची है फाग, मंजुल गुलाब-जल राखे है अतर घोर ।
कंचन पिचक्क भरि घालें छैल प्यारे,और प्यारी मुसकाय छाँड़े रसिकबिहारी ओर ।।
भये सराबोर अंग-अंगन उमंग भरे, रंग मुख पोंछि-पोंछि छिरकें बहुर जोर ।
सुखमा अथोर,उठें प्रेम की हिलोर, हेर 'लाल बलवीर' दासी डारें तृन तोर-तोर।।५
ठमकि-ठमकि नाँचें जुगल रसिक वर, छवि सों छबीले अंस-अंस कर धरे हैं ।
परम प्रवीन रसलीन हैं नवीन दोऊ, दोऊ सुर माधुरे रंगीन राग ररे हैं ।।
'लाल बलवीर' मिल नूपुर मंजीर गाजें, पाछै ललतादि दासी चौंर सिर ढरे हैं ।
मोद उर भरे, चित हरे जित-तित ढरे, जित पग लाली तै गुलाली छित करे है ।।६
झूलत हिंडोरे प्रान-प्रीतम के अंग संग, मदन उमंग की तरंग में भरी-भरी ।
'लाल बलवीर' दोऊ गावत मलारें, चलें सीतल बयारें, बेली झूमत हरी-हरी ।।
उर मचकाय पाय भूमि तें लगाय धाय, लेत है सिहाय झोटा दीरघ घरी-घरी ।
पट फहरात जात,छिन आवें छिन जात, मानौं असमान तें विमान लै परी परी ।।७
सब सुखरासी वृंदाबिपिन-विलासी छैल, घट-घटबासी तुम जानों पास-दूर की ।
करुनानिधान गुनखान साँवरे सुजान, चतुर अगारी सुधि लेते रहे कूर की ।।
'लालबलवीर'दास जानिकै ग्वामी मोहि राखौ निज पासी आँख प्यासी वर नूर की ।
गरजी बिचारे कों तौ अरजी किये ही बनै, माननी न माननी ये मरजी हजूर की ८

८२. मनोहरदास

मनोहरदास जी कृत एक ब्रजभाषा गद्य रचना 'चैतन्य लीला' उपलब्ध है। इसका रचना-काल सं० १९५७ की वैशाख शु० १५ है। रचना-काल के आधार पर मनोहरदास जी का जन्म-संवत् १९१५ के लगभग अनुमानित होता है। 'चैतन्य लीला' में रचना-काल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

संवत ऋषि सर रस धरनि (१९५७),पूनौ माधव मास ।
लीला श्री चैतन्य की, रची मनोहरदास ।।

८३. जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' सुप्रसिद्ध हिंदी-सेवी, ब्रजभाषा के आचार्य और अपने समय के ब्रजभाषा कवियों में प्रमुख थे । वे आधुनिक काल के होते हुए भी मध्यकालीन ब्रजभाषा-कवियों की तरह सुव्यवस्थित और सुअलंकृत शैली में काव्य-रचना करने में सफल हुए थे। उनके छंद क्या हैं, कुशल कारीगर द्वारा काटे-तराशे हुए अनमोल नगीने हैं। वे आधुनिक ब्रजभाषा साहित्य के शृंगार हैं ।

उनका जन्म एक प्रतिष्ठित अग्रवाल वैश्य कुल में सं० १९२३ की भाद्रपद शु० ५ को काशी में हुआ था। उनके पूर्वज पानीपत (पंजाब) के मूल निवासी थे। उन्होंने दिल्ली के मुगल सम्राटों और लखनऊ के नवाबों के शासन में उच्च पदों पर काम किया था। उनके प्रपितामह सेठ तुलाराम लखनऊ के नगर-सेठ और नवाब के कोषाध्यक्ष थे । उनके पिता श्री पुरुषोत्तमदास काशी में निवास करते थे । वे फारसी के अच्छे विद्वान और हिंदी-काव्य के बड़े प्रेमी थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी से उनकी बड़ी मित्रता थी । अपने पिता जी के संस्कार और भारतेन्दु जी के सत्संग के कारण रत्नाकर जी बचपन से ही काव्य की ओर आकृष्ट हो गये थे । वे फारसी के अच्छे विद्वान, अंगरेजी के स्नातक और हिंदी-ब्रजभाषा के महारथियों में से थे। वे पहिले अवागढ़ राज्य के कोषाधिकारी तथा बाद में अयोध्या-नरेश के निजी सचिव हुए और अंत तक उसी पद पर प्रतिष्ठित रहे। उनका घराना श्री राधारमणीय गोस्वामियों की शिष्य-परंपरा में चैतन्य मतानुयायी है। उनका देहावसान सं० १९८९ दिनांक २१ जून १९३२ ई० को हरिद्वार में गंगा तट पर हुआ था।

उन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार की काव्य-रचना की है। उनकी कृतियों के नाम—१. हिंडोला, २. समालोचनादर्श, ३, हरिश्चंद्र, ४. उद्धव शतक, ५. गंगावतरण, ६. शृंगार लहरी, ४. गंगा लहरी, ८. विष्णु-लहरी और ९. कल काशी हैं । इनके अतिरिक्त विविध विषयों के २९ अष्टक तथा अनेक स्फुट छंद हैं । उनकी रचनाओं में 'उद्धव शतक' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। वे मुख्यतः शृंगार रस और भक्ति विषय के कवि थे; किंतु उन्होंने वीर रस और देश-भक्ति के भी उत्तम छंद लिखे हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं–

(हिंडोला)—**इत-उत ललित लखाति चटक रँग बीरबधूटी ।**
मनहु अमल अनुराग-राग की उपजी बूटी ॥
दूबनि प झलमलत, बिमल जल-बिंदु सुहाए ।
मनु बन पै घन वारि मंजु मुकुता बगराए ॥ १ ॥

तरुवर तहाँ अनेक एक सों एक सुहाए ।
नाना बिधि फल-फूल फलित प्रफुलित मन भाए ।।
कहूँ पाँति बहु भाँति, अमित आकृति करि ठाढ़े ।
कहूँ झुंड के झुंड, झुकें-झूमैं गथि गाढ़े ।। २ ।।
चंपा-गुंज-लवंग-मालती-लता सुहाईं ।
कुसुम-कलित अति ललित, तमालनि सों लपटाईं ।।
साजे हरित दुकूल फूल छाजे बनिता बहु ।
निज-निज नाहैं अंक, निसंक रहीं भरि मानहु ।। ३ ।।

(उद्धव शतक)-बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा,
कहत बनै न जो प्रवीन सुकबीनि सों ।
कहै 'रत्नाकर' बुझावन लगे ज्यों कान्ह,
ऊधौ कों कहन हेत ब्रज-जुवतीनि सों ।।
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचनानक त्यों,
प्रेम परयौ चपल चुचाइ पुतरीनि सों ।
नैक कही बैननि, अनेक कही नैननि सों,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सों ।। १ ।।

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब,
सोई अब आँसु ह्वै उबरि गिरिबौ करैं ।
कहै 'रतनाकर' जुड़ात हुते देखें जिन्हैं,
याद किएँ तिनकों अवाँ सों घिरिबौ करैं ।।
दिननि के फेर सों भयौ है हेर-फेर ऐसौ,
जाकौं हेरि फेरि हेरिबोई हिरिबौ करैं ।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि में आठों जाम,
नैननि में अब सोई कुंज फिरिबौ करैं ।। २ ।।

दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ,
गरि गौ गुमान ज्ञान-गौरव गुठाने से ।
कहै 'रतनाकर' न आए मुख बैन, नैन—
नीर भरि ल्याए, भए सकुचि सिहाने से ।।
सूखे से, स्रमे से, सकबके से, सके से थके,
भूले से, भ्रमे से, भभरे से, भकुआने से ।
हौले से, हले से, हूल-हूले से हिये में हाय,
हारे से, हरे से, रहे हेरत हिराने से ।। ३ ।।

(गंगावतरण)—इहि बिधि घाटिनि दरिनि, कंदरिनि पैठति निकसति ।
कहूँ सिमिटि घहराति, कहूँ कल-धुनि-जुत बिकसति ॥
कहूँ सरल कहूँ बक्र, कहूँ चलि चारु चक्र - सम ।
कहुँ सुढंग कहुँ करति भंग, गिरि - संग सक्र - सम ॥ १ ॥
गंगोत्तरि तें उतरि, तरल घाटी में आई ।
गिरि-सिर तें चलि चपल, चंद्रिका मनु छिति छाई ॥
बक - समूह इक संग, गोत गिरि-तुंग सिखर तें ।
गए फैलि दुहुँ बाहु, बीचि कै फाबि फहर तें ॥ २ ॥

(शृंगार-लहरी)—अब न हमारौ मन मानत मनाएँ नैक,
टेक करि बापुरौ बिबेक नखि लैन देहु ।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-सुधा कों धाइ,
तृषित चकोरनि अघाइ चखि लैन देहु ॥
संक गुरु लोगनि के बंक तकिबे की तजि,
अंक भरि सिगरौ कलंक सखि लैन देहु ।
लाज कुल-कानि के समाज पर गाज गेरि,
आज ब्रजराज की लुनाई लखि लैन देहु ॥ १ ॥
बैठे भंग छानत अनंग - अरि रंग रमे,
अंग - अंग आनँद - तरंग छबि छावै है ।
कहै 'रतनाकर' कछूक रंग - ढंग औरै,
एकाएक मत्त ह्वै भुजंग दरसावै है ॥
तूँबा तोरि साफी छोरि मुख बिजिया सों मोरि,
जैसें कंज - गंध पै मलिंद मंजु धावै है ।
बैल पै बिराजि संग सैल - तनया लै बेगि,
कहत चले यों कान्ह बाँसुरी बजावै है ॥ २ ॥

(वीर-रस)—भीषम भयानक पुकारचौ रन-भूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जाइगी ।
कहै 'रतनाकर' रुधिर सों रुँधैगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जाइगी ॥
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु-पूतनि की,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी ।
कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी, कै—
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी ॥

८४. वनमालीलाल

वनमालीलाल जी वृंदावनस्थ माध्व गौड़ेश्वराचार्य और श्री राधारमण जी के गोस्वामी थे । उनका जन्म सं० १६२४ की वैशाख कृ० १४ शुक्रवार को और देहावसान सं० २००८ की विजया-दशमी शुक्रवार को हुआ था । उन्होंने श्री नरोत्तमदास ठाकुर कृत सुप्रसिद्ध बंगला रचना 'प्रेम भक्ति चंद्रिका' का ब्रजभाषा में ध्वन्यात्मक रूपांतर किया है । इसकी पूर्ति सं० १६६० की श्रावण कृष्णा ६ को हुई थी । पहिले यह ब्रजभाषा रूपांतर ही प्रकाशित किया गया था; किंतु इसे सरलता पूर्वक समझाने के लिए बाद में मधुसूदनदास जी ने इसकी हिंदी टीका भी की थी । इस प्रकार यह सटीक पुस्तक सं० २००६ में गौरांग कुटीर, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित हुई है । इसका कुछ अंश इस प्रकार है—

राधा - कृष्ण करो ध्यान । स्वप्न में न बोलो आन ।
प्रेम बिना और मत चाहो ।।
युगल किशोर प्रेम । लक्ष बार दग्ध हेम ।
आरत प्रीति रसे धाओ ।।
जल बिन जैसे मीन । दुख पाय आयु हीन ।
प्रेम बिना ऐसे ही सु भक्त ।।
चातक जलद गति । ऐसे ही एकांत रति ।
जानै जोई सोई अनुरक्त ।।

८५. कृष्णचरण

कृष्णचरण जी वृंदावन के राधारमणीय गोस्वामी थे । उनका जन्म सं० १६३० के लगभग हुआ था । उनके पिता विद्वद्वर बलदेवलाल गोस्वामी उपनाम 'दाऊजी' थे । कृष्णचरण जी ने दीर्घायु प्राप्त नहीं की थी । उनका देहावसान सं० १६७० के लगभग हुआ था । उनकी १०० दोहों की एक छोटी रचना 'श्री चैतन्य चंद्रामृत कणिका' और कुछ स्फुट पद उपलब्ध हैं । 'श्री चैतन्य चंद्रामृत कणिका' के कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

चखन - चखावन प्रेम - रस, नंद - सुवन चैतन्य ।
प्रगटे नदिया नगर में, सो वंदौं श्रुति-धन्य ।।
पाय जनम जिन कियौ नहिं, धर्म सुजन जन संग ।
वंदौं जिनकी कृपा सों, नाचत प्रेम उमंग ।।
हरि रस मदिरा मत्त जिन, कियौ सकल संसार ।
ईश ब्रह्म जानौं नहीं, महिमा रूप अपार ।।
योग - यज्ञ - जप - तप - नियम, निगमागम नहिं जाय ।
सोई पावत पुरुष जब, प्रकटे श्री हरि आय ।।

८६. यज्ञदत्त

यज्ञदत्त जी स्थान विष्णुपुर ज़िला मुंगेर में रहने वाले ब्राह्मण थे। उन्होंने वृंदाबनस्थ श्री राधारमण जी के गोस्वामी छवीलेलाल से चैतन्य मत की दीक्षा ली थी। वे वृंदाबन के गो० नंदकिशोर जी तथा कुसुम सरोवर के बाबा हरिचरणदास के भी कृपा-पात्र थे। उन्होंने फरीदपुर (पूर्व बंग) निवासी सुधन्यकुमार जी की प्रेरणा से 'श्री गौरांगचरित मानस' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में रामचरितमानस की भाँति दोहा-चौपाई छंदों में श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र चैतन्य भागवत, चैतन्य मंगल और सबसे अधिक चैतन्य चरितामृत के आधार पर लिखा गया है। इसकी रचना सं० १९७१-७३ में हुई थी और यह चार खंडों में प्रकाशित हुआ है। इसका प्रकाशन फरीदपुर निवासी सुधन्यकुमार मित्र ने किया है।

इस ग्रंथ में यज्ञदत्त जी के जीवन-वृत्तांत से संबंधित कोई उल्लेख नहीं मिलता है और न उनका जन्म-संवत् ही लिखा गया है। रचना-काल के आधार पर उनका जन्म-संवत् १९३० के लगभग अनुमानित होता है। काव्य की दृष्टि से यह ग्रंथ एक साधारण रचना है, जिसमें भाषा संबंधी दोष भी पर्याप्त परिमाण में हैं। इसे सामान्य पाठकों के लिए गौरांग-चरित का बोध कराने के लिए रचा गया है। इसका कुछ अंश यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

आरंभ— **युगल चरन में प्रेम, बसहिं सदा मम हृद-भवन।**
लीला वर्णन नेम, गौर-निताई चरित सु मन॥

जो अति परम दयाल, बंदौं श्री राधारमन।
देखि प्रीति गोपाल, सालग्रामहिं प्रकट भए॥

जो साधत सब काम, सो राधा पद-रज भजूँ।
लेत जाहि के नाम, भव-बाधा उपजत नहीं॥

कनक-कांति कमनीय, युगल जानु लंबित भुजा।
बंदौं भव भरणीय, कमलनेत्र कीर्तन-पिता॥

श्री चैतन्य निताइ, पालक दोउ कलि-धर्म के।
जड़-चेतन प्रिय जाय, विप्र वर्ण करुणावतर॥

मध्य—**बोले प्रभु तुम प्रिय दोउ भाई। भक्त पुरातन मम सुखदाई॥**
नाम आज से रूप-सनातन। तजहु दैन्यता फाटत हिय मम॥
बार-बार पत्री तव पाई। आयउँ तेहि से यहि मग धाई॥
तव दरसन कारन आगमना। जानहु तुम दोउ मम मन-रचना॥
सुनि दोउ प्रभु पद राख्यौ माथा। दीन्ह असीस सीस धरि हाथा॥

अंत— **जय-जय श्री गौरांग जू, रचना करि अस ग्रंथ।**
अर्पन तव श्री चरन में, सदा चलूँ एइ पथ॥

८७. प्रियतमलाल

प्रियतमलाल जी श्री रामराय–चंद्रगोपाल जी के वंश में वासुदेव जी के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १९३२ की भाद्रपद शु० ८ को वृंदावन में हुआ था। उन्होंने केवल ३० वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की थी; अतः उनका देहावसान सं० १९६२ में हो गया। वे संस्कृत और व्रजभाषा के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत में 'श्री राधा कृपा कटाक्ष स्तोत्र' की व्याख्या तथा व्रजभाषा में 'श्री रसिकाचार्य चरितावली' नामक रचनाएँ की थीं।

उनके पिता गो० वासुदेव जी ने अपने पूर्वजों के अस्तित्व-काल और जीवन-वृत्तांत के अनुसंधान का जो समारंभ किया था, उसे आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने 'श्री रसिकाचार्य चरितावली' को रचा था। इसमें उन्होंने जयदेव जी का विशेष रूप से और उनके बाद होने वाले अपने अन्य पूर्वजों का संक्षिप्त रूप से वर्णन लिखा है। तदनंतर उनके सुयोग्य पुत्र यमुनाबल्लभ जी ने इसे और भी व्यवस्थित रूप प्रदान किया है। इस प्रकार यमुनाबल्लभ जी की यह मान्यता कि सर्वश्री जयदेव जी और रामराय जी आदि महानुभाव उनके पूर्वज थे, अधिकतर वासुदेव जी और प्रियतमलाल जी की रचनाओं पर आधारित है।

प्रियतमलाल जी कृत 'श्री रसिकाचार्य चरितावली' के अतिरिक्त उनके रचे हुए तीर्थ-स्थानों के माहात्म्य सूचक तथा श्री राधा-माधव की सेवा विषयक स्फुट कवित्त भी उपलब्ध हैं। उनकी रचना के उदाहरण स्वरूप उनके कुछ छंद यहाँ पर दिये जाते हैं—

जानिकैं मोहि अजान अनाथ, सनाथ करें निज कोर कृपा की।
दुर्गम काज प्रवृत्त भयौ, इहि टेव खरी सी परी जो सदा की॥
गंगा कौ नीर पवित्र करै, हरि-नाम हू पाप-पहाड़ कों टाँकी।
ताहू सों सीघ्र जु कारज सारत, संतत संत पदांबुज झाँकी॥१॥

सघन लतान के बितान तने चारों ओर,
करैं सोर मोर, जोर कोकिल पुकारी है।
आगे हैं घाट, बाट कालिंदी-कूल हेत,
नगर बगीचौ पीछें बारी सिंहद्वारी है॥
कंस कौ प्रताप, बड़े मल्लन कौ ताप, आप—
मेट्यौ कृष्ण संग सखा-बल बलधारी है।
भात-भोज थारी, पुन्य संचय करनवारी,
तीन लोक न्यारी, यह मथुरा रस-क्यारी है॥ २॥

प्रात समै रविजात के तीर, समीर बहै नव नीर सहारे ।
दोऊ उठे सखि वृंद के गायन, दोऊ बलैया सी लेत निहारे ॥
नील औ पीत दुकूल की भूल, भई नहिं जानत कौन कों धारे ।
राधिका-माधव के हम सेवक, राधिका-माधव स्वामी हमारे ॥३॥
कौसल गोत्र सारस्वत ब्राह्मन, वेद यजुर्माध्यन्दिनि डारे ।
श्री जयदेव महाप्रभु के कुल में, भयौ जन्म सो भाग्य के भारे ॥
धाम वृंदाबन गान करें नित, गीत गोविंद कों साँझ-सकारे ।
राधिका-माधव के हम सेवक, राधिका-माधव स्वामी हमारे ॥४॥
दादा भये ब्रजराजकिसोर, पिता वसुदेव अपत्य हमारे ।
प्रीतमलाल कहैं हमकों, गोस्वामि आचार्य पदांत उचारे ॥
जीवन बीत्यौ यही कहि तें, नहिं जानत दूजी कोई कविता रे ।
राधिका-माधव के हम सेवक, राधिका-माधव स्वामी हमारे ॥५॥
श्री यमुना तट केलि कदंब, नितंब में दोऊ झुके पिय प्यारे ।
दै गलबाँहीं जबाँहीं सी लेत, निकुंज कुटी लकुटी के सहारे ॥
श्री वृषभानुकिसोरी के सग, अनंग उमंग में नंद-दुलारे ।
राधिका-माधव के हम सेवक, राधिका-माधव स्वामी हमारे ॥६॥
रसिकाचार्य चरित्र विचित्र, कह्यौ कछु छंद प्रबंध उचारे ।
श्री जयदेव महाप्रभु के पद - पंकज सेवक इष्ट हमारे ॥
जैसौ बन्यौ और जैसौ मिल्यौ, निज पूर्वज वाक्य सभी उर धारे ।
राधिका-माधव के हम सेवक, राधिका-माधव स्वामी हमारे ॥७॥

८८. लालमणि

लालमणि जी गोस्वामी वृंदावन के राधारमणीय गोस्वामियों में सर्वाधिक वयोवृद्ध सज्जन हैं । उनका जन्म सं० १६३२ के लगभग हुआ था । उन्होंने 'श्री गौर-श्याम प्रेम-प्रकाश' नामक पुस्तिका ब्रजभाषा कवित्तों में रची है । पुस्तक में सूत्र रूप से भागवतादि धर्म-ग्रंथों की सूक्तियाँ देकर उनके भाष्य रूप में कवित्त लिखे गये हैं । पुस्तक में ५१ पृष्ठ हैं और वह सं० २००५ मे प्रकाशित हुई थी । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

ए हो कृष्णचंद्र, ब्रज-बनितन प्रिय चंद, सुखद स्वच्छंद घनस्याम द्युति वारौ है ।
साँमरौ, सलौनो, अति सरल स्वभाव वारौ, करुना अपार त्रयताप हरन हारौ है ॥
तेरौ तौ सुजस तिहुँ लोकन में छाय रह्यौ, दीनबंधु दीनानाथ दीनन दुलारौ है ।
कलियुग के भक्तन की महिमा विस्तार रही, संकीर्तन-यज्ञ द्वारा तोहि उर धारौ है ॥

८६. बांकेपिया

बांकेबिहारीलाल जी सौख्यसेन उपनाम 'बांकेपिया' लखनऊ निवासी कायस्थ थे। उनके पिता जी का नाम ला० कन्हैयालाल था। उन्होंने वृंदावन के राधारमरणी गोस्वामी अनंतलाल जी से चैतन्य मत की दीक्षा ली थी। वे परम धार्मिक, रसिक भक्त, भक्ति-तत्व के ज्ञाता, सुलेखक और सुकवि थे। रेल की नौकरी से अवकाश प्राप्त कर उन्होंने अपना उत्तर जीवन अत्यंत निष्ठा पूर्वक माध्वगौड़ेश्वर संप्रदाय के लिए अर्पित कर दिया था। उन्होंने गद्य और पद्य में अनेक छोटे-बड़े ग्रंथों की रचना की थी; जिन्हें अपने व्यय से प्रकाशित करा कर भक्तजनों में अमूल्य वितरित किया था।

उनका जन्म सं० १९३२ के लगभग हुआ और उनका देहावसान दीर्घायु में हुआ था। उनकी गद्यात्मक रचनाएँ खड़ी बोली में और पद्यात्मक रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। उनकी काव्य-रचना सरस और मनोहारी हैं। इनमें उनका 'बांकेपिया' उपनाम मिलता है। उनकी रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१. प्रेमरस बाटिका, २. भगवत सेवा विधि, ३. नम्र प्रार्थना, ४. श्री राधारमरण विहार माला, ५. रसिक प्रमोदिनी, ६. हरिनाम-संकीर्तन, ७. निकुंज माधुरी छद्म, ८. ऋतु प्रमोद, ९. वाणी विनोद, १०. विवेक मंजरी, ११. श्री माध्व गौड़ीय तत्व दर्शन, १२. श्रीकृष्ण लीला रहस्य, १३. प्रेमपीयूषनिधि, १४. प्रेमानंदवर्षिणी, १५. प्रेमोद्दीपनी, १६. सेवा भाव, १७. कलंक भंजन लीला, १८. प्रेम-प्रतिमा, १९. ब्रज माधुर्य दर्पण, २०. वैष्णव सर्वस्व. २१. पथिक मराल, २२. मधुर मिलन, २३. नाम-संकीर्तन विधि।

इनमें से कुछ रचनाओं का परिचय और उनके उदाहरण दिये जाते हैं—

१. **भगवत सेवा विधि**—इस पुस्तिका के आरंभ में सेवा संबंधी संक्षिप्त विवेचन, फिर जागरण से शयन पर्यंत सेवा के पद दिये गये हैं। बीच-बीच में ब्रजभाषा गद्य में परिचयात्मक कथन है। इसकी रचना सं० १९७८ में हुई थी। इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—

(रंगमहल सेवा)— **चाँपत पाँय मुदित मन सखियाँ।**
धीरे-धीरे चरन पलोटत, करत युगल रस बतियाँ॥
सीतल-मंद पवन लागत ही, ढोरत बिजन लागि गईं अँखियाँ।
मृदु मुसकन युत सोबन छवि लखि, 'बांकेपिया' जुड़ावत छतियाँ॥

(शयन)— बातन दोउ अरुझाने, नींद नैनन महँ झमक रही ।
आधे - आधे बैन कढ़त मुख, दृष्टिन ओट गही ॥
मुख तंबोल पीक सुधि बिसरी, अधरन माँहि बही ।
थकित भई उपमा 'बांकेपिय', याते नाँहि कही ॥

२. **निकुंज माधुरी छद्म**—इस छोटी सी पुस्तिका में सखी-भाव भावित चार सरस लीलाओं का कथन है, जिनके नाम १. निकुंज माधुरी छद्म, २. मणि मंदिर छद्म, ३. प्रेम-परीक्षा छद्म और ४. सलोनी नारि छद्म हैं। इसकी रचना सं० १९८१ में हुई थी। 'प्रेम परीक्षा छद्म' का कुछ अंश इस प्रकार है—

श्री वृंदाबन बनराज, रम्य रसनिधि सुखदाई ।
ऋतु बसंत जेहि ठौर, रहत निसि-बासर छाई ॥
सघन बिटप जहँ हरे, भरे फूले बहु भाँती ।
नव पल्लव अंकुरित, लता झूमैं मदमाती ॥
सीतल - मंद समीर लिएँ, सौरभ कन डोलत ।
पिक-सारिका औ कीर, जहाँ मधुरे स्वर बोलत ॥
सीतल जल सों स्वच्छ, भरे सरवर बहुतेरे ।
पसु - पक्षी आनंदित, कल रव करत घनेरे ॥
गिरकलिंद - तनया, कल्लोल करत इक ओरी ।
मंद-मंद गति डोलत, इक दिसि हंस-चकोरी ॥
सुंदर ललित निकुंज, सघन बहु भाँतिन सोहैं ।
सहित परम माधुर्य्य, कलपतरु कौ चित मोहैं ॥
कुंज माधवी बैठि, लाल प्यारी मग जोहत ।
कोमल पुष्पन सेज रचत, पुनि-पुनि टकटोवत ॥

३. **श्री माध्व गौड़ीय तत्व दर्शन**—इस ग्रंथ में चैतन्य मत के दार्शनिक, रस विषयक और आचार संबंधी तत्वों का सरल विवेचन किया गया है। इससे लेखक के गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। इसके अंत में कुछ सुंदर पद भी हैं। इसकी रचना सं० १९८३ में हुई थी।

४. **प्रेमोद्दीपनी**—इस छोटी सी पुस्तिका में गोपी-प्रेमोद्दीपन के सरस छंद हैं। इसकी रचना सं० १९९० में हुई थी। इसका उदाहरण इस प्रकार है—

चल सखि देखैं, प्रेम-दसा ब्रज-नागरी ।
कृष्ण नेह - रँग रँगी, फिरत इक बावरी ॥
दिव्य श्री वृंदाटवी, ललित अति रम्य मनोहर ।
सघन बिटप बहु कुंज, पूर्न जल अमल सरोवर ॥

भार पुष्प फल तें झुके, द्रुम अवनी लौं जाहिं ।
मनि बीथिन निज बपु निरखि, मिलहिं सजाती पाहिं ।।
बढ़यौ अनुराग अति ।।१।।

कल रव पक्षी करत, मधुप कमलन पर गुंजत ।
सीतल-मंद समीर लिएँ, सौरभ संग डोलत ।।

भानुनंदिनी कर रही, कल - कल धुनि इक ओर ।
मधुर स्वरन बोलत तहाँ, कोकिल - मोर - चकोर ।।
फिरत उन्मत्त से ।।२।।

कृष्ण रूप रस पगी, फिरत गोपी मतवारी ।
युवति वृंद संग मनहु, पातयुत कंचन डारी ।।

प्रेम अमल मद छक रही, तन की दसा बिसारि ।
नैनन में मन बसि रह्यौ, प्रीतम नंद - कुमार ।।
वियोगिनि सी फिरै ।।३।।

टेरत पुनि-पुनि कृष्ण, प्रान-धन नंद-दुलारे ।
गये कितै मोहिं छाँड़ि, मिलहु हे प्रीतम-प्यारे ।।

बिरह व्यथा क्लेशित हृदय, मृत्यु रही नियराय ।
जीव - दान दै साँवरे, अधर सुधा - रस प्याय ।।
रोग की औषधी ।।४।।

५. **प्रेम-प्रतिमा**—इसमें गोस्वामी गोपाल भट्ट जी का चरित और उनके द्वारा श्री राधारमण जी के प्राकट्य की कथा वर्णित है । यह खड़ी बोली गद्य मे लिखी गई है । इसकी रचना सं० १९९२ में हुई थी ।

६. **पथिक मराल**—इस छोटी सी पुस्तिका में मराल दूत द्वारा श्री राधा की विरह-व्यथा का संदेश श्रीकृष्ण के पास भिजवाया गया है । इसकी रचना सरस रोला छंद में हुई है । इसका पूर्ति-संवत् १९९५ है । उदाहरण इस प्रकार है—

कारौ षटपद कंज-कलिन-रस पियत अघाई ।
हित सों राखत कंज, ताहि निसि हृदय दुराई ।।

भोर होत उड़ जात सो, निपटहिं हृदय कठोर ।
जाय स्याम मथुरा बसे, तैसेइ हमकों छोरि ।।
बिसारी प्रीति सब ।।३०।।

७. **मधुर मिलन**—इस रचना में श्री राधा-कृष्ण के मधुर-मिलन का कथन किया है । इसकी पूर्ति सं० १९९६ में हुई थी । उदाहरण इस प्रकार है—

देखन कों ब्रज - प्रेम, कृष्ण निज रूप दुरायौ ।
माया बस कोउ ग्राम-वासियन देख न पायौ ।।
ग्राम - ग्राम डोलें दोऊ, देखें ब्रज - व्यवहार ।
करें कृष्ण-चर्चा सबै, बालक-नर अरु नारि ।।
भरे दृढ़ प्रेम उर ।।७।।

९०. बालकृष्ण

बालकृष्ण जी वृंदावनस्थ श्री राधारमणजी के गोस्वामी थे । उनका जन्म सं० १९३७ के लगभग और देहावसान सं० १९९७ में हुआ था । वे धार्मिक विद्वान, चित्रकार और कवि थे । उनकी दो अनुवादित रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनके नाम १. नीलाचल में ब्रज-माधुरी और २. प्रार्थना हैं । उक्त रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उनके उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. नीलाचल में ब्रज-माधुरी—यह श्री रसिकमोहन विद्याभूषण कृत इसी नाम की बंगला पुस्तक का हिंदी अनुवाद है । इसका गद्य खड़ी बोली में और कविता ब्रजभाषा में हैं । इसकी पूर्ति सं० १९८८ में हुई थी, किंतु इसका प्रकाशन कई वर्ष बाद सं० १९९४ में हुआ । इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की अंतिम लीलाओं का मार्मिक कथन है और उसी के संदर्भ में चैतन्य मत के भक्ति सिद्धांतों का भी समावेश हुआ है । इसकी ब्रजभाषा कविताओं में से एक उदाहरण स्वरूप यहाँ दी जाती है—

सखि ! अब मोय मरैं सुख होय ।
जीवन भार भयौ अब सब विधि, निसि-दिन बीतत रोय ।।
प्रथमहिं सुनत स्याम द्वै अच्छर, सुध-बुध दीनी खोय ।
बंसी धुनि सुन और बात अब, सुन न परत कछु मोय ।।
देख चित्रपट जलद स्याम कों, लोक-लाज दई धोय ।
धाय गई देखन हित ताकूँ, कहूँ न पायौ मोय ।।

२. प्रार्थना—यह नरोत्तमदास जी ठाकुर कृत इसी नाम की बंगला कृति का ब्रजभाषा काव्यानुवाद है । इसकी रचना रचयिता के देहावसान के कुछ समय पूर्व सं० १९९७ की कार्तिक शु० १ को हुई थी । इसका प्रकाशन बाबा कृष्णदास ने सं० २०१४ में किया था । इसके कुछ छंद यहाँ दिये जाते हैं—

गौरांग कहत होय पुलक सरीर ।
हरि - हरि कहत नयन बहै नीर ।।
नित्यानंद चंद कब करुना करौगे ?
संसार वासना मेरी कब लों हरौगे ?
विषय छाँड़ि कब शुद्ध होयगौ मन ?
कब मैं हेरूँगौ वह धाम वृंदावन ?
रूप-रघुनाथ कहि होऊँगौ व्याकुल ।
कब मैं जु जानूँगौ वह प्रीति जुगल ?

रूप - रघुनाथ के पद में रहै आस ।
प्रार्थना करत सदा नरोत्तमदास ।।
यही आस कर मन होय के सतृष्ण ।
करत अनु प्रार्थना दीन 'बालकृष्ण' ।।

आज की निसा में घिरे रस मेघ रासी । भये प्रेम-मग्न सब वृंदाबन बासी ।।
स्याम घन बरसत प्रेम सुधा धार । राधिका रंगिनी करैं बिजुरी संचार ।।
प्रेम - रपटन होय रही मग बीच । मृगमद कुंकुम चंदन की है कीच ।।
प्रेम की बढ़ी है बाढ़ सूझै नहीं पार । नरोत्तमदास डूब्यौ चाहै मँझधार ।।

६१. कृष्णानंददास

कृष्णानंददास जी का जन्म पंजाब के जालंधर जिलांतर्गत बुंडाला कस्बा के एक गौड़ ब्राह्मण कुल में सं० १६४० की माघ कृ० ८ चंद्रवार को हुआ था। उनके पिता का नाम प० भोलाराम और माता का नाम रल्ती जी था। उनका आरंभिक नाम कर्मचंद था। उन्हें बचपन में उर्दू की शिक्षा दी गई थी; किंतु उनका मन हिंदी-संस्कृत पढ़ने को लालायित था। इसके लिए वे १५ वर्ष की किशोरावस्था में बिना किसी से कहे-सुने घर से चल दिये और काशी जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। काशी में ही उन्होंने संन्यासाश्रम की दीक्षा प्राप्त की थी; तब उनका नाम कृष्णानंद प्रसिद्ध हुआ।

काशी में विद्याध्ययन समाप्त कर वे देश भ्रमणार्थ चल दिये। उस समय वे अद्वैत सिद्धांत के अनुयायी थे; किंतु उससे उनके मन को शांति नहीं मिलती थी। एक महात्मा के उपदेश से वे श्री कृष्ण की मधुर लीलाओं के आस्वादन और भागवत के अध्ययन में तत्पर हुए। इससे उन्हें अलौकिक शांति का अनुभव हुआ। तब वे ब्रज में जाकर वहाँ के लीलास्थलों में रम गये और फिर अंत समय तक ब्रज-रस के उपभोक्ता और प्रचारक बने रहे। उन्होंने श्री नित्यानंद जी के परिकर के एक बंगाली महात्मा प्राणगोपाल जी से चैतन्य मत की दीक्षा ली थी। इससे वे संन्यासी कृष्णानंद से भक्तवर कृष्णानंददास हो गये। उन्होंने ब्रजमंडल तथा निकटस्थ प्रदेश के अनेक स्थानों में कृष्ण-भक्ति और हरिनाम-कीर्तन का व्यापक प्रचार किया था। उनके अनेक शिष्य हुए। उनका देहावसान सं० १६६८ की फाल्गुन कृ० ७ को हुआ था।

उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की थी, जिनके नाम—१. श्री राम-कृष्ण लीलामृत, २. भक्ति रत्नावली, ३. भागवत तत्व विमर्श, ४. वैदिक प्रमाण पत्रिका, ५. गीता-टीका, ६. द्वैत सिद्धांत विवेचन आदि हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने ब्रजभाषा के स्फुट पदों की भी रचना की थी।

९२. दामोदराचार्य

दामोदराचार्य जी वृंदाबनस्थ श्री राधारमण जी के गोस्वामी तथा एक धर्मप्राण वयोवृद्ध सज्जन हैं। इनका जन्म सं० १९४३ की कार्तिक कृ० ४ को हुआ था। राधारमणी गोस्वामियों के इतिवृत्त की जितनी जानकारी इनको है, उतनी शायद ही किसी को हो। वे चैतन्य मत और ब्रज साहित्य के सहृदय विद्वान हैं। उन्होंने कुछ स्फुट ब्रजभाषा छंद भी रचे है।

९३. कृष्णचैतन्य (पटना वाले)

कृष्णचैतन्य जी वृंदाबन के श्री गोपालभट्ट जी के परिकर के गोस्वामी हैं, और वे पटना में प्रवास करते हैं। उनका जन्म सं० १९४६ में हुआ था। उनके गयाघाट, पटना स्थित 'श्री चैतन्य पुस्तकालय' में अनेक दुर्लभ हस्त-लिखित ग्रंथों का बहुमूल्य संग्रह है। इस पुस्तकालय द्वारा उन्होंने बिहार में भक्ति-साहित्य और धर्म-प्रचार की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे द्विवेदी युग के लेखक और 'चैतन्य चंद्रिका' पत्रिका के संपादक रहे हैं। उन्होंने 'चैतन्य चरितामृत' के एक खंड का सरल पद्यानुवाद भी किया है।

९४. ब्रजरत्नदास

ब्रजरत्नदास जी हिंदी साहित्य के गण्यमान्य विद्वान, अनुसंधानप्रिय लेखक और ब्रज साहित्य संबंधी अनेक ग्रंथों के सुविख्यात संपादक हैं। वे भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के दौहित्र और काशी के प्रतिष्ठित अग्रवाल कुल के रत्न है। उनका जन्म सं० १९४७ में हुआ था। वे काशी के पुराने वकील हैं; किंतु उनका अधिकांश समय साहित्य-साधना में लगा है। वे हिंदी और अंगरेजी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, फारसी और बंगला भाषाओं के भी ज्ञाता हैं। अनेक वर्षो तक वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पदाधिकारी और प्रमुख सदस्य रहे हैं। आजकल वे चैतन्य मत के एक त्रैमासिक पत्र "श्री गौरांग" का संपादन कर रहे हैं। उनके रचे हुए अनेक ग्रंथों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं-

१. खुसरो की हिंदी कविता. २. प्रेम सागर, ३. तुलसी ग्रंथावली, ४. रहिमन विलास, ५ संक्षिप्त रामस्वयंवर, ६. मुद्राराक्षस, ७. नंददास ग्रंथावली, ८. भूषण ग्रंथावली, ९. इंशा : उनका काव्य और कहानी, १०. भारतेन्दु ग्रंथावली (३ भाग), ११. हुमायूनामा, १२. नआसिरुल उमरा (दो भाग), १३. यशवंतसिंह, १४. खड़ी बोली साहित्य का इतिहास, १५. उर्दू साहित्य का इतिहास, १६. भारतेन्दु हरिश्चंद्र।

९५. स्वरूपकृष्णदास

बाबा स्वरूपकृष्णदास जी चैतन्य मत के मार्मिक विद्वान और एक भजनानंदी महात्मा हैं । उन्होंने श्री चैतन्य संबंधी एक सुंदर ग्रंथ की रचना भी की है । आजकल वे गोवर्धनस्थ श्यामकुटी में निवास करते हैं ।

९६. ब्रजभूषणदास

ब्रजभूषणदास जी काशी निवासी प्रतिष्ठित अग्रवाल और ब्रजरत्नदास जी के अनुज हैं । वे चैतन्य मत के प्रगाढ़ विद्वान, इसके साहित्य के संग्राहक और सुलेखक हैं । उन्होंने "श्री गौरांग" नामक एक सुंदर त्रैमासिक पत्र प्रकाशित किया है । इसके द्वारा वे चैतन्य मत के सर्वमान्य साहित्य को हिंदी पाठकों के लिए सुलभ करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं ।

९७. गौरचरण

गौरचरण जी वृंदाबन के प्रसिद्ध हिंदी-सेवी गो० राधाचरण जी के ज्येष्ठ पुत्र थे । उनका जन्म सं० १९५३ की आश्विन शु० ७ को हुआ था । वे अत्यंत होनहार युवक थे; किंतु उनका देहांत केवल २० वर्ष की आयु में सं० १९७३ की श्रावण शु० १३ को हो गया था । उसी अल्पायु में उन्होंने हिंदी गद्य और संस्कृत पद्य की कई पुस्तकें लिखी थीं । इनके अतिरिक्त उन्होंने ब्रजभाषा के कुछ स्फुट छंद भी रचे थे । उनकी पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

१. गौरांग जीवनी, २. विष्णुप्रिया चरित्र, ३. चोरी है कि दगावाजी, ४. जाली कुंजलाल, ५. विचित्र जाल, ६. अभिमन्यु बध नाटक

९८. प्रियाचरणदास

प्रियाचरणदास जी का पूर्व नाम डा० पूर्णचंद्र शर्मा है । उनका जन्म सं० १९५४ की चैत्र शु० १५ शनिवार को हुआ था । वे आगरा के अस्पताल में डाक्टर थे । वहाँ से अवकाश प्राप्त करने पर उन्होंने चैतन्य मत का विरक्त वेश धारण किया और अब वे वृंदाबन में निवास करते हैं । उनके गुरु वृंदाबनस्थ झाडूमंडल के महंत जी हैं । उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है, जिनमें उनके अनुभव और चैतन्य-सिद्धांत का सार संकलित है । उनके रचे हुए ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—

१. श्री नरोत्तमदास ठाकुर की प्रार्थना का ब्रजभाषा पद्यानुवाद, २. श्री नाम चिंतामणि, ३. स्वात्मानुभूत योग और प्रयोगमाला तथा ४. श्री माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय और मानसी सेवा ।

९२. दामोदराचार्य

दामोदराचार्य जी वृंदाबनस्थ श्री राधारमण जी के गोस्वामी तथा एक धर्मप्राण वयोवृद्ध सज्जन हैं। इनका जन्म सं० १९४३ की कार्तिक कृ० ४ को हुआ था। राधारमणी गोस्वामियों के इतिवृत्त की जितनी जानकारी इनको है, उतनी शायद ही किसी को हो। वे चैतन्य मत और ब्रज साहित्य के सहृदय विद्वान हैं। उन्होंने कुछ स्फुट ब्रजभाषा छंद भी रचे है।

९३. कृष्णचैतन्य (पटना वाले)

कृष्णचैतन्य जी वृंदाबन के श्री गोपालभट्ट जी के परिकर के गोस्वामी हैं, और वे पटना में प्रवास करते हैं। उनका जन्म सं० १९४६ में हुआ था। उनके गयाघाट, पटना स्थित 'श्री चैतन्य पुस्तकालय' में अनेक दुर्लभ हस्त-लिखित ग्रंथों का बहुमूल्य संग्रह है। इस पुस्तकालय द्वारा उन्होंने बिहार में भक्ति-साहित्य और धर्म-प्रचार की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे द्विवेदी युग के लेखक और 'चैतन्य चंद्रिका' पत्रिका के संपादक रहे हैं। उन्होंने 'चैतन्य चरितामृत' के एक खंड का सरल पद्यानुवाद भी किया है।

९४. ब्रजरत्नदास

ब्रजरत्नदास जी हिंदी साहित्य के गण्यमान्य विद्वान, अनुसंधानप्रिय लेखक और ब्रज साहित्य संबंधी अनेक ग्रंथों के सुविख्यात संपादक हैं। वे भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के दौहित्र और काशी के प्रतिष्ठित अग्रवाल कुल के रत्न हैं। उनका जन्म सं० १९४७ में हुआ था। वे काशी के पुराने वकील हैं; किंतु उनका अधिकांश समय साहित्य-साधना में लगा है। वे हिंदी और अंगरेजी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, फारसी और बंगला भाषाओं के भी ज्ञाता हैं। अनेक वर्षों तक वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पदाधिकारी और प्रमुख सदस्य रहे हैं। आजकल वे चैतन्य मत के एक त्रैमासिक पत्र "श्री गौरांग" का संपादन कर रहे हैं। उनके रचे हुए अनेक ग्रंथों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं–

१. खुसरो की हिंदी कविता. २. प्रेम सागर, ३. तुलसी ग्रंथावली, ४. रहिमन विलास, ५ संक्षिप्त रामस्वयंवर, ६. मुद्राराक्षस, ७. नंददास ग्रंथावली, ८. भूषण ग्रंथावली, ९. इंशा : उनका काव्य और कहानी, १०. भारतेन्दु ग्रंथावली(३ भाग), ११. हुमायूनामा, १२. नआसिरुल उमरा (दो भाग), १३. यशवंतसिंह, १४. खड़ी बोली साहित्य का इतिहास, १५. उर्दू साहित्य का इतिहास, १६. भारतेन्दु हरिश्चंद्र।

९५. स्वरूपकृष्णदास

बाबा स्वरूपकृष्णदास जी चैतन्य मत के मार्मिक विद्वान और एक भजनानंदी महात्मा हैं । उन्होंने श्री चैतन्य संबंधी एक सुंदर ग्रंथ की रचना भी की है। आजकल वे गोबर्धनस्थ श्यामकुटी में निवास करते हैं ।

९६. ब्रजभूषणदास

ब्रजभूषणदास जी काशी निवासी प्रतिष्ठित अग्रवाल और ब्रजरत्नदास जी के अनुज हैं । वे चैतन्य मत के प्रगाढ़ विद्वान, इसके साहित्य के संग्राहक और सुलेखक हैं। उन्होंने "श्री गौरांग" नामक एक सुंदर त्रैमासिक पत्र प्रकाशित किया है । इसके द्वारा वे चैतन्य मत के सर्वमान्य साहित्य को हिंदी पाठकों के लिए सुलभ करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

९७. गौरचरण

गौरचरण जी वृंदाबन के प्रसिद्ध हिंदी-सेवी गो० राधाचरण जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका जन्म सं० १९५३ की आश्विन शु० ७ को हुआ था। वे अत्यंत होनहार युवक थे; किंतु उनका देहांत केवल २० वर्ष की आयु में सं० १९७३ की श्रावण शु० १३ को हो गया था। उसी अल्पायु में उन्होंने हिंदी गद्य और संस्कृत पद्य की कई पुस्तकें लिखी थीं । इनके अतिरिक्त उन्होंने ब्रजभाषा के कुछ स्फुट छंद भी रचे थे। उनकी पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

१. गौरांग जीवनी, २. विष्णुप्रिया चरित्र, ३. चोरी है कि दगाबाजी, ४. जाली कुंजलाल, ५. विचित्र जाल, ६. अभिमन्यु बध नाटक

९८. प्रियाचरणदास

प्रियाचरणदास जी का पूर्व नाम डा० पूर्णचंद्र शर्मा है । उनका जन्म सं० १९५४ की चैत्र शु० १५ शनिवार को हुआ था । वे आगरा के अस्पताल में डाक्टर थे। वहाँ से अवकाश प्राप्त करने पर उन्होंने चैतन्य मत का विरक्त वेश धारण किया और अब वे वृंदाबन में निवास करते हैं। उनके गुरु वृंदाबनस्थ झाड़ूमंडल के महंत जी हैं। उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है, जिनमें उनके अनुभव और चैतन्य-सिद्धांत का सार संकलित है। उनके रचे हुए ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—

१. श्री नरोत्तमदास ठाकुर की प्रार्थना का ब्रजभाषा पद्यानुवाद, २. श्री नाम चिंतामणि, ३. स्वात्मानुभूत योग और प्रयोगमाला तथा ४. श्री माध्व गौड़ेश्वर संप्रदाय और मानसी सेवा ।

९९. यमुनावल्लभ

गो० यमुनावल्लभ शास्त्री श्री रामराय–चंद्रगोपाल जी के वंश में गो० प्रियतमलाल जी के पुत्र है । उनका जन्म सं० १९६० की मार्गशीर्ष शु० १३ मंगलवार को वृंदाबन में हुआ था। वे संस्कृत और ब्रजभाषा के विद्वान, सरस कथा-वाचक और सौम्य स्वभाव के सज्जन हैं । उन्होने श्री जयदेव जी, रामराय जी आदि अपने पूर्वजों के जीवन-वृत्तांत और उनकी रचनाओं के शोध, संकलन तथा संपादन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । उनके प्रयत्न से ही वह अव्यवस्थित और दुर्लभ सामग्री अब सुव्यवस्थित रूप में सुलभ हो सकी है; जिसकी एक झाँकी इस ग्रंथ में भी मिलती है।

उन्होंने रामराय जी कृत आदि वाणी और गीतगोविंद भाषा का संपादन कर तथा प्रियतमलालजी कृत श्री राधा कृपा कटाक्ष व्याख्या की हिंदी टीका कर उन्हें प्रकाशित किया है। उनकी गद्य-पद्यात्मक कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

१. श्री भागवत कथा, २. श्री रामायण कथा, ३. सत्य कथा, ४. रसिक भक्तमाल और ५. श्री बांकेबिहारी जी की बारहमासी।

'रसिक भक्तमाल' में विभिन्न धर्मावलंवी १०८ प्राचीन तथा अर्वाचीन रसिक भक्तों एवं विशिष्ट जनों के महत्व का कथन किया गया है। यहाँ पर इसके कुछ छंद उदाहरण स्वरूप दिये गये हैं—

श्री राधा-माधव जुगल, मंजुल रस-अवतार ।
प्रेम पुलकि अपने जनहिं, लेहु नाथ अवतार ॥

(गो० गोपाललाल)—**श्री वैकुंठ विसेष, महात्मन मथुरा गाई ।**
तहाँ कियौ आवास, बासना पुष्टि सुहाई ॥
सखी भावना विसद, कन्हैयालाल गुसाई ।
सेवा रस शृंगार करत, रसिकन मन भाई ॥
प्रति वत्सर ब्रज धाम की, यात्रा अति अभिराम धृत ।
श्री गोपाललाल गोस्वामि प्रभु, बल्लभ बंस विशिष्ट ब्रत ॥

(सेठ लक्ष्मीचंद)— **कोटिन की सम्पत्ति, सहज हरि-हेत लगाई ।**
दानवीर गंभीर, धीरता अनुपम पाई ॥
जैन धर्म कूँ त्यागि, भये वैष्णव अनुरागी ।
श्री वृंदाबन धाम, विमल रस में मति पागी ॥
श्री रंगनाथ मंदिर रचत, सिला धरी माथे विसद ।
श्री लक्ष्मीचंद–राधाकिसन, गोविंददास रति रंग - पद ॥

१००. कृष्णदास बाबा

बाबा कृष्णदास जी चैतन्यमत के विरक्त बंगाली साधु हैं। उन्होंने चैतन्य मत संबंधी साहित्य को खोज-खोज कर प्रकाशित करना अपने जीवन का एक मात्र ध्येय बना रखा है। वे अब तक संस्कृत और ब्रजभाषा के प्राय: ६० छोटे-बड़े ग्रंथ प्रकाशित कर चुके हैं। साधन-सम्पन्न बड़ी-बड़ी संस्थाओं द्वारा भी जो कार्य कठिनता से हो पाता है, उसे साधन रहित इस अकेले साधु ने कर दिखाया है—यह उनकी उत्कट लगन और अदम्य उत्साह का ही सुफल है। विरक्त वेशोचित अपनी साधारण रहन-सहन और मधुकरी वृत्ति के कारण उनकी निजी आवश्यकताएँ न्यूनतम हैं; अत: वे अपनी पूरी शक्ति और उपलब्ध साधनों से चैतन्य मत के दुर्लभ ग्रंथों को प्राप्त करने, उनकी स्वयं ही प्रतिलिपि करने और फिर उनके प्रकाशन की व्यवस्था करने में ही दिन-रात लगे रहते है।

अपने प्रकाशित ग्रंथों में उन्होंने यथासंभव ग्रंथकार और ग्रंथ के संबंध मे थोड़ा-बहुत लिखा है; किंतु अपने संबंध में कहीं पर भी एक शब्द नहीं लिखा। हमारे बार-बार पूछने पर भी उन्होने दीक्षा-गुरु का नाम बतलाने के अतिरिक्त अपने आरंभिक जीवन-वृत्तांत के संबंध में कोई सूचना नहीं दी; यहाँ तक कि अपना जन्म-संवत् भी नहीं बतलाया! इससे उनके जन्म-स्थान, माता-पिता, वर्ण-जाति, कुटुंब-परिवार आदि के संबंध में कुछ भी लिखना संभव नहीं है। अनुमान से ऐसा ज्ञात होता है कि वे बंगाल के किसी ग्राम में उत्पन्न हुए थे। फिर वे किशोरावस्था में नवद्वीप के प्रसिद्ध विद्वान बाबा रामदास जी से चैतन्य मत की दीक्षा लेकर ब्रज में निवास करने के लिए चले आये। वे पहिले कई वर्षो तक गोबर्धन के निकटवर्ती कुसुम सरोवर पर रहते हुए भजन-ध्यान करते रहे। फिर ग्रंथों के अन्वेषण एवं प्रकाशन के निमित्त उन्हें वृंदाबन तथा मथुरा में रहना पड़ा। पिछले कई वर्षो से वे मथुरा में ही निवास कर रहे थे। इसी साल उन्हें कुसुम सरोवर स्थित श्री कृष्ण चैतन्यालय (ग्वालियर वाले मंदिर) के ट्रस्टियों ने वहाँ का महंत बना दिया है; किंतु अपने ग्रंथ-प्रकाशन के कार्य में बाधा पड़ने की आशंका से उनका मन वहाँ से उचट रहा है। उनका जन्म-संवत् १९६५ के लगभग अनुमानित होता है।

वे चैतन्य मत के भक्ति-सिद्धांत के प्रकांड विद्वान तथा संस्कृत और बंगला के अच्छे ज्ञाता हैं। हिंदी-ब्रजभाषा से भी वे साधारणतया परिचित हैं। उन्होंने अपने प्रकाशित संस्कृत के अनेक ग्रंथों की स्वयं हिंदी टीका की है। उनके द्वारा प्रकाशित ग्रंथों की नामावली इस प्रकार है—

संस्कृत—१. अर्च्चा विधि, २. प्रेम सम्पुट, ३. भक्ति रस तरंगिणी, ४. गोवर्धन शतक, ५. चैतन्यचंद्रामृत और संगीतमाधव, ६. नित्य क्रिया पद्धति, ७. ब्रज भक्ति विलास, ८. निकुंज रहस्य स्तव, ९. महाप्रभु ग्रंथावली, १०. स्मरणमंगल स्तोत्रम्, ११. नवरत्नम्, १२. गोविंदभाष्यम्, १३. ग्रंथरत्नपंचकम्, १४. श्री महामंत्र व्याख्याष्टकम्, १५. ग्रंथरत्नषट्कम्, १६ श्री गोवर्धन भट्ट ग्रंथावली, १७. सहस्रनामत्रयम् अथवा ग्रंथरत्ननवकम्, १८. श्री नारायण भट्ट चरितामृतम्, १९. उद्धव संदेश, २०. हंसदूतम्, २१. श्री मथुरा माहात्म्यम्, २२. मुरली माधुरी, २३. राधा कृपा कटाक्ष स्तोत्रम्, २४. श्री पदांक दूतम्, २५. शुकदूत महाकाव्यम् ।

हिंदी—१. गदाधर भट्ट जी की वाणी, २. सूरदास मदनमोहन की वाणी, ३. माधुरी वाणी, ४. बल्लभरसिक जी की वाणी, ५ गीतगोविंद पद (रामराय जी कृत), ६. गीतगोविंद (रसजानि वैष्णवदास जी कृत), ७. हरि-लीला, ८. श्री चैतन्य चरितामृत (सुबलश्याम जी कृत), ९. वैष्णव वंदना, १०. विलाप कुसुमांजलि, ११. प्रेम भक्ति चंद्रिका, १२. प्रियादास जी की ग्रंथावली, १३. गौरांग भूषण मंजावली, १४. राधारमण रस सागर, १५.श्री रामहरि ग्रंथावली १६. भाषा भागवत (दशम, एकादश, द्वादश स्कंध) (वैष्णवदासजी कृत), १७. श्री नरोत्तम ठाकुर महाशय की प्रार्थना, १८. संप्रदाय बोधिनी, १९. ब्रजमंडल-दर्शन, २०. भाषा भागवत (माहात्म्य, प्रथम, द्वितीय स्कंध), २१. कहानी रहसि तथा कुंवरि केलि, २२. ब्रह्मसंहिता दिग्दर्शिनी टीका की भाषा, २३. किशोरीदास जी की वाणी, २४. गौरनाम रस चम्पू, २५. क्षणदागीति चिंतामणि, २६. अष्टयाम, २७. श्री चैतन्य भागवत (आदि, अन्त्य खंड), २८. भजन पद्धति ।

१०१. मोहिनीदेवी

मोहिनीदेवी जी जयपुर निवासिनी वयोवृद्धा विदुषी महिला हैं । वे चैतन्य मत की श्रद्धालु सेविका और ब्रजभाषा की कवयित्री हैं । उनका वर्तमान निवास-स्थल वृंदाबन का जयपुर वाला मंदिर है; जहाँ वे भजन, ध्यान और काव्य-रचना द्वारा अपने जीवन को सार्थक कर रही हैं । उन्होंने वृहत् परिमाण में भक्ति-काव्य की रचना की है । उनके रचे हुए ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—

१. शुकदूत पद्यानुवाद, २. कृष्ण चरित मानस, ३. भजन तरंगिणी, ४. प्रेम भजनावली, ५. उद्धव संदेश, ६. गौरांग चरित और कई सहस्र स्फुट दोहा तथा पद ।

१०२. रामदास

रामदास जी शास्त्री वृंदाबन के चैतन्य मतानुयायी विद्वानों की नई पीढ़ी में एक प्रतिभाशाली सज्जन हैं । वे चैतन्य मत के विद्वान और भक्ति साहित्य के सुलेखक हैं । उन्होंने वृंदाबन से अनेक वर्षो तक 'भक्त भारत' नामक एक मासिक पत्र का संपादन एवं प्रकाशन किया था । उनके गुरु श्री कृष्णानंददास जी थे । वे आजकल वृंदाबन के 'चार संप्रदाय आश्रम' के महंत हैं । उन्होंने हिंदी गद्य-पद्य में कुछ ग्रंथ लिखे हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. साधन भक्ति प्रदीप, २. पद-रत्नावली, ३. वृंदाबन पुष्पांजलि, ४ श्री कृष्णानंद जी महाराज की जीवन-झाँकी, ५. आचार्य चरण चंद्रिका और ६. कृष्ण-कर्णामृत की टीका ।

उनकी ब्रजभाषा रचना 'कृष्णरँगी' के नाम से हैं । एक उदाहरण—

राम - कृष्ण गावो उठि भोर ।
सुंदर सुखद मनोरम दोऊ, भक्त जननि चित-चोर ।
जनम -जनम के दुःख नसावत, पाप - ताप की कोर ।
कृपा प्रभू की सहजहि पावौ, मिलें संत सिरमोर ।।
भवसागर कौ ज्वार जबर है, जाकौ ओर न छोर ।
जानौ चहौ पार पुनि पकरौ, 'कृष्णरँगी' मन डोर ।।

१०३. अतुलकृष्ण

अतुलकृष्ण जी गोस्वामी वृंदाबन के माध्व-गौड़ेश्वराचार्य विजयकृष्ण जी गोस्वामी के सुपुत्र हैं । उनका जन्म सं० १९७७ की चैत्र कृ० ४ रविवार को हुआ था । वे सुकवि, प्रभावशाली वक्ता और सरस कथा-वाचक हैं । अपने इन दुर्लभ गुणों के कारण वे वृंदाबन के युवक गोस्वामियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है । उन्होंने कई काव्य ग्रंथों की रचना की है, जिनके नाम इस प्रकार है—

१. निमाई, २. मेरे चरण, ३. वैष्णव बोधिनी, ४. बापू की अंतिम झाँकी, और ५. नारी ।

उनका 'नारी' नामक ग्रंथ सप्तदश सर्गों का वृहत् काव्य है । इसमें नारी के विभिन्न रूपों का मार्मिक कथन किया गया है । यह अपने ढंग की अपूर्व रचना है । उपर्युक्त सभी ग्रंथ खड़ी बोली काव्य के हैं । इनके अतिरिक्त उन्होंने कुछ ब्रजभाषा में भी काव्य-रचना की है ।

अन्य—

चैतन्य मत संबंधी ब्रज-साहित्य की रचना करने वाले कुछ अन्य महानुभावों के नाम भी ज्ञात हुए हैं । चूंकि उनकी रचनाएँ देखने का हमें सुयोग नहीं मिला है, अतः उनका उल्लेख यहाँ पर नहीं किया जा सका है ।

अज्ञात कवियों की रचनाएँ

कवि-छाप वाली कुछ ऐसी रचनाएँ मिली हैं, जिनमें श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना है, अथवा उनके आरंभिक भक्तों का गुण-गान है। उनसे रचयिताओं के नाम और उनके चैतन्य मतानुयायी होने का बोध तो होता है; किंतु उनके जीवन-वृत्तांत की कोई बात ज्ञात नहीं होती है। उनके अस्तित्व-काल का भी प्रामाणिक रूप से निश्चय नहीं हो सका है। हम यहाँ पर उनमें से कुछ रचनाएँ उनके कर्ताओं के अकारादि क्रम से नाम सहित देते हैं, ताकि भविष्य में उनके संबंध में अनुसंधान हो सके।

१०४. कृष्णजीवन—

कृष्ण चैतन्य ब्रह्मन्य आनंदघन, अधम उद्धार नवद्वीप बासी।
मधुर हरिनाम-संकीर्तन प्रगटत, प्रेम परिपूर्न महाभाव रासी॥
राधिका भाव बस,स्याम तन गौर लस,संन्यास कीनों यह बन-बिलासी।
निगमागम अगोचर गौर मधुरवर, भक्त गोचर प्रेम सु प्रकासी॥
प्रबल पाखंड सब मतन कों खंड, परताप परचंड मारतंड जैसैं।
भ्रमत तैलंग-कर्नाट-गौड़ादि सब, बिमति गज दमन कों सिंह ऐसैं॥
हेम-हरताल-गौरोचना ललितदुति, दामिनी दमन मृदु मंद हासी।
'कृष्णजीवन' प्रभु प्रगट चिंतामनि, श्री सच्चिनंदन अदोष-दरसी॥

१०५. गोपालदास—पूर्वोल्लिखित कवि सं० ६२ से ये गोपालदास भिन्न हैं। इनके पद 'पद कल्पद्रुम' और 'श्री गौरांग पदावली' में मिलते हैं।

जय-जय नित्यानंद चैतन्य परम उदार।
जुगल प्रेम दै कियौ जगत निस्तार॥

लीला नाम रटत निसि-बासर, गोपीनाथ उचारैं।
प्रान पियारी, प्रानन प्यारे, नैनन हिय अनियारैं॥

श्री राधा-गोबिंद सखी, निरभेद्र अंग ह्वै बिहरैं।
एक प्रेम कौ भाव बिबिध करि, दुःसागर की लहरैं॥

मदनगोपाल बाल मनमोहन लाल-लाड़िली राजैं।
ललना नवल रंगीले नागर, भामिनि सँग अति साजैं॥

'श्री गोपालदास' मन-भावन कीरतन तन धारी।
आल्हाद प्यारी चित मनमोहन, हित ललितादिक न्यारी॥१॥

निज कृष्ण भये गौरांग महाप्रभु, भाव राधिका लीनौ री।
दर्पन में अवलोकि निज छवि, कुँवर मनोरथ कीनौ री॥

ए बिधि आस्वाद करैं अपनौ सुख, परहित में चित दीनौ री।
'श्री गोपालदास' प्रभु प्रगटे, प्रेमसुधा रस भीनौ री॥२॥

१०६. **गौरचरण**—पूर्वोल्लिखित कवि सं० ६७ से ये गौरचरण भिन्न तथा पूर्ववर्ती ज्ञात पड़ते हैं—

प्रगटे विस्वंभर अवतारी ।
राधा भाव सु ललित अंग-अँग, स्याम-गौर बपुधारी ॥
सुनियत हरी नाम चहुँ दिसि महँ, वेद पढ़त ब्रह्मचारी ।
'गौरचरन' नाँचत निलि गावत, नदिया नगर नर-नारी ॥ १ ॥

नदिया में होत कुलाहल भारी ।
सची कूख प्रगटे परिपूरन, गौरचंद्र अवतारी ॥
बजवत झाँझ-मृदंग-सहनाई, मंगल गावत नारी ।
'गौरचरन' आये पतित-उधारन, भक्तन के हितकारी ॥ २ ॥

बाजै रे बाजै मृदंग - झाँझ, जगन्नाथ मिश्र घर ।
आज जन्म लियौ चैतन्य महाप्रभु, गये असंगल भाज ॥
नाचै-गावै हरि-हरि बोलै, अद्वैत-गदाधर भक्त समाज ।
नदिया प्रगटे गौरचंद्र जब, प्रेमहिं आयौ राज ॥
आज नदिया नगर मध्य, बाजत रंग - बधाई ।
जन्म लियौ जगन्नाथ मिश्र घर, गौरचंद्र सुखदाई ॥
नर - नारी सब हरि - हरि बोलै, स्रवन सुनत उठि धाये ।
भये मनोरथ बहुत जनम के, परम परमेश्वर आये ॥
जय-जय मब्द करत सुर-नर-मुनि, कहत धन्य सचि माता ।
जिनके गर्भ सर्वोपरि कहियै, प्रकट भये प्रेम - दाता ॥
प्रभु अद्वैत हूँहूँकारत अति, फूले अंग न माये ।
अचेत जीव चेतन के कारन, चैतन्य नाम धराये ॥
घर-घर आनंद होत कोलाहल, कही न जात इक बैना ।
सो सब बरनी जात कौन पै, देखत बनै मन नैना ॥
कनक कलस निकट दीपावलि, मोतिन चौक पुराये ।
घर - घर तोरन - धुजा - पताका, नारिन मंगल गाये ॥
अति उदार जगन्नाथ मिश्र जू, जिन माँग्यौ सो दीनौ ।
कँचन मनि माँगन कहे जाचक, ताहि अजाचक कीनौ ॥
मैं अति दीन मंद मति पामर, दया अछेह अब कीजै ।
माँगत हौं प्रभु ! देहु दया करि, 'गौरचरन' - रज दीजै ॥ ३ ॥

१०७. **चरणदास**–इनकी ४ छोटी एवं साधारण रचनाएँ १. विवेक दोहावली, २. नाम माहात्म्य, ३. कर्म साधन और ४. तत्व विचार मिली हैं। उनके गुरु श्री नित्यानंद जी की परंपरा के राघवेन्द्र जी जान पड़ते हैं। 'विवेक दोहावली' के कुछ छंद यहाँ दिये जाते हैं—

राम नित्यानंद, कृष्ण चैतन्य अवतार ।
प्रेम-भक्ति प्रगटि, कियौ कीर्तन - प्रचार ।।
वांछा कल्पतरु, साधु गुरु भगवान ।
जिनकी चरन - रज, भूषन कियै होइ त्रान ।।
गुरु धन्वन्तरि, अज्ञानांध-औषध कियौ विचार ।
कृष्ण-प्रेम अंजन, एही आँजौ बारहिं बार ।।
राम नित्यानंद बंस, प्रभु राघवेन्द्र नाम ।
पतित चरन जु दास कों, जिनहिं कियौ त्रान ।।
हूँ अति पतित पापी, 'चरनदास' मेरौ नाम ।
जो चरन सरन भयौ, दियौ तिन ज्ञान ।।

१०८. दास—

श्री चैतन्य हाथ निरवाह ।
प्रभु हौं भव - सिंधु बूड़त, तरल तरंग प्रवाह ।।
उरग मीन बिसाल कच्छप, नक्र चक्र कराल ।
त्रिविध ताप अति दुसह बाडव, जरत नेह रसाल ।।
विषय विष सम विषम मादक, मोह माल अमंद ।
भ्रमर भ्रम तम तुहिन राका, गौर मुख श्रीचंद ।।
नाम पोत अधार तेरे, तरे जेते पार ।
'दास' पै अब कृपा कीजै, मिटै दुःख अपार ।।

१०९. दीनदास—

मैं बलि जाऊँ ।।
रुचि-रुचि भोजन करत सचिनंदन, मंद-मंद मुसकाय ।
छप्पन भोग छतीसों ब्यंजन, मैं निज करन बनाय ।।
दाल-भात और भाज अनेकन, जे प्रभु अति ही सुहाय ।
खीर-खुरमा अनेक अचारा, खटरस बरनी न जाय ।।
भाँति-भाँति के फलहु धरे हैं, जामें स्वाद अधिकाय ।
गंगाजल की झारी भरी है, प्रेम तें पाओ अघाय ।।
भोजन करिकै अचमन कीने, सन्त जनन सचु पाय ।
'दीनदास' यह द्वारे ठाड़ौ, जूठन आस लगाय ।। १ ।।

प्रात समय सची मात जगावै, जागौ गौर दुलारे ।
भक्त वृंद सब द्वारे ठाड़े, दरसन दो जिन प्यारे ।।
अरुन सिखा धुनि करत परस्पर, लोक सोक भय टारे ।
विप्र वृंद उठि-उठि निज गृह तें, गंगा-तीर सिधारे ।।
मात बचन सुनि उठे निमाई, जय - जय देव उचारे ।
'दीनदास' के गौर प्रभु जागे, त्रिभुवन के रखवारे ।। २ ।।
मैं बलि जाऊँ ।
आनंदकंद श्री गौर हरि जू, अब पौढ़ौ सुख जाय ।।
सुंदर मंदिर अनुपम सेज, सोभा अति अधिकाय ।
कीर्तन करत जुग जामिनि बीती, नैनन नींद घुराय ।।
मात सची जू करत आरती, बार-बार बलि जाय ।
'दीनदास' प्रभु बिनती सुनिकै, सुखनिधि पौढ़े जाय ।। ३ ।।

११०. नवचैतन्य—

जै सच्चिनंदन त्रिभुवन-बंदन, खंडन पाप - ताप त्रिभुवन के ।
करुनासिंधु अगति गतिदायक, संग रसिक भक्त अगनन के ।।
मुनि जन ध्यान धरत नहिं पावत, डोलत घर-घर कारन जिय के ।
'नवचैतन्य' हित प्रगट पूर्व महिं, आनंदकंद नित्यानंद प्रिय के ।। १ ।।

भक्ति-रस रूप, राधाकृष्ण-रस रूप, पद-रचना के रूप,
या तें रूप नाम भाखियै ।
त्याग रूप, भाग रूप, सेवा सुख-साज रूप,
रूप ही की भावना और रूप मुख चाखियै ।।
कृपा रूप, भाव रूप, रसिक प्रभाव रूप,
गीत - गान रूप, या तें मन अभिलाखियै ।
महाप्रभु 'नवचैतन्य' जू के हृदय रूप,
श्री गोसाईं रूप, सदा नैनन में राखियै ।। २ ।।

१११. नवद्वीपप्रसाद—

झूलत श्री गौर, बामें सोहै गदाधर, सुरधुनी तीर जहाँ विचित्र हिंडोरना ।
तैसौ ही तरोवर, तहाँ सोहैं मोर-कीर, रंग-रंग फूले फूल भ्रमर भोरना ।।
आगे नाँचै अद्वैत, जानें लाये सची-सुत, बीच नाँचै अवधूत प्रेम के झकोरना ।
नरहरि बक्रेश्वर झुलावत दुहूँ ओर, सु माधव घोष करें चमर ढोरना ।।
संत समुदाय गाय धुनि सुनि सबै धाय, हरिदास सबकी ओर हरषि घोरना ।
'श्री नवद्वीपप्रसाद' दूरि गयौ सब बिसाद, कृपा नीचे कौन ऊँचे निर्जाहि कोरना ।।

११२. नवलविहारिणी—

अँखियाँ उनीदी री सोभा देत, राजै गौर सु रती भरी रति ।
मानों अंबुज सकुचि-सकुचि सखी, बिगसत मन हरि लेत ॥
अंजन में खंजन रंग भीने, उड़त उड़न नहीं देत ।
श्री रूप-सनातन 'नवलविहारिणी', बारत तन-मन जेत ॥

११३. नाथशरण—

दामिनि ओढ़ै घनहिं ओढ़िनी, दामिनि घन घन ।
घन दामिनि तन वरन, जुगल इक प्रान एक तन ॥
कंचन गिरि ढिग नीलरतन गिरि, मिले परसपर ।
गौर-स्याम अभिराम, उचित तहँ उभय सुधाकर ॥
कनक कांति मंगल कलस, नील - पीत अंचल चलन ।
बलि 'नाथसरन' वारिज वरन, सु जै - जै श्री राधारमन ॥

११४. नित्यानंद—

तू जित-तित पग धरति सयानी, तहाँ पिय धरत दोउ नैना ।
प्रिया भाव भावित चित-इंद्रिय, हिय तूलन त्रिभुवन कोउ है ना ॥
श्री रूप - सनातन जीव गोपाल, रघु जुग द्रग पावत चैना ।
ललिता-बिसाखा-चित्रा-चंपक, तुंग-रंगदेवी सु 'नित्यानंद' रँगै ना ॥ १ ॥

जागे नव कुँवरि जान, सहचरि उपहार आन,
हरखि निरखि उदित मुदित जुगल चंद ओरैं ।
जल सुगंध एक लाय, बीरी एक दई खवाय,
एक दरपन रही दिखाय, एक चौंर ढोरैं ॥
झाकैं झरोखें उझकि आय, निरखत सब मुख अघाय,
ठाढ़ीं सब दरस आस प्यास न मिटै जोरैं ।
सब के दुख देखत गये, सब ही संभ्रम से भये,
रसिकाभरन 'श्री नित्यानंद' निधिबन रस बोरैं ॥ २ ॥

भोर भयौ भामिनि उठि बैठी, सुरति रंग की पोटैं खोली ।
कहुँ अंजन कहुँ अलक रहीं लसि, पीक लीक टूटे बँद चोली ॥
कहूँ महावर आड़ कहूँ छवि, छूटी नीवी बंद हँसि बोली ।
रसिकाभरन 'श्री नित्यानंद' निधि बन विहार विवि हो-हो होली ॥ ३ ॥

११५. **प्रियालाल**—इनके रचे हुए 'गुरु वंदना' के कुछ पद मिले हैं । इनमें उनके गुरु का नाम 'धौरेश्वर' लिखा गया है । एक प्रियालाल जी बरसाना के गोस्वामी भी हैं । संभव है, कुछ पद उनके हों ।

बंदौं श्री सतगुरु के चरन ।।
तिमिर - ताप - संताप हिय के, अखिल अघ के हरन ।
अमल अदभुत रूप पंकज, दलन के से बरन ।।
बिना स्रम साधन किये कछु, सुदृढ़ भव के तरन ।
करत छिन - छिन ध्यान, 'प्रियालाल' जाकी सरन ।। १ ।

गुरु बिन नाँहिनै और सहाय ।
जाकी सरन बिना, सब साधन - भजन वृथा ह्वै जाय ।।
कोटिन जज्ञ करौ तप - तीरथ, भव - सागर न तराय ।
'प्रियालाल' अब छाँड़ि चतुरई, श्री गुरुदेव रिझाय ।। २ ।।

श्री गुरुदेव प्रेम के दाता ।
चूक परै परिहरै न क्यौं हूँ, साँचे पितु और माता ।।
जो कदापि बिधि हू रूठै, निज प्रनत जनन परित्राता ।
थोरौ भजन बहुत करि मानत, ऐसौ को उदार सुखदाता ।।
जिन-जिन श्री गुरु चरन मन दिये, वे अमित सुख नित्त पाये ।
इहै समुझि अब 'प्रियालाल', गुरु-चरन सरन तकि आये ।। ३ ।।

श्री गुरु - गोबिंद दोउ सम जानौ ।।
अति उदार सेवक - प्रनपालक, यातैं श्री गुरु अधिक प्रमानौ ।
दोष न गिनत, भजन सब मानत, परहित उपकारी जग जानौ ।।
गोबिंद नहिं रीझत गुरु बिन, यहि मर्म समुझि जिय मैं हठ ठानौ ।
'प्रियालाल' श्री धौरेश्वर गुरु बिन, और कोऊ गोबिंद न जानौ ।।४।।

११६. **बनबिहारी-बिहारिनदास**—इस नाम-छाप के १९ पद 'श्री गौरांग पदावली' में हैं । कवि का वास्तविक नाम क्या है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है । इसके कुछ पद यहाँ दिये जाते हैं—

प्रात समै नव सुरति रंग के, चिह्न देखि श्री गौर-किसोरी ।
लज्जित ह्वै अधमुख करि बैठी, सोचति कछु मन हीं मन गोरी ।।
सहचरि गन सब रंध्रन देखत, महाछवि सिंधु छकोरी छकोरी ।
श्री रूपमंजरी अंग सिंगारति, दरपन धरि मनिमय आगोरी ।।
श्री रूप-सनातन के अनुगत बिन, गौर-किसोरी न काहू लह्यौ री ।
'श्री बनबिहारी-बिहारिन' दासी, सौंज सजाय देति सब कों री ।।१।।

प्रात समै नव गौर - किसोरी, उठी सेज तें अति अरसाते ।
रसमसे नैन आरस जुत सोहैं, पलक खुलीं अधखुली मदमाते ॥
अंजन अधर महाछवि प्रगटी, हार बार उर अति उरझाते ।
दलमली माल लसै अति उर पर, नख-रेखा अति अदभुत पाते ॥
श्री नित्यानंद जगावत नित प्रति, अनंग मंजरी के रसराते ।
श्री रूप-सनातन-जीव रघु युग, भट्ट गोपाल नव-नव रसमाते ॥
श्री अद्वैत स्वरूप दामोदर श्री बास रायरामानंद श्री गौर रँगराते ।
दासी 'बनबिहारी-बिहारिन', झट झारी लै मुख अचवाते ॥ २ ॥

प्रात समै दोउ बैठे सेज पर, अलक ररक कपोल पर आई ।
छूटीं लट कंचुकि तन टूटी, रस लूटी निसि पियहिं जगाई ॥
जाबक माथ अधर वर अंजन, मनरंजन मंजरि - समुदाई ।
'श्री बनबिहारीदास' माधुरी, निरखि हरखि कोउ क्यों हु न अघाई ॥ ३ ॥

हम तौ श्री गौरांग उपासी ।
आनंदनिधि करुनानिधि रसनिधि, प्रगटे बिपिन बिलासी ॥
श्री रसिक - बिहारिन अपु बपु धारचौ, लिये महाभाव रासी ।
रसिक सिरोमनि श्री रूप-सनातन, तहाँ नित करत खवासी ॥
महा माधुरी प्रगटत छिन - छिन, भक्तन के सुखरासी ।
'श्री बनबिहारिन' दासी के हित, बिहरत निकुंज निवासी ॥ ४ ॥

झूलत गौर - निताई हिंडोरे ।
सुरंग हिंडोरे लचकत - मचकत, छवि को सिंधु झकोरे ॥
झोटा देत स्वरूप दामोदर, चहुँ दिसि भक्त गन करत किलोरे ।
श्री रूप - सनातन 'बनबिहारिन-बिहारी' कों चित चोरे ॥ ५ ॥

११७. बल्लभ—

तुम मति देखौ गौर हरी । जो चाहौ घर बसति करी ॥
अरुन नैन जल झरत निरंतर । देखत ही सो पैठत अंतर ॥
पुत्र-कलत्र-पिता नहिं भावै । अश्रु - कंप - पुलकादि करावै ॥
'बल्लभ' होय कृष्ण-गुन गावै । अरु श्री वृंदाबन-तरु-तल भावै ॥ १ ॥

मधुर-मधुर चलति आजु कीर्ति-नंदिनी ।
लोचन अलि ललित पलक, मंद-मंद हलत अलक, सुंदर मुखकांति कमलचंद निंदिनी ॥
सौरभ भर भरित देस, नव सत करि सुमन वेस, रूप हेरि अमर नारि चरन-वंदिनी ।
दामिनी तन जलद बसन, बरषत रस मुखर रसन, 'बल्लभ' मन नैन करत ताप-कंदिनी ॥२

चलि सखि बहुरि गोपाल मिलावों ।
तू मन माँहि बहुत पछतावति, सो फल पुनहिं फलावों ।।
करहु सिंगार गहर अब छाँडहु, नातर मदन बुलावों ।
'बल्लभ' रूप मोहिनी पढ़िकै, धीरज - लाज गलावों ।। ३ ।।

देखि सखी राधा अभिसार ।
अति अनुराग भरे उर अंतर, बाहर रतनन भूषन भार ।।
सहचरि साथ बात कछु न करत, डरतहि लोक-लाज विस्तार ।
'बल्लभ' मिलन मनोरथ बहुविधि, मनहिं विचारत वार न पार ।।४।।

आज बन क्रीड़त मदन गोपाल ।
मुख सों मुख उर सों उर जोरत, चपल होत ब्रजबाल ।।
अधर कपोल नैन जुग चुंबन, मनमथ नटन बिसाल ।
मनहु प्रिया नव कनक जुही मिलि, 'बल्लभ' लसत तमाल ।। ५ ।।

११८. भक्तराज—

श्री राधारमन हमारे ठाकुर, गुरू भट्ट गोपाल ।।
श्री चैतन्य - नित्यानंद, अद्वैत परम कृपाल ।
पूरन चंद प्रगट प्राची में, कीनों विस्व निहाल ।।
मिटे द्वंद-तम-पाप-ताप-स्रम, मायावाद जंजाल ।
मुकुलित मोद कुमोद चकोरन, जग-जामिनी बिसाल ।।
भक्ति रोहिनी संग बिराजत, बसीकरनि नंदलाल ।
कृष्ण कलंक निसंक निरंतर, नील रतन मनि-माल ।।
प्रेमचंद्रिका विसद विकासनि, मद गज चाल मराल ।
अनुराग राग सुहाग कौ, महार्नव वर्धन लाल ।।
सज्जन सरल स्वभक्त वृंद, सुभ तार रिक्ष गृह जाल ।
द्युमनिकृष्ण छिपे जाही छिन, जानि घोर कलिकाल ।।
नाम भानु जब सनमुख आयौ, सोभा सरस रसाल ।
'भक्तराज' पद भक्त सिखामनि, दीजै सोई दयाल ।।

११९. मदन—

देखौ सुंदर गौर नगर नदिया में खेलत है बन होरी ।
चंदन खौरि किये मुख पानन, कहत - कहावत होरी ।।
बाजत ताल - मृदंग - अघौटी, ढोल धमकि धुनि घोरी ।
राग - रंग गहगह्यौ मच्यौ है, कानन सुनियत थोरी ।।
सुनिवे टोल - टोल तें आये, भक्त वृंद सब जोरी ।
अबीर उड़ावत भरत परस्पर, भये सबन मन भोरी ।।
खेलत - खेलत गंग पुलिन महँ, आय भये एक ठौरी ।
करत किलोल लोल सब अंतर, 'मदन' वारत तृन तोरी ।। १ ।।

खेलत गौर प्रेम भरे होरी ।
प्रगट कियौ आपन मन चोरी ॥
ताल - मृदंग - झाँझ - डफ बाजे ।
हिये भाव सब संग बिराजै ॥
नैन अरुन अनुराग में बोरे ।
पिचकारी चहुँ दिसि तें छोरे ॥
सोहत चारु चीर अति राते ।
लग्यौ गुलाल - रोरी रंग माते ॥
केसर केस हरद रस भरे ।
छाइ रही तन पीत दुति धरे ॥
पुलक कदंब कुसुम तन सोहै ।
देखत सुधि-बुधि 'मदन' की मोहै ॥ २ ॥

गौरचंद्र वर देत हरष निधि, बन कें बसंत मिलि खेलैं ।
रसिक चकोर नैन हेरत रूप, पान करत मन झेलैं ॥
मृग - मद साखि जवादि अगरसत, अरस-परस सब मेलैं ।
भर - भर मूँठ गुलाल उड़ावत, अरुन भये तम चेलैं ॥
हँसत अधर तव बेनु मधुर मुख, करत विविध रस - रेलैं ।
पुष्पन वृष्टि करी नभ देवन, 'मदन' मुदित रँग रेलैं ॥ ३ ॥

आज नँदनंद गोविंद गिरवरधरन, तरुन-तनया निकट अधर मुरली धरी ।
सुनत सुर स्रवन तजि मदन सुर सुंदरी, आन आकास तें सुमन बरसा परी ॥
धनु अरु बच्छ-खग-मृग धुनि सुनि सबै, रहे धर ध्यान नहिं चरत तृन मुख करी ।
मूल प्रतिकूल जल अनिल थक्यौ ता समै, सिला द्रुम द्रवत रजनीस गति मति हरी ॥
सकल द्रुम बेलि प्रफुलित मुदित भ्रमत वर, गुंज मत्त पान मधुकरत सुभ ता घरी ।
नाथ वारिज वदन मदनमोहन संदन, औरै मोहे कोटिक 'मदन' हरत अघ-वृंद री ॥

१२०. मुकुंददास—

श्री राधिका मुखारविंद कोटि इंदु लाजै ।
नैन जुगल अति विसाल, विविध रतन कंठ-माल,
उमगत गति प्रेम - बिबस जोबन मद गाजैं ॥
मानहुँ दामिनि लसत दसन, पहिरै गोरी नील बसन,
कंकन किंकिनि नूपुरादि मधुर-मधुर बाजै ।
निरखि 'मुकुंद' छवि तरंग, लाजत हैं कोटि अनंग,
प्रफुलित अति विमल प्रगट कनक कंज राजै ॥

१२१. **सरस माधुरी**—इस नाम-छाप के अनेक पद श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना, बधाई आदि के मिलते हैं। 'श्री गौरांग पदावली' में भी ३७ पद हैं। इनसे कवि के चैतन्य मतानुयायी होने की संभावना होती है; किंतु हमें बतलाया गया है कि वे चरणदासी मत के थे। हम यहाँ पर उनके कतिपय पद देते हैं—

बधाई नीकी बाजत आज ।
फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा तिथि को, प्रगटे प्रभु सुख साज ।।
संध्या समय सुहावनि सुंदर, बाजत साज अरु बाज ।
जन्मे श्री चैतन्य महाप्रभु, संतन के सिरताज ।।
आये रसिक सिमिट सब पुर के, हिल-मिल कियौ समाज ।
नाँचत प्रेम मुदित जै-जै कहि, मेंट लोक-कुल-लाज ।।
केसर-चंदन छिरक परस्पर, किये मन पूरन काज ।
'सरस माधुरी' जुग-जुग जीवो, गौरहरी महाराज ।। १ ।।

सलोनी सखी फाल्गुन पूरनमासी ।
सब जग में उत्तम उत्सव दिन, अदभुत मंगल रासी ।।
राग-रंग घर-घर प्रति सुनियत, नृत्तत उमँग हुलासी ।
हरि-गुन होरी रसिया रस के, परमानंद प्रकासी ।।
उड़त गुलाल-अबीर-अरगजा, छिड़कत प्रेम विलासी ।
भीजि रहे हरिभक्ति-भाव में, सुख विलसत अनयासी ।।
जानि सु अवसर सुभग महाप्रभु, अपने जन अभिलाषी ।
प्रगट होय निज दरसन दीनों, 'सरस माधुरी' दासी ।। २ ।।

महाप्रभू श्री गौरांग उदार । प्रगटे नदिया नगर मझार ।।
माता सची कूँखि प्राची दिसि, महिमा अतुल अपार ।
उदय भये तहाँ भक्त-चंद्रमा, रसिकन प्रान-अधार ।।
जगन्नाथ के सुत सुखदाई, मन के मोहन हार ।
लखि निज नैन निहाल भये हैं, कुल-कुटुंब नर-नार ।।
फागुन मास महा सुखदाई, पून्यौ तिथि त्यौहार ।
जन्मे महाप्रभू मन-भावन, घर-घर मंगलचार ।।
भक्त समूह सकल मिलि बैठे, गुनि जन आये द्वार ।
नाँचत-गावत साज बजावत, जै-जै कहत उचार ।।
सब सुख करन, हरन दुख जन के, कलिजुग पावन हार ।
'सरस माधुरी' प्रेम पदारथ, माँगत गोद पसार ।। ३ ।।

१२२. **सूरज**—इस कवि के २४ पद 'श्री गौरांग पदावली' में हैं। इनमें से कुछ पद यहाँ दिये जाते हैं—

नदिया नगर बधाई छाई ॥
इक तौ होरी दिवस सहजई सबके मन उँमगाई।
पुनि प्रगटे आनंदकंद प्रभु, उठे सकल हरषाई॥
रहे सब अंग पुलकाई॥
पुत्र जन्म सुनि श्री मिश्रन घर, नर-नारी उठि धाई।
हूला-हूली देत परस्पर, गावत नवल बधाई॥
सकल सची ढिंग आई॥
निरखि ललन-छवि होत मगन सब, हर्ष हृदय न समाई।
कहत धन्य ऐसौ सुत जायौ, सोभा कही न जाई॥
निरखि सत काम लजाई॥
देत असीस जियौ सुत तुमरौ, जुग-जुग लव सुखदाई।
'सूरज' सिर पै सदा बिराजौ, तुमरे सुत-पद छाई॥
कभी नहीं हो विलगाई॥१॥
नदिया में बधायौ छायौ है।
प्रगटे श्री आनंदकंद प्रभु, सब कौ मन उँमगायौ है॥
हर्ष भरी नदिया की नारीं, गावत सुभग बधायौ है।
हरि-हरि बोलत गलियाँ डोलत, प्रेम न हृदय समायौ है॥
भक्ति गुलाल उड़त भक्तन जन, प्रेम रंग बरसायौ है।
'सूरज' निरख मनोहर ललना, निज अपनपौ भुलायौ है॥ २॥
गावो-गावो बधाई मंगल मोद भरी॥
आज दिवस मंगलमय माई, प्रगट्यौ मंगल साज।
बजत बधायौ लगत सुहायौ, अनुपम छवि रही छाज॥
देत दान महतारी भारी, पुत्र कुसल के काज।
'सूरज' स्वामी जन सुखधामी, अवतारन सिरताज॥ ३॥
पुत्र जनम सुनि आज, मिश्र के घर कौ ढाढ़ी आयौ हो॥
परम सलौनी मनमोहिनी, ढाढ़िन संग में लायौ हो।
नाँचत-गावत करत कुतूहल, सब कौ चित्त लुभायौ हो॥
रचित मनोहर कवित, मिश्र के कुल कौ सुजस सुनायौ हो।
बहुत दिनन से आस मिश्र जू, आज भयौ मन भायौ हो॥
बूढ़ी वयस पुत्र तुम पायौ, सुनि मम हिय हरषायौ हो।
'सूरज' मिश्र जू दानी ठाड़े, जो माँग्यौ सो पायौ हो॥ ४॥

परिशिष्ट

१. बंगाली पद-कर्त्ताओं की 'ब्रजबुलि' रचनाएँ

●

बंगाली भक्त-कवियों ने भगवान् श्री कृष्ण और कृष्णावतार के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का कथन एक ऐसी भाषा में भी किया है, जो ब्रजभाषा न होते हुए भी उससे कुछ मिलती हुई है। इसकी पृष्ठभूमि बंगला भाषा है और इसमें मैथिली तथा ब्रजभाषा का मिश्रण है। यह मिश्रित काव्य-भाषा 'ब्रजबुलि' के नाम से प्रसिद्ध है। चैतन्य महाप्रभु से श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक प्रायः चार शताब्दियों की लंबी परंपरा में बंगाल के पचासों पद-कर्त्ताओं ने 'ब्रजबुलि' में अपनी भक्तिपूर्ण रचनाएँ की हैं। एक प्रकार से बंगाली कवियों की भक्तिपूर्ण पदावली के लिए 'ब्रजबुलि' का प्रयोग आवश्यक और अनिवार्य हो गया है। बंगला साहित्य में 'ब्रजबुलि' की रचनाओं का एक विशिष्ट स्थान है।

'ब्रजबुलि' में रचना करने वाले पद-कर्त्ता गण अधिकतर चैतन्य मतानुयायी हैं। जो इस मत के अनुयायी नहीं हैं, वे भी भक्त-कवि होने के नाते श्री चैतन्य महाप्रभु में श्रद्धा रखते हैं। हम यहाँ पर कुछ प्रमुख पद-कर्त्ताओं की 'ब्रजबुलि' रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं—

१. मुरारि गुप्त—उनका वर्णन इस ग्रंथ में अन्यत्र (पृष्ठ ४५ में) किया जा चुका है। उनकी सुप्रसिद्ध संस्कृत रचना 'कृष्णचैतन्य चरितामृत' कड़चा के अतिरिक्त कुछ 'ब्रजबुलि' के पद भी मिलते हैं। उनका एक ऐसा ही पद यहाँ दिया जाता है, जिसमें श्री कृष्ण द्वारा मानिनी राधा को मनाने का कथन हुआ है—

> **तपत किरण यदि अंग ना दगधल, कि करब जल-अभिषेके।**
> **दुख-भरे प्राण बाहिरे यब निकसब, कि करब औषध-विशेखे॥**
> **मानिनी अतएव समापह माने।**
> **मृदु-मृदु भाषे सम्भाषइ वरतनु, एक बार देह जीउ दाने॥**
> **सुंदर बदने बिहसि वर भामिनि, रचह मनोहर वानी।**
> **कुच कनया-गिरि मधि गहि राखह, निज भुजे आपन जानी॥**
> **अधर-सुधारस पान देह सखि, हृदय जुड़ायह मोर।**
> **तुया मुख-इंदु - उदय हेरि विलसत, तिरपित नयन-चकोर॥**
> **निज गुण हेरि परक दोख परिहरि, तेजह हृदयक रोख।**
> **भणइ 'मुरारि' प्राणपति संगिनी, पुरुख-वध बहु दोख॥**

२. **वासुदेव घोष**—उन्होंने बंगला में चैतन्य संबंधी अनेक पद लिखे हैं। कुछ पद ब्रजबुलि में भी उनके मिलते हैं। यहाँ चैतन्य देव के अपूर्व सौन्दर्य विषयक उनका एक ब्रजबुलि का पद दिया जाता है—

> निरमल गोरा तनु कषिल कांचन जनु, हेरइते भे गेलुँ भोर ।
> भाङ-भुजंगमे दंशल मझु मन, अंतर काँपये मोर ।।
> सजनि, यब हाम पेखलुँ गोरा ।
> आकुल दीग विदिग नाहि पाइये, मदन लालसे मन भोरा ।।
> अरुणित नयने तेरछ अवलोकने, बरिखे कुसुमशर साधे ।
> जिवइते जीवने थेह नाहि पायलुँ, डुबलुँ गंग अगाधे ।।
> मंत्र-महौषधि तुहुँ जानसि यदि, मझु लागि करबि उपाय ।
> 'वासुदेव घोष' कहे शुन शुन ए सखि, गोरा लागि प्राण मोर याय ।।

३. **माधव घोष**—वे वासुदेव घोष के भाई और सुंदर कवि थे। उनका राधा-कृष्ण प्रेम संबंधी पद यहाँ दिया जाता है—

> निज निज मंदिर याइते पुन पुन, दुहुँ दुहाँ बदन नेहारि ।
> अंतरे ऊयल प्रेम-पयोनिधि, नयने गलये घन वारि ।।
> माधव, हामारि विदाय पाये तोय ।
> तोहारि प्रेम सञे पुन चलि आयव, अब दरसन नाहि मोय ।।
> कातर नयने नेहारिते दुहुँ दुहाँ, उथलल प्रेम-तरंग ।
> मुरछल राइ मुरुछि पडु माधव, कबे हबे ताकर संग ।।
> ललिता सुमुखि सुमुखि करि फुकरत, राइक कोरे आगोर ।
> सहचरि कानु कानु करि फुकरत, ढरकत लोचन-लोर ।।
> कथि गेओ अरुण-किरण-भय दारुण, कथि गेओ लोकक भीत ।
> 'माधव घोष' अबहु नाहि समुझल, उदभट मुगध चरीत ।।

४. **रामानंद वसु**—वे चैतन्य महाप्रभु के समकालीन और उनके अनुयायी भक्त-कवि थे। उनका युगल-छवि विषयक ब्रजबुलि का एक ही पद मिलता है, जो यहाँ दिया जाता है—

> मलयज-मिलित यमुना-जल सीतल, बंसीवट निरमान ।
> निकटहि नीप कदंब-तरु कुसुमित, कोकिला भ्रमर करु गान ।।
> तार तले तिरिभंग तरुन-तमाल-तनु, वामे रसवति राइ ।
> एके नव जलधर कोरे बिजुरि थिर, कांचने रतन मिशाइ ।।
> दुहुँ तनु एक मन निविड़ आलिंगन, दुहुँ जन एकइ पराण ।
> 'वसु रामानंद' भणे तुलना ना हये मने, रूपेर निछनि पाँच-बाण ।।

५. **वृंदाबनदास**—उनके कई पदों में श्री चैतन्य देव के महत्व का वर्णन है। एक सुंदर पद राधा-कृष्ण की मान-लीला का है, जो यहाँ दिया गया है—

कैछे चरणे कर - पल्लव ठेललि, मीललि मान - भुजंगे ।
कवले कवले जिउ जरि जब जायब, तवहि देखव यह रंगे ।।
मा गो किये इह जिद्द अपार ।
को अछु वीर धीर महाबल, पाडरि उतारव पार ।।
श्यामर झामर मलिन नलिन मुख, झर-झर नयनक नीर ।
पीतांबर गले पदहि लोटायल, हिया कैछे बाँधलि धीर ।।
साधि साधि छरमे घरमें महाविकल, घन घन दीघ निशास ।
मनमथ-दाह-दहने मने वसि गेजो, रोखे चलल निज वास ।।
अविरोधि प्रेम-पंथ तुहुं रोधलि, दोष-लेस नाहि नाह ।
'वृंदाबन' कह निषेध ना मानलि, हामारि ओरे नाहि चाह ।।

६. **ज्ञानदास**—वे ब्रजबुलि के प्रमुख कवि थे। उनका जन्म सं० १५६० के लगभग हुआ था। उन्होंने श्री नित्यानंद जी की पत्नी जान्हवा देवी से दीक्षा ली थी। यहाँ पर राधा-कृष्ण प्रेम विषयक उनका एक पद दिया जाता है—

लहुलहु मुचकि हासि चलि आओलि, पुन पुन हेरसि फेरि ।
जनु रतिपति सजे मिलन रंगभूमे, ऐछन कयल पुछेरि ।।
धनि हे, बूझलुँ ए सब बात ।
एतदिने तुहुँक मनोरथ पूरल, भेटलि कानुक साथ ।।
यब तोहे सखिगण निरजने पूछल, तब तुहुँ छापलि काय ।
अब बिहि सोसब बेकत कयल सखि, कैछने गोपबि ताय ।।
चोरिक वचन कहत सब गुरुजन, सो सब पायलुं साखि ।
दस दिन दुरजन एक दिन सुजनक, आजु देखलुँ परतेखि ।।
हाम सब निज जन कहसि राति-दिन, सो सब बुझलुँ आजु काजे ।
'ज्ञानदास' कह सखि तुहुँ विरमह, राइ पायल बहु लाजे ।।

७. **अनंतदास**—वे श्री अद्वैताचार्य के शिष्य थे और सं० १६०० के लगभग विद्यमान थे। उनका कृष्ण-सौन्दर्य विषयक एक सुंदर पद दिया जाता है—

विकच सरोज - भान मुख मंडल, दिठि भंगिम नट खंजन जोर ।
किये मृदु माधुरि-हास उगारइ, पी-पी आनंदे आँखि पड़लहि मोर ।।
वरनि ना हय रूप बरन चिकनिया ।
किये घन पुंज किये कुवलयदल, किये काजर किये इंद्र-नीलमनिया ।।

अंगद बलय हार मनि-कुंडल, चरणे नूपुर कटि किंकिनि कलना ।
अभरण-वरण- किरने अंग ढरढर, कालिंदजले यैछे चाँद कि चलना ॥
कुंचित केस बेस कुसुमावलि, सिर पर शोभे शिखि चाँद कि छांदे ।
'अनंतदास' पहुँ अपरुप लावणि, सकल युवति मन पड़ि गेओ फांदे ॥

८. **बलरामदास**—बंगाली वैष्णव कवियों में वे अपनी काव्य-प्रतिभा के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं । उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के संबंध में भी अनेक उत्तम पद लिखे हैं । यहाँ पर श्री कृष्ण की बाल-लीला और विरह विषयक उनके दो पद दिये जाते हैं—

विरह - बेयाधि - बेयाकुल सो पहुँ, बरजल धैरज लाज ।
वासर यामिनी विलपि गोङायइ, बसि बसि विपिनक माझ ॥
विधुमुखी वेदन कि कहब आज ।
विषम विसिख सर बरिखने जरजर, विकल बरज युवराज ॥
बहु वैदगधि विविध गुन चातुरि, बिछुरल सबहुँ मुरारि ।
बरिखक ठामे बोल तोहे पावइ, बाउर भेल वनमाली ॥
वेश विलास - बिसेखहि विरमल, विरमल भोजन पान ।
बोलइ ते वदने वचन नाहि विकसइ, 'बलराम' कि कहब जान ॥ १ ॥

मधुर समय रजनिसेष, शोहइ मधुर कानन देश,
गगने उयल मधुर-मधुर, विधु निरमल कांतिया ।
मधुर माधवि केलि निकुंज, फुटल मधुर कुसुम पुंज,
गावइ मधुर भ्रमरा भ्रमरि, मधुर मधुहि मातिया ॥
आजु खेलत आन्दे भोर, मधुर युवति नव किशोर,
मधुर बरज रंगिनी मेलि, करत मधुर रमस केलि,
मधुर पवन बहइ मंद, कूजये कोकिल मधुर छंद,
मधुर रसहि शबद सुभग, नदइ बिहग पाँतिआ ।
रवइ मधुर शारि कीर, पढ़इ ऐछन अमिया गीर,
नटइ मधुर मउर मउरि, रटइ मधुर भातिया ॥
मधुर मिलन खेलन हास, मधुर - मधुर रस विलास,
मदन हेरइ धरणि लुठइ वेदन फुटइ छातिया ।
मधुर - मधुर चरित रीत, 'बलराम'-चिते फुरउ नीत,
दुहुँक मधुर चरन सेवन, भावने जनम यातिया ॥ २ ॥

९. कृष्णदास कविराज—उनका जीवन-वृत्तांत गत (५३-५५) पृष्ठों में लिखा जा चुका है। उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'चैतन्य चरितामृत' की रचना ब्रज में हुई थी। इस ग्रंथ की सरल बंगला भाषा ब्रजबुलि से मिलती हुई है। ऐसी भाषा का उनका एक प्रसिद्ध पद यहाँ दिया जाता है—

जय राधे श्री राधे कृष्ण, श्री राधे जय राधे।
नंदनँदन वृषभानु - दुलारि, सकल गुण - अगाधे ॥
नव घन सुंदर नओल किशोरि, निज गुन ही तम साधे।
चाँचर केशे मउर शिखंडक, कुंचित केशिनी जादे ॥
पीतांबर धर ओढ़े नील साड़ि, घन सौदामिनी राजे।
कानु गले बन-माला बिराजित, राइ गले मोति साजे ॥
अरुणित चरणे मंजिर रंजित, खंजन - गंजन लाजे।
'कृष्णदास' भणे श्री वृंदावने, युगलकिशोर बिराजे ॥

१०. नरोत्तमदास—उनका जीवन-वृत्तांत गत (५६-५८) पृष्ठों में लिखा जा चुका है। उनकी बंगला भाषा की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ पद उनके ब्रजबुलि के भी मिलते हैं, जिनमें से एक यहाँ दिया जाता है—

राइ हेरल यब सो मुख-इंदु। उछलल मन-माहा आनंद-सिंधु ॥
भांगल मान रोदनहिं भोर। कानु कमल करे मोछइ लोर ॥
मान जनित दुख सब दूर गेल। दुहुँ मुख दरसने आनंद भेल ॥
ललिता-बिसाखा आदि यत सखिगन। आनंदे मगन भेल देखि दुइजन ॥
निकुंजेर माझे दों हार केलि विलास। दूरहि दूरे रहु 'नरोत्तमदास' ॥

११. गोविंददास—उनका जीवन-वृत्तांत पहिले (पृष्ठ ५९ में) लिखा जा चुका है। वे ब्रजबुलि के बंगाली पद-कर्त्ताओं में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनका एक पद यहाँ दिया जाता है—

ढलढल सजल जलद तनु शोहन, मोहन - अभरण साज।
अरुण नयन गति बिजुरि चमक जिति, दगधल कुलवति लाज ॥
सजनि, याइ ते पेखलुँ कान।
तब धरि जग भरि भरल कुशुम सर, नयने ना हेरिये आन ॥
मझु मुख दरशि बिहसि तनु मोड़इ, विगलित मोहन वंश।
ना जानिये कौन मनोरथे आकुल, किशलय दले करु दंश ॥
अतये से मझु मन ज्वलतहि अनुखन, दोलत चपल पराण।
'गोविंददास' मिछइ आशोयासल, अबहुँ ना मीलल कान ॥

१२. **राधाबल्लभ**--उनके निम्न पद में चैतन्य महाप्रभु के त्रिभुवन-मोहन रूप का सरस वर्णन हुआ है—

मन - मोहनिया गोरा भुवन - मोहनिया ।
हासिर छटा चाँदेर घटा बरिखे अमिया ।।
रूपेर छटा युवति - घटा बुक भरिते चाय ।
मन-गरबेर मान-घर भांगिल मदन राय ।।
रंगिन पाटेर डोर दुइ दिगे सोनार नूपुर पाय ।
झुनर-झुनर बेज्या याय काम चमके ताय ।।
मालती-फुले भ्रमर बुले नव लोटनेर दाम ।
कुल-कामिनीर कुल गजिया गीम-दोलनीर ठाम ।।
आँखिर ठारे प्राण मारे कहिते सहिते नारि ।
'राधाबल्लभ' दासे कय मन करिले चारि ।।

१३. **सुबलचंद्र ठाकुर**—उनके निम्न पद में चैतन्य महाप्रभु की बाल-लीला का वर्णन कृष्ण-लीला के समान किया गया है—

देख नटवर नाचे शचीर कोङर हें ।
हेम वर गोरा तनु प्रेम भरे भोरा जनु, मधुर-सहन-करण-जग-मनोहर हें ।।
अरुण - वरण घर नयनहि नीर ढर, तरुण करुण मनु मतिलर झर हें ।
देखि प्रिय गदाधर विपुल पुलक भर, ए छोटे ढ़े (?) भांग-धर कामधनु भर हें ।।
हेरि-फेरि नित्यानंद लाजे हेट नयन चंद, इह रसगंध पाओये सुबल सुघड़ हें ।।

१४. **नटवर**—उनके निम्न पद में श्री कृष्ण के अवतार रूप से श्री चैतन्य का उल्लेख किया गया है—

गोपीगण कुच - कुंकुमे रंजित, अरुण वसन शोभे अंगे ।
कांचन - निंदित - कांति कलेवर, राइ परश - रस - रंगे ।।
देख - देख अपरूप गौर - विलास ।
लाख युवति - रति यो गुरु लंपट, सो अब करल संन्यास ।।
यो ब्रज - वधूगण दृढ़ भुज - बंधन, अविरत रहत अगोर ।
सो तनु पुलके पुरति अब ढर ढर, नयने गलये प्रेम-लोर ।।
यो नटवर घनश्याम - कलेवर, वृंदा - बिपिन - बिहारी ।
कहये 'नटवर' सो अब अकिंचन, घरे-घरे प्रेम भिखारी ।।

२. चैतन्य मत का संस्कृत और बंगला साहित्य

इस ग्रंथ के प्रथम खंडांतर्गत षष्टम परिच्छेद में चैतन्य मत के साहित्यिक गौरव का विवेचन करते हुए बतलाया गया है कि इसका मूल साहित्य संस्कृत और बंगला भाषाओं में निर्मित हुआ है । वहीं पर इस मत के आकर, प्रमाण और मान्य ग्रंथों की एक संक्षिप्त सूची भी विषयानुक्रम से दी गई है । उक्त सूची से इस मत के सूत्र साहित्यिक गौरव का आभास तो हो जाता है; किन्तु उनका समग्र रूप ध्यान में नहीं आ पाता । यहाँ पर हम बाबा कृष्णदास द्वारा संकलित वृहद् ग्रंथ-सूची ग्रंथकारों के क्रम से प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे ज्ञात होगा कि चैतन्य मत का संस्कृत और बंगला भाषाओं का साहित्य कितना समृद्ध और विशाल है ।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, चैतन्य मत का जन्म और विकास माध्व सम्प्रदाय के अंतर्गत गौड़ (प्राचीन बंगाल) प्रदेश में हुआ था; इसीलिए इसे 'माध्व-गौड़ेश्वर संप्रदाय' भी कहा जाता है । यद्यपि यह मत कालांतर में विकसित होता हुआ अपने मूल संप्रदाय के सर्वथा अनुकूल नहीं रह सका और एक स्वतंत्र मत माना जाने लगा; फिर भी माध्व सम्प्रदायी आचार्यों और उनके ग्रंथों के प्रति इस मत में सदैव श्रद्धा और आदर की भावना रही है । हम यहाँ पर पहिले माध्व संप्रदायी और फिर चैतन्य मतानुयायी आचार्यों एवं विद्वानों द्वारा निर्मित ग्रंथों की सूची दे रहे हैं ।

संस्कृत ग्रथ-सूची

[माध्व संप्रदायी]

(१) श्री मध्वाचार्य जी—१. भगवद्गीता भाष्य, २. ब्रह्मसूत्र भाष्य, ३. अणु भाष्य, ४. प्रमाण लक्षण, ५. कथा लक्षण, ६. उपाधि खंडन, ७. मायावाद खंडन, ८. प्रपंच मिथ्यात्वानुमान खंडन, ९, तत्व संख्यान, १०. तत्व विवेक, ११. तत्वोद्योत, १२. कर्म निर्णय, १३. विष्णु तत्व निश्चय, १४. ऐतरेयोपनिषद् भाष्य, १५. तैत्तरीय भाष्य, १६. वृहदारण्योपनिषद् भाष्य, १७. ईशावास्योपनिषद् भाष्य, १८. कठोपनिषद् भाष्य, १९. छान्दोग्योपनिषद् भाष्य, २०. आथर्वणीय भाष्य, २१. माण्डूक्योपनिषद् भाष्य, २२. षट्प्रश्नोपनिषद् भाष्य, २३. तलबकारोपनिषद् भाष्य, २४. गीता तात्पर्य निर्णय, २५. संन्यास विवरण, २६. नरसिंहनख स्तोत्र, २७. यमक भारत, २८. द्वादश

(१२) श्री रूप गोस्वामी--१. भक्ति रसामृत सिंधु, २. उज्ज्वल नीलमणि, ३. विदग्ध माधव नाटक, ४. दानकेलि कौमुदी, ५. ललित माधव नाटक, ६. लघु भागवतामृत ७. पद्यावली, ८. मथुरा महिमा, ९. नाटक चंद्रिका, १० कृष्णाभिषेक, ११. हंस दूत, १२. उद्धव संदेश, १३. कृष्णगणोद्देश दीपिका (लघु), १४. कृष्णगणोद्देश दीपिका (वृहत्), १५. निकुंज रहस्य स्तव, १६. स्मरण मंगल स्तोत्र, १७. वैष्णव पूजा विधि, १८. सामान्य विरुदावली लक्षण, १९. प्रयुक्तख्यात चंद्रिका, २०. महाप्रभोरष्टक, २१. कृष्णचैतन्य दिव्य सहस्रनाम स्तोत्र, २२. नंदी मृताष्टक, २३. स्तव माला।

(१३) श्री रघुनाथदास गोस्वामी—१. मुक्ता चरित, २. दानकेलि चिंतामणि, ३. स्तवावली।

(१४) श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी—हरि भक्ति विलास।

(१५) श्री जीव गोस्वामी—१. गोपाल चम्पू (पूर्व-उत्तर), २. हरि नामामृत व्याकरण, ३. वृहद् क्रम संदर्भ (भागवत टीका), ४. लघु क्रम संदर्भ, ५. लघु वैष्णवतोषणी, ६. तत्वसंदर्भ, ७. परमात्म संदर्भ, ८. भगवत संदर्भ, ९. कृष्ण संदर्भ, १०. भक्ति संदर्भ, ११. प्रीति संदर्भ, १२. संकल्प कल्पद्रुम, १३. सर्वसंवादिनी, १४. माधव महोत्सव, १५. राधा-कृष्णार्चन दीपिका, १६. गोपाल विरुदावली, १७. रसामृत शेष, १८. अग्निपुराणस्थ गायित्री व्याख्या, १९. ब्रह्मसंहिता टीका (दिग्दर्शिनी), २०. सूत्रमालिका, २१. धातु संग्रह, २२. योगसार स्तव, २३. श्री कृष्ण पदचिह्न समाहार, २४. राधिका पदचिह्न समाहृति, २५. रसामृत सिंधु टीका, २६. उज्ज्वल नीलमणि टीका (लोचनरोचनी), २७. हरिनाम व्याख्या, २८. युगलाष्टक, २९. उपासना तत्व, ३०. अनर्पितचरीति श्लोकस्य व्याख्या, ३१. स्वर्णटीका, ३२. जान्हवाष्टक।

(१६) कवि कर्णपूर—१. आनंद वृंदावन चम्पू, २. कृष्णाह्निक कौमुदी, ३. चैतन्य चरितामृत महाकाव्य, ४. गौरगणोद्देश दीपिका, ५. अलंकार कौस्तुभ, ६. आर्या शतक, ७. चैतन्यामृत व्याकरण, ८. श्री कृष्णचंद्र सहस्रनाम स्तोत्र, ९. पारिजातहरण महाकाव्य, १०. दशमस्कंधस्य टीका।

(१७) श्री प्रबोधानंद सरस्वती—१. चैतन्य चंद्रामृत, २. वृंदावन शतक (१०० स या), ३. संगीत माधव, ४. आश्चर्य रास प्रबंध, ५. गीतगोविंदस्य टीका, ६. वेदस्तुति टीका, ७. नवद्वीप शतक, ८. काम गायित्री व्याख्या, ९. गौरांग सुधाकर चित्राष्टक, १०. श्री नित्यानंद स्वराज।

(१८) **श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी**—१. गोविंद लीलामृत महाकाव्य, २. कृष्णार्चन दीपिका टीका. ३. सारंगदा (कर्णामृतस्य टीका), ४. स्वरूप वर्णन, ५. गुरु वैष्णवाष्टक, ६. परिणामार्थ दीपिका, ७. सिद्धनाम ।

(१९) **श्री नारायण भट्ट जी**—१. भक्ति रस तरंगिणी, २. ब्रज भक्ति विलास, ३. ब्रजोत्सव चंद्रिका, ४. ब्रजोत्सवाह्लादिनी, ५. ब्रज प्रदीपिका, ६. ब्रज महोदधि, ७. बृहत् ब्रजगुणोत्सव, ८. ब्रज प्रकाश, ९. भक्ति विवेक, १०. साधन दीपिका, ११. भक्तभूषण संदर्भ, १२. रसिकाह्लादिनी (भागवतस्य टीका), १३. धर्म प्रवर्तिनी, १४. लाड़िलेयाष्टक, १५. प्रेमांकुर नाटक, १६. सिद्धांत चूड़ामणि, १७. नीति श्लोकानि, १८. ब्रजरत्न दीपिका, १९. भक्ति रहस्य, २०. धर्म प्रबोधिनी, २१. राधाविनोद काव्यस्य टीका ।

(२०) **श्री रामराय जी**—१. गौर विनोदिनी वृति, २. गौर प्रेमस्तवराज, ३. नित्यानंद भाष्य ।

(२१) **श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती**—१. भक्ति रसामृत सिंधु बिंदु, २. उज्ज्वल नीलमणि किरण, ३. बृहत् भागवतामृत कण, ४. रागवर्त्म चंद्रिका, ५. माधुर्य कादंबिनी, ६. ऐश्वर्य कादंबिनी, ७. कृष्ण भावनामृत महाकाव्य, ८. सुरत कथामृत, ९. प्रेम संपुट, १०. ब्रजरीति चिंतामणि, ११. चमत्कार चद्रिका, १२. सारार्थ दर्शिनी (भागवतस्य टीका), १३. विदग्ध माधवस्य विवृति, १४. ललित माधवस्य टिप्पणी, १५. उज्ज्वल नीलमणि टीका, १६. स्तवमालया टीका, १७. निकुंज केलि विरुदावली, १८. स्तवामृत लहरी, १९. हंस दूत टीका, २०. आनंद वृंदाबन चम्पू टीका (सुखवर्तिनी), २१. गोपाल तापिनी विवृति, २२. प्रेमभक्ति चंद्रिका टीका, २३. मंत्रार्थदीपिका, २४. साध्य-साधन कौमुदी, २५. हरिनामार्थ दीपिका, २६. महाप्रभुरष्टकालीय स्मरण मंगल स्तोत्र, २७. गौरगणोद्देश चंद्रिका, २८. गौरांगगण स्वरूप तत्व चंद्रिका, २९. ब्रह्मसंहिता टीका, ३०. भक्ति रसामृत सिंधु टीका (भक्तिसार प्रदर्शिनी) ३१. दान केलि कौमुदी टीका (महती), ३२. अलंकार कौस्तुभस्य टीका (सुबोधिनी), ३३. चैतन्य चरितामृतस्य टीका, ३४. गीता टीका (सारार्थ-वर्षिणी), ३५. चैतन्य रसायन, ३६. गौरगण चंद्रिका, ३७. स्मरण मंगल ।

(२२) **श्री रसिकोत्तंस**—प्रेम-पत्तन ।

(२३) **श्री ब्रजेन्द्रकृष्णदास**—गोपी उपासना ।

(२४) **श्री कृष्णदेव सार्वभौम**—१. अलंकार कौस्तुभ टिप्पणी, २. पदांक दूत, ३. कृष्ण भावनामृतस्य टीका, ४. प्रमेय रत्नावली टीका, ५. विदग्धमाधव नाटकस्य टीका, ६. संकल्प कल्पद्रुम टीका, ७. मुकुंद पद माधुरी ।

(६५) श्री **गोविंददेव कवि**—गौर [illegible] महाकाव्य।

(६६) श्री **परमानंद गुप्त** गौरांग विजय।

(६७) श्री **रसिकानंद जी**—१. श्री श्यामानंद शतक, २. भागवताष्टक, ३. निकुंजकेलि स्तोत्र।

(६८) श्री **विश्वंभर पाणि**—संगीत माधव।

(६९) श्री **नवद्वीपचंद्र गोस्वामी**—गौरांग मंगल संगीत।

(७०) श्री **कृष्णशरण गोस्वामी**—श्री कृष्ण विरुदावली।

(७१) श्री **रतिकांत ठाकुर**—गौरांग शतक।

(७२) श्री **रघुनंदन गोस्वामी**—१. गौरांग विरुदावली, २. गौरांग चम्पू, ३. श्री राधा-माधवोदय, ४. देशिक निर्णय, ५. वैष्णव व्रत निर्णय, ६. संशय शातनी (भागवत टीका), ७. रामरसायन (वंग पयार), ८. देशिक निर्णय, ९. भक्तमाला, १०. भक्त-लीलामृत (वंगभाषा), ११. सदाचार निर्णय (वंगभाषा)।

(७३) **अज्ञात कवि**—श्री गौरांग विरुद।

(७४) श्री **हरिमोहन शिरोमणि**—१. कृष्णचैतन्य संदर्भ, २. श्री गदाधर संदर्भ, ३. वैष्णव व्रत निर्णय, ४. कौतुकांकुर प्रहसन, ५. [illegible], ६. श्री गौरार्चन प्रयोग, ७. प्रहेलिकादि।

(७५) श्री **राधाकृष्णदास**—ललितमाधव टीका।

(७६) श्री **मुकुंददास गो०**—अर्थरत्नाल्प दीपिका (भ० र० सि० टीका)।

(७७) श्री **गिरिधरदास**—१. परकीया रस सिद्धांत स्थापन संग्रह, २. स्वकीयात्वनिरास विचार, ३. परकीयात्व निरूपण।

(७८) श्री **राधादामोदर जी**—छंद कौस्तुभ।

(७९) श्री **आनंदी**—१. शीघ्रबोध व्याकरण, २. चैतन्य चंद्रामृत टीका (रसिकास्वादिनी)।

(८०) श्री **काशीनाथ विद्यानिवास**—शिशु बोध व्याकरण।

(८१) श्री **काशीश्वर भट्टाचार्य**—शब्द रत्नाकर।

(८२) **गो० गोपाल भट्ट (नारायण भट्ट परंपरास्थित)**—सत्क्रिया सार दीपिका।

(८३) **श्रील लोकाचार्य**—भक्तिचंद्रिका पटल।

(८४) श्री **राधाकृष्ण गोस्वामी**—१. दशश्लोकी भाष्य, २. साधनदीपिका

(८५) श्री **सूर्य दास सरखेल**—भोग निर्णय पद्धति

(८६) श्री **घनश्यामदास**—पद्धति प्रदीप।

(८७) **श्री आचार्य प्रभु**—१. चतुश्लोकी भाष्य (भागवतीय), २. षट् गोस्वामि गुणलेश सूचकाष्टक ।

(८८) **श्री लोकाचार्य शर्मा**—श्री भगवद्भक्ति सार समुच्चय ।

(८९) **श्री त्रिभुवन सरस्वती**—फुटकर श्लोकानि ।

(९०) **प्रियंवदा**—श्याम रहस्य ।

(९१) **वैजयंती**—आनंदलतिका चम्पू ।

(९२) **वृंदाबनदासी**—पूर्णतम चंद्रोदय ।

(९३) **माधवी दासी**—पदावली ।

(९४) **सुभद्रा देवी**—अनंगकादंबावली ।

(९५) **श्री प्रद्युम्न मिश्र**—श्री कृष्णचैतन्योदयावली ।

(९६) **श्री लाउडिया कृष्णदास**—बाल्यलीला सूत्र ।

(९७) **अज्ञात कवि**—चैतन्य भागवतस्य संस्कृत पद्यानुवाद ।

(९८) **श्री गोपेन्दुभूषण**—चैतन्य चरितामृतस्य संस्कृत पद्यानुवाद ।

(९९) **श्री नित्यानंद अधिकारी**—चैतन्य चरितामृत टीका (गौरभक्त विनोदिनी) ।

(१००) **श्री द्विजशंकर**—श्री गौर लीलामृत ।

(१०१) **श्री कर्णपूर कविराज**—गुणलेश सूचक ।

(१०२) **श्री नृसिंहदेव**—श्री चैतन्य महाभागवत ।

(१०३) **श्री श्रीनाथ चक्रवर्ती**—श्री चैतन्य मत मंजूषा (भागवत टीका)

(१०४) **श्री रामनारायण मिश्र**—१. भावाभावविभाविका (रासपंचाध्यायी टीका), २. प्रभा (वायु पुराणोक्त श्री गौरांग चंद्रोदय अध्याय की टीका) ३. सूक्ष्मतमावृति (ब्रह्मसूत्र की टीका) ।

(१०५) **श्री द्वारकानाथ ठाकुर**—गोविंदबल्लभ नाटक ।

(१०६) **श्री वंगबिहारी**—(वंगेश्वर) स्तवावली टीका (काशिका) ।

(१०७) **श्री वृंदाबन चक्रवर्ती**—सदानंदविधायिनी (गोविंद लीलामृत टी०)

(१०८) **श्री हरेकृष्ण आचार्य**—बालतोषणी (हरिनामामृत व्या० टी०)

(१०९) **श्री राधाकृष्ण दास**—हरिनामामृत व्याकरण टीका ।

(११०) **श्री वीरचंद्र गोस्वामी**—१. शब्दार्थ बोधिका (गोपाल चम्पू चूर्णिका), २. रसिकरंगदा (पद्यावली टीका) ।

(१११) **श्री हरिदास सिद्धांत वागीशकर्तक**—ब्रह्मसूत्र (श्रीमद्भागवत भाष्य सहित) ।

(११२) **श्री राधिकानाथ गोस्वामी**—रहस्यार्थ प्रकाशिका (निकुंज रहस्यस्तव टीका) ।

(११३) **श्री सदाशिव कविराज**—शचीनंदन विलक्षण चतुर्दशक ।

(११४) **श्री भगीरथदास**—श्री चैतन्य संगीता ।

(११५) **श्री रामसेवक चट्टोपाध्याय**—श्री चैतन्य रहस्य ।

(११६) **श्री गीतगोविंद प्रभु**—वीर रत्नावली ।

(११७) **श्री केदारनाथ भक्तिविनोद**—१. कृष्णसंहिता, २. श्री स्तव सूत्र, ३. आम्नाय सूत्र, ४. श्रीमद्भागवतार्क मरीचिमाला, ५. स्मरण मंगल स्तोत्र, ६. शैवधर्म ।

(११८) **श्री जयगोपाल गोस्वामी**—१. काव्यदर्पण, २. उज्ज्वल रस तरंगिणी (वंगभाषा) ।

(११९) **श्री रसिकानंद गोस्वामी**—निकुंजकेलि स्तोत्र ।

(१२०) **अज्ञात कवि** श्री हरिनाम षोडश ।

(१२१) **अज्ञात कवि**—हरेकृष्ण महामंत्र कवच ।

(१२२) **श्री जानकीप्रसाद गोस्वामी**—श्री नारायण भट्ट चरितामृत ।

(१२३) **श्री पूर्णानंद कवि**—शनदूषणी (तत्व मुक्तावली) ।

(१२४) **श्री स्वरूप गोस्वामी**—श्री गदाधराष्टक ।

(१२५) **श्री अच्युतानंद गोस्वामी**—श्री गौर-गदाधर युगलाष्टक ।

(१२६) **श्री श्रीनिवासाचार्य प्रभु**—षड्गोस्वामी गुणलेश सूचकाष्टक ।

(१२७) **श्री भक्तविनोद ठाकुर**—१. गौरांग लीला स्मरण मंगल स्तोत्र, २. गोद्रुमचंद्र भजनोपदेश, ३. स्वनियम द्वादश ।

(१२८) **श्री चैतन्य चिरंजीवि**-श्री कृष्णचैतन्य चंद्रस्य सहस्रनाम स्तोत्र ।

(१२९) **श्री नंदकिशोर गोस्वामी**— १. गौर प्रेमोल्लास काव्य, २. शुकदूत महाकाव्य, ३. गोविंदाष्टक, ४. यमुनाष्टक ।

(१३०) **श्री रघुनंदन ठाकुर**—नवद्वीपचंद्र स्तवराज ।

(१३१) **श्री चंद्रगोपाल गोस्वामी**—श्री माधवाष्टक ।

(१३२) **श्री यमुनावल्लभ गोस्वामी**—श्री राधिकाष्टक ।

(१३३) **श्री राधिकानाथ गोस्वामी**—१. श्री राधिकाष्टक, २. सुरत स्मरणाष्टक ।

(१३४) **श्री बनमालीदास शास्त्री**—१. राधा स्तोत्र, २. गोबर्धनाष्टक, ३, यमुनाष्टक ।

(१३५) **श्री कृष्णदेव गोस्वामी**—श्री राधा-माधवाष्टक ।

(१३६) **श्री तुक्का**—तुक्का पंचक ।

(१३७) **अज्ञात कवि**—१. उपासना, २. विग्रहस्य प्रतिमा निरूपण, ३. ऐकांति कृत्य।

(१३८) **श्री पुरुषोत्तमदास**—उपासना पद्धति।

(१३९) **अज्ञात कवि**—१. सेवा कौमुदिनी, भक्तरस चंद्रिका।

(१४०) **श्री राधारमण गोस्वामी**—दीपिकादीपिनी (भागवतस्य टीका)

(१४१) **श्री मुकुंददास**—मनोवलंबिका।

(१४२) **श्री कृष्ण कवि**—मुक्ताचरित नाटक।

(१४३) **हरिकृष्ण**—पंचतत्व निरूपण।

(१४४) **श्री अनूपनारायण**—१. आमोद महाकाव्य, २. विद्वद्विनोदिनी सूचिका, ३. ममजंमावृति।

(१४५) **रघुनाथ नायक**—हरिभक्त कल्पलतिका।

(१४६) **नीलांबर सूनु रघुनाथदास**—भक्तिरसामृत सिंधु।

(१४७) **श्री अच्युतानंद अलसुआ**—तत्वसंहिता।

(१४८) **श्री रघुनाथदास सूनु ध्यानदास**—श्री कृष्णभंगिलताफल।

(१४९) **श्री कृष्ण सूनु कार्ष्णी**—सदाचार प्रकरण (हरिभक्ति विलास के आधार पर)।

(१५०) **अज्ञात कवि**—श्लोकमाला टीका (चैतन्य चरितामृत)।

(१५१) **श्री जयकृष्णदास**—श्री उज्ज्वल नीलमणि सूत्र पाठ संग्रह।

(१५२) **गोस्वामी गोपीलाल**—१. गीर्निर्वासनिका, २. वेश आश्रय विधि, ३. वैष्णव दीक्षामृत, ३. चैतन्य चंद्रामृत तरंगिणी (चै० चंद्रामृत टीका)

(१५३) **श्री सिद्ध चैतन्यदास बाबा जी**—सप्तविंशति नामामृत स्तोत्र।

(१५४) **श्री राधानंददेव गोस्वामी**—राधागोविंद काव्य।

(१५५) **श्री मोहन कवि**—श्री राधागोविंद काव्य टीका।

(१५६) **श्री रसिकमुरारी**—श्री विंदुप्रकाश।

(१५७) **श्री विश्वंभरानंद देव गोस्वामी**—भ[illegible]क्य दर्शन।

(१५८) **श्री जगदानंद ठाकुर**—१. प्रेमोभक्ति रसार्णव, २. कृष्ण-भक्ति कदंब ३. श्याम चंद्रोदय।

(१५९) **अनिश्चित कवि**—१. हरिनाम षोडश, २. हरिनाम पटल।

(१६०) **श्रीगोविंददेव गोस्वामी**—युगल ध्यानस्तव।

(१६१) **अज्ञात कवि**—रससार चंद्रिका।

(१६२) **राजा विश्वनाथदेव वर्मा**—श्री राधागोविंद लीलामृत।

(१६३) **रानी राधाप्रिया**—१. राधा-कृष्ण प्रिया टीका, २. रुक्मिणी परिचय, ३. चम्पूत्रयी॥

(१६४) **श्री रसिकानंददास**—भक्तिसाधन चिंतामणि ।

(१६५) **श्री श्रीनिवासदास**—कृष्णभक्ति कल्प ।

(१६६) **श्री हरिदास गोस्वामी**—गिरगुंजिया सहस्रनाम स्तोत्र ।

(१६७) **श्री श्रीधर महाराज**—भक्तिसिद्धांत पादपद्म स्तव ।

(१६८) **श्री भक्तिदेशाचार्य महाराज**—गौरांग स्तोत्र ।

(१६९) **श्री नृसिंहदत्त शर्मा**—प्रभु गुंजामाली चरित ।

(१७०) **अज्ञात**—नवद्वीप माहात्म्य ।

(१७१) **श्री विश्वंभरदास**—ध्यान चंद्राष्टक ।

(१७२) **श्री विष्णुदास पुजारी**—गोविंदार्चन चंद्रिका ।

(१७३) **केनचित**—१. श्री माधव महोत्सव टीका (कृपाकरिणका), २. श्री रूप गोस्वामी ध्यान, ३. श्री सनातन गोस्वामी ध्यान, ४. श्री जीव गोस्वामी ध्यान ।

(१७४) **श्री शचीनंदन गोस्वामी**—संकल्प कल्पद्रुम टीका (विमला) ।

(१७५) **माधवी देवी**-१. पुरुषोत्तम देव नाटक, २. जगन्नाथ-दिनचर्या ।

(१७६) **श्री गोविंददास कविराज**—रामचरित्र गीत ।

(१७७) **श्री पवनदास**—रामाइ चरितामृत (वंगभाषा) ।

(१७८) **श्री गोपाल ठाकुर**—लीलामृत-रसपूर ।

(१७९) **श्री ब्रह्मगोपाल**—वस्तुबोधिनी ।

(१८०) **श्री मालांक**—वृंदाबन काव्य ।

(१८१) **अज्ञात कवि**—वैष्णव रहस्य (वंगभाषा) ।

(१८२) **श्री राधाविनोद गोस्वामी**—वैष्णवाचार पद्धति ।

(१८३) **श्री नवद्वीपचंद्र गोस्वामी**—वैष्णवाचार दर्पण ।

(१८४) **श्री काशीनाथ विद्यानिवास**—सच्चरित मीमांसा ।

(१८५) **श्री नरहरि घनश्याम**—संगीत सार संग्रह ।

(१८६) **श्री श्यामदास**—साधन चिंतामणि ।

(१८७) **अज्ञात कवि**—सारात्सार तत्व ।

(१८८) **श्री रामचंद्रदास**—सिद्धांतचंद्रिका ।

(१८९) **श्री कुवेरोपाध्याय**—सूत्रसार ।

(१९०) **श्री राधामोहन मित्र**—हरिवासर दीपिका ।

(१९१) **श्री रूप गोस्वामी**—हरेकृष्ण महामंत्रार्थ निरूपण ।

(१९२) **श्री श्रीनाथ पंडित**—१. चैतन्यचंद्रिका, २. चैतन्य मत मंजूषा ।

(१९३) **श्री रामानंद तीर्थ**—प्रेमभक्ति स्तोत्र ।।

(१९४) **श्री विश्वनाथ पंडित**—प्रेम रसायन ।
(१९५) **श्री रसिकानंद गो०**—भक्तभागवताष्टक ।
(१९६) **श्री कालीप्रसाद शर्मा**—भक्तिदूती ।
(१९७) **श्री जयगोपालदास**—भक्ति भावप्रदीप ।
(१९८) **श्री नयनानंद कवि**—भक्तिमाध्वीकरण ।
(१९९) **श्री जयगोपाल**—भक्ति रत्नाकर ।
(२००) **श्री राधामोहन गो०**—१. भक्तिरहस्य, २. भजन क्रम संग्रह ।
(२०१) **श्री चंद्रगोपाल जी**—राधा-माधव भाष्य ।
(२०२) **श्री नंदकुमार विद्याभूषण**—राधा मान तरंगिणी ।
(२०३) **अज्ञात कवि**—१. गोपाल विरुदावली टीका, २. दानकेलि चिंता-मणि टीका, ३. सुरत कथामृत टी०, ४. निकुंजकेलि विरुदावली टी० (चूर्णिका)
(२०४) **श्री नंद मिश्र**—सिद्धांतदर्पणस्य टीका ।
(२०५) **अज्ञात कवि**—प्रेमपत्तनस्य टीका (सोपज्ञ प्रेमसर्वस्वम्) ।
(२०६) **श्री प्रेमनारायण**—गौरांग चंद्रोदस्य टीका ।
(२०७) **अज्ञात कवि**—आर्याशतकस्य टीका ।
(२०८) **श्री प्रद्युम्न मिश्र**—श्री कृष्ण चैतन्य दयावली ।
(२०९) **श्री गुरुचरण तर्क पंचानन**—कृष्ण लीलांबुधि ।
(२१०) **श्री हरिभूषण कवि**—कृष्णलीला रत्नाकर ।
(२११) **श्री नारायण भट्टराज**—कृष्णलीला रसोदय ।
(२१२) **श्री केदारनाथ दत्त भक्तविनोद**—कृष्णसंहिता ।
(२१३) **श्री परमानंद गुप्त**—कृष्णस्तवावली ।

बंगला ग्रंथ-सूची

(१) श्री **वृंदावनदास ठाकुर**—१. चैतन्य भागवत, २. गोप रहस्य लीला, ३. नित्यानंदाष्टक, ४. नित्यानंद प्रभुर वंशविस्तार, ५. चैतन्य चंद्रोदय, ६. आनंद लहरी, ७. भजन निर्णय, ८. नित्यानंद अभेश्वर्यामृत, ९. रस कल्पसार तत्व ।

(२) श्री **लोचनदास ठाकुर**—१. चैतन्य मंगल, २. दुर्लभ सार, ३. पदावली, ४. धामाली, ५. जगन्नाथ नाटक पद्यानुवाद, ६. आनंदलतिका, ७. राग लहरी, ८. रास पंचाध्यायी पद्यानुवाद; ९. चैतन्य प्रेम विलास, १०. धातु तत्व सार, ११. देह निरूपण ।

(३) श्री **रसिकानंद जी**—श्यामानंद चरित ।
(४) श्री **नारायणदास**—मुक्ताचरित ।

(५) श्री **कृष्णदास कविराज**-१. चैतन्य चरितामृत, २. पदावली।

(६) श्री **विश्वनाथ चक्रवर्ती [हरिबल्लभ]**-१. क्षणदागीत चिंतामणि (पूर्व विभाग), २. पदावली।

(७) श्री **नरहरिदास [घनश्यामदास जी]**—१. भक्ति रत्नाकर, २. नरोत्तम विलास, ३. श्रीनिवास चरित्र, ४. गीत चंद्रोदय, ५. गौरचरित चिंतामणि, ६. छंद समुद्र, ७. पद्धति प्रदीप, ८. पदावली।

(८) श्री **रसिकानंददास**—कृष्णभक्ति-साधन चिंतामणि।

(९) श्री **नरोत्तमदास ठाकुर**—१. प्रेम भक्ति चंद्रिका, २. प्रार्थना, ३. स्मरण मंगल (पयार छंद), ४. आश्रय निर्णय, ५. प्रेमभक्ति चिंतामणि, ६. वस्तु तत्व, ७. गुरु-शिष्य संवाद, ८. हाट पत्तन, ९. सिद्ध प्रेमभक्ति चंद्रिका, १०. साध्य प्रेम चंद्रिका, ११. साधन भक्ति चंद्रिका, १२. चमत्कार चंद्रिका, १३. सूर्यमणि, १४. चंद्रमणि, १५. स्वरूप कल्पतरु, १६. भक्ति उद्दीपन, १७. उपासना तत्व, १८. उपासना चंद्रिका, १९. गीत चिंतामणि, २०. स्मरण मंगल

(१०) श्री **नित्यानंदवंशीय स्वरूप गोस्वामी**—प्रेम कदंब (ललित-माधव पद्यानुवाद)।

(११) श्री **यदुनंदन ठाकुर**—१. जगन्नाथ बल्लभ नाटक पद्यानुवाद, २. मुक्ताचरित पद्यानुवाद, ३. कृष्णकर्णामृत पयार अनुवाद, ४. पदावली, ५. गोविंद लीलामृत पद्यानुवाद, ६. श्री राधाकृष्ण लीला रस कदंब (विदग्ध माधव नाटक पद्यानुवाद), ७. दान केलि कौमुदी पद्यानुवाद, ८. कर्णानंद, ९. रस निर्यास।

(१२) श्री **गोविंददास**—१. रागानुगा चंद्रिका, २. चैतन्य तत्व सार, ३. अष्टकालीन लीला, ४. दुर्जय मान।

(१३) श्री **वंशीवदन ठाकुर**-१. निकुंज रहस्य स्तव पद्यानु०, २.पदावली

(१४) श्री **रघुनाथ भगवताचार्य**-कृष्ण प्रेम तरंगिणी (समग्र भागवत अनुवाद)।

(१५) श्री **मुरारी गुप्त**—पदावली।

(१६) श्री **जगदानंद**—चित्रपद काव्य।

(१७) श्री **कृष्णदास कविराज**—पदावली

(१८) श्री **नरहरि सरकार**—पदावली।

(१९) श्री **वासुदेव घोष**—पदावली।

(२०) श्री **प्राणबल्लभदास**—रस माधुरी।

(२१) श्री **माधव घोष**—पदावली।

(२२) श्री **गोविंद घोष**—पदावली ।

(२३) श्री **नयनानंद**— १. पदावली, २. प्रेमोभक्ति रस कदंब, ३. अकिंचन सर्वस्व ।

(२४) श्री **श्रीनिवासाचार्य**—पदावली ।

(२५) श्री **गौरमोहनदास**—विलास कुसुमांजलि पयार पद्यानुवाद ।

(२६) श्री **कृष्णदास**—१. भजन क्रम, २. मथुरा मंडल परिक्रमा, ३. प्रेम रत्नावली, ४. श्रीदाम-मिलन, ५. मौनवृति पटल, ६. रागानुगा चंद्रिका ।

(२७) श्री **रामचंद्रदास**—रागानुगा विवृति पद्यानुवाद ।

(२८) श्री **रसिकदास**—विलाप कुसुमांजलि पद्यानुवाद ।

(२९) श्री **राधिकादास**—भक्ति सारावली ।

(३०) श्री **अकिंचनदास**—१. भक्ति रसालिका, २. जगन्नाथ बल्लभ नाटक पद्यानुवाद, ३. काशी विश्वेश्वर संवाद ।

(३१) श्री **नरसिंहदास**—१. भक्ति रसालिका, २. जगन्नाथ बल्लभ नाटक पद्यानुवाद, ३ काशी विश्वेश्वर संवाद ।

(३२) श्री **नरसिंहदास**—उज्ज्वल नीलमणि किरण पद्यानुवाद ।

(३३) श्री **देवकीनंदनदास**—१. पदावली, २. वैष्णव वंदना ।

(३४) श्री **गोपीकांतदास**—प्रार्थना ।

(३५) श्री **शिवानंद**—पदावली ।

(३६) श्री **अभिरामदास**—गोविंद विजय ।

(३७) श्री **यदुनाथदास (यदु)**—पदावली ।

(३८) श्री **परमानंद**—पदावली ।

(३९) श्री **ज्ञानदास**—१. पदावली, २. प्रश्नदूतिका, ३. षोडश गोपालरूप ।

(४०) श्री **बलरामदास**—१.पदावली, २.कृष्णलीलामृत, ३.चैत०गणोद्देश्य

(४१) श्री **बलरामदास**—प्रेम विलास ।

(४२) श्री **निमानंददास**—गौरांगस्तव कल्पद्रुमेर अनुवाद ।

(४३) श्री **कानुरामदास**—पदावली ।

(४४) श्री **रघुनंदन गोस्वामी**—श्री राम रसायन ।

(४५) श्री **उत्तमदास**—कृष्ण प्रकाशरत्न (कृष्णभक्ति रत्नप्रकाश अनु०)

(४६) श्री **श्यामानंद जी [दुखी कृष्णदास]**—पदावली ।

(४७) श्री **गोविंद कविराज**—१. पदावली, २. गीतामृत, ३. एकान्न पद ।

(४८) श्री **गोविंद चक्रवर्ती**—पदावली ।

(४९) श्री **गोविंद आचार्य**—१. पदावली, २. गोविंद भागवत ।

(५०) **राजा वीर हाम्बीर [चैतन्यदास]**—पदावली ।

(५१) श्री **गोविंद मिश्र**—गीता पद्यानुवाद ।

(५२) श्री **रायबसंत**—पदावली ।

(५३) श्री **शेखर कवि [रायशेखर]**—१. पदावली, २. गंडात्मिका, ३. गोपाल कीर्तनामृत, ४. गोपाल विजय ।

(५४) श्री **राजा नृसिंहदेव**—पदावली ।

(५५) श्री **चम्पति [भूपति]**—पदावली ।

(५६) श्री **मोहनदास**—पदावली ।

(५७) श्री **बल्लभदास**—पदावली ।

(५८) श्री **बल्लभदास**—१. पदावली, २. रसकदंब, ३. कृष्ण संहिता ।

(५९) श्री **बल्लभ** - बल्लभ लीला ।

(६०) श्री **राधाबल्लभ दास**—पदावली ।

(६१) श्री **प्रेमदास**—१. चैतन्य चंद्रोदय पद्यानुवाद (चैतन्य चंद्रोदय कौमुदी), २. वंशी शिक्षा, ३. मनः शिक्षा, ४. राधारसकारिका ।

(६२) श्री **जयानंद मिश्र**—श्री चैतन्य मंगल ।

(६३) श्री **ईशाननागर**—अद्वैत प्रकाश ।

(६४) श्री **जगदानंद**—वंशी लीलामृत ।

(६५) श्री **गिरिधर**—गीत गोविंद भाषा (पद्य) ।

(६६) श्री **दिव्यसिंह**—पदावली ।

(६७) श्री **गतिगोविंद [गोविंदगति]**-१. वीर रत्नावली, २. पदावली ।

(६८) श्री **घनश्यामदास कविराज**-१. गोविंदरतिमंजरी, २. पदावली ।

(६९) श्री **जगदानंद**-१. पदावली, २. भाषा शब्दार्णव, ३. श्याम चंद्रोदय

(७०) श्री **राधामोहन ठाकुर**—पदामृत समुद्र (पद संख्या ७५०) ।

(७१) श्री **वैष्णवदास**—पद कल्पतरु (पद संख्या ३१०३) ।

(७२) श्री **गोपालदास**—राधाकृष्ण रस कल्पलता ।

(७३) श्री **रामगोपालदास**—१. रस कल्पबल्ली, २. नरहरि शाखा निर्णय, ३. रघुनंदन शाखा निर्णय ।

(७४) **पीताम्बरदास**—रसमंजरी ।

(७५) श्री **जयगोपाल**—कृष्ण विलास ।

(७६) श्री **राधामुकंददास**—मुकुंदानंद ।

(७७) श्री **मुकुंददास**—सिद्धांत चंद्रोदय ।

(७८) श्री **गोपालदास**—भक्ति रत्नाकर ।

(७९) श्री **चंद्रशेखर**—नायिका रत्नमाला ।

(८०) श्री **गौर सुंदरदास**—कीर्तनानंद (पद संख्या ६५०) ।

(८१) श्री **दीनबंधुदास**—संकीर्तनामृत ।

(८२) श्री **कमलाकान्तदास**—पद रत्नाकर (पद संख्या १३५८) ।

(८३) श्री **जगद्बंधु भद्र**—गौर पद तरंगिणी (पद संख्या १५७०) ।

(८४) श्री **निमानंददास**—पद रस सार (पद संख्या २७००) ।

(८५) श्री **गौरी मोहनदास**—पद कल्पलतिका (पद संख्या ३५१) ।

(८६) श्री **सतीशचंद्र राय**—पद रत्नावली (पद सं० ६००) ।

(८७) श्री **प्रयासदास**—पद चिंतामणि माला ।

(८८) श्री **आउल मनोहरदास**—पद समुद्र (पद संख्या १५०००) ।

(८९) श्री **रघुनंदन गोस्वामी**—गीतमाला (पद संख्या ४३९) ।

(९०) श्री **कमलकृष्ण गोस्वामी**—१. नंद हरण, २. स्वप्न विलास, ३. दिव्योन्माद (राई उन्मादनी), ४. विचित्र विलास, ५. भरत मिलन, ६. गंदर्भ मिलन, ७. कालीय दमन, ८. निमाई संन्यास ।

(९१) श्री **राधारमण देव**—पदावली ।

(९२) श्री **हरिमोहन शिरोमणि गोस्वामी**—पदावली ।

(९३) श्री **केदारनाथ भक्तिविनोद**—१. कल्याण कल्पतरु, २. शरणागति, ३. गीतमाला, ४. शोकसातन, ५. गीतानुवाद (विद्वद्‌रंजन), ६. नवद्वीप शतक अनुवाद, ७. भागवतार्क मरीचिमाला ।

(९४) श्री **जगद्बंधु सुंदर**—१. श्रीमती संकीर्तन (पद संख्या ८७), २. श्री हरि कथा, ३. चंद्रपात ।

(९५) **बाबा कृष्णदास**—गोविंद लीलामृत रस ।

(९६) श्री **कालीहर वसु**—रत्नाकर प्रकरण (विषामृत गोरा प्रेम), २. श्री युगल माधुरी, ३. पद पुष्पमंजरी, ४. पदामृत, ५. कवितामृत, ६. व्रज मंडल, ७. जीवन-वार्ता, ८. उत्सव प्रसंग, ९. गौरांग लीलामृत काव्य, १०. व्रज लीला कमल, ११. व्रजे उद्धव, १२. सौर विरह, १३. सुधन्वा काव्य, १४. विरहिणी चारु चंद्रिका ।

(९७) श्री **गोपीनाथ वासक**—१. दुर्लभ, २. उज्ज्वल विद्यायतन, ३. श्री भागवत, ४. शीतर ऊड़नी, ५. फुलदोल, ६. उपवासेर तालिका, ७. कृष्ण भावनामृत पद्यानुवाद, ८. संकल्प कल्पद्रुम पद्यानुवाद ।

(९८) श्री **लालदास**—१. भक्तमाल, २. उपासना चंद्रामृत ।

(९९) श्री **विष्णुदासाचार्य**---सीता गुण कदंब ।

(१००) श्री **जगन्नाथदास**----भक्त चरितामृत ।

(१०१) श्री **शिशिरकुमार घोष**-१. अमिय निमाई चरित, २. काला चांद

(१०२) श्री **नृसिंह देव**----श्री चैतन्य महाभागवतम् (सं०) ।

(१०३) श्री **माधव [ओड़िया]**----श्री चैतन्य विलास ।

(१०४) श्री **माधवाचार्य**—कृष्ण मंगल ।

(१०५) श्री **कृष्णदास**–१. श्री चमत्कार चंद्रिका पयारानुवाद, २. माधुर्य कादंबिनी पयारानुवाद, ३. रागवर्तम चंद्रिका पयारानुवाद, ४. भागवतामृतकण पयारानुवाद, ५. भक्ति रसामृत सिंधु-बिंदु पयारानुवाद, ६. उज्ज्वल नीलमणि किरण पयारानुवाद, ७. गौरांग लीलामृत (गौरांग स्मरण मंगल अनुवाद) ।

(१०६) श्री **ललितासखी**—१. चरितसुधा (७ खंड गद्य), २. लवंग-मंजरी गुटिका ।

(१०७) **अज्ञात कवि**—स्मरणी टीका पयार ।

(१०८) श्री **शचीनंदन विद्यानिधि**—उज्ज्वल चंद्रिका (उज्ज्वल नील-मणि पद्यानुवाद) ।

(१०९) श्री **जयगोविंद वसु**—वृहत् भागवतामृत पद्यानुवाद ।

(११०) श्री **ठाकुरदास वैष्णव**—उज्ज्वल नीलमणि पद्यानुवाद ।

(१११) श्री **वीरभद्र गोस्वामी**—समग्र भागवत पद्यानु० (भावलहरी)

(११२) श्री **हृदयानंद दास**—गौरगणोशोद्दीपिका पद्यानुवाद ।

(११३) श्री **नृसिंहप्रसाद ठक्कुर**—रस कल्पवल्ली ।

(११४) श्री **नरसिंह दास**—हंसदूत पद्यानुवाद ।

(११५) श्री **गोपीचरण**—चैतन्य चंद्रामृत पद्यानुवाद ।

(११६) श्री **देवनाथ दास**—भ्रमरगीत पद्यानुवाद ।

(११७) श्री **भीमलोचन सान्याल**—चाटु पुष्पांजलि पयारानुवाद ।

(११८) श्री **रामप्रसन्न घोष**—१. ललित गोपाल लीलामृत. २. विदग्ध गोपाल लीलामृत ।

(११९) श्री **विपिनबिहारी गोस्वामी**— १. दशमूल रस वैष्णव जीवन (सं०), २. हरिनामामृत सिंधु (सं०), ३. मधुर मिलन ।

(१२०) श्री **राधाबल्लभ गोस्वामी प्रणीत**—मुरली विलास ।

(१२१) श्री **भक्तराम**—गोकुल मंगल ।

(१२२) श्री **हरिदास ठाकुर प्रसंग स्वरूप**—महामंत्र व्याख्या ।

(१२३) श्री **चैतन्यदास**—महामंत्र व्याख्या ।

(१२४) श्री **गौरगुणानंद ठाकुर**—श्री खंडेश्वर प्राचीन वैष्णव ।

(१२५) श्री **रंगनाथ देव गोस्वामी**—टोटा गोपीनाथ कथामृत ।

(१२६) श्री **सुंदरानंद विद्याविनोद**-१. अचिंत्य भेदाभेद, २. चैतन्यदेव ।

(१२७) श्री **अच्युतचरण तत्वनिधि**-१. निताई लीला लहरी, २. भक्त निर्याण, ३. श्री रघुनाथदास गोस्वामी, ४. गोपाल भट्ट ।

(१२८) श्री **रसिकमोहन विद्याभूषण**—१. राय रामानंद, २. गंभीर-राय श्री गौरांग, ३. श्री स्वरूप दामोदर, ४. श्री कृष्ण माधुरी, ५, श्रीमद्दास गोस्वामी, ६. नीलाचले व्रजमाधुरी, ७. नाममाधुरी, ८. रूप-सनातन शिक्षामृत ।

(१२९) श्री **आनंदचंद्र शिरोमणि**-१. सुबल संवाद, २. अक्रूर संवाद, ३. कनक रंजन, ४. उद्धव संदेश ।

(१३०) श्री **सनातन चक्रवर्ती**—समस्त भागवत पद्यानुवाद ।

(१३१) श्री **कृष्णदास**—१. वृंदाबन परिक्रमा (पद्य), २. प्रेमामृत सिंधु

(१३२) **अज्ञात भक्त**—माधवेन्द्रपुरी चरित्र ।

(१३३) श्री **नीलांबरदास**—चैतन्य चरितामृत सारोद्धार ।

(१३४) श्री **वृंदाबनदास**—गोपिका-मोहन ।

(१३५) श्री **गोपीकृष्णदास**—हरिनाम कवच ।

(१३६) श्री **खोसालराय**—चैतन्य लीलामृत ।

(१३७) श्री **द्विजप्राणकृष्ण**—जयदेवप्रसादावली ।

(१३८) **अज्ञात कवि**—सुदामा चरित्र ।

(१३९) श्री **गिरिधारीदास**—शिवैकादशश्लोकार्थ पयार ।

(१४०) श्री **गोविंददास**—दुर्जयमान ।

(१४१) **अज्ञात कवि**—चैतन्य चंद्रामृत पयार ।

(१४२) श्री **कृष्णनास**—पाखंड-दलन ।

(१४३) श्री **नरसिंहदास**—उज्ज्वल नीलमणि पयार ।

(१४४) श्री **अजितकुमार गोस्वामी**—१. गौर गौरीदास लीलामृत, २. श्री पाटंबकाय श्री चैतन्य ।

(१४५) श्री **नवद्वीपदास**-१. श्री राधाकुंडेर इतिहास, २. आमार गुरुदेव, ३. श्री रूप-सनातन नाटक ।

(१४६) श्री **विश्वंभरप्रकाश गंगोपाध्याय**—व्रजरेणु ।

(१४७) श्री **कुंज गोविंदाचार्य कौशिक**—राधाकुंड रहस्य ।

(१४८) श्री **मनोहरदास**—१. श्री वैदग्ध विलास, २. गौरगोविंद नाम-कीर्तन रत्नमाला ।

(१४९) श्री **सत्यकिंकर राय**— श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामीर जीवन चरित्र ।

(१५०) श्री **जितेन्द्रनाथ गोस्वामी**—रासलीला पद्यानुवाद ।

(१५१) श्री **केशवदास**—अचिंत्य चिंतामणि ।

(१५२) श्री **भक्तितीर्थ ठाकुर**—हरिनामामृत सिंधु ।

(१५३) श्री **दुर्गादास बंधोपाध्याय**—शोकोच्छ्वास ।

(१५४) श्री **रामदयाल घोष**—१. चैतन्य चंद्रामृत पयार, चैतन्य शतक पयार, ३. चैतन्य स्तवराज पयार, ४. गौरगोविंद अष्टकाल पयार ।

(१५५) श्री **शशांक शेखर**—चैतन्य चंद्रामृत पयार ।

(१५६) श्री **कृष्णदास**—१. नवांग भक्ति वर्तिका, २. नवांग भक्ति चंद्रिका, ३. गोविंद लीलामृत रस ।

(१५७) श्री **अतुलकृष्ण गो०**—१. भक्तेर विजय, २. भक्तवृंदेर उपदेश

(१५८) श्री **विश्वरूप गोस्वामी**—गौर लीला गीत काव्य ।

(१५९) श्री **पुलिनबिहारी दास**—१. मथुरा कथा, २. वृंदाबन कथा ।

(१६०) श्री **नगेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय**—पादुका माधुरी ।

(१६१) श्री **रजनीकान्त सेठ**—श्री गौरांग अवतार ।

(१६२) श्री **भगवानदास नारायण**—माधवेन्द्रपुरी ओ बल्लभाचार्य ।

(१६३) श्री **सुरेशचंद्र चक्रवर्ती**—हरि कथा ।

(१६४) श्री **बिहारीलाल सूर**—हरिभक्ति चंद्रोदय ।

(१६५) श्री **मनमथनाथ मित्र**—श्री कृष्णचैतन्य लीला गुप्त रहस्य ।

(१६६) श्री **दीनेशचंद्र भट्टाचार्य**—कीर्तन गीति संग्रह ।

(१६७) श्री **अमूल्यनारायण भट्ट**—द्वादश गोपालपाटेर इतिवृत ।

(१६८) श्री **स्वरूपदास बाबा जी**—नित्य लीला ।

(१६९) श्री **दीनेशचंद्र वसु**—श्री रूप-सनातन नाटक ।

(१७०) श्री **योगेन्द्र सरकार**—प्रेम योग ।

(१७१) श्री **कृष्णचरण राय**—माधव विजय नाटक ।

(१७२) श्री **राधाकृष्ण बाग [नवद्वीप से]**—प्रेम सहचरी ।

(१७३) श्री **जाह्नवीकांत गोस्वामी**—संकीर्तन गीति चिंतामणि ।

(१७४) श्री **अघोरचंद्र काव्यतीर्थ**—निमाई संन्यास ।

(१७५) **श्री नवद्वीप गोस्वामी**—पंच तत्व।
(१७६) **श्री द्विजपद गोस्वामी**—श्री ललिता दासी सूचक।
(१७७) **श्री मुरारीलाल अधिकारी**—वैष्णव दिग्दर्शिनी।
(१७८) **श्री जीवनकृष्ण ब्रह्मचारी**—१. कृपार दान, २. लीलावली, ३. पुजार फूल।
(१७९) **श्री कृष्णचैतन्य शास्त्री**—लघुबोधिनी।
(१८०) **श्री जगबंधु प्रभु**—कीर्तन पद।
(१८१) **श्री कीर्तिवासदास**—गौरगोविंद पदावली।
(१८२) **श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी**—महाप्रभुर प्रलाप।
(१८३) **श्री शरच्चंद्र राय**—श्री रासलीला तत्व।
(१८४) **श्री अश्विनीकुमार दत्त**—भक्तियोग।
(१८५) **श्री हरेन्द्रनाथ दत्त**—उपनिषद् ब्रह्म तत्व।
(१८६) **श्री रासबिहारी [मठ से]**—राधारमण गीतिका।
(१८७) **श्री द्विजपद गोस्वामी**-रामदास बाबाजी महाजनेर लीलामाधुरी
(१८८) **श्री राधामुकुंद दास**—मुकुंदानंद ग्रंथ।

(१८९) **श्री हरिदास गो०**—१. महाप्रभुर नवद्वीप लीला, २. महाप्रभुर नीलाचल लीला, ३. श्री विष्णुप्रिया चरित, ४. श्री निताई-गौर विग्रहलीला काहिनी, ५. बांगलार ठाकुर श्री गौरांग, ६. गौर विष्णु प्रियार अष्टकाल लीला, ७. विष्णु प्रिया विलाप गीत, ८. श्री लक्ष्मी प्रिया चरित, ९. श्री गौर गीतिका, १०. श्री विष्णुप्रिया नाटक, ११. श्री विश्वरूप चरित, १२. निताई-गौर नाम माहात्म्य, १३. वैष्णव महिमा गीत चिंतामणि, १४. श्री धाम वृंदाबनेर पत्र, १५. श्री मुरारी गुप्त ठाकुर पूजित निताई विग्रहेर लीला काहिनी, १६. प्राचीन पदावली व्याख्या, १७. अद्वैत-गृहणी सीता चरित्र, १८. नवद्वीप रस, १९. शची माता चरित, २०. जगद्गुरु श्री गौरांग, २१. महाप्रभुर उपदेश, २२. गौरांग कथामृत, २३. गौर-विष्णु प्रिया युगल गीति, २४. रामचंद्र कविराज, २५. नाम ब्रह्माचार्य हरिदास ठाकुर, २६. श्री विष्णुप्रिया मंगल, २७. गजपति प्रताप रुद्र नाटक।

(१९०) **श्री रामदास बाबाजी महाराज**-१. स्वप्न विलास, २. गोविंद मुखारविंद, ३. प्रभाती कीर्तन, ४. मध्याह्न कीर्तन, ५, संध्या आरती कीर्तन, ६. शान्तिपुरेर बूढ़ा माली, ७. नित्यानंद महिमा, ८. पानिहाटी ते श्री महाप्रभुर शुभागमन स्मरण कीर्तन, ९. पानिहाटी ते श्री दास गोस्वामिर दंड महोत्सव,

१०. गदाधर पंडित विद्या कीर्तन, ११. आलाल नाथ कीर्तन, १२. श्यामानंद प्रभु श्री पाटे कीर्तन, १३. कालनाते निताई-गौर आगमन प्रसंग कीर्तन, १४. अन्नकूट कीर्तन, १५. अक्रूर घाटे कीर्तन, १६. श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभुर वृंदाबन भ्रमण कीर्तन, १७. राधाकुंड तीरे श्री रघुनाथदास गोस्वामी समाधिते कीर्तन, १८. गोपालदास बाबा जी तिरोधान उपलक्ष में रमणरेती ते कीर्तन, १९. श्री नाम माहात्म्य, २०. निताई-गौर गुण कीर्तन, २१. भज निताई-गौर राधेश्याम नामेर गूढ़ रहस्य कीर्तन, २२. राधारमण चरणदासदेवेर जन्मोत्सव कीर्तन, २३. टोटा गोपीनाथेर उत्सव कीर्तन, २४. श्री नित्यानंद प्रभुर व्यास पूजा, २५. कृष्णेर जन्म लीला, २६. नंद महोत्सव, २७. राधिकार लीला जन्म कीर्तन, २८. नित्यानंद प्रभुर जन्म-लीला कीर्तन, २९. श्री माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी तिथि आराधना प्रसंग कीर्तन, ३०. होरी चाँचड़ कीर्तन, ३१. होरी लीला, ३२. महाप्रभुर जन्मोत्सव कीर्तन, ३३. शुभ अधिवास कीर्तन, ३४. हरि-वास कीर्तन, ३५. द्वादश तिथि कीर्तन, ३६. नगर कीर्तन, ३७. भागवताचार्य गृहे महाप्रभुर शुभागमन कीर्तन, ३८. राधारमण आगमन स्मरण कीर्तन, ३९. सूचक कीर्तनेर श्री गौरचंद्र, ४०. श्यामानंद प्रभुर सूचक कीर्तन, ४१. श्री बक्रेश्वर गोस्वामी सूचक कीर्तन, ४२. श्री सनातन, ४३. श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी सूचक कीर्तन, ४४. श्री लोकनाथ गोस्वामी सूचक कीर्तन, ४५. श्री रामहरिदास बाबाजिर सूचक कीर्तन, ४६. श्री रूप गोस्वामी सूचक कीर्तन, ४७. श्री हरिदास ठाकुर निर्याण कीर्तन, ४८. जी जगद्दंधु प्रभुर सूचक कीर्तन, ४९. श्री कृष्णदास कविराज गो० सूचक की०, ५०. श्री रघुनाथदास गोस्वामी सूचक कीर्तन, ५१. श्री रघुनाथ भट्ट, ५२. नरोत्तमदास ठाकुर महाशयेर सू० की०, ५३. श्री रामचंद्र कविराजेर सू० की०, ५४. श्री निंवा-चार्य ठाकुर सू० की०, ५५. श्री गोपाल गुरु गो० सू० की०, ५६. श्री नरहरि सरकार ठाकुरेर सूचक कीर्तन, ४७. श्री ललितादासी सखिर सूचक कीर्तन, ५८. श्री उद्धारणदत्त ठाकुरेर सू० की०, ५९. श्री जीव गोस्वमी सूचक की०, ६०. श्री नित्यानंद चंद्र सू० की०, ६१. श्री गोविंद कविराज ठाकुरे सू० की०, ६२. श्री निवासनाथ चक्रवर्तीर सू० की०, ६३. श्री राधारमण चरणदासदेवेर सू० की०, ६४. श्री रथयात्रा कीर्तन, ६५. महाप्रभुर सन्यास कीर्तन।

(१९१) श्री हरिदास जी—१. गौड़ीय वैष्णव इतिहास, २. गौड़ीय वैष्णव जीवनि, ३. गौड़ीय वैष्णव तीर्थ, ४. गौड़ीय वैष्णव जीवनि (वर्तमा-निक), ५. गौड़ीय वैष्णव अभिधान, ६. वृंदाबन शतक अनुवाद, ७. मथुरा

महिमा अनुवाद, ८. कृष्णाह्निक कौमुदी अनुवाद, ९. माधव महोत्सव अनुवाद, १०. राधा-कृष्णार्चन दीपिका अनुवाद, ११. गोपाल विरुदावली अनुवाद, १२. चमत्कार चंद्रिका अनुवाद, १३. दानकेलि चिंतामणि अनु०, १४. सुरत कथामृत अनु०, १५. निकुंजकेलि विरुदावली अनु०, १६. सिद्धांत दर्पण अनु०, १७. दश श्लोकी भाष्य अनु०, १८. श्री श्यामानंद अनु०, १९. कृष्ण विरुदावली अनु०, २०. गौरांग चंद्रोदय अनु०, २१. गोविंद रतिमंजरी अनु०, २२. आर्या शतक अनु०, २३. गोविंदबल्लभ नाटक अनु०, २४. हरिभक्त तत्वसार संग्रह अनु०, २५. कृष्णलीला स्तव अनु०, २६. योगसार स्तव अनु०, २७. गौरांग विरुदावली अनुवाद ।

(१९२) श्री **द्विज नरसिंह**—उद्धव संदेशेर अनुवाद ।
(१९३) श्री **लालदास**—१. उपासना चंद्रामृत, २. भक्तमाल ।
(१९४) श्री **जयनारायण घोषाल**—करुणानिधान विलास ।
(१९५) श्री **अभिराम गोस्वामी**—गंगादेवी स्तोत्र ।
(१९६) श्री **प्रसाद दास**—पद चिंतामणि माला ।
(१९७) श्री **जगन्नाथ कवि**—भक्त चरितामृत ।
(१९८) **गौड़ीय मिशन से**—नवद्वीप धाम ग्रंथमाला ।
(१९९) श्री **दीनबंधुदास**—शिक्षाष्टक अनुवाद (हिंदी) ।
(२००) श्री **भक्ति सौरभ भक्तिसार**—इमलीतला माहात्म्य ।
(२०१) श्री **सीताराम दास**—प्रेमामृत ।
(२०२) श्री **गोबर्धनदास**—श्री श्री ब्रजधाम ।
(२०३) श्री **गोपालदास**—राधाकृष्ण रस कल्पलता ।
(२०४) श्री **ब्रजमोहनदास**—१. नवद्वीप दर्पण, १. ब्रज दर्पण ।
(२०५) श्री **अबलाबाला दासी**—विदग्ध माधव नाटक अनुवाद ।
(२०६) श्री **सत्येन्द्रनाथ वसु**—ललित माधव अनुवाद ।
(२०७) श्री **गुरुचरणदास बाबा जी**—१. गौरांग चम्पू अनुवाद २. भावनामृत सार संग्रह अनुवाद ।
(२०८) श्री **नरहरिदास**—१. केशव मंगल, २. शिव विलास ।
(२०९) श्री **द्विज हरिदास**—मुकुंद मंगल ।
(२१०) श्री **किशोरदास**—उद्धव संवाद ।
(२११) श्री **रतिरामदास**—गीता रसामृत ।
(२१२) श्री **रासबिहारी सांख्यतीर्थ**—नाटक चंद्रिका अनुवाद ।
(२१३) श्री **गदाधर शर्मा**—पुराण परिभाषा ।

(२१४) श्री **शचीनंदन गोस्वामी**–१. मुक्ता चरित अनुवाद, २. संकल्प कल्पद्रुम अनुवाद ।

(२१५) श्री **रामगोपाल दास**—पाट निर्णय ।

(२१६) श्री **अभिरामदास**—पाट पर्यटन ।

(२१७) श्री **राधिकानाथ गोस्वामी**—संकल्प कल्पद्रुम अनुवाद ।

(२१८) श्री **जयगोपाल गोस्वामी**—काव्य दर्पण ।

(२१९) श्री **चूड़ामणिदास**—भुवन मंगल ।

(२२०) श्री **दीनहीनदास**—किरण दीपिका ।

(२२१) श्री **भोलानाथ**—पान्थ दूत ।

(२२२) **अज्ञात कवि**—किशोर कौमुदी ।

(२२३) **अज्ञात अवि**—राधा-कृष्णार्चन चंद्रिका ।

(२२४) श्री **कालिनाथ दास**—कीर्तन गीत रत्नावली ।

(२२५) श्री **रामचंद्र**—पाखंड दलन ।

(२२६) श्री **कृष्णराम दत्त**—राधिका मंगल ।

(२२७) श्री **रामचंद्र दास**—स्मरण चमत्कार ।

(२२८) श्री **गिरिधरदास**—स्मरण मंगल ।

(२२९) श्री **गोपीकृष्णदास**—हरिनाम कवच ।

(२३०) श्री **नित्यानंददास**—हाट वंदना ।

(२३१) **अज्ञात कवि गण**—१. हरिनाम मंत्रार्थ, २. हरिनाम पटल, ३. हरिनाम चिंतामणि ।

उपसंहार—संस्कृत और बंगला ग्रंथों की उपर्युक्त सूचियों से यह ज्ञात होता है कि इन भाषाओं में चैतन्य मत का पर्याप्त साहित्य है । ब्रजभाषा-हिंदी साहित्य का विस्तृत विवेचन तो इस ग्रंथ में हुआ ही है। संस्कृत, बंगला और हिंदी भाषाओं के अतिरिक्त उड़िया, असमिया, मैथिली और अंगरेजी भाषाओं में भी इस मत के थोड़े-बहुत ग्रंथ मिलते हैं, जिनका उल्लेख यहाँ पर नहीं किया जा सका है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चैतन्य मत का साहित्य अत्यंत समृद्ध है और भारत के धार्मिक साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है ।

अनुक्रमणिका*

१. नामानुक्रमणिका

●

* विशेष विवरण मोटे पृष्ठांकों पर है।

२. ग्रंथानुक्रमणिका

सहायक ग्रंथ

सं०	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन
१.	श्री चैतन्यदेव ···	सुंदरानंद विद्याविनोद ···	गौडीय मिशन, कलकत्ता, सं० २०१०
२.	श्री गौड़ेश्वर संप्रदाय का इतिहास	पूर्णसिंह वैसठाकुर ···	मदनमोहनजी का मंदिर, वृंदावन, सं० १९८९
३.	प्रेम प्रतिमा— राधारमण प्रादुर्भाव	बाँकेपिया ··	मुकुंदबिहारी एडवोकेट, लखनऊ, सं० १९९२
४.	बंगला साहित्य की कथा	भोलानाथ शर्मा ···	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० १९९८
५.	१६ वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि	रत्नकुमारी ···	भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, सं० २०१३
६.	ब्रज माधुरी सार ···	वियोगी हरि ···	हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००५
७.	श्री भक्तमाल ···	नाभा जी और प्रियादास जी ···	श्री सर्वेश्वर कार्यालय, वृंदाबन, सं० २०१७
८.	श्री भक्तमाल ···	,, ,, (टीका० रूपकला) ···	नवलकिशोर प्रेम, लखनऊ, सं० २००८
९.	उत्तरार्ध भक्तमाल ···	भारतेन्दु हरिश्चंद्र ···	ना० प्र० सभा, काशी, सं० १९९१
१०.	नव भक्तमाल ···	राधाचरण गोस्वामी ···	राधाचरण गो०, वृंदाबन
११.	रसिक भक्तमाल ···	यमुनाबल्लभ गो० ···	राधा-माधव मंदिर, वृंदाबन
१२.	रसिक अनन्य माल ···	भगवत मुदित (संपा०-लन्तिताप्रसाद पुरो०) ···	वेणु प्रकाशन, वृंदाबन, सं० २०१७
१३.	भक्त-नामावली ···	ध्रुवदास (संपा०-राधाकृष्णदास) ···	इंडियन प्रेस, प्रयाग सं० १९८५
१४.	भक्त-नामावली ···	वृंदाबनदास ···	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २००७
१५.	पद प्रसंग माला ···	नागरीदास ···	किशनगढ़ (राजस्थान)

सं०	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन
१६.	दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता	गो० हरिराय	··· शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकरौली, सं० २००६
१७.	मिश्रबंधु विनोद ···	मिश्रबंधु गण	··· हिंदी ग्रंथ प्रसारक मंडली, खंडवा, सं० १६७०
१८.	ब्रजबुलि साहित्य ···	रामपूजक तिवारी	··· हिंदी शोध मंडल, पटना सं० २०१७
१९.	राधा का क्रम विकास	शशिभूषण दासगुप्त	··· हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, सं० २०१३
२०.	बुंदेल वैभव (भाग १-२)	गौरीशंकर द्विवेदी	··· बुंदेल वैभव ग्रंथमाला, टीकमगढ़, सं० १६६०
२१.	गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	जगदीश गुप्त	··· हिंदी परिषद् वि० वि०, प्रयाग, सं० २०१५
२२.	अवधी भाषा और ··· साहित्य	रामाज्ञा द्विवेदी	··· विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सं० २०१४
२३.	दिग्विजय भूषण ···	गोकुलप्रसाद 'ब्रज'	··· अवध साहित्य मंदिर, बलरामपुर, सं० २०१६
२४.	पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ	वासुदेवशरण अग्रवाल	··· ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, सं० २०१०
२५.	श्री माध्व गौड़ीय ··· तत्व दर्शन	बांकेपिया	··· मुकुंदबिहारी एडवोकेट, लखनऊ, सं० १६८४
२६.	भागवत संप्रदाय ···	बलदेव उपाध्याय	··· नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१०
२७.	वैष्णव धर्म ···	परशुराम चतुर्वेदी	··· विवेक प्रकाशन, प्रयाग सं० २०१०
२८.	राधाचरण गोस्वामी का जीवनचरित	राधाचरण गोस्वामी	··· राधाचरण पुस्तकालय, वृंदाबन, सं० १६५२
२९	श्री हित हरिवंश गो० संप्रदाय और साहित्य	ललिताचरण गो०	··· वेणु प्रकाशन, वृंदाबन, सं० २०१४
३०.	भक्त कवि व्यास जी ···	वासुदेव गो०	··· अग्रवाल प्रेस, मथुरा सं० २०१६

सं०	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन
३१.	सूरदास मदनमोहन ···	प्रभुदयाल मीतल ···	अग्रवाल प्रेस, मथुरा सं० २०१५
३२.	घनआनंद ···	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ···	वाणी वितान, काशी सं० २००६
३३.	क्षणदागीत चिंतामणि	मनोहरराय ···	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २०१७
३४.	अभिलाष माधुरी ···	ललितमाधुरी ···	शाह जी मंदिर, वृंदाबन सं० १९८८
३५.	राग कल्पद्रुम भाग १—२	कृष्णानंद रागसागर (संपा०-नगेन्द्रनाथ वसु) ···	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, सं० १९७१–७३
३६.	कीर्तन संग्रह ···	लल्लूभाई देसाई ··	लल्लूभाई छगनलालदेसाई, अहमदाबाद, सं० १९९३
३७.	श्री गौरांग पदावली ···	दीनबंधुदास ···	दीनबंधुदास, वृंदाबन गौ० सं० ४५४

[हस्त लिखित]

सं०	ग्रंथ	रचयिता	स्थान
१.	नारायन लीला, जगन्नाथ माहात्म्य, बाल लीला, जानरायलीला, जनम करम लीला आदि ···	माधवदास जगन्नाथी ···	श्री जी की बड़ी कुंज, वृंदाबन
२.	चंद्र चौरासी, अष्टयाम सेवा सुधा ···	चंद्रगोपाल गो० ···	यमुनाबल्लभ गोस्वामी, वृंदाबन
३.	श्री रामरायजी के बारह शिष्यों की रचनाएँ ···		,,
४.	महावाणी ···	राधिकानाथ गो० ···	राधा-माधव मंदिर, वृंदाबन
५.	रसिक सेवक वाणी ···	रसिकमोहन राय ···	,,
६.	श्री किशोरीदास की वाणी	किसोरीदास ···	श्री छुट्टनभट्टजी, वृंदाबन
७.	गीता भाषा ···	तुलसीदास ···	बाबा वंशीदास, वृंदाबन
८.	अष्टयाम ···	वृंदाबनचंद्र ···	कुसुम सरोवर, गोवर्धन

सं०	ग्रंथ	रचयिता	स्थान
९.	रसिक विलास ...	साधुचरण ...	कुसुमसरोवर, गोबर्धन
१०.	भजन पद्धति ...	गोकुलदास ...	,, ,,
११.	बारह वैष्णवन की वार्ता	ब्रह्मगोपाल ...	यमुनाबल्लभ गो०, वृंदाबन
१२.	श्री वृंदाबन धामानुरागावल ...	गोपालदास ...	गो० राधाचरण जी का पुस्तकालय, वृंदाबन
१३.	रस चंद्रिका ...	हरिदेव ...	नंदकिशोर जी मुकुटवाले, वृंदाबन
१४.	प्रणालिका ...	वासुदेव गो० ...	यमुनाबल्लभ गो०, वृंदाबन
१५.	ब्रजविनोद हजारा के छंद	लाल बलवीर ...	बाबा तुलसीदास, वृंदाबन
१६.	श्री रसिकाचार्य चरितावली	प्रियतमलाल गोस्वामी ...	यमुनाबल्लभ गोस्वामी, वृंदाबन

बंगला

सं०	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन
१.	चैतन्य भागवत ...	वृंदाबनदास ठाकुर (संपा--मृत्युंजय दे) ...	मृत्युंजय दे, कलकत्ता, बं० सं० १३५४
२.	चैतन्य भागवत (हिंदी अनुवाद) ...	अनु--रामलाल ...	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २०१५
३.	चैतन्य चरितामृत ...	कृष्णदास कविराज (संपा-क्षीरोदचंद्र गो०) ...	पूर्णचंद्र सील, कलकत्ता--बं० सं० १३३९
४.	चैतन्य चरितामृत (ब्रजभाषा पद्यानुवाद) ...	सुबलश्याम ...	बाबा कृष्णदास कुसुमसरोवर, सं० २००६
५.	चैतन्य चरितेर उपादान ...	विमानबिहारी मजूमदार ...	वि० वि० कलकत्ता, बं० सं० १३३९
६.	प्रेमभक्ति चंद्रिका ...	नरोत्तमदास ठाकुर ब्रजभाषा अनु-वृंदाबनदास ...	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २००७
७.	प्रार्थना ...	नरोत्तमदास ठाकुर (अनु-बालकृष्ण गो०) ...	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २०१४
८.	पद कल्पतरु ...	वैष्णवदास ...	वंगीय सा०परि०, कलकत्ता बं० सं० १३३८

संस्कृत

सं०	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन
१.	श्री महाप्रभु ग्रंथावली (१. शिक्षाष्टक, २. प्रेमामृत रसायन, ३. युगल परिहार और ४. राधा रस बोधिनी)	श्री चैतन्य महाप्रभु (अनुवादक-बाबा कृष्णदास)	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, गोबर्धन सं० २००६
२.	कृष्ण कर्णामृत	लीलाशुक विल्वमंगल (टीका-स्वामी परमानंद)	चार संप्रदाय आश्रम, वृंदावन, सं० २००७
३.	भक्ति रसामृत सिंधु	रूप गोस्वामी (संपा-भक्तिसिद्धांत सरस्वती)	नदियाप्रकाश प्रि० वर्क्स, मायापुर, बं० सं० १३३८
४.	उज्ज्वल नीलमणि	रूप गोस्वामी (टीका-जीव गोस्वामी)	निर्णयसागर प्रेस, बंबई, सं० १९८९
५.	स्मरण मंगल	रूप गोस्वामी ब्रजानुवाद-दामोदरदास, मधुसूदन गो०	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २००९
६.	ग्रंथ रत्न पंचकम् (१. श्री राधाकृष्ण गणोद्देश दीपिका, २. श्रीकृष्ण लीलास्तव, ३. श्री गौर गणोद्देश दीपिका, ४. श्री संकल्प कल्पद्रुम, ५. श्री ब्रज-विलास स्तव)	१. रूप गोस्वामी २. सनातन गोस्वामी ३. कवि कर्णपूर ४. विश्वनाथ चक्रवर्ती ५. रघुनाथदास गोस्वामी (अनुवादक- बाबा कृष्णदास)	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, स० २०११
७.	ब्रह्म संहिता- दिग्दर्शिनी टीका	जीव गोस्वामी ब्रजभाषा टीका-रामकृपा	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २०१७
८.	भक्ति तरंगिणी	नारायण भट्ट (अनु-बाबा कृष्णदास)	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २००४
९.	ब्रजभक्ति विलास	नारायण भट्ट (अनु-बाबा कृष्णदास)	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २००८
१०.	ब्रह्मसूत्र— गोविंद भाष्य	बलदेव विद्याभूषण (अनु-बाबा कृष्णदास)	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २०११
११.	प्रमेय रत्नावली	बलदेव विद्याभूषण (अनु-कृष्णचैतन्य गो०)	दीनबंधुदास, वृंदाबन सं० ४५५ गौराब्द
१२.	श्री नारायण भट्ट चरितामृतम्	जानकीप्रसाद गो० (अनु- बाबा कृष्णदास)	बाबा कृष्णदास, कुसुमसरोवर, सं० २०१७

अंगरेजी

सं०	ग्रंथ	ग्रंथकार	प्रकाशन
१.	Vaishnavism, Shaivism and minor Religious Systems	रामकृष्ण भंडारकर	भं० ओ० रि० इंस्टीट्यूट पूना, सं० १९८५
२.	Early History of the Vaishnava Faith and Movement in Bengal	सुशीलकुमार दे	जनरल प्रि० पब्लि०, कलकत्ता, स० १९९९
३.	History of Bengali Language and Literature	दीनेशचंद्र सेन	वि० वि० कलकत्ता, सं० १९६८
४.	History of Bengali Literature	के० एन० दास	दास ब्रादर्स, नवगाँव सं० २००३
५.	History of Brajbuli Literature	सुकुमार सेन	वि० वि० कलकत्ता सं० १९९२
६.	Modern Vernacular Literature of Hindustan	ग्रियर्सन	एशियाटिक सो०, कलकत्ता, सं० १९४६
७.	Shri Chaitanya Maha Prabhu	ठाकुर भक्तिविनोद	गौड़ीय वेदांत सो०, चिनसुरा (बं०), सं० २००७

पत्र-पत्रिकाएँ

१. ब्रजभारती, मथुरा, २. नाम माहात्म्य–वाणी विशेषांक, वृंदाबन, ३. भक्त भारत, वृंदाबन, ४. दैनिक हिंदुस्तान, दिल्ली, ५. त्रिपथगा, लखनऊ, ६. सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, ७. शोध पत्रिका, उदयपुर, ८. परिषद् पत्रिका, पटना तथा अन्य।
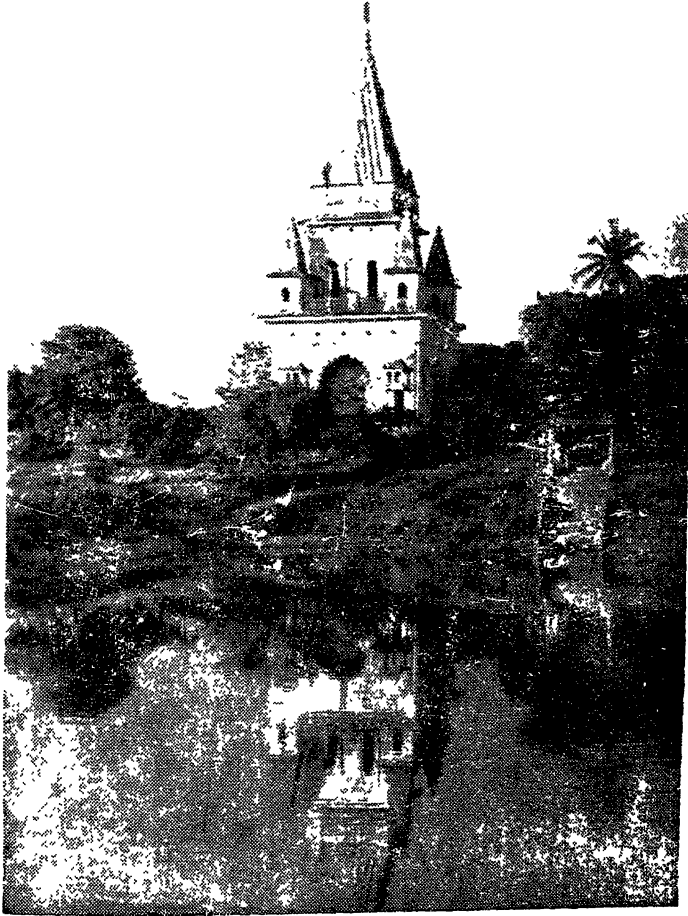
श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म-स्थान नवद्वीप-मायापुर में
श्री योगपीठ मंदिर
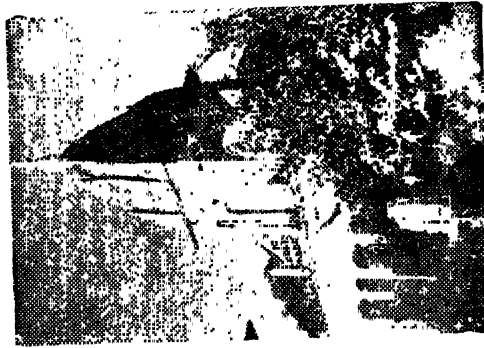
श्रीमहाप्रभु जी का जन्म-स्थल

नाम-संकीर्तन का प्रथम स्थल
श्रीवास-आँगन

श्री निताई-गौर

(श्री नित्यानंद प्रभु और श्री चैतन्य महाप्रभु)

चाँद काजी की समाधि पर
सदाबहार चाँपा का वृक्ष
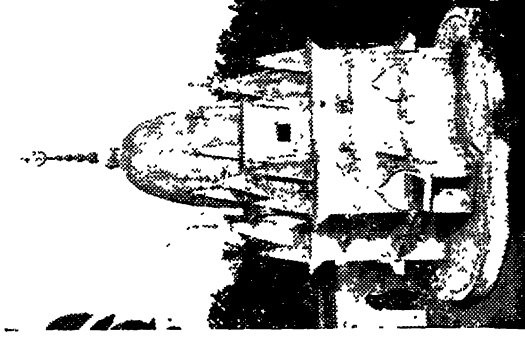
श्री चैतन्य मठ
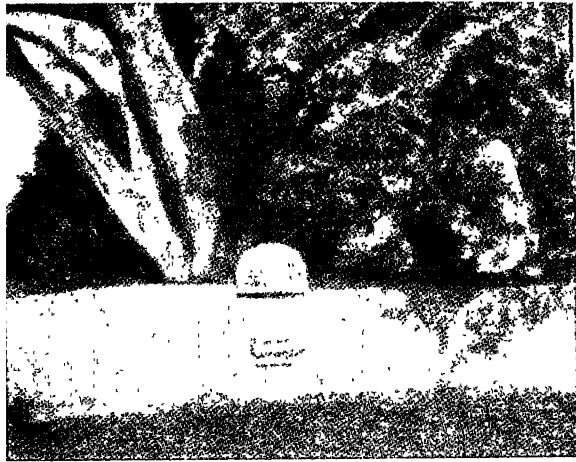
गौड़ प्रदेश के रामकेलि ग्राम में—
चैतन्य महाप्रभु से रूप-सनातन का मिलन-स्थल

चैतन्य महाप्रभु का ब्रज-आगमन

काशी में श्री चंद्रशेखर भवन
(वर्तमान नाम—चैतन्यवट या जतनवर)

प्रयाग में 'श्री रूप-शिक्षा स्थल'

श्री जगन्नाथपुरी, नरेन्द्र सरोवर पर—
सपरिकर श्री चैतन्य का कथा-श्रवण

श्री जगन्नाथपुरी में हरिदास ठाकुर की समाधि
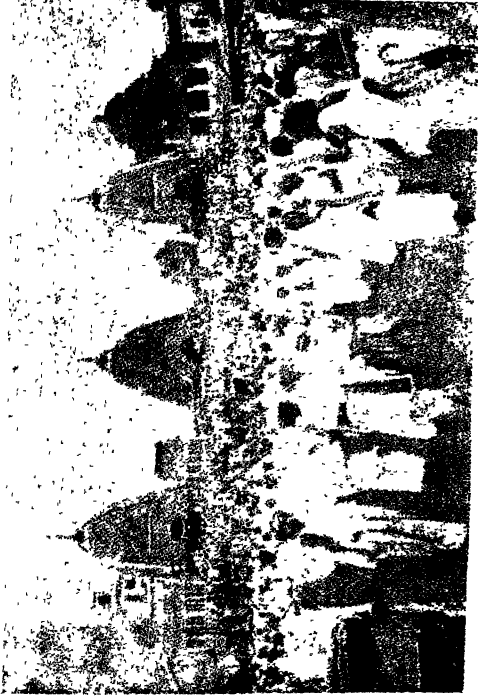
श्री जगन्नाथपुरी में रथयात्रा का आयोजन
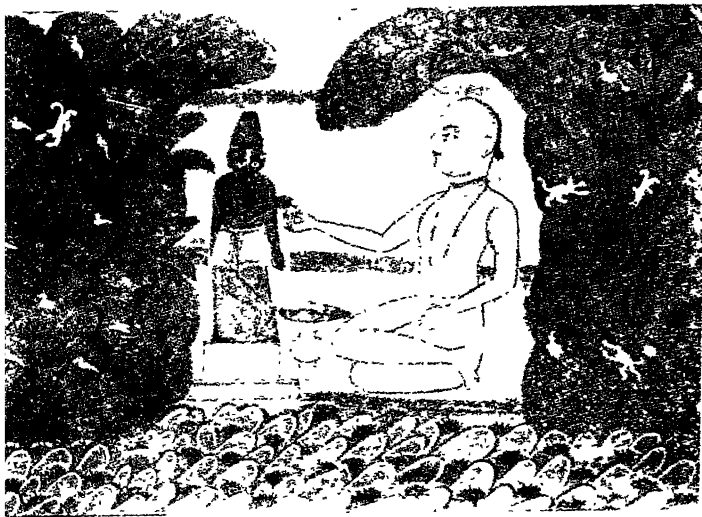
ठाकुर श्री मदनमोहन जी और श्री सनातन गोस्वामी

श्री मदनमोहन जी का मंदिर, वृंदावन

श्री गोविंददेव जी का मंदिर, वृंदावन
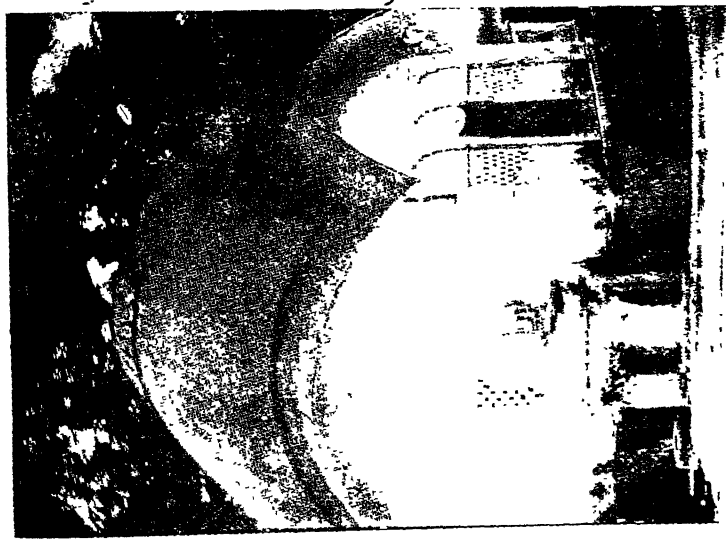
वृंदावन में श्री सनातन गोस्वामी की समाधि
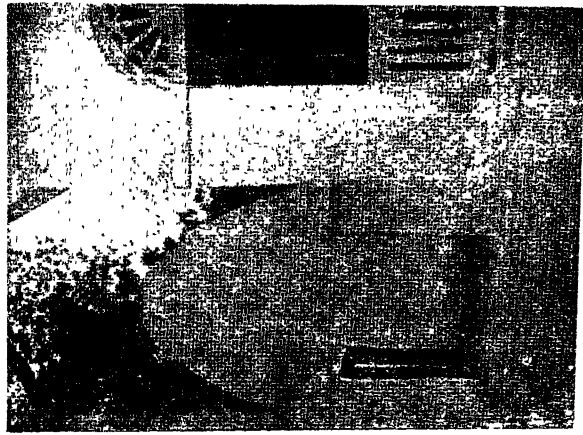
श्री राधाकुंड के तट पर—
रघुनाथदास गोस्वामी की समाधि

वृंदाबन

शाहजी का मंदिर, वृंदाबन
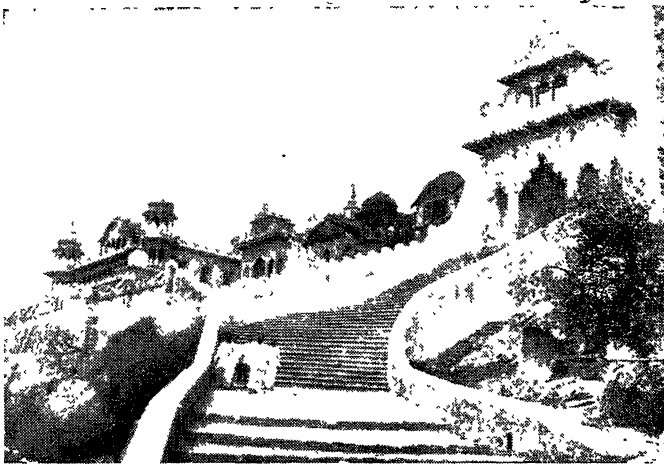
लाड़िजी जी का मंदिर, बरसाना
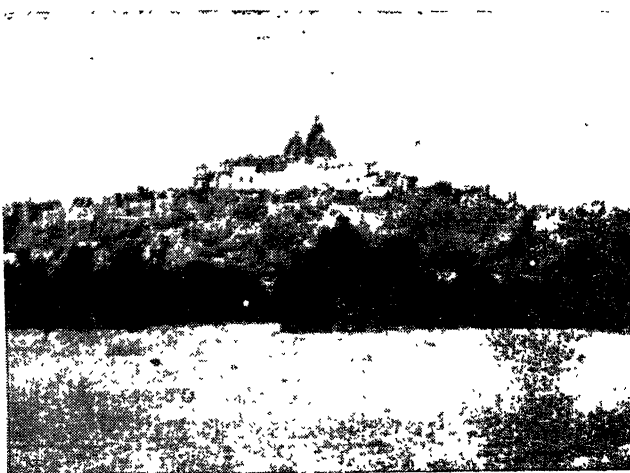
नंदरायजी का मंदिर, नंदगाँव
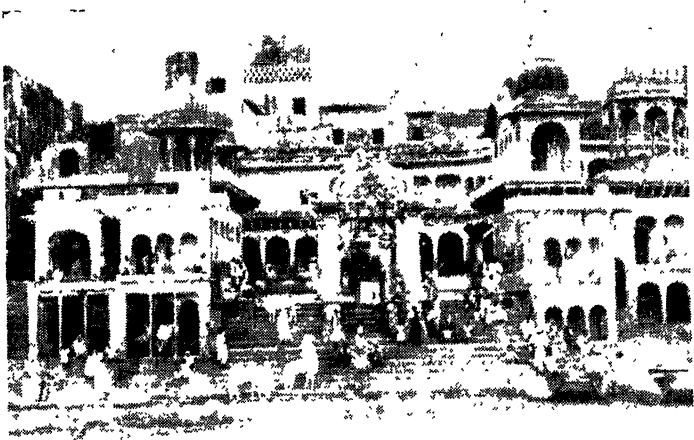
विश्रामघाट, मथुरा
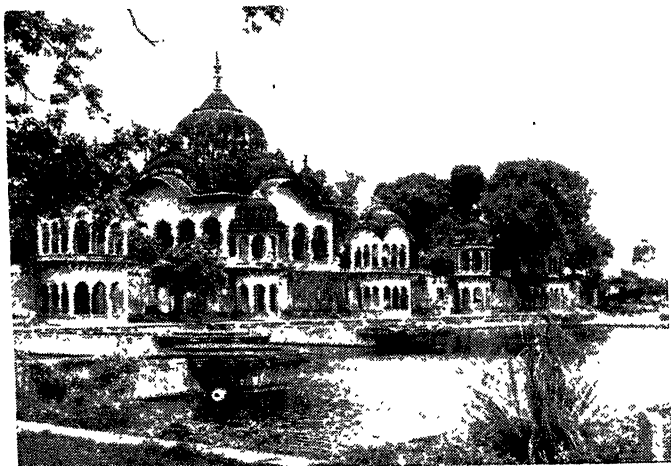
मानसी गंगा, गोवर्धन
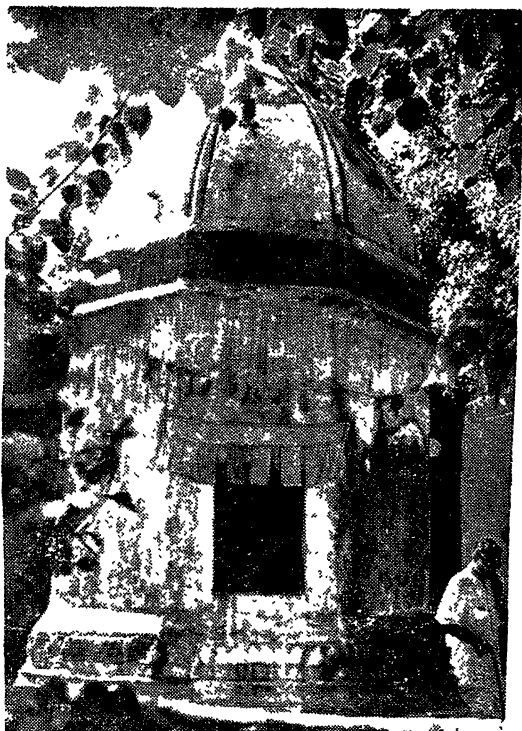
सूरदास मदनमोहन की समाधि
[वृंदावन में पुराने मदनमोहन जी के मंदिर के निकट]